MCOM -06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र

(MANAGERIAL ECONOMICS)

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) बी. एल. वर्मा
कुलगुरु
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक

प्रो. (डॉ.) अनुरोध गोधा
आचार्य (वाणिज्य)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

सदस्य

प्रो. जे. के. टंडन
सेवानिवृत आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रो. पी. के. शर्मा
सेवानिवृत आचार्य, प्रबन्ध विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. सोम देव
सेवानिवृत आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रो. एन. डी. माथुर
सेवानिवृत आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रो. जे. पी. यादव
आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रो. गोपाल सिंह
पूर्व निदेशक (शोध)
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. रीटा माथुर
आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

श्री राजेश संड
निदेशक (आर्थिक सेवाएं)
नेशनल प्रोडक्टिविटी काउन्सिल, दिल्ली

प्रो. आशीष माथुर
विभागाध्यक्ष, प्रबन्ध विभाग
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)

प्रो. एच. आर. गोदारा
सेवानिवृत आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
कॉलेज शिक्षा, जयपुर

प्रो. बी. एल. गुप्ता
सेवानिवृत आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रो. एम. डी. अग्रवाल
सेवानिवृत आचार्य (वाणिज्य विभाग)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. एम. एल. शर्मा
आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
कॉलेज शिक्षा, जयपुर

संपादन एवं पाठ-लेखन

संपादक

प्रो. गोपाल सिंह
पूर्व निदेशक (शोध)
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

सह संपादक

प्रो. (डॉ.) अनुरोध गोधा
आचार्य (वाणिज्य)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

पाठ लेखक

- **डॉ. राजेश शर्मा** (इकाई-10,11)
  सेवानिवृत आचार्य विभागाध्यक्ष (ई.ए.एफ.एम.)
  कॉलेज शिक्षा, राजस्थान
- **प्रो. गोपाल सिंह** (इकाई-1,3,5,6,7,14)
  पूर्व निदेशक (शोध)
  कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
- **डॉ. मधुसुदन प्रधान** (इकाई- 2,4)
  सहायक आचार्य विभागाध्यक्ष (ई.ए.एफ.एम.)
  राजस्थान लोहिया महाविद्यालय, चुरू (राज.)
- **प्रो. सोम देव** (इकाई-12,15,24)
  सेवानिवृत आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

- **डॉ. ओ.पी. गुप्ता** (इकाई 8,18,19,20,21,22)
  सेवानिवृत आचार्य विभागाध्यक्ष (इ.ए.एफ.एम.)
  डी.ए.वी. कॉलेज, श्री गंगानगर (राज.)
- **डॉ. सतीश कुमार जैन** (इकाई-9)
  सेवानिवृत्त सह आचार्य
  राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, कोटा
- **डॉ. चन्द्र प्रकाश गुप्ता** (इकाई-13)
  पूर्व सह आचार्य (ई.ए.एफ.एम.)
  श्री गोविन्द सिंह गुर्जर राजकीय महाविद्यालय,
  नसीराबाद, अजमेर (राज.)
- **प्रो. रेणु जटाना** (इकाई-16,17)
  पूर्व प्रोफेसर, डीन एवं संकाय अध्यक्ष,
  एम.एल. सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
- **डॉ. चेतन शर्मा** (इकाई-23)
  व्याख्याता
  ओम कोठारी इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एण्ड मैनेजमेन्ट,
  कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) बी. एल. वर्मा
कुलगुरु
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
(राजस्थान)

प्रो. बी. अरुण कुमार
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
(राजस्थान)

डॉ. रवि गुप्ता
प्रभारी
पाठ्यक्रम उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
(राजस्थान)

July 2026

All rights reserved. No part of this book may be reproduced in any from by mimeograph or any other means, without permission in writing form the V.M. Open University, Kota.

Published on behalf of Registrar V.M. Open University, Kota.

MCOM -06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय सूची

प्रबंधकीय अर्थशास्त्र

इ. स.	इकाई का नाम	पृष्ठ स.
1.	प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अर्थ, क्षेत्र एवं व्यावसायिक निर्णयों में भूमिका	1 - 12
2.	अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याएँ/कार्य	13 - 25
3.	उपभोक्ता व्यवहार : गणनावाचक दृष्टिकोण	26 - 46
4.	उपभोक्ता व्यवहार : क्रमवाचक दृष्टिकोण	47 - 61
5.	माँग विश्लेषण एवं माँग का नियम	62 - 82
6.	माँग की लोच	83 - 94
7.	माँग की लोच को मापने की विधियाँ	95 - 106
8.	माँग पूर्वानुमान एवं इसकी विधियाँ	107 - 119
9.	पूर्ति ,पूर्ति का नियम एवं पूर्ति की लोच	120 - 134
10.	अल्पकालीन उत्पादन फलन अथवा उत्पत्ति के नियम	135 - 150
11.	दीर्घकालीन उत्पादन फलन/पैमाने के प्रतिफल	151 - 163
12.	अल्पकालीन लागत विश्लेषण	164 - 176
13.	दीर्घकालीन लागत विश्लेषण एवं आगम विश्लेषण	177 - 192
14.	मूल्य निर्धारण का सामान्य सिद्धान्त	193 - 207
15.	फर्म का सिद्धांत एवं उद्देश्य	208 - 218
16.	पूर्ण प्रतियोगिताः कीमत एवं उत्पादन निर्धारण	219 - 235
17.	एकाधिकारः कीमत एवं उत्पादन निर्धारण	236 - 252
18.	अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता : मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण	253 - 265
19.	अल्पाधिकार : कीमत एवं उत्पादन निर्धारण	266 - 280
20.	लाभ: लाभ निर्धारण के सिद्धांत और लाभ नीति	281 - 297
21.	राष्ट्रीय आय विश्लेषण	298 - 312
22.	व्यापार चक्र	313 - 330
23.	आय और रोजगार का प्रतिष्ठित दृष्टिकोण	331 - 342
24.	आय व रोजगार पर केंन्ज का दृष्टिकोण	343 - 357

इकाई - 1

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अर्थ, क्षेत्र एवं व्यावसायिक निर्णयों में भूमिका (Meaning, Scope and Role of Managerial Economics in Business Decisions)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अभ्युदय एवं अर्थ

1.3 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की विशेषताएँ

1.4 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति

1.5 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र

1.6 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की व्यावसायिक निर्णयन में भूमिका/महत्त्व

1.7 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध

1.8 सारांश

1.9 अधिगम परिणाम

1.10 शब्दावली

1.11 स्व-परख प्रश्न

1.12 संन्दर्भ एवं ग्रंथ सूची

1.13 अन्य पठन सामग्री

1.14 वेब संसाधन/लिंक

1.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति के बारे में जान सकेंगे।
- प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र के बारे में समझ पैदा कर सकेंगे।
- प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की व्यावसायिक निर्णयों में भूमिका के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक गत्यामक एवं जटिल युग में अब परम्परागत अर्थशास्त्र के कोरे सिद्धान्त अधिक काम के नहीं रह गये हैं। इसलिए द्वितीय विश्व युद्ध पश्चात आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावसायिक जगत की व्यावहारिक समस्याओं के विश्लेषण एवं समाधान के लिए खुलकर प्रयोग किया जाने लगा है। इससे अर्थशास्त्र की एक नवीन और विशिष्ट शाखा का जन्म हुआ है, जिसे प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का नाम दिया जाता है। इस इकाई में हम प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त हम इस इकाई में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की व्यावसायिक निर्णयों में भूमिका के बारे में भी जानकारी करेंगे।

1.2 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अभ्युदय एवं अर्थ (Emergence and Meaning of Managerial Economics)

आर्थिक-व्यावसायिक जगत अधिक जटिल और गत्यात्मक हो गया है, इसलिए अब व्यवसाय एवं उद्योग जगत की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान परम्परागत अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों द्वारा संभव नहीं है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् से लगातार व्यावसायिक संगठन अपनी प्रबन्धकीय समस्याओं के विश्लेषण एवं समाधान के लिए अर्थशास्त्र की नवीन अवधारणाओं, वैज्ञानिक विधियों तथा आर्थिक विश्लेषण की गणितीय एवं सांख्यिकीय पद्धतियों का प्रयोग करने लगे हैं। इस कारण से एक नवीन विषय **''प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र''** का जन्म एवं विकास हुआ है। अर्थशास्त्र की इस विशिष्ट शाखा के विकास से अब आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावसायिक जगत की व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में खुलकर प्रयोग होने लगा है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र को **''व्यावसायिक अर्थशास्त्र'' (Business economics)** के नाम से भी जाना जाता है। कुछ अर्थवेत्ता इसे **फर्म का अर्थशास्त्र (Economics of the firm)** अथवा **फर्म का सिद्धान्त** भी कहते हैं। **नॉरमन एफ. दफ्ती (Norman F. Dufty)** के शब्दों में ''इसमें अर्थशास्त्र के उस भाग का समावेश होता है जिसे फर्म का सिद्धान्त कहते हैं और जो व्यवसायी को निर्णय लेने में पर्याप्त सहायक हो सकता है।'' व्यावसायिक अर्थशास्त्र की इसी प्रकार की मिलती-जुलती परिभाषा **बेट्स तथा पार्किन्सन (Bates and Parkinson)** ने भी दी है। उनके अनुसार, ''व्यावसायिक अर्थशास्त्र फर्मो के आचरण का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन है।'' प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ नीचे दी जा रही हैं :

जोयल डीन (Joil Dean) के अनुसार, ''प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का उद्देश्य यह बताना है कि आर्थिक विश्लेषण का व्यावसायिक नीतियों के निर्धारण में कैसे प्रयोग किया जा सकता है?'' (The purpose of Managerial Economics is to show how economic analysis can be used in formulating business policies?)

स्पेन्सर तथा सीगलमेन के अनुसार, ''प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यावसायिक व्यवहार का इस उद्देश्य से किया गया एकीकरण है जिससे प्रबन्धकों को निर्णय लेने तथा भावी नियोजन करने में सुविधा होती है।'' (Managerial Economics is the integration of economic theory with business practice for the purpose of facilitating decision making and forward planning by management.)

हेयन्स (Haynes) के अनुसार, '' प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र निर्णय लेने में प्रयुक्त होने वाला अर्थशास्त्र है। यह अर्थशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा है जो अर्थशास्त्र के निरपेक्ष सिद्धान्त तथा प्रबन्धकीय व्यवहार के बीच अन्तराल को पाटने में सेतु का काम करता है। यह समस्याओं के स्पष्टीकरण, सूचनाओं के संगठन एवं मूल्यांकन तथा वैकल्पिक कार्य पद्धतियों की तुलना में आर्थिक विश्लेषण के उपकरणों के प्रयोग पर बल देता है। ''

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण-विवेचन करने के पश्चात हम यह कह सकते हैं कि यह ज्ञान की वह शाखा है जिसमें आर्थिक विश्लेषण के सिद्धान्तों का व्यावसायिक प्रबन्ध की समस्याओं के समाधान करने तथा व्यावसायिक नीतियों के निर्धारण के लिए प्रयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहें, तो प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र, **आर्थिक सिद्धान्त** (Economics theory) का एक भाग है जो सामान्य रूप में **व्यावसायिक गतिविधियों** (Business activities) से सम्बन्धित है तथा विशिष्ट रूप में व्यावसायिक संगठनों में निर्णयन प्रक्रिया में उत्पन्न व्यावसायिक समस्याओं से सम्बन्धित है। वास्तव में, यह व्यवसाय एवं प्रबन्ध के क्षेत्र में **आर्थिक सिद्धान्तों एवं व्यावसायिक व्यवहारों का एकीकरण (**Integration of economic theory and business practices**)** है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं व्यावसायिक प्रबन्ध की सीमा-रेखा पर स्थित है तथा यह व्यावसायिक प्रबन्ध एवं अर्थशास्त्र में **सम्पूरकता एवं सेतु** (Complementarity and bridge) का काम करता है। इस दृष्टि से प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जिसमें आर्थिक विश्लेषण की अवधारणाओं, विधियों एवं उपकरणों का व्यावहारिक व्यावसायिक समस्याओं के विश्लेषण एवं निराकरण में प्रबन्ध द्वारा समुचित नीति-निर्धारण हेतु अध्ययन एवं प्रयोग किया जाता है। मूलतः प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र **फर्म अथवा व्यावसायिक इकाई के स्तर पर निर्णय-प्रक्रिया, निर्णय प्रारूप तथा निर्णय चरों** (Decision process, Decision model and Decision variables) पर ध्यान केन्द्रित करता है। व्यावसायिक प्रबन्धकों के लिए भविष्य की अनिश्चितताओं एवं पूर्ण ज्ञान के अभाव में सही निर्णय लेने तथा सटीक नियोजन करना अत्यन्त कठिन होता है। इसलिए इन कठिन एवं जटिल कार्यों को सही तरीके से सम्पन्न करने में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र सहायक होता है।

1.3 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की विशेषताएँ (Characteristics of Managerial Economics)

व्यावसायिक अथवा प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषताएँ अग्रांकित हैं :

1. **व्यष्टि अर्थशास्त्रीय प्रकृति (Micro Economic Nature)** : प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का स्वभाव व्यष्टि अथवा सूक्ष्म अर्थशास्त्रीय है क्योंकि इसके अन्तर्गत एक फर्म के आचरण का अध्ययन किया जाता है। चूँकि, **फर्म एक व्यष्टि आर्थिक इकाई** (Micro economics unit) है, इसलिए व्यावसायिक अर्थशास्त्र स्वभाव से मूलतः व्यष्टि अर्थशास्त्रीय है। इसके अन्तर्गत न तो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया जाता है और न ही किसी व्यक्ति विशेष की क्रियाओं का। यह तो व्यावसायिक फर्म के आचरण का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन है। इसलिए **प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र मूलतः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण है (Managerial Economics is basically a micro economic analysis)**।
2. **फर्म का सिद्धान्त अथवा फर्म का अर्थशास्त्र (Theory of Firm or Economics of Firm) :** प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में उन सभी आर्थिक सिद्धान्तों, अवधारणाओं, विधियों एवं प्रतिरूपों (Models) का अध्ययन एवं प्रयोग किया जाता है जिन्हें "फर्म सिद्धान्त" अथवा "फर्म के अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए, प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में भी फर्म के अर्थशास्त्र की तरह लागत एवं आगम विश्लेषण, माँग एवं पूर्ति विश्लेषण, उत्पादन एवं कीमत निर्धारण, फर्म का अनुकूलतम स्तर , लाभ का अधिकतमीकरण आदि का अध्ययन किया जाता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में वितरण के "लाभ सिद्धान्त" का तो अध्ययन किया जाता है, किन्तु अन्य सिद्धान्तों का अध्ययन नहीं किया जाता है।
3. **समष्टि आर्थिक चरों का प्रयोग (Use of Macro Economic Variables) :** प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में समष्टि आर्थिक चरों का भी अध्ययन किया जाता है क्योंकि इनका फर्म के (व्यष्टिगत) आर्थिक निर्णयों पर भी प्रभाव पड़ता है। समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन से एक व्यावसायिक फर्म को अर्थव्यवस्था के उन **बाह्य तत्त्वों** (Exogeneous

factors) एवं सम्पूर्ण परिवेश को समझने में मदद मिलती है जिन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं होता है। एक फर्म को अपने कार्य-कलापों को अनुकूलतम स्तर पर बनाये रखने के लिए अर्थव्यवस्था के समग्र वातावरण एवं बाहरी शक्तियों का सही एवं उचित आकलन करना आवश्यक हो जाता है ताकि वह तदनुरूप नीतिगत निर्णय ले सके और भावी नियोजन कर सके। **इसलिए समष्टि अर्थशास्त्र के वे चर जो फर्म विशेष को प्रभावित करते हैं, उन सभी का अध्ययन प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में किया जाता हैं।** इन समष्टिगत चरों में राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, औद्योगिक नीति, आयात-निर्यात नीति (वाणिज्यिक नीति), श्रम नीति, व्यापार चक्र, सामान्य मूल्य-स्तर, राष्ट्रीय आय आदि महत्त्वपूर्ण हैं, जिनकी अनदेखी कोई भी व्यावसायिक फर्म नहीं कर सकती है।

4. **वर्णनात्मक न होकर निर्धारात्मक (Normative Instead of Descriptive) :** अर्थशास्त्र अपने स्वभाव से वर्णनात्मक न होकर निर्धारात्मक अथवा **निर्देशात्मक** है क्योंकि इसके अन्तर्गत विभिन्न अर्थशास्त्रीय चरों का वर्णन न करके उनका अच्छे-बुरे की दृष्टि से निर्धारण किया जाता है और उसके आधार पर दिशा-निर्देशन प्राप्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, आर्थिक सिद्धान्त में माँग के नियम का अध्ययन इस बात का पता लगाने के लिए किया जाता है कि कीमत में परिवर्तन का माँग पर क्या प्रभाव पड़ेगा, किन्तु इस बात का अध्ययन नहीं किया जाता है कि यह प्रभाव अच्छा है या बुरा? प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में यह निर्धारण किया जाता है कि यह प्रभाव अच्छा है अथवा बुरा? इस प्रकार व्यावसायिक अर्थशास्त्र में विभिन्न निर्णयों के फर्म पर पड़ने वाले अच्छे एवं बुरे प्रभाव की व्याख्या की जाती है और तदनुरूप ही निर्णय लिए जाते हैं।
5. **केस अध्ययन विधि पर अधिक बल (More Emphasis on Case Study Method) :** प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र सैद्धान्तिक अध्ययन पर कम तथा इसके स्थान पर व्यावहारिक एवं यथार्थपरक स्थितियों के केस विधि द्वारा अध्ययन पर अधिक जोर देता है। अतः यह महज सैद्धान्तिक विषय न होकर व्यावहारिक उपयोगिता एवं मार्गदर्शन का विषय है।
6. **अधिक परिष्कृत एवं विकासमान विषय (More Refined and Developing Subject) :** प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र परम्परागत अर्थशास्त्र की तुलना में अधिक परिष्कृत विषय है क्योंकि **इसके अन्तर्गत विश्लेषण हेतु आधुनिक सांख्यिकीय एवं गणितीय विधियों तथा वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयाग किया जाता है।** इतना ही नहीं, इसमें क्रियात्मक अनुसंधान (Operational research) की विधियों एवं कम्प्यूटरों का भी प्रयोग किया जाता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के मॉडल अधिक वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक होते हैं क्योंकि वे अपेक्षाकृत कम अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित होते हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की अवधारणाएँ एवं प्रतिरूप (Model) अनिश्चितताओं के जोखिम भरे आर्थिक हालातों के अन्तर्गत प्रबन्धकों को यथा संभव सही निर्णय लेने में सहायक होते हैं। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक नवोदित और विकासमान विषय है जिसका जन्म द्वितीय विश्व युद्ध काल में हुआ और तब से लेकर आज तक यह निरन्तर सुधार और विकास की ओर अग्रसर है। **यह ज्ञान की अपेक्षाकृत नवीन एवं व्यावहारिक शाखा है जो निरन्तर सुधार, परिष्करण एवं विकास की ओर अग्रसर है।**
7. **विज्ञान तथा कला दोनों (Both Science and Art)** : प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक साथ विज्ञान तथा कला दोनों है। यह न केवल व्यवस्थित ज्ञान का भण्डार है, वरन् उसका उपयोगकर्ता भी है। **यह न केवल उपकरण निर्माता ही नहीं, वरन उपकरण प्रयोगकर्त्ता भी है (Not only tool maker, but also tool user**)।

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र समन्वयात्मक प्रकृति का ज्ञान है क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र, सिद्धान्त और व्यवहार के बीच तालमेल बिठाया जाता है। यह प्रबन्धकों को सही निर्णय लेने में सहायता करता है और साथ में उन्हें यह भी निर्देशित करता है कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं? इस दृष्टि से प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र **निर्देशात्मक प्रकृति** (Perspective nature) का है।

1.4 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति (Nature of Managerial Economics)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं विशेषताओं को समझ लेने के पश्चात हमारे लिए उसकी प्रकृति को समझना आसान है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रयोग व्यावसायिक एवं प्रबन्धकीय निर्णयों तथा भावी नियोजन के लिए किया जाता है ताकि व्यावसायिक समस्याओं के समाधान में उचित दिशा-निर्देश मिल सके। अतः **प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र विज्ञान एवं कला दोनों का सम्मिश्रण** (Combination of both Science and Art) है | प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति का विस्तार से विवेचन करने के लिए यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि यह विज्ञान और कला दोनों किस प्रकार है?

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र विज्ञान के रूप में (Managerial Economics as a Science) : किसी भी विषय के व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान की संज्ञा दी जाती है। विज्ञान के अन्तर्गत किसी घटना के **कारण एवं प्रभाव** (Cause and Effect) का अध्ययन किया जाता है, विषय से सम्बन्धित नियमों का प्रतिपादन किया जाता है, उन्हें सत्य की कसौटी पर कसा जाता है और उनसे पूर्वानुमान लगाये जाते हैं। विज्ञान की परिभाषा की कसौटी पर यदि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र को परखा जाये, तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यह एक विज्ञान है| क्योंकि इसके भी कुछ निश्चित नियम एवं सिद्धान्त हैं जिनके द्वारा व्यावसायिक घटनाओं के कारण एवं प्रभाव का अध्ययन किया जाता है तथा इन सिद्धान्तों की सत्यता को जाँचा-परखा जाता है। इतना ही नहीं, प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में व्यवसाय सम्बन्धी पूर्वानुमान भी लगाये जाते हैं और भविष्यवाणी भी की जाती है। वस्तुतः **प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्तों का एक व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन है जिसका प्रयोग व्यावहारिक व्यावसायिक समस्याओं के निराकरण के लिए किया जाता है। अतः यह सुस्पष्ट है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक विज्ञान है।**

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र कौनसा विज्ञान है? क्या यह वास्तविक विज्ञान है अथवा आदर्श विज्ञान? इस प्रश्न का उत्तर जानने से पूर्व इन दोनों प्रकार के विज्ञान का अर्थ समझना आवश्यक है।

वास्तविक विज्ञान (Real Science) : इसे **शुद्ध विज्ञान** (Pure Science) के नाम से भी जाना जाता है। यह वह विज्ञान है जो किसी घटना के कारण एवं प्रभाव की निरपेक्ष व्याख्या करता है अर्थात वस्तु स्थिति **"क्या है"?** (What is?) से अवगत कराता है । यह एक प्रकार का सैद्धान्तिक विश्लेषण है, जो हमें केवल किसी घटना की यथार्थ स्थिति से अवगत कराता है अर्थात् **यह उद्देश्यों के प्रति तटस्थ रहता है** (It is neutral between ends)।

आदर्श विज्ञान (Normative Science) : यह वह विज्ञान है जो किसी घटना के कारण एवं प्रभाव के साथ-साथ यह भी बताता है कि "**क्या होना चाहिए?** (What should be?) अर्थात घटना की वस्तु स्थिति को स्पष्ट करने के साथ-साथ अच्छे-बुरे को ध्यान में रखकर सलाह-मशवरा, सुझाव एवं अभिमत (Suggestion and Opinion) भी देता है कि क्या होना चाहिए? यह एक **नीति प्रधान विज्ञान** है जहाँ क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए?, को ध्यान में रखकर निर्णय किये जाते हैं।

वास्तविक और आदर्श विज्ञान का अर्थ समझ लेने के पश्चात अब यह कहा जा सकता है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में दोनों विज्ञानों की विशेषताएँ विद्यमान हैं| प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र जहाँ एक तरफ व्यावसायिक घटनाओं के न केवल कारण एवं प्रभाव का अध्ययन करता है , वहीं दूसरी ओर उनके अच्छे-बुरे परिणामों को ध्यान में रखकर प्रबन्धकों को "क्या होना चाहिए?" के बारे में भी दिशा निर्देश प्रदान करता है। वस्तुतः **प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान** है क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यावसायिक फर्मों की गतिविधियों, घटनाओं एवं समस्याओं का न केवल सैद्धान्तिक विश्लेषण किया जाता है, बल्कि उनके व्यावहारिक उपयोगी समाधान भी ढूँढे जाते हैं । जैसा कि पूर्व में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की विशेषताओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति **वर्णनात्मक न होकर निर्धारात्मक**

अथवा निर्देशात्मक (Perspective rather than descriptive) है। इसलिए इसके अन्तर्गत साधनों के अध्ययन की अपेक्षा साध्यों के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाता है तथा उनके अच्छे-बुरे के बारे में निर्णय लिया जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि **''प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र "उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं है** (Managerial Economics is not neutral between ends)| व्यवहार में एक प्रबन्धक वस्तु स्थिति का अध्ययन कर उसके पास उपलब्ध सभी विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव करता है ताकि फर्म अधिकतम लाभ के अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सके। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में उचित एवं अनुचित पर विचार कर लेने के पश्चात नीति-निर्धारण का कार्य किया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी फर्म के द्वारा अपनी वस्तु की कीमत में वृद्धि के निर्णय से उसकी बिक्री और लाभ में कमी आती है, तो फर्म अपनी वस्तु की कीमत में वृद्धि नहीं करेगी क्योंकि ऐसा करना उसके हित में है।

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र कला के रूप में (Managerial Economics as an Art) : किसी भी कार्य को सर्वोत्तम तरीके से करने की क्रिया को कला कहते हैं । दूसरे शब्दों में कहें, तो **ज्ञान को व्यवहार में लागू करने की क्रिया** (An act of applying knowledge into practice) को कला कहते हैं। इस दृष्टि से प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र भी कला है क्योंकि इसके अन्तर्गत आर्थिक सिद्धान्तों को व्यावसायिक जगत की समस्याओं के विश्लेषण और सर्वोत्तम समाधान के लिए प्रयोग किया जाता है। व्यावसायिक प्रबन्धक अनेक उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव करता है और उसे व्यावहारिक क्रियान्विति का अमली-जामा पहनाता है। वह अपने व्यवसाय का संचालन अनेक प्रकार की अनिश्चितताओं के भँवर के बीच में इस प्रकार करता है कि वह अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सके। वह सदैव वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनो में से केवल उन्ही का चुनाव करता है जो न केवल अधिक उत्पादक हो, वरन् मितव्ययतापूर्ण भी हो।

एक व्यावसायिक फर्म आर्थिक सिद्धान्तों के प्रयोग द्वारा अपने लिए अनुकूलतम/सर्वश्रेष्ठ स्थितियाँ उत्पन्न कर उनका अपने हित में प्रयोग करती है। यह सब प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के ज्ञान और उसके प्रयोग बिना संभव नहीं है। चूँकि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्तों एवं व्यावसायिक व्यवहार का समन्वय है, इसलिए इसे समन्वय की इस क्रिया के कारण ही कला कहा जाता है। **जोसेफ मेसी** के शब्दों में "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र प्रबन्ध द्वारा आर्थिक सिद्धान्तों को व्यावसायिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रयोग करना है।" अतः हम यह कह सकते हैं कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक कला है क्योंकि इसके अन्तर्गत आर्थिक सिद्धान्तों, विधियों एवं उपकरणों का प्रयोग व्यावसायिक नीति-निर्धारण में किया जाता है|

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र **विज्ञान और कला दोनों है क्योंकि यह एक ऐसा शास्त्र है जो न केवल उपकरण निर्माता है, वरन उपकरण प्रयोगकर्त्ता भी है** (It is not only a tool-making, but tool-using discipline also)

स्व मूल्यांकन - प्रथम

तर्क और उदाहरण सहित अपने तथा सहपाठियों को विश्वास दिलाइए कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान है।

1.5 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Managerial Economics)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र परम्परागत अर्थशास्त्र की एक नवीन किन्तु विकासमान शाखा होने के कारण इसके क्षेत्र में निरन्तर विस्तार होता रहा है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र के बारे में अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं। कुछ अर्थशास्त्री **खेलों के सिद्धान्त** (Theory of games), **रेखीय कार्यक्रम** (Linear programming), **सामग्री प्रतिरूपों** (Inventory models) तथा **क्रियात्मक अनुसंधान** (Operational research) को इसके क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं, तो कुछ नहीं। किन्तु अब धीरे-धीरे इन सभी का प्रयोग अधिकांश प्रबन्धकीय अर्थशास्त्रियों द्वारा किया जाने लगा है। इसका मूल कारण यह है कि इनके प्रयोग से प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र न केवल सैद्धान्तिक रूप से समृद्ध होता है, वरन् उसकी

व्यावहारिक उपादेयता भी बढ़ जाती है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत उन सभी आर्थिक सिद्धान्तों, अवधारणाओं, प्रतिरूपों तथा विश्लेषण की विधियों का समावेश होता है जो व्यावसायिक प्रबन्धकों को उनके व्यवसाय के सम्बन्ध में निर्णय लेने एवं भावी नियोजन करने में सहायक होती हैं। **सामान्यतया आर्थिक विश्लेषण के निम्नांकित पहलू प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सम्मिलित किये जाते हैं|**

1. **माँग विश्लेषण एवं माँग पूर्वानुमान (Demand Analysis and Demand Forecasting) :** प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत फर्म द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तु की माँग से सम्बन्धित सिद्धान्तों, नियमों एवं अवधारणाओं का अध्ययन किया जाता है तथा माँग पूर्वानुमान की विभिन्न विधियों द्वारा वस्तु की भावी माँग का अनुमान लगाया जाता है। फर्म अनिश्चितताओं एवं जोखिम के वातावरण में काम करती है, इसलिए सही निर्णय के लिए प्रबन्धन वस्तु की माँग विश्लेषण के साथ-साथ माँग का पूर्वानुमान भी लगाते हैं। माँग पूर्वानुमानों के आधार पर ही प्रबन्धक उत्पादन सारिणियों का निर्माण करते हैं । भविष्य की माँग के अनुमानों के आधार पर ही प्रबन्धकों को फर्म की स्थिति का सही ज्ञान होता है। वे इसी आधार पर ही फर्म की वर्तमान स्थिति को बनाये रखते हैं अथवा उसे और सुदृढ़ कर अपने लाभों में वृद्धि कर सकते हैं। वास्तव में, **माँग विश्लेषण और माँग पूर्वानुमान ही प्रबन्धकीय निर्णयों एवं नियोजन का आधार होता है** क्योंकि माँग विश्लेषण एवं माँग पूर्वानुमान सही होने पर ही फर्म अधिकतम लाभ कमा सकती है, अन्यथा उसे हानि उठानी पड़ सकती है।
   माँग विश्लेषण एवं पूर्वानुमान के अन्तर्गत फर्म की वस्तु की बाजार में औसतन कितनी माँग है, उसकी माँग को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से तत्त्व हैं , बाजार में उस वस्तु के कौन-कौन से स्थानापन्न उपलब्ध हैं, भविष्य में वस्तु की अनुमानित माँग कितनी होगी आदि बातों का अध्ययन किया जाता है। इन सब बातों का ठीक से ज्ञान प्राप्त करने के लिए माँग के निर्धारक तत्त्वों , माँग के नियम , माँग की लोच , माँग पूर्वानुमान की विधियाँ , मनोवैज्ञानिक कारकों तथा बाहरी परिवेश के प्रभाव का भी अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त, इसके अन्तर्गत उपयोगिता विश्लेषण एवं उदासीनता वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता साम्य का भी अध्ययन किया जाता है।
2. **उत्पादन नियोजन एवं प्रबन्ध (Production Planning and Management) :** प्रत्येक फर्म माँग के अनुरूप अपनी वस्तु का न्यूनतम लागत पर उत्पादन कर अधिकतम लाम कमाना चाहती है। इसके लिए उसे अपने उत्पादन की योजना बनानी पड़ती है, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि किस वस्तु का कितना, कब और कैसे उत्पादन किया जाए? इस हेतु उत्पादन के साधनों का प्रबन्ध कैसे किया जाये तथा किस साधन की कितनी-कितनी मात्रा उत्पादन प्रकार्य में लगायी जाये? इन सबके लिए प्रबंधकीय अर्थशास्त्र में **उत्पादन फलन** (जो उत्पादन के साधनों और उत्पादन की मात्रा के भौतिक सम्बन्ध की व्याख्या करता है) का अध्ययन किया जाता है। **अल्पकालीन उत्पादन फलन में उत्पत्ति के नियमों** (Laws of returns) **तथा दीर्घकालीन उत्पादन फलन के अन्तर्गत पैमाने के प्रतिफल** (Returns to scale) का विवेचन किया जाता है।
3. **उत्पादन एवं लागत विश्लेषण (Production and Cost Analysis) :** फर्म के लाभ नियोजन , कीमत निर्धारण एवं उस पर प्रभावी नियंत्रण के लिए प्रबन्धकों को उत्पादन की मात्रा का निर्धारण तथा उसमें लगने वाली लागतों का विश्लेषण और नियंत्रण करना आवश्यक होता है। लागत विश्लेषण के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की लागतों का विश्लेषण कर उत्पादन की मात्रा और उनके बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध का पता लगाया जाता है। **सीमान्त लागत, औसत परिवर्तनशील लागत , औसत स्थिर लागत तथा औसत कुल लागत का पता कर उनके बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।** इसके अलावा , इसके अन्तर्गत **रेखीय कार्यक्रम तथा सम-विच्छेद बिन्दु विश्लेषण** (Break even point analysis) का भी अध्ययन किया जाता है।
4. **मूल्य निर्धारण नीतियाँ एवं व्यवहार (Pricing Policies and Practices)** : मूल्य निर्धारण प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि एक बड़ी सीमा तक फर्म की सफलता उसकी मूल्य निर्घारण नीतियों पर

ही निर्भर करती है। इसके अन्तर्गत बाजार के **विभिन्न प्रारूपों, मूल्य निर्धारण सिद्धान्तों, नीतियों एवं व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।** विभेदात्मक मूल्य निर्घारण तथा विभिन्न प्रकार की छूट योजनाओं का अध्ययन भी इसी के अन्तर्गत आता है। मूल्य पूर्वानुमानों के अतिरिक्त, फर्म की अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन मूल्य नीतियों तथा विक्रय सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन भी इसी के अन्तर्गत आता है। फर्म का **आगम विश्लेषण** भी इसी का अभिन्न अंग होता है।

5. **लाभ प्रबन्ध (Profit Management)** : प्रत्यके फर्म का अन्तिम उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। दीर्घकाल में फर्म की सफलता का मापदण्ड भी लाभ की मात्रा ही होती है। लाभ फर्म के आगम और लागतों की मात्रा पर निर्भर करता है जो अनेक आन्तरिक और बाह्य घटकों से प्रभावित होते हैं। यदि फर्म को इन कारकों की सही जानकारी है, तो लाभ का अनुमान और विश्लेषण करना सरल हो जाता है। चूँकि फर्म भविष्य की अनिश्चितताओं के वातावरण में आशाओं एवं अनुमानों के आधार पर कार्य करती है, इसलिए लाभ का नियोजन एवं प्रबन्ध करना आवश्यक हो जाता है। अतः प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत **लाभ सम्बन्धी अवधारणाओं , लाभ नियोजन एवं उनकी विधियों, लाभ की प्रकृति, लाभ मापन , लाभ के अधिकतमीकरण की रीतियों तथा उपयुक्त लाभ नीति का चयन का अध्ययन किया जाता है।**
6. **पूँजी प्रबन्ध Capital Management) :** व्यावसायिक फर्मो को समय समय पर विभिन्न परियोजनाओं में पूँजी विनियोजन करना पड़ता है। पूँजी प्रबन्ध के अन्तर्गत विनियोगों के लिए आवश्यक वित्तीय साधन जुटाने ,पूँजी की लागत , पूँजी पर प्रत्याय की दर (Rate of return) तथा विभिन्न परियोजनाओ में से किसी एक अथवा अधिक उपयुक्त परियोजनाओं का विवेकपूर्ण चुनाव सम्मिलित होता है।
7. **अनिश्चितताओं के अन्तर्गत निर्णयन सिद्धान्त (Decision Theory Under Uncertainties) :** प्रबन्धकों को अनेक निर्णय अनिश्चितता के वातावरण में लेने पड़ते हैं। ये अनिश्चितताएँ अनेक एवं नाना प्रकार की हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, माँग की अनिश्चितता, लागत की अनिश्चितता, पूँजी की अनिश्चितता आदि-आदि। अनिश्चिताओं की इन स्थितियो में सही एवं उपयुक्त निर्णय लेने के लिए अनेक गणितीय एवं सांख्यिकीय विधियों का विकास किया गया है और आर्थिक विश्लेषण के उपकरणों को इस तरीके से परिष्कृत किया जा रहा है ताकि अनिश्चितताओं के मध्य निर्णय प्रक्रियाओं को अधिक तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जा सके। अब संक्रिया-अनुसंघान और कम्प्यूटरों का भी प्रयोग किया जाने लगा है। **अनिश्चितताओं के अन्तर्गत निर्णय सिद्धान्तों का निर्माण एवं प्रयोग प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का एक अति-महत्त्वपूर्ण भाग है।**
8. **विक्रय प्रोत्साहन एवं व्यूहरचना (Sales Promotion and Strategy)** : फर्म की सफलता और अधिकतम लाभ प्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति एक बड़ी सीमा तक उसकी विक्रय व्यूहरचना पर निर्भर करती है, इसलिए प्रबन्धकों को इस पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। बढ़ती प्रतिस्पर्धा के आधुनिक युग में विक्रय व्यूहरचना का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। वास्तव में देखा जाये, तो वस्तु की विक्रय लागतें तथा बिक्री की मात्रा दोनों ही उसकी विक्रय व्यूहरचना पर निर्भर करती है। विक्रय वृद्धि के लिए **विज्ञापन, आकर्षक विक्रय योजनाएँ, ग्राहक सेवा, विक्रय लागतों में कमी करना, विक्रय प्रबन्ध अथवा विक्रय व्यूहरचना आदि** समस्त क्रियाएँ प्रबंधकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र की परिधि में आती हैं।
9. **अन्य (Others)** : इसके अन्तर्गत निम्नलिखित समाविष्ट हैं :

(i) **सरकारी की आर्थिक नीतियाँ (Economic Policies of the Government) :** सरकार की राजकोषीय, मौद्रिक , औद्योगिक , वाणिज्यिक , मूल्य एवं श्रम नीतियों का फर्म के कार्यों एवं नीतिगत निर्णयों पर गहरा एवं दूरगामी प्रभाव पड़ता है। इसलिए इन सबका अध्ययन प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

(ii) समष्टिगत आर्थिक घटक (Macro Economics Variables) :- एक फर्म के क्रिया-कलाप अर्थव्यवस्था के समष्टिगत आर्थिक घटकों से प्रभावित होते हैं, इसलिए इनका अध्ययन भी प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। इनमें मुख्य रूप से राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उपभोग, बचतें एवं विनियोग, सामान्य मूल्य-स्तर , व्यापार चक्र, गरीबी एवं बेरोजगारी आते हैं।

1.6 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की व्यावसायिक निर्णयन में भूमिका/महत्त्व (Role/Importance of Managerial Economics in Business Decisions)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के महत्त्व अथवा उसकी भूमिका को व्यावसायिक नीतियों के निर्माण और व्यावसायिक निर्णयों के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है, जो इस प्रकार हैं :

1. अनिश्चितताओं तथा जोखिमों को कम करने में सहायक;
2. नियोजन एवं निर्णयन में सहायक;
3. माँग विश्लेषण एवं पूर्वानुमान में सहायक;
4. व्यावसायिक नीतियों के निर्माण एवं निर्धारण में सहायक;
5. लागत विश्लेषण एवं नियंत्रण में सहायक;
6. फर्म के बाह्य वातावरण को समझने में सहायक;
7. व्यावसायिक संगठन के स्वरूप के निर्घारण में सहायक;
8. आर्थिक सिद्धान्तों तथा व्यावसायिक व्यवहारों के बीच उचित समन्वय एवं एकीकरण करने में सहायक;
9. परियोजना मूल्यांकन एवं उससे सम्बन्धित निर्णय लेने में सहायक ; तथा
10. व्यावसायिक समस्याओं के विश्लेषण एवं समाधान हेतु व्यावहारिक प्रतिरूप (Model) बनाने में सहायक।

1.7 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध (Relation of Managerial Economics with other Subjects)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र अपनी स्वयं की प्रकृति से अनेक अन्य विषयों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है तथा उन पर एक सीमा तक आधारित भी है । यह ज्ञान की एक ऐसी नवीन और विशिष्ट शाखा है जिसके उदभव एवं विकास में अनेक विषयों का योगदान रहा है। इसके भली-भांति अध्ययन एवं प्रयोग करने के लिए एक साथ अनेक विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है। **प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र अपने स्वभाव एवं चरित्र में मूलतः अन्तः विषयक विषय** (Inter-disciplinary subject) है। इसलिए प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र को ठीक ढंग से समझने के लिए निम्नांकित विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है :

1. **अर्थशास्त्र और अर्थमिति** (Economics and Econometrics) : इसके अन्तर्गत व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र दोनों का ज्ञान होना आवश्यक है ;
2. **गणित** (Mathematics);
3. **सक्रिय अनुसंधान** (Operational research)
4. **सांख्यिकी** (Statistics);
5. **लेखा शास्त्र** (Accounting) ;
6. **निर्णयन सिद्धान्त** (Decision making theory) ; तथा
7. **मनोविज्ञान एवं संगठनात्मक व्यवहार** (Psychology and organisational behaviour)

उपर्युक्त उल्लिखित विषयों से प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का गहरा सम्बन्ध है, इसलिए इनके ज्ञान के बिना प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की अकादमिक और व्यावहारिक उपादेयता संदिग्ध एवं सीमित हो जाती है।

स्व मूल्यांकन - द्वितीय :

आप यह समझने का प्रयास कीजिए कि एक फर्म द्वारा अपने उत्पाद की मात्रा तथा कीमत निर्धारण में प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकता है?

1.8 सारांश (Summary)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र ज्ञान की वह नवीन एवं विशिष्ट शाखा है जिसमें आर्थिक विश्लेषण की अवधारणाओं , विधियों एवं उपकरणों का व्यावसायिक समस्याओं के विश्लेषण एवं उनके समाधान हेतु अध्ययन एवं विवेचन किया जाता है। यह फर्मों के आचरण का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन है। इसका उद्देश्य यह बताना है कि आर्थिक विश्लेषण का व्यावसायिक नीतियों के निर्धारण में कैसे प्रयोग किया जा सकता है? प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषताएँ में: व्यष्टि अर्थशास्त्रीय प्रकृति , फर्म का सिद्धान्त, समष्टिगत आर्थिक चरों का प्रयोग, वर्णनात्मक न होकर निर्धारात्मक अथवा निर्देशात्मक होना, अध्ययन की केस विधि पर अधिक बल, अधिक परिष्कृत एवं विकासमान विषय तथा विज्ञान एवं कला दोनों होना है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र विज्ञान एवं कला दोनों का सम्मिश्रण है। यह मूलतः आदर्श विज्ञान है क्योंकि इसके अन्तर्गत "क्या है?, से अधिक महत्त्व "क्या होना चाहिए" पर दिया जाता है| प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र केवल उपकरण निर्माता न होकर उपकरण प्रयोगकर्त्ता भी है, इसलिए यह विज्ञान के साथ - साथ कला भी है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत माँग विश्लेषण एवं माँग पूर्वानुमान , उत्पादन नियोजन एवं प्रबन्ध , उत्पादन एवं लागत विश्लेषण , मूल्य निर्धारण नीतियाँ एवं व्यवहार, लाभ प्रबन्ध, पूँजी प्रबन्ध, अनिश्चितताओं के अन्तर्गत निर्णयन सिद्धान्त, विक्रय प्रोत्साहन एवं व्यूहरचना आदि को सम्मिलित किया जाता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का महत्त्व व्यावसायिक नीतियों के निर्माण, व्यावसायिक निर्णयन एवं भावी नियोजन करने में है| यह अन्तः विषयक होने के कारण ज्ञान की अनेक विधाओं (अर्थशास्त्र, गणित, सांख्यिकी, संक्रिया अनुसंधान, लेखा शास्त्र, निर्णयन सिद्धान्त, मनोविज्ञान एवं संगठनात्मक व्यवहार) से सम्बन्धित है।

1.9 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जानने में सक्षम हो गये होंगे कि:

- प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र क्या है और इसकी क्या विशेषताएँ हैं?
- प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति क्या है? क्या यह कला है अथवा विज्ञान अथवा दोनों हैं? यदि विज्ञान है, तो फिर कौनसी विज्ञान है?
- प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अंतर्गत क्या-क्या सम्मिलित होता है?

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र किस प्रकार व्यावहारिक व्यावसायिक निर्णय लेने में सहायक होता है?

1.10 शब्दावली (Glossary)

- **प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र (Managerial Economics)** : व्यावसायिक व्यवहार का इस उद्देश्य से किया गया एकीकरण है जिससे प्रबन्धकों को निर्णय लेने तथा भावी नियोजन करने में सुविधा होती है । इसे व्यावसायिक अर्थशास्त्र और फर्म का अर्थशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है।
- **समष्टि आर्थिक चर (Macro Economic Variables)** : ये वे आर्थिक घटक होते हैं जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से होता है, जैसे राष्ट्रीय आय , सामान्य मूल्य-स्तर, व्यापार चक्र इत्यादि।

- **बाह्य तत्त्व (Exogeneous Factors)** : ये वे तत्त्व होते हैं जिन पर किसी फर्म का कोई नियंत्रण नहीं होता है। यथा, सरकारी नीतियाँ , माँग व प्रतिस्पर्धा में होने वाले परिवर्तन, तकनीकी परिवर्तन इत्यादि।
- **वर्णनात्मक (Descriptive)** : इसके अन्तर्गत किसी घटना के कारण एवं प्रभाव का केवल वर्णन किया जाता है। उदाहरण के लिए, मँहगाई वृद्धि के क्या-क्या कारण हैं और उसका विभिन्न वर्गों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
- **निर्धारात्मक/निर्देशात्मक (Determinative/Normative)** : इसके अन्तर्गत विभिन्न आर्थिक चरों का वर्णन न करके उनका अच्छे-बुरे की दृष्टि से निर्धारण किया जाता है और उसके आधार पर दिशा-निर्देशन प्राप्त कर तदनुरूप निर्णय लिए जाते हैं।
- **केस विधि (Case Study Method)** : अध्ययन की इस विधि के अन्तर्गत सैद्धान्तिक/अकादमिक अध्ययन के स्थान पर व्यावहारिक एवं यथार्थपरक स्थितियों के विशिष्ट मामलों के अध्ययन को अधिक महत्त्व दिया जाता है। वस्तुतः यह व्यावाहारिक अध्ययन की एक गहन एवं विस्तृत विधि है।
- **विज्ञान (Science)** : यह किसी विषय के ज्ञान के व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन का शास्त्र है, जहाँ ज्ञान प्राप्त करने (Knowledge Acquiring) पर बल दिया जाता है।
- **कला (Art) :** यह प्राप्त ज्ञान को व्यवहार में लागू करने (Application of knowledge) की सर्वोत्तम विधि है। इसमें विज्ञान से प्राप्त ज्ञान को व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए प्रयोग किया जाता है।
- **वास्तविक विज्ञान (Real science)** : इसके अन्तर्गत किसी घटना के केवल कारण एवं प्रभाव का ही अध्ययन किया जाता है। यह उद्देश्यों के प्रति तटस्थ होती है और केवल “क्या है?” का ही अध्ययन करती है।
- **आदर्श विज्ञान (Normative science) :** इसके अन्तर्गत “क्या होना चाहिए”, का अध्ययन किया जाता है अर्थात् किसी घटना के अच्छे-बुरे होने का अध्ययन किया जाता है और उसके आधार पर यथोचित निर्णय लिए जाते हैं।
- **माँग पूर्वानुमान (Demand Forecasting)** : किसी वस्तु की माँग का भविष्य की किसी निश्चित अवधि के लिए अनुमान लगाना ही माँग पूर्वानुमान कहलाता है। यह मूल्य एवं मात्रा दोनों में लगाया जाता है |
- **उत्पादन नियोजन Production Planning) :** किसी वस्तु का कितना, कब और कैसे उत्पादन किया जाए? इस सम्बन्ध में योजना बनाना उत्पादन नियोजन कहलाता है।
- **विक्रय व्यूहरचना (Sales Strategy):** किसी वस्तु के विक्रय हेतु अपनायी जाने वाली रणनीति को विक्रय व्यूहरचना कहते हैं। इसका उद्देश्य वस्तु की बिक्री की मात्रा को बनाये रखना अथवा उसमें निरन्तर वृद्धि करना होता है।

1.11 स्व-परख प्रश्न (Self Test Questions)

लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Very - Short Answer Questions)

1. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए|
2. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की चार प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।
4. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र को आदर्श विज्ञान क्यों कहा जाना चाहिए ?
5. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र को कला भी कहा जाता है? क्यों?

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए एवं इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रकृति को विस्तारपूर्वक समझाइए। अपने उत्तर की पुष्टि में उदाहरण दीजिए।
3 प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के क्षेत्र का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
4. प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की व्यावसायिक निर्णयों में भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
5 "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्तों एवं व्यावसायिक व्यवहार का इस उद्देश्य से किया गया एकीकरण है जिससे प्रबन्धकों को निर्णय लेने तथा भावी नियोजन करने में सुविधा होती है। " इस कथन की विवेचना कीजिए।

1.12 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची (References and Bibliography)

- Misra, S.K. & Puri, V.K. : Economics for Managers, Himalaya Publishing House, Bombay, 2006
- Mithani, D.M. : Managerial Economics, Himalaya Publishing House, Bombay, 2009
- Dwivedi, D.N. : Managerial Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. Delhi, 2005

1.13 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- सिंह, गोपाल एवं त्यागी, मंजुला : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 2009
- सिंह एवं अग्रवाल: आर्थिक विश्लेषण, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2009-10,
- Agarwal, M.D. & Deo Som : Buiness Economics, Ramesh Book Depo, Jaipur 2008-09
- मिसरा एवं पुरी: व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2008

1.14 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Links)

- https://www.analyticssteps.com/blogs/scope-managerial-economics
- https://www.economicsdiscussion.net/business-economics/scope-of-managerial-economics/7122
- https://www.cheggindia.com/career-guidance/managerial-economics-principals-types-and-scope/

इकाई - 2

अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याएँ/कार्य
(Fundamental Problems/Functions of Economy)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 आर्थिक समस्या का अर्थ
2.3 आर्थिक समस्या के उत्पन्न होने के कारण
2.4 आर्थिक प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषा
2.5 आर्थिक प्रणाली के प्रकार
2.6 अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याएँ/कार्य
2.7 सारांश
2.8 अधिगम परिणाम
2.9 शब्दावली
2.10 स्व-परख प्रश्न
2.11 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची
2.12 अन्य पठन सामग्री
2.13 वेब संसाधन / लिंक

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याओं को समझ सकेंगे।
- आर्थिक प्रणाली और इसके प्रकारों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आर्थिक समस्याओं का समाधान करने की समझ विकसित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

मनुष्य प्रारम्भ से ही जीवन यापन करने और जीवन को सुगम बनाने के लिए प्रयासरत रहा है। इसलिए वह सदैव ही प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का उपयोग करता रहा है। पाषाण युग में लोग अपने जीवन यापन हेतु और अपनी आवश्यकता को शान्त करने के लिए जानवरों का शिकार, कृषि आदि कार्य करते थे, किन्तु जैसे - जैसे युग आगे बढ़ा मनुष्य कि आवश्यकताएँ अनन्त होती गई, जिससे उसके पास जो साधन थे, वे कम होने लगे और साधनों की कमी एवं दुर्लभता ने कई समस्याओं को जन्म दिया। सबसे पहले उत्पत्ति की समस्या हुई क्योंकि उत्पत्ति के लिए प्रयुक्त साधन यथा भूमि, श्रम, पूँजी व साहस की कमी या सीमितता ने इन समस्यायों को और व्यापक बना दिया। ऐसे में साधनों के चुनाव की समस्या उत्पन्न हुई। प्रत्येक देश इन समस्यायों का समाधान अपनी आर्थिक प्रणाली के माध्यम से करता है। इस अध्याय में हम अर्थव्यवस्था

की आधारभूत समस्याओं और उनके उत्पन्न होने के कारणों के बारे में अध्ययन करेंगे और यह भी जानेंगे कि एक अर्थ्व्यय्व्स्था इन समस्याओं का कैसे समाधान करती है?

2.2 आर्थिक समस्या का अर्थ (Meaning of Economic Problem)

माननीय आवश्यकताएँ अनन्त होने के साथ-साथ अनकी तीव्रता (महत्त्व) में भी अन्तर होता है और इनको संतुष्ट करने के लिए उपलब्ध साधन सीमित और वैकल्पिक प्रयोग वाले होते हैं। ऐसी स्थिति में मानव आचरण चयन करने अथवा निर्णय लेने के रूप में प्रकट होता है। इसे **प्रो. रोबिन्स** मानवीय क्रिया का **आर्थिक पहलू** (Economic aspect) कहते है। वस्तुतः यही आर्थिक समस्या है। मूलतः चयन करने की समस्या साधनों की सीमितता/दुर्लभता के कारण उत्पन्न होती है। **सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में आधारभूत आर्थिक समस्या साधनों की दुर्लभता** (Scarcity of resources) की है। वास्तविक जगत में भी सभी आर्थिक समस्याओं की जड़ संसाधनों की सीमितता है। यदि साध्य दिये हों, तो उन्हें कम से कम साधनों के प्रयोग से प्राप्त करने की समस्या है और यदि साधन दिए हुए हों, तो उनसे अधिक से अधिक साध्यों को संतुष्ट करने की समस्या है। इन दोनों ही स्थितियों में असीमित आवश्यकताओं के सन्दर्भ में वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों के सर्वश्रेष्ठ एवं मितव्ययतापूर्ण प्रयोग की आवश्यकता है। इस दृष्टि से साधनों के सर्वोत्तम आवंटन और उनकी कार्य कुशलता का प्रश्न व्यक्ति तथा अर्थव्यवस्था के लिए सर्वोच्च महत्त्व का होता है।

2.3 आर्थिक समस्या के उत्पन्न होने के कारण (Causes of Origin of Economic Problem)

मानवीय आवश्यकताएँ अनन्त हैं; जबकि उन्हें पूर्ण करने के लिए साधनों की मात्रा सीमित है। अतः इन उपलब्ध साधनों का भरपूर उपयोग का प्रयास किया जाता है, फिर भी कई आवश्यकताएँ अपूर्ण रह जाती हैं। इस प्रकार हम देखते है कि साधन दुर्लभ हैं, तो उनके अनेक उपयोग भी हैं। इस कारण उचित साधनों की खोज, चयन, विदोहन आदि अनेक समस्याएँ एक दूसरे के बाद आती हैं, जिन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है। मुख्यतौर पर अर्थव्यवस्था में आर्थिक समस्या निम्न कारणों से उत्पन्न होती है :

1. **आवश्यकताओं का असीमित होना (Unlimited Ends) :** यह सर्व विदित है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त हैं और इनमें सतत वृद्धि होती रहती है। ये परस्पर **प्रतिस्पर्धी और बारम्बार उत्पन्न** होती रहती हैं| इनको पूरा करने के लिए साधन बहुत ही कम या अपर्याप्त हैं। इसलिए केवल उन्हीं आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है जिनकी प्रबलता/तीव्रता बहुत अधिक है| क्योंकि आवश्यकताओं की अनन्तता के कारण सभी आवश्यकताओं को एक साथ संतुष्ट करना संभव नहीं है, इस कारण से आवश्यकताओं के चयन की समस्या उत्पन्न होती है|
2. **सीमित संसाधन (Limited Resources) :** आवश्यकताओं को संतुष्ट करने वाले साधनों की पूर्ति उनकी माँग की तुलना में कम होती है, परिणामस्वरूप हम चाहकर भी सभी आवश्यकताओं को एक साथ संतुष्ट नहीं कर सकते| इसीलिए यह निश्चित करना पड़ता है कि उपलब्ध संसाधनों का किन - किन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयोग किया जाए?
3. **साधनों के वैकल्पिक प्रयोग (Alternative Uses of Resources) :** साधनों की सीमितता या अनुपलब्धता बड़ी समस्या है। साथ ही साथ साधनों के अनेक उपयोग इस समस्या को और अधिक विकट बना देते हैं। ऐसे में साधनों को सर्वोत्तम विकल्पों में प्रयोग की समस्या उत्पन्न होती है। सामान्यतया ऐसे में इन **साधनों का प्रयोग**

आवश्यकता की तीव्रता के आधार पर किया जाता है। साधनों के वैकल्पिक प्रयोग होने के कारण यह चयन करना पड़ता है कि किस साधन को किस प्रयोग में काम लिया जाए?

4. **आवश्यकताओं की तीव्रता में अंतर (Difference in Intensity of Wants) :** आवश्यकताएँ न केवल अनंत हैं, वरन् उनके सापेक्षिक महत्त्व में भी अंतर है अर्थात कुछ आवश्यकताएँ अधिक महत्त्वपूर्ण, तो कुछ कम महत्त्वपूर्ण होती हैं| आवश्यकताओं की तीव्रता (महत्त्व) में अंतर होने के कारण उनके चयन की समस्या उत्पन्न हो जाती है|

   प्रो० रोबिंस के अनुसार, कोई भी आर्थिक समस्या तभी उत्पन्न होती है जब उपर्युक्त चारों तत्त्व एक साथ विद्यमान होते हैं| इनमें से किसी भी एक तत्त्व की अनुपस्थिति से यदि कोई समस्या उत्पन्न होती है, तो वह आर्थिक समस्या न होकर तकनीकी समस्या होगी|

5. **साधनों के कुशलतापूर्वक उपयोग की समस्या (Problem of Efficient use of Resources)** : साधनों के कुशलतापूर्वक उपयोग की समस्या भी आर्थिक समस्या उत्पन्न करती है। सामान्यतया उपलब्ध साधनों की खोज कर उपयुक्त साधनों का चयन किया जाता है, फिर उन साधनों के कुशलतापूर्वक उपयोग को सुनिश्चित किया जाता है। इसके लिए साधनों का उचित आवंटन करना होता है, तभी सभी साधनों यथा भूमि, श्रम, पूँजी, साहस का सही ढंग से प्रयोग संभव होता है।

6. **अर्थव्यवस्था को भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार करना की समस्या (The Problem to Prepare the Economy for Future Challenges) :** प्रत्येक देश की अर्थव्यस्था में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं और उसे अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, ताकि वह अपनी विकास की गति को बनाये रखे जो कि बहुत ही कठिन कार्य है। इसके लिए अर्थव्यवस्था की भविष्य की चुनौतियों की पहचान करना और उसके लिए अर्थव्यस्था को तैयार करना, ताकि उत्पादन, उपभोग, विनिमय एवं वितरण का कार्य निर्बाध गति से चलता रहे, और विकास व वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता रहे।

स्व-मूल्यांकन – प्रथम

1. किसी भी राष्ट्र की आर्थिक समस्या क्या है और इसे कैसे जाना जा सकता है?
2. आर्थिक समस्याओं के उत्पादन होने के कारणों की जाँच कीजिए।
3. रूस- युक्रेन युद्ध में कौन-कौनसी आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती है? जानने का प्रयास कीजिए।
4. किसी भी राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं को निपटाना क्यों आवश्यक है? समझाइये।
5. भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के समक्ष कौन-कौनसी आर्थिक समस्यायें हैं? उनका क्या समाधान हो सकता है?

2.4 आर्थिक प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Economic System)

आर्थिक प्रणाली एक ऐसा परिवेश, वातावारण या संस्थागत और वैधानिक ढांचा है, जिसमें रहकर जीवन निर्वहन और आर्थिक गतिविधियों व क्रियाओं का संपादन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक प्रणाली एक संस्थागत सरंचना, वैधानिक ढांचा, सामाजिक नियम एवं परम्पराएँ होती है जिसमें रहकर मानव वस्तुओं एवं सेवाओ का उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण जैसी आर्थिक क्रियाओं का संचालन करता है। आर्थिक प्रणाली को विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई कुछ परिभाषायें इस प्रकार हैं :

प्रो. स्टिगलर के शब्दों में, “आर्थिक प्रणाली उन आर्थिक संस्थाओं की कार्यविधि का अध्ययन है जो सामाजिक या निजी संगठन के रुप में आर्थिक वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण का प्रबंध करते हैं।" **प्रो. बर्किन्घम के शब्दों में,** “आर्थिक प्रणाली का अभिप्राय उस वैधानिक एवं संस्थागत ढांचे (Legal and institutional framework) से है जिसमे आर्थिक क्रियाओं का संचालन होता हैं।"

2.5 आर्थिक प्रणाली के प्रकार/रुप (Types/Forms of Economic System)

प्रो. लियोन्टिफ का मानना है, कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और समाजवादी अर्थव्यवस्था ही राजनैतिक अर्थशास्त्र के केंद्र बिन्दु हैं, शेष सभी रुप राज्य के हस्तक्षेप की मात्रा, प्रकृति एवं सीमा, समाज का दबाव, राजनैतिक इच्छाशक्ति व राजनैतिक उद्देश्यों पर निर्भर करते हैं| इस प्रकार स्पष्ट है कि आर्थिक प्रणाली के दो ही सिरे हैं। पूर्ण पूँजीवाद और पूर्ण समाजवाद, बाकी बीच का रुप तो राजनैतिक इच्छा और सरकारों के सामाजिक सरोकार और सरकारी हस्तक्षेप की मात्रा के अनुसार बदलता रहता है। इसलिए अनेक विद्वान इन्हें पांच प्रकारों में विभक्त करते हैं, किन्तु मोटे तौर पर केवल तीन ही प्रकार की आर्थिक प्रणाली हैं।

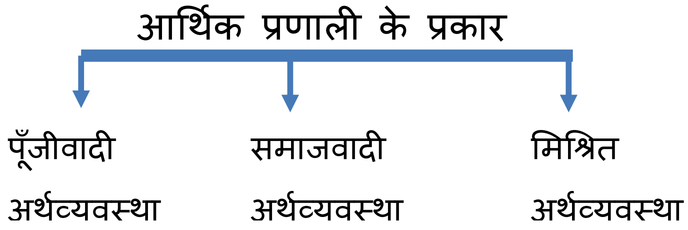

1. **पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalist Economy):** पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को **स्वतंत्र एवं उन्मुक्त अर्थव्यवस्था** (Free economy) के रुप में भी जाना जाता है। इसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था के अधिकांश संसाधनों पर निजी व्यक्तियों और संस्थानों का स्वामित्व एवं नियंत्रण होता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सभी आर्थिक क्रियाएँ निजी व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा निजी स्वार्थ एवं लाभ हेतु की जाती हैं। इसमें सभी व्यक्तियों को आर्थिक क्रियाओं में शामिल होने का समान अवसर मिलता है, इसमें कट्टर प्रतिस्पर्धा, वर्ग संघर्ष, आर्थिक असमानता, एकाधिकार, शोषण, ऊँची कीमतें, संसाधनों का मनचाहा उपयोग, सामाजिक हितों की उपेक्षा, भ्रष्टाचार, जैसी भीषण समस्याएँ स्वतः ही उत्पन्न हो जाती हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था **कीमत तंत्र पर आधारित** होती है जहाँ समस्त आर्थिक निर्णय बाजार की माँग और पूर्ति की स्वतंत्र शक्तियों द्वारा किये जाते हैं| पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में **क्रेता बाज़ार का राजा** होता है और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था इसी के इर्द-गिर्द घूमती है।
2. **समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialistic Economy):** पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कई दोष होने के कारण समाजवादी अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ, जो कि पूँजीवाद से पूर्णतया विपरीत विचारधारा वाली है। इसमें आर्थिक क्रियाओं यथा उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण, आदि पर सरकार अथवा समाज का प्रभावी नियंत्रण एवं अधिकार होता है। इसमें कीमत तंत्र स्वतंत्र नहीं होता है। सभी आर्थिक क्रियाओं का **मुख्य उद्देश्य लाभ न होकर अधिकतम सामजिक कल्याण** होता है। राज्य या सरकार का काम सामाजिक न्याय, सुरक्षा, और शान्ति - व्यवस्था तक ही सीमित नही होता है। इस प्रणाली में सरकार द्वारा ऐसी योजनाएँ चलाई जाती हैं, जिनसे वर्ग संघर्ष,

आर्थिक असमानता, अराजकता दूर होकर सुशासन स्थापित हो सके। समाजवादी अर्थव्यवस्था **नियोजन तंत्र** पर आधारित होती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था का ही एक रुप **साम्यवाद** (Communism) होता है, जो समाजवादी अर्थव्यवस्था का चरम रुप है। इसमें आर्थिक क्रियाओं एवं संसाधनों पर राज्य का पूर्ण स्वामित्व व नियंत्रण होता है। उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण आदि पर सरकार व समाज का पूर्ण नियंत्रण एवं शासन होता है। इसमें सरकार की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी किया जाना संभव नहीं होता है, इसमें निजी भागीदारी का नामो निशान नहीं होता है। साम्यवाद का प्रमुख उद्देश्य वर्गहीन समाज की स्थापना करना होता है।

3. **मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) :** पूँजीवाद और समाजवाद में कतिपय दोषों के कारण, मिश्रित अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। इसमें पूँजीवाद की भांति, निजी व्यक्तियों की सहभागिता, व समाजवादी अर्थव्यवस्था की भांति सरकार व समाज के हस्तक्षेप को अपनाया जाता है। इसमें निजी व्यक्तियों और उद्योगपतियों व साहसियों को अधिकतम सामाजिक लाभ व कल्याण के लिए प्रेरित किया जाता है तथा दूसरी ओर समाजवाद की भांति वैधानिक नियंत्रण व प्रतिबन्ध भी होते हैं। **इसमें सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र का सह - अस्तित्व पाया जाता है।** इसमें **कीमत तंत्र और नियोजन तंत्र दोनों मिलकर** अर्थव्यवस्था का संचालन करते हैं। **प्रो० खुसरो** के अनुसार, मिश्रित अर्थव्यवस्था में स्वतंत्र और नियंत्रित बाजार का भी सह - अस्तित्व पाया जाता है।

2.6 अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याएँ/कार्य (Fundamental Problems/ Functions of Economy)

अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याओं को **अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याएँ** (Central Problems of Economy) भी कहा जाता है। प्रत्येक प्रकार की अर्थ प्रणाली को सदैव इन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अर्थव्यवस्था के कार्यों/समस्याओं के बारे में अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं। **प्रो. सेम्यूलसन** तथा **प्रो. फरग्यूसन एवं क्रेप्स ने आर्थिक प्रणाली के तीन प्रमुख कार्य बताये हैं, जबकि प्रो. होम एवं लेफ्टविच ने अर्थव्यवस्था के पाँच आधारभूत कार्यों का उल्लेख** किया है। **प्रो. नाइट ने अर्थव्यवस्था के सात आधारभूत कार्यों का वर्णन किया है।** विभिन्न अर्थशास्त्रियों के विचारों एवं अभिमत के आधार किसी भी आर्थिक प्रणाली की आधारभूत समस्याएँ/कार्य अग्रांकित हैं :

1. **क्या उत्पादन किया जाए और कितना उत्पादन किया जाए? (What to Produce and How Much to Produce?) :** सर्वप्रथम अर्थव्यवस्था का कार्य यह निश्चित करना है कि उपलब्ध साधनों से किन-किन वस्तुओं एवं सेवाओं का कितना-कितना उत्पादन किया जाए? इस बात का निर्धारण समाज की सापेक्षिक आवश्यकताओं, उनकी तीव्रता तथा साधनों की उपलब्धता के सामंजस्य से किया जाता है। अर्थव्यवस्था को यह भी निश्चित कराना पड़ता है कि **कितना उपभोक्तागत माल तथा कितना पूँजीगत माल उत्पन्न करना है?** यदि हम उपभोक्ता वस्तुओं का अधिक उत्पादन करेंगे, तो ऐसी स्थिति में साधनों की सीमितता के कारण पूँजीगत वस्तुओं का कम उत्पादन होगा और विलोमशः। इस बात को रेखाचित्र 2.1 द्वारा **उत्पादन संभावना वक्र** (Production Possibility curve – PPC) के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है। चित्रानुसार AB उत्पादन संभावना वक्र है, जो अर्थव्यवस्था में दिये हुए साधनों से दोनों प्रकार की (उपभोक्ता एवं पूँजीगत) वस्तुओं के उत्पादन की विभिन्न संभावनाओं को स्पष्ट करता है। इसके R बिन्दु पर अर्थव्यवस्था में OM उपभोक्ता वस्तुओं तथा OK पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है। अब यदि हम उपभोक्ता वस्तुओं का अधिक उत्पादन करना चाहते

हैं, तो उत्पादन संभावना वक्र के S बिन्दु पर जाना होगा, जहाँ इनका उत्पादन ON होगा, जो पहले से अधिक है। किन्तु इस कारण से, हमें पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन का KL के बराबर त्याग करना पड़ेगा। इसके विपरीत, यदि हम पूँजीगत माल का उत्पादन बढ़ाना चाहते हैं, तो हमें उपभोक्तागत माल का उत्पादन घटाना पड़ेगा क्योंकि अर्थव्यवस्था में उत्पादन हेतु उपलब्ध संसाधन दुर्लभ हैं। फलतः यहाँ यह तय करना पड़ेगा कि हमें दोनों प्रकार की वस्तुओं का उपलब्ध साधनों की मात्रा से कितना-कितना उत्पादन करना चाहिए?

रेखाचित्र संख्या – 2.1

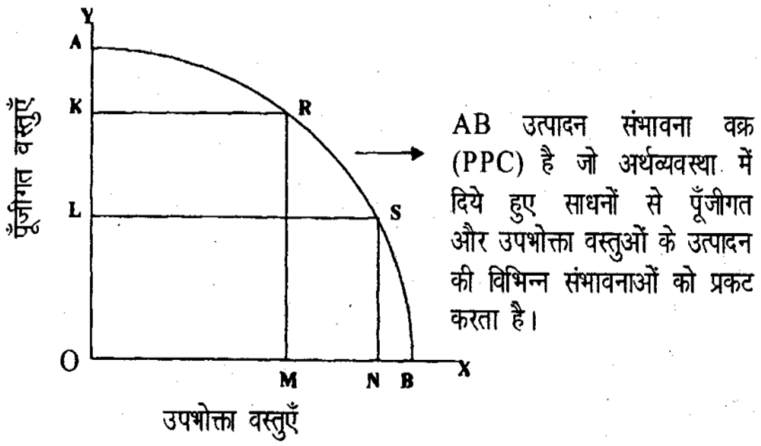

यहाँ यह प्रश्न है कि आर्थिक प्रणाली किस प्रकार का उत्पादन कराना चाहती है? यदि आधारभूत ढांचा निर्मित करके अर्थव्यवस्था को भविष्य के लिए तैयार करना हो, तो पूँजीगत माल का अधिकाधिक उत्पादन करना होगा। परन्तु यदि वर्तमान माँग को पूरा करना है, तो उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करना होगा। इस समस्या का निराकरण अलग-अलग प्रणालियों द्वारा निम्नानुसार होता है :

पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में क्या उत्पादन किया जाए और उसकी मात्रा कितनी हो, का निर्णय **मूल्य तंत्र** (Price machenism) तय करता है। इसमें जिन वस्तुओ की माँग अधिक होती है अथवा जिनका मूल्य अधिक होता है अथवा जिनसे लाभ अधिक होता है, उन वस्तुओं का उत्पादन उस बिन्दु तक किया जाता है, जिस बिन्दु तक ये लाभप्रद हैं। इसके विपरीत, उन वस्तुओं का उत्पादन बंद कर दिया जाता है, जिनसे हानि होती है। पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में सीमान्त आगम (Marginal revenue) और सीमान्त लागत (Marginal cost) विधि के आधार पर अधिकतम लाभ की दृष्टि से उत्पादन की मात्रा का स्तर तय किया जाता है।

समाजवादी अर्थव्यस्था में प्रभावी सरकारी हस्तक्षेप, सरकार की नीति, नियम, नियंत्रण के कारण सामाजिक लाभ और अधिकतम सामाजिक कल्याण को ध्यान में रख कर सरकार ही इस बात का निर्धारण करती है कि क्या उत्पादन किया जाए तथा इसकी मात्रा कितनी हो? इसमें कीमत तंत्र निष्क्रिय होता है। इन सब निर्णयों में **नियोजन तंत्र** की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है|

मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप, मूल्य यन्त्र दोनों का प्रभाव होने से देश की आवश्यकताओं, संसाधनों को ध्यान में रख कर निर्णय लिया जाता है। साधारणतः आधारभूत ढांचा, परमाणु ऊर्जा, जनोपयोगी सेवाऐं, विद्युत,

अस्त्र-शस्त्र में निजी सहभागिता कम होती है क्योंकि इनमें विनियोग अधिक व लाभ कम होता है तथा सुरक्षा कारणों से भी इनका उत्पादन पर नियंत्रण सरकार का ही होता है| इसलिए इनकी मात्रा का निर्धारण सरकारी आदेशों पर निर्भर करता है, जबकि अन्य सभी उपभोक्ता माल, पूँजीगत माल निर्माण और मात्रा सम्बन्धी निर्णय को कीमत तन्त्र पर छोड़ दिया जाता है और ये सभी पूँजीवादी अर्थव्यस्था की भांति निजी हाथों में होते हैं।

2. **वस्तुओं का उत्पादन किन विधियों से और कैसे किया जाए? (In What Ways Should goods be Produced and How is to be Produced?) :** वस्तुओं का उत्पादन और इनकी मात्रा के निर्धारण के बाद उत्पादन के विभिन्न साधनों यथा भूमि, श्रम, पूँजी, साहस को संगठित किया जाता है, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि वस्तुओं का उत्पादन किन विधियों से और कैसे किया जाए? उत्पत्ति के साधनों का अधिकतम उपयोग संभव हो सके, इसके लिए **अनुकूलतम संयोगों** की खोज की जाती है, जो देश की अर्थव्यस्था की पहुँच में हों| इन्हें **प्राप्य संयोग** (Attainable Combinations) कहा जाता है| LM उत्पादन संभावना वक्र के भीतरी भाग तथा इस पर स्थिति सभी संयोग प्राप्य संयोग हैं तथा इसके बाहर स्थित सभी संयोग **अप्राप्य** (Unatainable) संयोग हैं| इसे रेखाचित्र 2.2 से समझा जा सकता है।

रेखाचित्र संख्या – 2.2

अप्राप्य संयोग

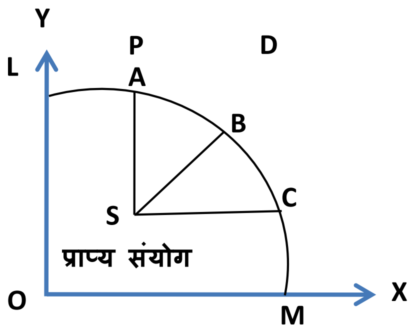

इस रेखाचित्र में LM एक उत्पादन संभावना वक्र है और इस वक्र पर A, B. C उत्पादन के संयोग बिन्दु हैं, इन्हें बिन्दु S से जोड़ा गया है, जो यह दर्शा रहा है कि उपलब्ध संसाधनों से इनका उत्पादन संभव है और इन्हें प्राप्त किया जा सकता है। बिन्दु P व D को प्राप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि हमारे पास संसाधन कम हैं और इसलिए ये अप्राप्य हैं।

पूँजीवादी अर्थव्यस्था या स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में यह निर्णय कीमत यन्त्र द्वारा स्वतः ही तय हो जाता है कि उत्पादन किन विधियों द्वारा और कैसे होगा? इसमें लागत में कमी करने के लिए साधनों का प्रतिस्थापन तब तक होता रहता है, जब तक कि लागत न्यूनतम ना हो जाए। इसी प्रकार अकुशल साधन के स्थान पर कुशल साधन को प्रतिस्थापित किया जाता है और यह कार्य तब तक चलता है, जब तक उक्त सभी साधनों की सीमान्त उत्पादकता और उनकी कीमत का अनुपात बराबर ना हो जाए।

सूत्र रूप में :-

$$\frac{MP_X}{P_X} = \frac{MP_Y}{P_Y} \dots\dots\dots . \frac{MP_n}{P_n}$$

समाजवादी अर्थव्यस्था में उत्पादन सम्बन्धी सभी निर्णय सरकार द्वारा लिए जाने के कारण कीमत तंत्र प्रभावहीन होता है, अतः वस्तुओं के उत्पादन की विधि, संगठन, साधनों का उपयोग आदि अधिकाधिक सामाजिक कल्याण पर ही केन्द्रित होता है। यह सब निर्णय सरकार द्वारा स्वयं ही लिए जाते हैं|

मिश्रित अर्थव्यवस्था में वस्तु उत्पादन की विधि और संगठन सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में अलग–अलग होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में अधिकतम सामाजिक कल्याण और निजी क्षेत्र में अधिकतम लाभ केंद्र में होता है। निजी क्षेत्र कीमत तन्त्र द्वारा संचालित होता है, वही सार्वजनिक क्षेत्र सरकारी निर्णय तंत्र और नियोजन तंत्र से संचालित होता है।

3. **उत्पादन का वितरण कैसे किया जाए**? **(How to Distribute Output?) :** अर्थव्यवस्था का तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य देश के कुल उत्पादन को उत्पादन के विभिन्न साधनों के बीच कुशल एवं न्यायोचित ढंग से वितरित करना है| समाज के सभी वर्गों को कमोबेश रुप से लाभान्वित करने के लिए उत्पादित वस्तुओं का समाज में वितरण किस प्रकार किया जाए, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि उत्पादित वस्तुओं के वितरण पर कई सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, व नैतिक तत्त्वों का प्रभाव पड़ता है।

   पूँजीवादी अर्थव्यस्था में कुल उत्पादन का वितरण कीमत तंत्र द्वारा होता है| इसके अंतर्गत लोगों की आय के अनुपात में उत्पादन का वितरण होता है, जो अपने क्रम में, उत्पादन साधनों की मात्रा, कुशलता तथा कीमतों पर निर्भर होता है| इसलिए उत्पादन का बड़ा भाग उन लोगों में वितरित होता है, जिनकी क्रय शक्ति अधिक होती है और जिनका आय का स्तर अधिक होता है।

   समाजवादी अर्थव्यस्था में सरकारी हस्तक्षेप के कारण पूर्व नियोजित तरीके से सभी को कमोवेश रूप में समान वितरण करने का प्रयास किया जाता है। कीमत यन्त्र को निष्प्रभावी करने के लिए उस पर नियम, क़ानून के माध्यम से नियन्त्रण किया जाता है। व्यक्ति की कुशलता और सामाजिक न्याय वितरण के प्रमुख आधार होते हैं|

   मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार कीमत यन्त्र को प्रभावित करके, कीमतों पर नियंत्रण रखती है और उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को अधिकाधिक लोगों के कल्याण के लिए वितरण करती है।

4. **साधनों का पूर्ण उपयोग अथवा पूर्ण रोजगार (Full Utilization of resources or Full Employment):** आर्थिक प्रणाली की एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि देश में उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण उपयोग कैसे किया जाए अथवा उन्हें पूर्ण रोजगार कैसे प्राप्त हो? साधनों के पूर्ण रोजगार प्राप्ति से देश में उपभोक्ता एवं पूँजीगत दोनों प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, जिसे रेखाचित्र 2.3 द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्रानुसार AB उत्पादन संभावना वक्र अपूर्ण रोजगार की स्थिति को दर्शाता है तथा इसके दायीं ओर स्थित CD उत्पादन संभावना वक्र साधनों के पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्रदर्शित करता है। CD उत्पादन संभावना वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर AB उत्पादन संभावना वक्र की तुलना में संभावित उत्पादन का स्तर अधिक है। इससे यह स्पष्ट है साधनों का पूर्ण और कुशलतम उपयोग इनके पूर्ण रोजगार द्वारा ही संभव है।

रेखाचित्र संख्या – 2.3

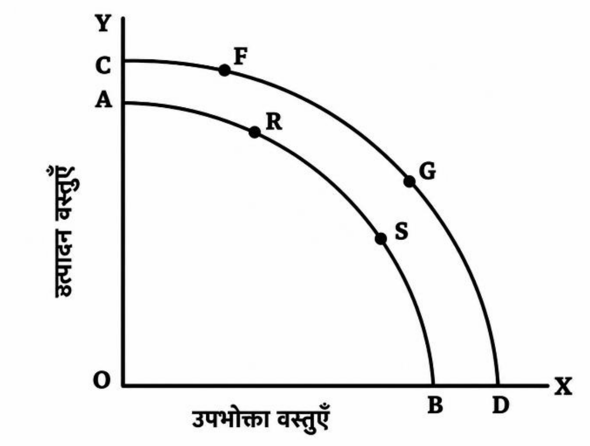

प्रो. कीन्स ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'The General Theory of Employment Interest and Money' में साधनों के पूर्ण रोजगार पर अधिकाधिक बल दिया है। उत्पत्ति के साधनों के पास यदि पूर्ण रोजगार नहीं होता है, तो उनका पूर्ण और कुशलतापूर्वक उपयोग भी संभव नहीं है। इस कारण से उत्पादन की मात्रा भी प्रभावित होती है। साधनों द्वारा उत्पादन जितना होना चाहिए, उतना नहीं हो पाता है|

पूँजीवादी अर्थव्यस्था में साधनों के पूर्ण और कुशलतम उपयोग व पूर्ण रोजगार पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाता है। इसके लिए ब्याज दर घटाकर निवेश को प्रोत्साहित कर रोजगार में वृद्धि की जाती है। साधनों के पूर्ण विदोहन तक उनका उपयोग जारी रहता है।

समाजवादी अर्थव्यस्था में सरकारी विनियोग में वृद्धि के माध्यम से एवं नीतिगत तरीकों से साधनों के कुशलतम एवं पूर्ण उपयोग पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था में साधनों के कुशलतम उपयोग के हेतु कीमत यंत्र की स्वायत्ता के साथ-साथ सरकारी नीति, राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, विदेशी व्यापार नीति, कर प्रणाली और कर ढांचे इत्यादि का सहारा लिया जाता है।

5. **अल्पकाल में माँग और पूर्ति का राशनिंग द्वारा समायोजन कैसे हो? (How to Adjust Demand and Supply in Short Period through Rationing?) :** अर्थव्यस्था की एक अन्य महत्त्वपूर्ण समस्या वस्तुओं की उपलब्ध पूर्ति को अल्पकाल में उनकी माँग के अनुरूप समायोजन करने की है| चूँकि अल्पकाल में उत्पादन के कुछ साधन स्थिर होते हैं, इसलिए उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन करना संभव नहीं है, फलतः वस्तु की पूर्ति को उसकी बाजार माँग के अनुसार बढ़ाया जाना संभव नहीं होता है| इस स्थिति के कारण वस्तुओं की माँग उनकी पूर्ति से अधिक हो जाती है| इस असंतुलन को दूर करने के लिए सरकार राशनिंग का सहारा लेती है, जिससे सभी उपभोक्ताओं को एक निश्चित कीमत पर वस्तु की एक पूर्व निर्धारित मात्र प्राप्त हो सके|

पूँजीवादी अर्थव्यस्था में कीमत यंत्र की भूमिका ही महत्त्वपूर्ण होती है। कीमत यन्त्र स्वतः ही माँग व पूर्ति के अन्तर व असंतुलन को दूर करके माँग एवं पूर्ति में अल्पकालीन संतुलन पैदा कर देता है।

समाजवादी अर्थव्यस्था में सरकारी हस्तक्षेप के माध्यम से माँग व पूर्ति में संतुलन स्थापित करने के लिए राशनिंग का प्रभावी उपयोग किया जाता है। इसे **नियंत्रित वितरण प्रणाली** भी कहा जाता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था में कीमत तंत्र और राशनिंग दोनों की भूमिका महत्वूर्ण होती है। इसमें माँग व पूर्ति के संतुलन के लिए जहाँ जिसकी, जितनी आवश्यकता होती है, उतना वहाँ इसका उपयोग करके संतुलन पैदा किया जाता है।

6. **आर्थिक अनुरक्षण एवं विकास (Economic Maintenance and Growth):** अर्थव्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण समस्या न केवल अपनी वर्तमान उत्पादन क्षमता को भविष्य में बनाये रखने की है, वरन् उसके सतत विकास एवं विस्तार की भी है। आर्थिक प्रणाली के इस कार्य में निम्नलिखित तीन बातें समाविष्ट हैं:
   (i) पूँजी स्टॉक के ह्रास (Depreciation) के कारण अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को यथास्थिर बनाये रखना;
   (ii) बढ़ती जनसंख्या के सन्दर्भ में अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को यथावत् बनाये रखना; तथा
   (iii) उत्पादन विधियों में सुधार कर अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना।

उपर्युक्त में से प्रथम दो बातें अर्थव्यवस्था के अनुरक्षण से सम्बन्धित हैं और तीसरी बात का सम्बन्ध आर्थिक विकास की वृद्धि दर से है।

आर्थिक विकास के कारण अर्थव्यवस्था उच्च उत्पादन स्तर पर चली जाती है। रेखाचित्र में AB प्रारम्भिक उत्पादन संभावना वक्र है जिस पर रहते हुए FG अप्राप्य संयोग है। तकनीकी सुधार के कारण यदि अर्थव्यवस्था पहले से उच्च उत्पादन स्तर पर पहुँच जाती है, जैसा की रेखाचित्र संख्या 2.4 में दर्शाया गया है| इसके अनुसार उत्पादन संभावना वक्र (PPC) AB से बदलकर अब CD हो जाएगा। F तथा G बिन्दु, जो पहले अप्राप्य संयोग थे, वे अब CD उत्पादन संभावना वक्र पर होने के कारण प्राप्य संयोग बन जाते है। यहाँ CD उत्पादन संभावना वक्र उत्पादन क्षमता में वृद्धि तथा आर्थिक विकास का परिचायक है।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में लाभ एक प्रेरणा स्त्रोत की तरह काम करता है, इसलिए नवीन तकनीक की खोज, अनुसन्धान, नवीन बाजारों की खोज, लाभार्जन व उत्पादन वृद्धि के माध्यम से स्वतः ही आर्थिक विकास कर लेती है। **समाजवादी अर्थव्यवस्था** में सभी कार्य सरकारी हस्तक्षेप से ही होते है, इसलिए आर्थिक विकास की जिम्मेदारी भी सरकार की होती है और वह अपने हिसाब से विकास करती है। **मिश्रित अर्थव्यवस्था** में एक तरफ निजी लाभ और दूसरी ओर सरकार का सहयोग दोनों मिलकर आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करते है।

रेखाचित्र संख्या – 2.4

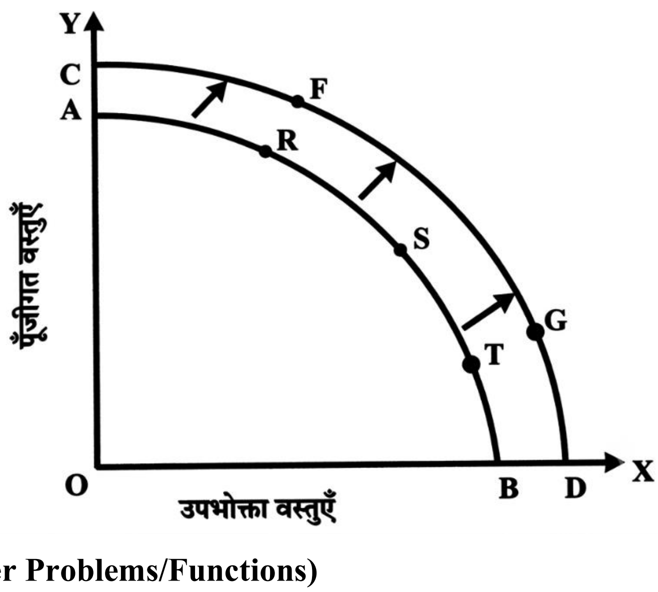

7. **अन्य समस्याएँ/कार्य (Other Problems/Functions)**

(i) **मुद्रा की क्रयशक्ति में स्थिरता की समस्या (Problem of Stability in Purchasing Power of Money):** स्फीतिकाल में वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में वृद्धि होने कारण मुद्रा की क्रय शक्ति घट जाती है

और इसके विपरीत, मुद्रा-संकुचन काल में वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में कमी होने के करण मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है। अर्थव्यवस्था में उक्त दोनों स्थितियों के कारण मुद्रा के मूल्य में उच्चावचन होते रहते हैं। इन दोनों स्थितियों की भयावहता को देखते हुए **लोर्ड कीन्स** ने कहा है कि ''मुद्रा-प्रसार अनुपयुक्त और मुद्रा संकुचन अन्यायपूर्ण है।''

(ii) **साधनों के अनुकूलतम उपयोग की समस्या (Problem of Optimum Utilization of Resources) :** मानवीय आवश्यकताओं के सन्दर्भ में उत्पादन के साधन सीमित हैं। इसके कारण प्रत्येक अर्थव्यवस्था के सामने उपलब्ध साधनों के अनुकूलतम/कुशलतम उपयोग की समस्या सदैव बनी रहती है। साधनों के अनुकूलत उपयोग के कारण वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार और उनकी लागत में कमी आती है और अर्थव्यवस्था उच्च विकास की ओर अग्रसर होती है।

स्व-मूल्यांकन – द्वितीय

1. किसी भी राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं के निराकरण में आर्थिक प्रणाली की भूमिका को आप कैसे समझायेंगे?
2. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक समस्याओं के निपटाने के तरीकों से आप कहाँ तक सहमत हैं?
3. भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याओं के निराकरण में सरकार की भूमिका का विवेचन कीजिए।
4. किसी भी राष्ट्र की मौद्रिक व राजकोषीय नीति किस प्रकार आर्थिक समस्याओं को दूर कर सकती है।
5. भारत की आर्थिक समस्याओं से निपटने के लिए अपने विचारों को विस्तारपूर्वक समझाइये।

2.7 सारांश (Summary)

आर्थिक समस्या आवश्यकताओं की अनन्तता, साधनों की सीमितता, साधनों के वैकल्पिक प्रयोग तथा आवश्यकताओं की तीव्रता में अंतर होने के कारण उत्पन्न होती है| एक अर्थव्यवस्था की प्रमुख समस्याएँ अथवा कार्य हैं : क्या उत्पादन किया जाए और कितना उत्पादन किया जाए, कैसे और किस विधि द्वारा उत्पादन किया जाए, किसके लिए उत्पादन किया जाए, आर्थिक विकास कैसे किया जाए तथा अल्पकाल में माँग और पूर्ति के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाए? विश्व के प्रत्येक देश की आर्थिक समस्याएँ समान होती हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपनी अनन्त आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में लगा हुआ है, परन्तु प्रत्येक राष्ट्र की आर्थिक प्रणाली अलग-अलग है, कहीं पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली है, तो कहीं समाजवादी अर्थव्यस्था है तथा कहीं मिश्रित आर्थिक प्रणाली है। इसलिए सभी राष्ट्रों के द्वारा आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के तरीके भी अलग-अलग होते हैं। जहाँ पूँजीवाद है वहां कीमत यन्त्र प्रभावी होता है, वह इन समस्याओं को कीमत तंत्र के द्वारा सुलझाता है। समाजवादी अर्थ तंत्र में सरकार नियोजन तंत्र के द्वारा इन समस्याओ को दूर करती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था कीमत यन्त्र और नियोजन दोनों का सहारा लेकर समस्या का समाधान करती है, किन्तु सभी अर्थ प्रणालियों में कतिपय दोषों की विद्यमानता के कारण आर्थिक समस्याओं का सम्पूर्ण समाधान नहीं हो पाता है।

2.8 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थियों को अर्थव्यवस्था की समस्याएँ, उनके उत्पन्न होने के कारण, आर्थिक प्रणाली तथा आर्थिक समस्याओं को निपटने में आर्थिक प्रणाली की भूमिका मौद्रिक व राजकोषीय नीति का आर्थिक समस्याओं को निपटाने में कार्य आदि का सैद्धांतिक व व्यवहारिक प्रयोग व इनकी सीमाओं को समझ सकेंगे।

आर्थिक प्रणाली व आर्थिक समस्या का विभिन्न सामाजिक विज्ञानों से पारस्परिक सम्बन्ध व अन्तनिर्भरता को भी समझ सकेंगे। आर्थिक समस्या की विषय सामग्री एवं क्षेत्र, महत्त्व की जानकारी होने के साथ-साथ इसकी व्यापकता को भी समझ सकेंगे।

2.9 शब्दावली (Glossary)

- **आर्थिक समस्या (Economic Problem) :** असीमित आवश्यकताओं के सन्दर्भ में साधनों की सीमितता और उनके वैकल्पिक प्रयोग चयन की समस्या उत्पन्न करते हैं| यही आर्थिक समस्या है|
- **आर्थिक प्रणाली (Economic System) :** आर्थिक प्रणाली एक ऐसा परिवेश, वातावरण या संस्थागत और वैधानिक ढांचा है, जिसमें रहकर जीवन निर्वहन और आर्थिक गतिविधियों व क्रियाओं का संपादन किया जाता है।
- **पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalist Economy) :** पूँजीवादी अर्थव्यस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें उत्पादन के अधिकांश साधनों पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व एवं नियंत्रण होता है। यह प्रणाली लाभ द्वारा संचालित होती है|
- **समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy) :** यह एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है, जिसमें उत्पादन के अधिकांश साधनों पर सरकार और समाज का स्वामित्व और नियंत्रण होता है और इनका प्रयोग जन कल्याण की भावना से नियोजन तंत्र द्वारा किया जाता है|
- **मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) :** यह एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है, जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी और सरकार दोनों का स्वामित्व होता है। इसमें आर्थिक निर्णय कीमत तंत्र तथा नियोजन तंत्र दोनों द्वारा लिए जाते हैं|
- **उत्पादन सम्भावना वक्र (Production Possibility Curve) :** कम से कम दो साधनों यथा श्रम एवं पूँजी से दो वस्तुओं के निर्माण की सम्भावनाओं को बताने वाला वक्र उत्पादन सम्भावना वक्र कहलाता है|
- **साधनों को पूर्ण रोजगार (Full Employment to Resources) :** उत्पत्ति के साधन यथा भूमि. श्रम. पूँजी, साहस को योग्यता अनुसार पूर्ण रुप से काम में लेना या लगाए रखना पूर्ण रोजगार कहलाता है।
- **आर्थिक विकास (Economic Development) :** आर्थिक विकास अर्थव्यस्था की एक ऐसी अवस्था है, जिसमें आय, उत्पादन, रोजगार, विनियोग सभी में वृद्धि होती है। इसमें आर्थिक संवृद्धि (Economic growth) भी सम्मिलित होती है|
- **मौद्रिक नीति (Monetary Policy) :** किसी भी देश की मुद्रा की मात्रा को प्रभावित एवं नियंत्रित करने वाली नीति मौद्रिक नीति कहलाती है।
- **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) :** सार्वजनिक आय और सार्वजनिक व्यय को प्रभावित और नियंत्रित करने वाली नीति राजकोषीय नीति कहलाती है। बजट इस नीति का मुख्य अंग होता है|

2.10 स्वपरख प्रश्न (Self-Test Questions)

अति लघुतरात्मक प्रश्न (very short answer questions)

1. आर्थिक समस्या से आपका क्या आशय है?
2. आर्थिक समस्या क्यों उत्पन्न होती है?

3. आर्थिक प्रणाली क्या है?
4. उत्पादन सम्भावना वक्र किसे कहते हैं?
5. आर्थिक प्रणाली के प्रकार बताइए।

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. आर्थिक समस्या से आपका क्या आशय है? आर्थिक समस्या के उत्पन्न होने के कारणों का उल्लेख कीजिए।
2. आर्थिक समस्या क्यों उत्पन्न होती है? आर्थिक प्रणाली के प्रमुख कार्यों का उल्लेख कीजिए।
3. एक अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याए कौनसी हैं? पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में इन्हें कैसे दूर किया जाता है?

2.11 संदर्भ व ग्रन्थ सूची (References & Bibliography)

- Keynes, John Maynard : The General Theory of Employment, Interest and Money, London Palgrave Macmillan, 1936.
- Marshall, Alfred : *Principles of Economics*, 8th ed. London MacMillan & Co. 1920.
- Pigou, Arthur (1920) : The Economics of Welfare, London Macmillan & Co. 1932.
- Smith, Adam (1776) : An Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations, New York, NY Random House Publishing Group, 2003.

2.12 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Alfred W. Stonier and Douglas C. Hague : A Text Book of Economic Theory, Longman Group Limited London.
- सिंह एवं त्यागी : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 2009.

2.13 वेब संसाधन / लिंक (web Resources/ Links)

- https://www.jstor.org/journal/jeconiss
- https://journalofeconomicstructures.springeropen.com/articles

इकाई - 3

उपभोक्ता व्यवहार : गणनावाचक दृष्टिकोण
(Consumer Behaviour : Cardinal Approach)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 गणनावाचक दृष्टिकोण

3.3 उपयोगिता के भेद/प्रकार

3.4 सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता में सम्बन्ध

3.5 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम

3.6 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम

3.7 उपभोक्ता की बचत

3.8 अधिगम परिणाम

3.8 सारांश

3.9 अधिगम परिणाम

3.10 शब्दावली

3.11 स्व-परख प्रश्न

3.12 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची

3.13 अन्य पठन सामग्री

3.14 वेब संसाधन/लिंक

3.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- उपयोगिता की माप के गणनावाचक दृष्टिकोण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के बारे में जान सकेंगे।
- सम - सीमान्त उपयोगिता नियम के बारे में समझ विकसित कर सकेंगे।
- उपभोक्ता की बचत की अवधारणा और उसकी माप के बारे में समझ उत्पन्न कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में हम उपभोक्ता व्यवहार के गणनावाचक दृष्टिकोण के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे। उपयोगिता की माप के गणनावाचक दृष्टिकोण की विशेषताओं के अतिरिक्त हम इस इकाई में सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, सम-सीमान्त उपयोगिता नियम तथा उपभोक्ता की बचत के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

3.2 गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal Approach)

क्या आपने कभी सोचा कि आप अपने जीवन में प्रतिदिन अनेक वस्तुओं का उपयोग क्यों करते हैं? इस प्रश्न का सीधा सा उत्तर यह है कि हम जिन वस्तुओं का उपयोग करते हैं, उनसे हमें उपयोगिता (Utility) मिलती है। जिन वस्तुओं से हमें अधिक उपयोगिता मिलती है, हम उनका उपयोग प्राथमिकता के आधार पर करते हैं और जिन वस्तुओं से हमें उपयोगिता नहीं मिलती, हम उनका उपयोग नहीं करते। अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि उपयोगिता क्या है ? अर्थशास्त्र में किसी वस्तु की **उपयोगिता का अर्थ उसकी मानवीय आवश्यकता को सन्तुष्ट करने की क्षमता** (Want satisfying power of the commodity) से लगाया जाता है, चाहे वह वस्तु लाभप्रद हो अथवा हानिकारक | इसे "**वस्तु का तुष्टि गुण**" (आवश्यकता पूर्ति की शक्ति) भी कहा जाता है। यहाँ यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि हम अनेक ऐसी वस्तुओं का उपयोग करते हैं जिनमें हमारे लिए उपयोगिता तो होती है, किन्तु वे हमारे लिए लाभदायक (Useful) नहीं होती। उदाहरण के लिए, शराब, सिगरेट, गाँजा, विषाक्त पदार्थ इत्यादि किसी उपभोक्ता के लिए उपयोगिता तो रख सकते हैं, किन्तु लाभप्रद नहीं होते। **वस्तु विशेष की उपयोगिता उसकी आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है** तथा यह सापेक्षिक होती है। **किरजनर** के अनुसार, "उपयोगिता चयन की क्रिया के रूप में तभी प्रकट होती है, जब हम दो वस्तुओं की तुलना करते हैं।" **उपयोगिता वस्तुगत** (Objective) **न होकर विषयगत** (Subjective) होती है इसलिए यह **व्यक्तिगत, स्थानगत एवं समयगत** होती है, अर्थात् देश, काल व परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। उपयोगिता की माप के बारे में दो परस्पर विरोधी दृष्टिकोण प्रचलित हैं। प्रथम दृष्टिकोण उपयोगिता को मापनीय मानता है; जबकि द्वितीय दृष्टिकोण उपयोगिता को मापनीय नहीं मानता। प्रथम दृष्टिकोण, जिसे गणनावाचक दृष्टिकोण कहते हैं, का अध्ययन हम इसी इकाई में करेंगे और द्वितीय दृष्टिकोण, जिसे क्रमवाचक दृष्टिकोण कहते हैं, का अध्ययन हम अगली इकाई में करेंगे।

गणनावाचक दृष्टिकोण की विशेषताएँ (Characteristics of Cardinal Approach) :

उपयोगिता की माप के गणनावाचक दृष्टिकोण की निम्नांकित विशेषताएँ हैं :

1. उपयोगिता मापनीय चर (Measurable variable) है;
2. उपयोगिता को मुद्रा रूपी पैमाने (Measuring rod of money) से मापा जा सकता है;
3. वस्तु विशेष के लिए उपभोक्ता द्वारा चुकायी जा सकने वाली अधिकतम कीमत अथवा उसके लिए **अधिकतम किया जा सकने वाला मौद्रिक त्याग ही, उस वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता की माप है।** यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि वस्तु विशेष के लिए उपभोक्ता द्वारा चुकायी गयी वास्तविक कीमत उससे मिलने वाली उपयोगिता की माप नहीं है। वस्तु विशेष के लिए उपभोक्ता द्वारा चुकायी जा सकने वाली अधिकतम कीमत उस वस्तु की वास्तविक कीमत से कम, अधिक या उसके बराबर हो सकती है;

4. उपयोगिता को **गणनावाचक अंकों** (Cardinal numbers) में व्यक्त किया जा सकता है। गणनावाचक अंकों का एक निश्चित आकार होता है और इनकी परस्पर तुलना की जा सकती है। शून्य से लेकर 9 तक के अंक गणनावाचक अंक हैं और इन्हें आनुपातिक रूप में प्रकट किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक विद्यार्थी के लिए एक पुस्तक की उपयोगिता 10 के बराबर है और एक पेन की उपयोगिता 20 के बराबर है, तो यहाँ 10 तथा 20 की संख्या गणनावाचक अंक हैं तथा पेन की उपयोगिता पुस्तक की उपयोगिता से दुगनी होना इन वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता की आनुपातिक अभिव्यक्ति है।

5. गणनावाचक दृष्टिकोण के प्रतिपादक एवं समर्थक अर्थशास्त्रियों को **गणनावाचक अर्थशास्त्री** (Cardinal economist) कहते हैं। इन अर्थशास्त्रियों में **मार्शल** एवं **पीगू** का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ; तथा

6. उपयोगिता की माप के गणनावाचक दृष्टिकोण के आधार पर उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन की विधि को **उपयोगिता विश्लेषण** (Utility analysis) कहते हैं।

3.3 उपयोगिता के भेद / प्रकार (Kinds of Utility)

उपयोगिता निम्नांकित तीन प्रकार की हो सकती है :

1. **सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) :** सीमान्त उपयोगिता किसी वस्तु के उपभोग की सीमान्त (अन्तिम) इकाई की उपयोगिता होती है। **प्रो. बोल्डिंग** के शब्दों में, "किसी वस्तु की किसी मात्रा की सीमान्त उपयोगिता कुल उपयोगिता में वह वृद्धि है, जो उपभोग में एक और इकाई की वृद्धि के परिणामस्वरूप होती है"। ("The Marginal utility of any quantity of a commodity is the increase in the total utility which results from a unit increase in consumption.")

   एक उदाहरण द्वारा हम सीमान्त उपयोगिता के अर्थ एवं उसकी गणना को आसानी से समझ सकते हैं। माना कि एक उपभोक्ता किसी समय विशेष में X वस्तु की दो इकाइयों का उपभोग करता है, जिससे उसे कुल उपयोगिता 18 के बराबर प्राप्त होती है। यदि वह उस वस्तु की तीसरी इकाई का उपभोग करता है, तो उसकी कुल उपयोगिता बढ़कर 24 हो जाती है। यहाँ वस्तु की तीसरी और अन्तिम इकाई की उपयोगिता 6 है और यही सीमान्त उपयोगिता है। सीमान्त उपयोगिता को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित **गणितीय सूत्र** का प्रयोग किया जाता है :

$$\mathbf{X}\ \text{वस्तु की सीमान्त उपयोगिता}\ (\mathbf{MUx}) = \frac{\mathbf{X}\ \text{वस्तु की कुल उपयोगिता में परिवर्तन}\ (\mathbf{dTUx})}{\mathbf{X}\ \text{वस्तु की कुल मात्रा में परिवर्तन}\ (\mathbf{dQx})}$$

अथवा

$$MUx = \frac{dTUx}{DQx}\ or\ MUx\ = (TUn) - (TUn - 1)$$

उपर्युक्त उदाहरण के आधार पर सीमान्त उपयोगिता निम्नलिखित प्रकार से ज्ञात की जा सकती है ;

$$\mathbf{MUx} = \frac{24 - 18}{3 - 2} = \frac{6}{1} = 6$$

सीमान्त उपयोगिता के बारे में मुख्य बातें (Important Points) :

(i) सीमान्त उपयोगिता वस्तु के उपभोग की सीमान्त (अन्तिम) इकाई की उपयोगिता होती है। इसे अतिरिक्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता भी कहा जाता है।

(ii) सीमान्त उपयोगिता वस्तु के उपभोग में एक इकाई के परिवर्तन के कारण कुल उपयोगिता में होने वाले परिवर्तन की दर की माप है।

(iii) सीमान्त उपयोगिता वस्तु की दो क्रमिक इकाइयों से प्राप्त कुल उपयोगिता के अन्तर को स्पष्ट करती है।

(iv) सीमान्त उपयोगिता का सम्बन्ध सदैव उपभोग की एक इकाई से होता है।

(v) वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता प्रायः गिरती हुई होती है।

(vi) सीमान्त उपयोगिता का कोई स्थिर बिन्दु न होकर परिवर्तनशील बिन्दु होता है, जो वस्तु के उपभोग परिवर्तन के साथ परिवर्तित होता रहता है।

(vii) सीमान्त उपयोगिता धनात्मक, शून्य एवं ऋणात्मक हो सकती है।

2. **कुल उपयोगिता(Total Utility) :** किसी समय विशेष में एक वस्तु की उपभोग की गई समस्त इकाइयों से प्राप्त उपयोगता का योग ही कुल उपयोगिता कहलाता है। दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु की उपभोग की गयी विभिन्नं इकाइयों से प्राप्त अलग-अलग उपयोगिता का जोड़ कुल उपयोगिता कहलाती है। **तालिका संख्या 3.1** के अनुसार, वस्तु की कुल 5 इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता का जोड़ 13 है, जो कुल उपयोगिता है। **प्रो. मेयर्स** सीमान्त उपयोगिता के योग को कुल उपयोगिता कहते हैं। उन्हीं के शब्दो में, "किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों के उपभोग के परिणामस्वरूप प्राप्त सीमान्त उपयोगिता का योग कुल उपयोगिता है |"

कुल उपयोगिता के बारे में महत्त्वपूर्ण बातें (Important Points) :

(i) कुल उपयेगिता वस्तु के उपभोग की समस्त इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता का योग है।

(ii) कुल उपयोगिता में होने वाला परिवर्तन सीमान्त उपयोगिता में परिवर्तन की दर पर निर्भर करता है।

(iii) कुल उपयोगिता प्रारम्भ में एक सीमा तक घटती हुई दर से बढ़ती है, एक निश्चित बिन्दु पर जाकर स्थिर हो जाती है तथा उसके पश्चात गिरती हुई होती है।

(iv) कुल उपयोगिता सदैव धनात्मक होती है।

3. **औसत उपयोगिता (Average Utility) :** किसी वस्तु की कुल उपयोगता में वस्तु की उपभोग की गयी कुल इकाइयों की संख्या का भाग देने पर जो भागफल आता है, उसे औसत उपयोगिता कहते हैं। सूत्र रूप में :

$$\text{औसत उपयोगिता } (\mathbf{AU}) = \frac{\text{कुल उपयोगिता } (\mathbf{TU})}{\text{कुल इकाइयों की संख्या } (\mathbf{N})}$$

औसत उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता की तरह गिरती हुई होती है, किन्तु शून्य अथवा ऋणात्मक नहीं होती। आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता का ही अधिक महत्त्व है। विश्लेषण में अर्थवेत्ता औसत उपयोगिता का प्रयोग नहीं करते हैं।

3.4 सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता में सम्बन्ध (Relation Between Marginal Utility and Total Utility)

सीमान्त और कुल उपयोगिता का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनके बीच निम्नलिखित सम्बन्ध पाया जाता है :

(i) जब तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक होती है, तब तक कुल उपयोगिता बढ़ती हुई होती है, किन्तु कुल उपयोगिता के बढ़ने की दर घटती हुई होती है।

(ii) जब सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है, तो कुल उपयोगिता अधिकतम होती है। यही उपभोक्ता का अधिकतम (पूर्ण) संतुष्टि बिन्दु होता है।

(iii) जब सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक होती है, तो कुल उपयोगिता घटने लगती है। इस स्थिति में उपभोक्ता वस्तु का प्रयोग नहीं करता।

सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता का अर्थ, गणना एवं उनके आपसी सम्बन्ध को **तालिका संख्या 3.1** तथा **रेखाचित्र संख्या 3.1** के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

तालिका संख्या 3.1

X वस्तु की इकाइयाँ (Units of X Commodity)	**प्राप्त उपयोगिता (Utility Received)**	**कुल उपयोगिता (Total Utility)**	**सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)**	**विवरण (Remarks)**
1 2 3	8 5 2	8 8+5 =13 8+5+2 = 15	8 5 2 } धनात्मक	कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ती हुई है।
4	0	8+5+2+0 = 15	0 } शून्य	कुल उपयोगिता स्थिर एवं अधिकतम है।
5	-2	8+5+2+0+(-2) = 13	-2} ऋणात्मक	कुल उपयोगिता गिरती हुई है।

रेखाचित्र संख्या - 3.1

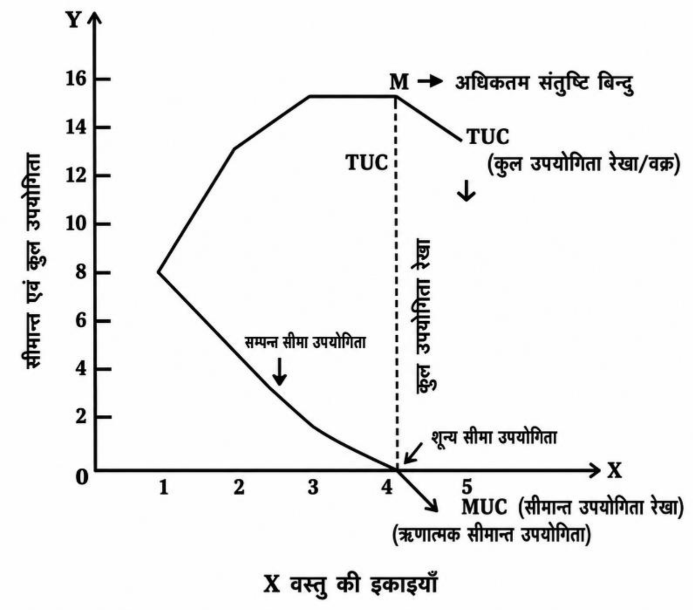

3.5 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Deminishing Marginal Utility)

मानवीय आवश्यकताएँ अनन्त हैं और उनकी पूर्ति के साधन सीमित हैं। इसलिए हम चाहकर भी सभी आवश्यकताओं को एक साथ पूरा नहीं कर सकते। किन्तु **आवश्यकता विशेष की किसी समय विशेष में पूर्ण सन्तुष्टि अवश्य कर सकते हैं।** आवश्यकताओं की इस महत्त्वपूर्ण विशेषता पर ही सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम आधारित है। इस नियम का सर्वप्रथम विवरण **बेन्थम** के आर्थिक सिद्धान्तों में मिलता है, किन्तु उपभोग के क्षेत्र में इस नियम का सर्वप्रथम उल्लेख करने का श्रेय **एच.एच. गोसेन** को जाता है। इसलिए इस नियम को **गोसेन का प्रथम नियम (First law of Gossen)** कहा जाता है। ब्रिटिश अर्थशास्त्री **मार्शल** को इस नियम की विस्तृत व्याख्या करने का श्रेय जाता है।

किसी वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु की आवश्यकता की तीव्रता (Intensity of want) पर निर्भर करती है। जैसे-जैसे हम आवश्यकता की पूर्ति करते जाते हैं, वैसे-वैसे उसकी तीव्रता कम होती जाती है, परिणामस्वरूप वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता क्रमशः गिरने लगती है। दूसरे शब्दों, में, किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः घटती जाती है। उपभोग के क्षेत्र में सीमान्त उपयोगिता की इस ह्रासमान प्रवृत्ति को व्यक्त करने के कारण ही इस नियम को सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम कहते हैं। **हेन्डरसन** के शब्दों में, "किसी व्यक्ति के लिए किसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता उसकी मात्रा में प्रत्येक वृद्धि के साथ घटती जाती है" ("The marginal utility of commodity to anyone diminishes with every increase of the amount he has")। **एडवर्ड नेविन** ने इस नियम को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों के उपभोग से प्राप्त अतिरिक्त सन्तुष्टि उपभोग की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ घटती जाती है।" सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम हमें यह बताता है कि अन्य बातें समान रहने पर, किसी वस्तु की उपभोग की जाने वाली मात्रा और उससे प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता में ऋणात्मक (विपरीत) सम्बन्ध पाया जाता है, अर्थात् जैसे-जैसे वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उपभोग की

प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता गिरती चली जाती है। उपयोगिता की इस ह्रासमान प्रवृत्ति को **तालिका संख्या 3.2 तथा रेखाचित्र संख्या 3.2 (A तथा B)** में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या 3.2

X वस्तु की इकाइयाँ (Units of X Commodity)	**सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)**	**कुल उपयोगिता (Total Utility)**
1	8 } सीमान्त	8 } घटती दर
2	6 } उपयोगिता	14 } से बढ़ती
3	3 } क्रमश:	17 } हुई है।
4	0 } गिरती हुई	17 } अधिकतम है।
5	-1 }	16 } गिरती हुई है।

रेखाचित्र संख्या - 3.2

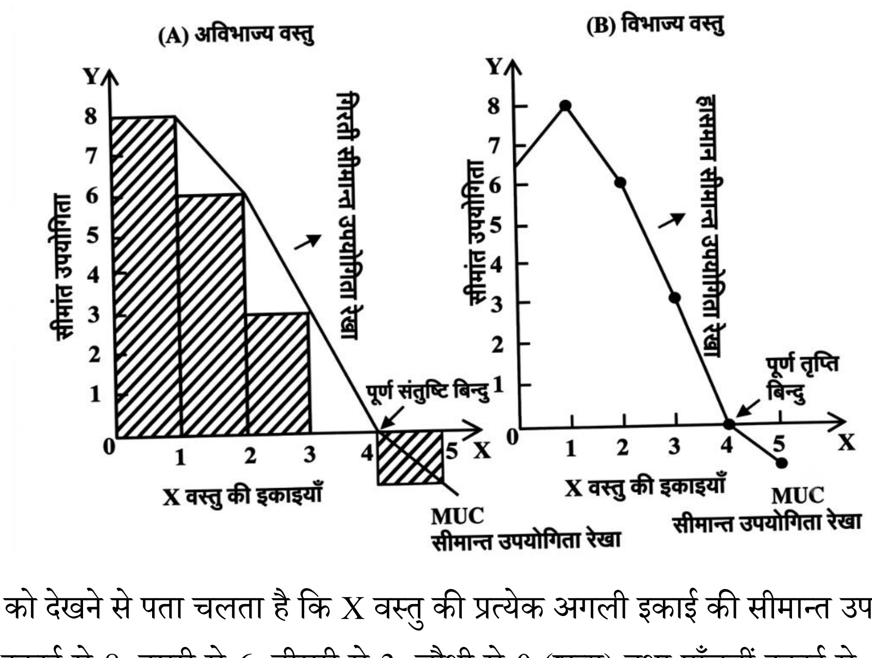

तालिका संख्या 3.2 को देखने से पता चलता है कि X वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई की सीमान्त उपयोगिता कमशः घटती हुई है। पहली इकाई से 8, दूसरी से 6, तीसरी से 3, चौथी से 0 (शून्य) तथा पाँचवीं इकाई से -1 (ऋणात्मक) सीमान्त उपयोगिता मिलती है। चौथी इकाई की सीमान्त उपयोगिता शून्य है, किन्तु कुल उपयोगिता अधिकतम है। यहाँ उपभोक्ता पूर्ण सन्तुष्टि बिन्दु पर होता है। इसके पश्चात वस्तु की पाँचवीं इकाई के प्रयोग करने पर उपभोक्ता को ऋणात्मक संतुष्टि (-1) मिलती है, जिसे अनुपयोगिता (Disutility) कहा जाता है। उपभोक्ता प्रायः ऐसी स्थिति में वस्तु का उपभोग नहीं करता क्योंकि उसे वस्तु के उपभोग करने से संतुष्टि के स्थान पर असंतुष्टि होती है।

नियम की दी गयी परिभाषाओं तथा व्याख्या से यह लगता है कि वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता सदैव घटती हुई होती है, किन्तु ऐसा होना आवश्यक नहीं है। यह हो सकता है कि उपभोग की प्रारम्भिक अवस्था में वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता बढ़ती हुई हो। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए आधुनिक अर्थशास्त्री **प्रो. बोल्डिंग** ने इस नियम को परिभाषित किया है। उनके शब्दों में "जब कोई उपभोक्ता, अन्य सभी वस्तुओं के उपभोग को स्थिर रखते हुए , किसी एक वस्तु के उपभोग में वृद्धि करता है, तो परिवर्तनशील वस्तु की सीमान्त उपयोगिता अन्ततः अवश्य घटती है।" **बोल्डिंग** की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि उपभोग की निरन्तरता के क्रम में एक बिन्दु ऐसा अवश्य आता है, जब वस्तु की सीमान्त उपयोगिता अनिवार्य मै रूप से घटती हुई होती है। प्रारम्भ में हो सकता है कि वस्तु की कुछ इकाइयों से उपभोक्ता को बढ़ती हुई उपयोगिता मिल रही हो, किन्तु एक बिन्दु के पश्चात वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता निश्चित रूप से घटती हुई प्राप्त होगी।

नियम के बारे में महत्त्वपूर्ण बातें (Important Points About the Law) :

1. उपभोग की जाने वाली वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता प्रायः घटती हुई होती है।
2. विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता में गिरावट की दर भिन्न- भिन्न हो सकती है, जो उनकी आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है।
3. वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता धनात्मक, शून्य अथवा ऋणात्मक हो सकती है।
4. नियम यह स्पष्ट नहीं करता है कि वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता में ह्रास किस दर से होता है अर्थात् सीमान्त उपयोगिता में गिरावट की दर क्या होती है ?

नियम की शर्तें/मान्यताएँ/सीमायें (Conditions/Assumptions/Limitations of the Law) : अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भाँति यह नियम भी '**अन्य बातों के समान रहने पर**' ही क्रियाशील होता है। इस नियम की क्रियाशीलता निम्नांकित मान्यताओं पर आधारित है :

1. उपभोग की जाने वाली वस्तु की सभी इकाइयाँ समरूप होनी चाहिए।
2. वस्तु की उपभोग इकाइयाँ उपयुक्त एवं प्रामाणिक होनी चाहिए।
3. वस्तु के उपभोग में निरन्तरता होनी चाहिए |
4. उपभोक्ता की मानसिक स्थिति सामान्य एवं समान बनी रहनी चाहिए।
5. उपभोक्ता की आय, आदत, रूचि तथा फैशन में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
6. उपभोग की जाने वाली वस्तु तथा उसकी स्थानापन्न वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
7. आवश्यकता अनेक वस्तुओं की सामूहिक न होकर एक ही होनी चाहिए।
8. उपभोक्ता दुःखमय अवस्था (Pain Economy) में नहीं होना चाहिए अर्थात् यह नियम उपभोक्ता की सुखमय अवस्था (Pleasure economy) में ही लागू होता है।

नियम के अपवाद (Exceptions to the Law) : कुछ परिस्थितियों में यह नियम लागू नहीं होता, जिन्हें नियम के अपवाद कहा जाता है। ये अपवाद वास्तविक एवं दिखावटी दोनों प्रकार के हो सकते हैं।

(अ) दिखावटी या नाम मात्र के अपवाद (Apparent or Alleged Exceptions) : ये वे अवास्तविक अपवाद हैं जो नियम की शर्तें पूरी न होने के कारण दिखते हैं। इस श्रेणी में निम्नलिखित अपवादों को रखा जाता है :

1. वस्तु की उपभोग इकाई के उपयुक्त व प्रमाणिक न होने पर नियम लागू नहीं होता है|
2. दुर्लभ, विलक्षण एवं अप्राप्य वस्तुओं पर नियम लागू नहीं होता है, यथा डाक टिकट, पुराने चित्र, सिक्के, दुर्लभ मूर्तियाँ आदि।
3. मुद्रा, धन व शक्ति संचय, शान-शौकत एवं दिखावे की इच्छा पर नियम लागू नहीं होता है।
4. मादक पदार्थ विशेषकर शराब के सेवन पर नियम लागू नहीं होता है।
5. कुछ वस्तुओं या सेवाओं के प्रयोग में विस्तार पर नियम लागू नहीं होता है|

(ब) वास्तविक अपवाद (Real Exceptions) :

1. **प्रो. टॉजिग (Taussing)** ने मधुर संगीत तथा रसीली कविता/गीत को नियम का वास्तविक अपवाद बताया है।
2. **प्रो. पीगू (Pigou)** ने प्रदर्शन प्रभाव के कारण नियम के क्रियाशील न होने की बात कही है| उनके अनुसार, "किसी वस्तु की उपयोगिता दूसरों के पास उस वस्तु की मात्रा पर निर्भर करती है।" इस कारण से एक उपभोक्ता के पास जब तक अन्य उपभोक्ताओं के बराबर वस्तु की मात्रा नहीं हो जाती, तब तक उसकी उपयोगिता बढ़ती हुई होती है।
3. **प्रो. बोल्डिंग** ने स्पष्ट किया है कि कभी-कभी वस्तु के उपभोग की प्रारम्भिक अवस्था में सीमान्त उपयोगिता बढ़ती हुई हो सकती है।

   यहाँ यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम एक सर्वव्यापी नियम है, जो सभी परिस्थितियों में देर-सवेर अवश्य लागू होता है। **प्रो. बोल्डिंग** की परिभाषा के परिप्रेक्ष्य में देखें, तो इस नियम का कोई वास्तविक अपवाद नहीं है।

स्व मूल्यांकन – प्रथम

क्या आपको कभी किसी वस्तु का उपभोग करते समय ऐसा लगा कि प्रारम्भ में उसकी कुछ इकाइयों से बढ़ती हुई सीमान्त उपयोगिता प्राप्त हो रही है? यदि हाँ, तो इसका कारण समझने का प्रयास कीजिए और अपने साथियों को बताइए कि वह वस्तु कौनसी थी और ऐसा क्यों होता है?

नियम का महत्त्व (Importance of the Law) :

1. यह नियम माँग के नियम का आधार है।
2. यह नियम सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का आधार है।
3. यह नियम उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का आधार है।
4. यह नियम मूल्य सिद्धान्त का आधार है।
5. यह नियम वस्तु के प्रयोग मूल्य (Value in use) तथा विनिमय मूल्य (Value in exchange) के अन्तर को स्पष्ट करता है।
6. यह नियम उत्पादन एवं उपभोग में विविधता एवं जटिलता की व्याख्या करता है।
7. यह नियम आधुनिक प्रगतिशील कर प्रणाली का आधार है ।
8. यह नियम समाज में आय एवं धन के पुनर्वितरण का सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत करता है।

नियम के लागू होने के कारण (Reasons for the Application of the Law) :

प्रो. बोल्डिंग ने नियम की क्रियाशीलता के निम्नांकित दो कारण बताये हैं :

1. **वस्तुएँ एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न नहीं होती हैं,** इसलिए उन्हें एक दूसरे के स्थान पर एक सीमा तक ही प्रयोग किया जा सकता है या उनका एक निश्चित अनुपात में ही प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, चाय में चीनी एक निश्चित अनुपात में ही काम में ली जाती है, इसलिए चाय की मात्रा स्थिर रख कर यदि चीनी की मात्रा बढ़ायी जाती है, तो चीनी की प्रत्येक वृद्धि से सीमान्त उपयोगिता घटती हुई दर से प्राप्त होगी।
2. **किसी आवश्यकता विशेष को पूर्णतः सन्तुष्ट किया जा सकता है** क्योंकि प्रथम, उपभोक्ता की उपभोग क्षमता सीमित होती है और द्वितीय, वस्तु के उपभोग में वृद्धि के साथ-साथ आवश्यकता की तीव्रता कम होती चली जाती है। वस्तुत: किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता उसकी आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है और वस्तु की मात्रा तथा आवश्यकता की तीव्रता के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। **सूत्र रूप में** :

   वस्तु की उपभोग मात्रा में वृद्धि -→ आवश्यकता की तीव्रता में कमी → सीमान्त उपयोगिता में कमी

4. **वस्तु के विविध प्रयोग : प्रो. बॉमोल** के मतानुसार वस्तुओं के एक से अधिक प्रयोग होने कारण भी सीमान्त उपयोगता ह्रास नियम लागू होता है। सामान्य रूप से उपभोक्ता किसी वस्तु को सर्वप्रथम उसके सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग में काम में लेता है और तत्पश्चात् क्रमशः उसके कम महत्त्वपूर्ण प्रयोगों में काम में लेता है, परिणामस्वरूप वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता गिरती हुई होती है।

3.6 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-Marginal Utility)

सम-सीमान्त उपयोगिता के अनेक नाम हैं। इसे अधिकतम सन्तुष्टि नियम, उपभोग का नियम, तटस्थता का नियम, मितव्ययता का नियम आदि नामों से भी जाना जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्री इसे **आनुपातिकता का नियम** कहते हैं। **प्रो. लेफ्टविच** इसे आय आवंटन का सिद्धान्त कहते हैं। इस नियम का सर्वाधिक प्रचलित नाम **प्रतिस्थापन का नियम (Law of substitution)** है। इसे **गोसेन का द्वितीय नियम** भी कहा जाता है। इस नियम के प्रयोग द्वारा एक उपभोक्ता अपने संतुलन की स्थिति प्राप्त कर सकता है।

उपभोक्ता का साम्य (Consumer's Equilibrium) : एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है। इसलिए जब उसे अपनी सीमित आय को व्यय करने के ढ़ंग से अधिकतम संतुष्टि मिल रही होती है, तो वह संतुलन की स्थिति में होता है। दूसरे शब्दों में, जब उपभोक्ता अपने वर्तमान व्यय करने के ढ़ंग में कोई परिवर्तन नहीं करना चाहता है, तो वह साम्य की स्थिति में होता है। यदि वह अपनी आय को व्यय करने के तरीके में परिवर्तन करता है, तो उसका संतुष्टि का स्तर पहले की अपेक्षा कम हो जाएगा। सम-सीमान्त उपयोगिता नियम उपभोक्ता को साम्य की स्थिति प्राप्त करने में मार्गदर्शन प्रदान करता है।

नियम की परम्परागत परिभाषा एवं व्याख्या (Traditional Definition and Explanation) :

प्रो. मार्शल के अनुसार, "यदि किसी व्यक्ति के पास ऐसी वस्तु है जो विभिन्न प्रयोगों में काम लायी जा सकती है, तो वह उसको उन प्रयोगों में इस प्रकार बाँटेगा कि उसकी सीमान्त उपयोगिता सभी प्रयोगों में समान रहे; क्योंकि यदि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता एक प्रयोग में दूसरे प्रयोग की अपेक्षा अधिक है, तो वह दूसरे प्रयोग से इसकी कुछ मात्रा हटाकर तथा

उसका उपयोग पहले में करके लाभ प्राप्त कर सकता है।" मार्शल की परिभाषा के आधार पर नियम की परिभाषा को इस प्रकार **सूत्र बद्ध** किया जा सकता है :

वस्तु के X प्रयोग की सीमान्त उपयोगिता = वस्तु के Y प्रयोग की सीमान्त उपयोगिता = -------- वस्तु के अन्य प्रयोगों की सीमान्त उपयोगिता।

प्रो. हिक्स के अनुसार, " जब प्रत्येक अवस्था में व्यय की सीमान्त इकाइयों से उपयोगिता में समान वृद्धि प्राप्त होती है, तो उपयोगिता अधिकतम होती है।" **प्रो. हिक्स** ने सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की व्याख्या मुद्रा के सन्दर्भ में की है। व्यवहार, में हम वस्तुओं को मुद्रा के माध्यम से क्रय करते हैं। इस परिभाषा के आधार पर नियम को निम्नांकित प्रकार से **सूत्र बद्ध** किया जा सकता है :

X वस्तु पर व्यय की सीमान्त की उपयोगिता = Y वस्तु पर व्यय की सीमान्त इकाई की उपयोगिता= ....

यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि व्यय की सीमान्त इकाई वस्तु विशेष पर उपभोक्ता द्वारा खर्च की गयी की अन्तिम इकाई (रूपया) है। नियम की इस परिभाषा के सन्दर्भ में, हम एक उदाहरण द्वारा उपभोक्ता के साम्य को समझेंगे। मानाकि एक उपभोक्ता के पास 8रु. हैं, जिन्हें वह X तथा Y वस्तु पर खर्च करना चाहता है। यहाँ यह मान लिया गया है कि प्रत्येक वस्तु की एक इकाई एक रूपये के बराबर है। **तालिका संख्या 3.3** में दोनों वस्तुओं की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता को दर्शाया गया है, जो सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण क्रमश: गिरती हुई हैं। कोष्ठकों में दोनो वस्तुओं पर उपभोक्ता द्वारा व्यय किये गये रूपयों के क्रम को दिखाया गया है, जो दोनों वस्तओं की तुलनात्मक उपयोगिता पर आधारित है।

तालिका संख्या 3.3

मुद्रा की इकाइयाँ	X वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता	Y वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता
1	50 (1)	20 (4)
2	40 (2)	10 (6)
3	28 (3)	6 (7)
4	15 (5)	3
5	6 (8)	1
6	2	0

तालिकानुसार उपभोक्ता X वस्तु पर कुल पाँच रू. तथा Y वस्तु पर कुल तीन रू. खर्च करता है, जिसके परिणामस्वरूप उसको कुल उपयोगिता 175 प्राप्त होती है। यहाँ X वस्तु पर खर्च किया गया पाँचवा रू. सीमान्त व्यय इकाई है, जिसकी सीमान्त उपयोगिता 6 है और इसी प्रकार Y वस्तु पर खर्च किया गया तीसरा रू. सीमान्त व्यय इकाई है, जिसकी उयोगिता भी 6 है|

यदि उपभोक्ता अपने 8 रूपयों को दोनों वस्तुओं पर किसी अन्य प्रकार खर्च करे, तो उसकी कुल उपयोगिता 175 से कम होगी, जो इस नियम की सत्यता की कसौटी है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उपभोक्ता इस नियम का पालन कर

अधिकतम संतुष्टि के लक्ष्य तक पहुँच सकता है। इस उदाहरण में नियम की निम्नांकित दोनों शर्तें पूरी हो रही हैं, जिसके कारण उपभोक्ता साम्य की स्थिति में है :

(i) X वस्तु पर व्यय की सीमान्त इकाई की उपयोगिता (6) = Y वस्तु पर व्यय की सीमान्त इकाई की उपयोगिता (6)

(i) कुल आय = कुल व्यय

8 रु = 8 रु

कुल व्यय = (5 रू. X वस्तु पर + 3 रू Y वस्तु पर) 8 रू.

रेखाचित्र संख्या - 3.3

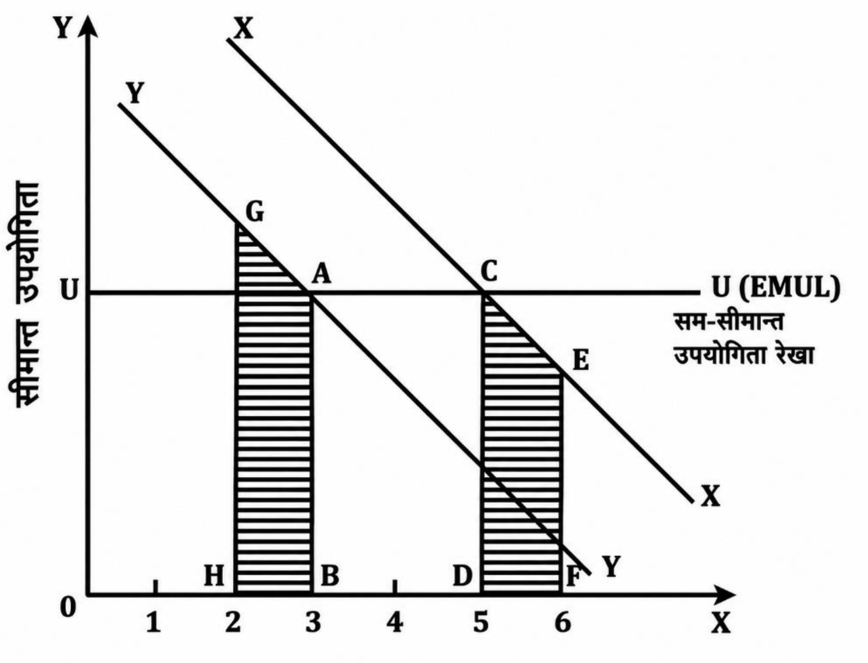

मुद्रा (व्यय) की इकाइयाँ

नियम की आधुनिक परिभाषा एवं व्याख्या (Modern Definition and Explanation) : नियम की परम्परागत व्याख्या अनेक दोषों से ग्रसित है। इसका सबसे प्रमुख दोष यह है कि इसमें वस्तुओं की कीमतों पर ध्यान नहीं दिया गया है। नियम की आधुनिक व्याख्या के अनुसार उपभोक्ता अपने संतोष को अधिकतम करने के लिए उपभोग की जाने वाली वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता को बराबर करने के स्थान पर वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता और उनके मूल्यों के अनुपात को बराबर करता है। **प्रो. पी.सी. जैन** के शब्दों में, "एक उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं पर मुद्रा इस प्रकार व्यय करेगा कि विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताएँ उनकी कीमतों के अनुपात में हों।" **सूत्र रूप में :**

$$\frac{\textbf{X} \text{ वस्तु सीमान्त उपयोगिता } (\textbf{MUx})}{\textbf{X} \text{ वस्तु कीमत } (\textbf{Px})} = \frac{\textbf{Y} \text{ वस्तु सीमान्त उपयोगिता } (\textbf{MUy})}{\textbf{Y} \text{ वस्तु कीमत } (\textbf{Py})}$$

प्रो. बोल्डिंग ने उपभोक्ता साम्य के लिए **भारित सीमान्त उपयोगिता के समानीकरण** पर बल दिया है। उन्हीं के शब्दों में, "व्यय का सर्वोत्तम वितरण वह होता है जिसके अन्तर्गत व्यय की सभी मदों की भारित सीमान्त उपयोगिता बराबर होती है।" **सूत्र रूप में :**

X वस्तु की भारित सीमान्त उपयोगिता = Y वस्तु की भारित सीमान्त उपयोगिता

(WMUx) = (WMUy)

वस्तु की सीमान्त उपयोगिता में उसके मूल्य का भाग देने से उस वस्तु की भुरित सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होती है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण : मानाकि एक उपभोक्ता के पास 17 रू० हैं जिन्हें वह X तथा Y वस्तुओं पर व्यय करना चाहता है। यहाँ X वस्तु की कीमत 2 रू. तथा Y वस्तु की कीमत 3 रु.प्रति किलोग्राम है। दोनों वस्तुओं की विभिन्न मात्राओं की सीमान्त उपयोगिता **तालिका संख्या 3.4** में दी गयी है।

तालिका संख्या 3.4

मात्रा (किलोग्राम में)	X वस्तु की सीमान्त उपयोगिता	Y वस्तु की सीमान्त उपयोगिता
1	100	60
2	80	40
3	50	**30**
4	**20**	15
5	10	8

तालिकानुसार उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि के लिए X वस्तु की चार किलोग्राम तथा Y वस्तु की तीन किलोग्राम मात्रा क्रय करेगा क्योंकि यहाँ पर दोनों वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता ठीक उनके मूल्य के अनुपात में हैं और साथ ही में उपभोक्ता की कुल आय और व्यय एक दूसरे के बराबर हैं| यहाँ नियम की निम्नांकित दोनों शर्तें पूरी हो रही हैं :

(i) $\frac{\text{MUx}}{\text{Px}} = \frac{\text{MUy}}{\text{Py}}\, or\, \frac{20}{2} = \frac{30}{3}\, or\ 10 = 10$

(ii) कुल आय = कुल व्यय (17रू = 17रू).
कुल व्यय ज्ञात करने के लिए निम्नांकित सूत्र काम में लिया जाता है :
कुल व्यय = (Qx . Px) + (Qy.Py) = (4x2) + (3x3) = Rs. 17

यहाँ Q वस्तु की मात्रा तथा P कीमत है।

नियम की आलोचनाएँ/सीमाएँ/कठिनाइयाँ (Criticisms/Limitations/Difficulties): व्यवहार में निम्नांकित कठिनाइयों के कारण सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का प्रयोग करना उतना आसान नहीं है, जितना कि इस नियम की व्याख्या से लगता है :

1. व्यवहार में अनेक वस्तुओं का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन संभव नहीं है, इसलिए अविभाज्य वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता को विभाज्य वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता के बराबर नहीं किया जा सकता है।
2. टिकाऊँ वस्तुओं के बारे में निश्चित बजट अवधि की मान्यता लागू नहीं होती है। क्योंकि उपभोक्ता इन्हें एक निश्चित बजट अवधि में खरीदता है, किन्तु इनका प्रयोग निश्चित बजट अवधि के पश्चात भी करता है।
3. वस्तुओं की सीमित उपलब्धि अथवा अनुपलब्धि की स्थिति में उपभोक्ता चाहकर भी उनकी सीमान्त उपयोगिता को बराबर नहीं कर सकता।

4. वस्तुओं की कीमतों में निरन्तर परिवर्तन होते रहने के कारण उपभोक्ता की वस्तुओं से सम्बन्धित उपयोगिता गणनाएँ बेकार हो जाती हैं और उनकी आपस में तुलना भी नहीं की जा सकती है।
5. अनेक बार अज्ञानता और लापरवाही के कारण उपभोक्ता को विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता की सही जानकारी नहीं होती है।
6. पूरक वस्तुओं के सम्बन्ध में यह नियम लागू नहीं होता है क्योंकि प्रमुख वस्तु के बिना उनकी उपयोगिता की जानकारी नहीं होती है।
7. आदत, रीति- रिवाज और फैशन के कारण अनेक बार उपभोक्ता वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता को ध्यान में रखे बिना ही अपनी आय को खर्च कर देता है।
8. सभी उपभोक्ता विवेकशील एवं हिसाबी स्वभाव के नहीं होते हैं। वे अपने स्वभाव (Instinct) के अनुसार अपनी आय को व्यय करते हैं।
9. यह नियम अनेक अवास्तविक एवं दोषपूर्ण मान्यताओं पर टिका हुआ है। व्यवहार में, न तो उपयोगिता की सही गणना की जा सकती है और न ही मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है, जैसा कि यह नियम मानकर चलता है।

निष्कर्ष : उपर्युक्त आलोचनाओं/कठिनाइयों के बावजूद भी यह नहीं कहा जा सकता है कि यह नियम पूर्णत: काल्पनिक एवं अव्यावहारिक है। वस्तुत: यह नियम जीवन का मार्गदर्शक सिद्धान्त है, जिसका प्रयोग हर उपभोक्ता जाने-अनजाने में मौटे रूप में अवश्य करता है। **प्रो. चैपमेन** के शब्दों में, "हम अपनी आय का वितरण सम-सीमान्त उपयोगिता नियम के अनुसार उस अर्थ में करने के लिए विवश नहीं होते जिस अर्थ में हवा में पत्थर फैंके जाने पर वह जमीन पर वापस गिरने के लिए विवश होता हैं, परन्तु वास्तव में, हम मौटे तौर पर ऐसा करते हैं क्योंकि हम समझदार हैं।"

नियम का क्षेत्र एवं महत्त्व (Scope and Importance of the Law): प्रो० रोबिन्स प्रतिस्थापन के नियम को **'अर्थशास्त्र का नियम'** कहते हैं और शेष अन्य नियमों को उप-नियमों की श्रेणी में रखते हैं। इस नियम की क्रियाशीलता की व्यापकता आर्थिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। **मार्शल** के अनुसार, "प्रतिस्थापन के सिद्धान्त का प्रयोग आर्थिक खोज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में होता है"| यह नियम उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं राजस्व के क्षेत्र में समान रूप से लागू होता है । जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि उपभोग के क्षेत्र में इस नियम के प्रयोग द्वारा एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सकता है। उत्पादन के क्षेत्र में एक उत्पादक न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन कर अपने लाभ को अधिकतम कर सकता है। उसे इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कम उत्पादक अथवा मँहगे साधनों के स्थान पर अधिक उत्पादक अथवा सस्ते साधनों का तब तक प्रतिस्थापन करते रहने पड़ता है, जब तक की निम्नांकित स्थिति नहीं आ जाती है :

$$\frac{X \text{ साधन की सीमान्त उत्पादकता } (\mathbf{MPx})}{X \text{ साधन की कीमत } (\mathbf{Px})} = \frac{\mathbf{Y} \text{ साधन की सीमान्त उत्पादकता } (\mathbf{MPy})}{Y \text{ साधन की कीमत } (\mathbf{Py})}$$

विनियम के क्षेत्र में इस नियम का प्रयोग कर संतुलन की निम्नांकित आदर्श स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है :

वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (MU) = मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता (P)

वितरण के क्षेत्र में निम्नांकित तीन समस्याएँ होती हैं, जिनका समाधान सम-सीमान्त उपयोगिता नियम द्वारा किया जाता है: (i) उत्पादन के साधनों का पुरस्कार निर्धारण; (ii) आय एवं धन वितरण की विषमताएँ; तथा (iii) उत्पादन के साधनों का विभिन्न प्रयोगों में आवंटन। वितरण के क्षेत्र में इस नियम को **"'सम-सीमान्त उत्पादकता नियम"** कहते हैं।

राजस्व के क्षेत्र में सरकार अधिकतम सामाजिक कल्याण के उद्देश्य की प्राप्ति प्रतिस्थापन के नियम को लागू करके करने का प्रयास करती है। राजस्व का **'अधिकतम सामजिक लाभ का सिद्धान्त'** इसी नियम पर आधारित है। इस सिद्धान्त की पालना हेतु सरकार :

(i) विभिन्न स्रोतों पर कर भार इस प्रकार डाले कि प्रत्येक स्रोत का सीमान्त त्याग एक दूसरे के बराबर हो;

(ii) विभिन्न मदों पर इस प्रकार व्यय करें ताकि प्रत्येक मद से प्राप्त सीमान्त लाभ (उपयोगिता) बराबर हो; तथा

(iii) समाज से प्राप्त कुल आय का सीमान्त त्याग उसके ऊपर किये गये कुल व्यय के सीमान्त लाभ के बराबर हो।

3.7 उपभोक्ता की बचत (Consumer's Surplus)

उपभोक्ता की बचत के बारे में सर्वप्रथम विचार सन 1844 में फ्रांसीसी इंजीनियर **आर.जे. ड्यूपिट** (Dupit) ने प्रस्तुत किये, किन्तु इस अवधारणा का वैज्ञानिक विश्लेषण **प्रो. मार्शल** ने 1879 में किया। उन्होंने तब इसे **'उपभोक्ता की लगान'** (Consumer's rent) का नाम दिया। बाद में 1890 में उन्होंने इस अवधारणा की और अधिक गहन एवं विस्तृत व्याख्या की और इसे "**उपभोक्ता की बचत'** कहा। **बोल्डिंग** इसे **'क्रेता की बचत**(Buyer's Surplus) कह कर पुकारते हैं।

हम अपने दैनिक जीवन में अनेक ऐसी वस्तुओं का उपयोग करते हैं जिनसे प्राप्त उपयोगिता उनकी कीमत की तुलना में कहीं अधिक होती है, जैसे माचिस, समाचार पत्र, नमक आदि। यदि ये वस्तुएँ बाजार में प्रचलित मूल्य पर न मिलें, तो हम इनके लिए अधिक कीमत चुकाने को तैयार हो जाते हैं। एक उपभोक्ता किसी वस्तु के प्रयोग से वंचित रहने की अपेक्षा उसके लिए जो कीमत चुकाने को तैयार हो जाता है और जो कीमत वह वास्तव में चुकाता है, इन दोनों के अन्तर को ही उपभोक्ता की बचत कहते हैं। **मार्शल** के अनुसार, "किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने की अपेक्षा एक व्यक्ति (उपभोक्ता) जो कीमत चुकाने को तैयार हो जाता है और जो कीमत वास्तव में चुकाता है, इनका अन्तर ही इस अतिरेक सन्तुष्टि की आर्थिक माप है। इसे उपभोक्ता की बचत कहा जा सकता है।" उदाहरण के लिए ,समाचार पत्र पढ़ने से वंचित रहने की अपेक्षा एक उपभोक्ता उसके लिए पाँच रू० तक दे सकता है, किन्तु उसे समाचार पत्र 4 रू. में ही मिल जाता है, तो इस प्रकार उसे समाचार पत्र से एक रू. की अतिरिक्त संतुष्टि मिलती है। इस अतिरिक्त संतुष्टि को ही उपभोक्ता की बचत कहते हैं। **प्रो. पेन्सन (Penson)** के अनुसार, "हम जो कुछ चुकाने को तैयार होते हैं और हमें जो कुछ चुकाना पड़ता है, इनके अन्तर को उपभोक्ता की बचत कहते हैं।" **सूत्र रूप में :**

उपभोक्ता की बचत = (जो कुछ चुकाने को तैयार हैं - जो कुछ चुकाना पड़ता है)

प्रो. टॉजिग के शब्दों में ,"उपभोक्ता की बचत, कुल उपयोगिता और कुल विनिमय मूल्य को मापने वाली राशियों का अन्तर है| " **सूत्र रूप में** :

उपभोक्ता की बचत = (कुल उपयोगिता - कुल विनिमय मूल्य)

उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का आधार सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम है। इस नियम की क्रियाशीलता के कारण ही वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता क्रमशः गिरती हुई होती है | इसलिए वस्तु की प्रारम्भिक इकाइयों की उपयोगिता अधिक तथा बाद की इकाइयों की उपयोगिता कम होती है। चूँकि बाजार में वस्तु की प्रत्येक इकाई की कीमत समान होती है, इसलिए उपभोक्ता की बचत गिरती हुई होती है। उपभोक्ता उस बिन्दु पर वस्तु का क्रय करना बन्द कर देता है, जहाँ उसकी उपयोगिता और कीमत ठीक एक दूसरे के बराबर (MU = P) हो जाती है। यहाँ

उपभोक्ता की बचत शून्य होती है। उपभोक्ता की बचत की अवधारणा, इसके आधार और माप को **तालिका संख्या 3.5 तथा रेखाचित्र 3.4** से आसानी से समझा जा सकता है।

तालिका संख्या 3.5

1	2	3	4 (2 – 3)
X वस्तु की इकाइयाँ	जो मूल्य चुकाने को तैयार हैं या सीमान्त उपयोगिता (रू. में)	जो मूल्य चुकाते हैं या बाजार कीमत (रू. में)	उपभोक्ता की बचत (रू. में)
1	60	20	60 - 20=40
2	50	20	50-20=30
3	40	20	40-20=20 MU > P
4	30	20	30-20=10
5	20	20	20-20=0 MU = P
	कुल उपयोगिता= (TU) =200	कुल कीमत (TP)= 100	कुल उपभोक्ता की बचत (CS)= 100

रेखाचित्र संख्या - 3.4

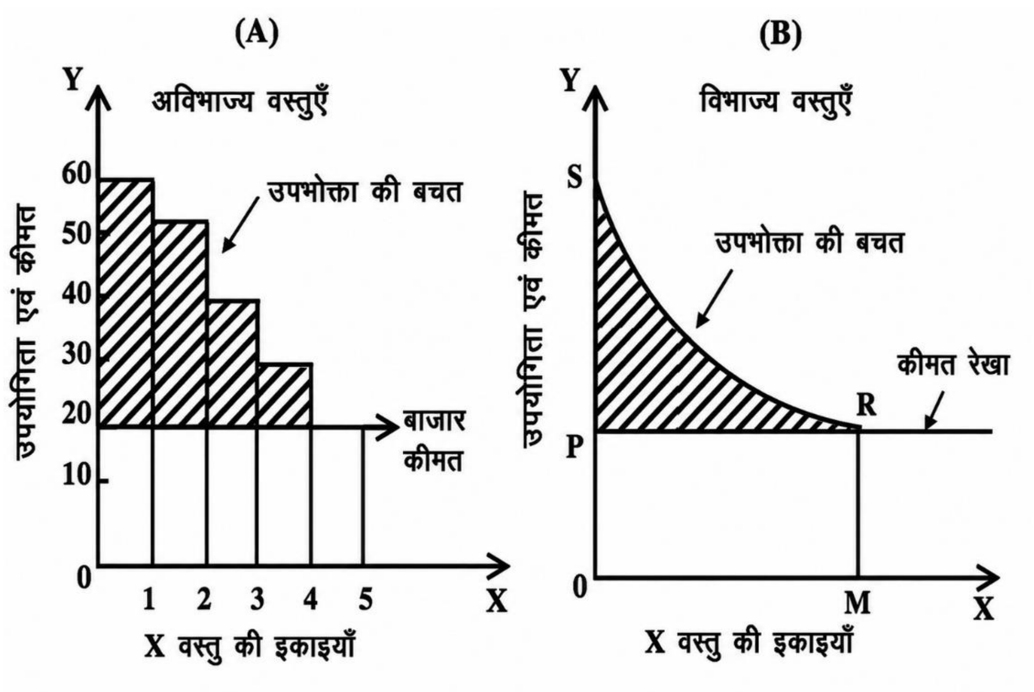

अविभाज्यशील वस्तुओं से प्राप्त उपभोक्ता की बचत को रेखाचित्र 3.4 (A) में दर्शाया गया हैं। चित्र में प्रत्येक चतुर्भुज (Rectangular) वस्तु की इकाई से प्राप्त उपयोगिता को बताता है तथा चतुर्भुजों का छायांकित भाग वस्तु की कीमत के ऊपर उसकी उपयोगिता के आधिक्य को बताता है, जो उपभोक्ता की बचत है। रेखाचित्र 3.4 (B) विभाज्य वस्तुओं से

प्राप्त उपभोक्ता की बचत को प्रकट करता है। चित्रानुसार वस्तु की कुल उपयोगिता OSRM है तथा कुल कीमत OPRM है। अत: इन दोनों का अन्तर PSR उपभोक्ता की बचत है।

उपभोक्ता की बचत को मापने के लिए निम्नलिखित **गणितीय सूत्र** का प्रयोग किया जाता है :

उपभोक्ता की बचत = (कुल उपयोगिता) — (वस्तु की क्रय की गई इकाइयों की संख्या X वस्तु की प्रति इकाई कीमत)

उपभोक्ता की बचत की माप की कठिनाइयाँ (Difficulties in Measurement of Consumer's Surplus) : व्यवहार में, निम्नांकित कठिनाइयों की वजह से उपभोक्ता की बचत की सही माप कर पाना अत्यन्त कठिन कार्य है :

1. उपयोगिता की गणनावाचक माप संभव नही है, जिसके बिना उपभोक्ता की बचत की माप करना संभव नहीं है।
2. मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता सदैव स्थिर नहीं रहती है, किन्तु उपभोक्ता की बचत की अवधारणा इस गलत मान्यता पर आधारित है कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता सदैव स्थिर रहती है।
3. उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थिति में अन्तर होने के कारण विभिन्न उपभोक्ताओं के लिए समान वस्तु से प्राप्त उपभोक्ता की बचत भी भिन्न- भिन्न होती है क्योंकि उनके द्वारा चुकाये जा सकने वाला मूल्य उनकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है।
4. उपभोक्ताओं के पसन्दगी अधिमान में अन्तर होने के कारण उनके द्वारा वस्तु के लिए चुकाये जा सकने वाले मूल्य में अन्तर होता है, परिणामस्वरूप उनको प्राप्त उपभोक्ता की बचत भी भिन्न-भिन्न होती है।
5. स्थानापन्न वस्तुओं की उपस्थिति एवं उपलब्धि के कारण विचाराधीन वस्तु से प्राप्त उपयोगिता की सही गणना करना संभव नही है, फलस्वरूप उपभोक्ता की बचत की सही माप कर पाना अत्यन्त कठिन है।
6. जीवन रक्षक एवं प्रतिष्ठा सूचक वस्तुओं से प्राप्त उपभोक्ता की बचत अनिश्चित, भ्रामक एवं हास्यास्पद होती है क्योंकि ऐसी वस्तुओं के लिए उपभोक्ता किसी भी सीमा तक त्याग करने को तैयार हो जाता है।
7. **प्रो. पैटन** के अनुसार जब उपभोक्ता वस्तु की अतिरिक्त इकाइयाँ क्रय करता है, तो वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों के साथ-साथ उससे पूर्व क्रय की गयी इकाइयों की भी उपयोगिता कम हो जाती है। मार्शल ने उपभोक्ता की बचत माप करते समय इस बात को ध्यान में नहीं रखा है।

सेम्यूलसन जैसे आधुनिक अर्थशास्त्री उपभोक्ता की बचत को गणितीय पहेली के साथ ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक रूचि का विषय मानते हैं। वे इस अवधारणा को काल्पनिक, अवैज्ञानिक और अव्यावहारिक मानते हैं और इसलिए इसे अर्थशास्त्र के अध्ययन से बाहर निकाल देने के पक्षधर हैं।

प्रो. रोबर्टसन इसे बौद्धिक दृष्टि से सम्मानीय तथा व्यावहारिक कार्यों में मार्गदर्शन की दृष्टि से लाभदायक मानते हैं।

उपभोक्ता की बचत का महत्त्व (Importance of Consumer's Surplus)

सैद्धान्तिक महत्त्व (Theoretical Significance) :

1. यह अवधारणा वस्तुओं के **प्रयोग मूल्य** (Value in use) एवं **विनिमय मूल्य** (Value in Exchange) में पाये जाने वाले अन्तर को स्पष्ट करती है।
2. यह हमें हमारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक वातावरण से प्राप्त लाभों का ज्ञान कराने में सहायक सिद्ध होती है।

व्यावहारिक महत्त्व (Practical Importance) :

1. इस अवधारणा के आधार पर हम एक देश की विभिन्न समयों में **आर्थिक प्रगति** की तुलना कर सकते हैं और साथ ही साथ एक ही समय में दो देशों की आर्थिक प्रगति की भी तुलना कर सकते हैं।
2. इस अवधारणा के द्वारा हम **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लामों की गणना** कर सकते हैं और साथ ही साथ इस प्रश्न का उत्तर भी पा सकते हैं कि किसी देश द्वारा वस्तुओं का आयात क्यों किया जाता है? इतना ही नहीं, इससे देश की सरकार को अपनी आयात-निर्यात नीति निर्धारित करने में भी सहायता मिलती है।

3. इस अवधारणा से **एकाधिकारी को अपनी वस्तु का मूल्य निर्धारण करने और उसमें परिवर्तन की सीमा** निश्चित करने में मदद मिलती है।
4. सरकार अपनी **कर नीति और आर्थिक सहायता नीति** (Taxation and Subsidy Policy) का निर्धारण उपभोक्ता की बचत को ध्यान में रखकर करती है।
5. आजकल विनियोग परियोजनाओं का चयन उनके **लागत-लाभ विश्लेषण** करने के पश्चात ही किया जाता है। इस विश्लेषण में उपभोक्ता की बचत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

स्व मूल्यांकन - द्वितीय

उन पाँच प्रमुख वस्तुओं की सूची बनाइए जिनसे आपको अपेक्षाकृत अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है और इसकी चर्चा अपने सहपाठियों से अथवा अपने घरवालों से कीजिए और उन्हें उपभोक्ता की बचत के संदर्भ में महत्त्व समझाइए।

3.8 सारांश (Summary)

अर्थशास्त्र में किसी वस्तु की उपयोगिता उसकी मानवीय आवश्यकता को संतुष्ट करने की शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होती है, चाहे वह वस्तु लाभप्रद हो या हानिकारक। गणनावाचक अर्थशास्त्री उपयोगिता को मापनीय मानते हैं। उनके अनुसार, उपयोगिता को मुद्रा रूपी पैमाने द्वारा मापा जा सकता है तथा उसे गणनावाचक अंकों में व्यक्त किया जा सकता है। किसी वस्तु के लिए एक उपभोक्ता द्वारा चुकायी जा सकने वाली कीमत ही उसकी उपयोगिता की माप है। एक वस्तु की उपभोग की गयी सभी इकाइयों की उपयोगिता के योग को कुल उपयोगिता कहते हैं। उपभोग की अतिरिक्त इकाई की उपयोगिता को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं। सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं। सीमान्त उपयोगिता धनात्मक, शून्य एवं ऋणात्मक हो सकती है; जबकि कुल उपयोगिता सदैव धनात्मक होती है। सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम सीमान्त उपयोगिता की ह्रासमान प्रवृत्ति पर आधारित है,जो यह बताता है कि अन्य बातों के समान रहने पर, किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता क्रमशः गिरती हुई होती है। वस्तुओं की अपूर्ण स्थानापन्नता, उनके विविध प्रयोग तथा आवश्यकता विशेष को पूर्णतः संतुष्ट किये जा सकने के कारण यह नियम लागू होता है।

सम-सीमान्त उपयोगिता/ प्रतिस्थापन के नियम का प्रयोग कर एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। उपयोगिता विश्लेषण में इस नियम का प्रयोग उपभोक्ता साम्य के विवेचन में किया जाता है। इस नियम के अनुसार एक उपभोक्ता तब साम्य की स्थिति में होता है, जब वह अपनी दी हुई आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करे कि विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताएँ ठीक उनकी कीमतों के अनुपात में हों। प्रतिस्थापन का नियम आर्थिक विश्लेषण के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है, किन्तु व्यवहार में अनेक कठिनाइयों के कारण इस नियम का अक्षरशः पालन कर पाना संभव नहीं है। उपभोक्ता की बचत वस्तु की कीमत के ऊपर उससे प्राप्त उपयोगिता का आधिक्य है, जिसे हम कुल उपयोगिता और कुल विनिमय मूल्य के अन्तर द्वारा माप सकते हैं। इस अवधारणा का आधार सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम है। इस नियम की क्रियाशीलता के कारण ही वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त उपभोक्ता की बचत गिरती हुई होती है। यद्यपि उपभोक्ता की बचत की सही माप करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं, किन्तु इसके ज्ञान से अनेक सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक लाभ भी हैं।

3.9 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जानने में सक्षम हो गये होंगे कि:

- उपयोगिता की गणनावाचक माप कैसे की जाती है?
- सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की महत्वपूर्ण बातें क्या हैं?

- सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम क्यों लागू होता है और उसका व्यावहारिक जीवन में क्या महत्त्व है?
- सम-सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के द्वारा उपभोक्ता किस प्रकार साम्य स्थापित करता है?
- सम-सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को 'अर्थशास्त्र का नियम' क्यों कहा जाता है?
- उपभोक्ता की बचत की अवधारणा क्या है और इसे कैसे मापा जाता है?

3.10 शब्दावली (Glossary)

- **उपयोगिता (Utility)** : किसी वस्तु की उपयोगिता उसकी मानवीय आवश्यकता को संतुष्ट करने की क्षमता होती है, चाहे वह वस्तु लाभप्रद हो अथवा हानिकारक। उपयोगिता आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है।
- **गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal Approach) :** यह दृष्टिकोण उपयोगिता को मापनीय मानकर चलता है। इसके अनुसार उपयोगिता को मुद्रारूपी पैमाने द्वारा मापा जा सकता है तथा गणनावाचक अंकों में प्रकट किया जा सकता है।
- **सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) :** यह उपभोग की एक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता होती है, जिसे कुल उपयोगिता में परिवर्तन के रूप में व्यक्त किया जाता है।
- **कुल उपयोगिता (Total Utility) :** किसी समय विशेष में किसी वस्तु की उपभोग की गई समस्त इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता का योग ही कुल उपयोगिता होती है। कुल उपयोगिता को सीमान्त उपयोगिता का योग भी कहा जाता है।
- **प्रयोग मूल्य (Value in Use) :** किसी वस्तु के प्रयोग मूल्य से आशय उस वस्तु के उपभोक्ता के व्यावहारिक जीवन में वास्तविक महत्त्व से लिया जाता है। प्रयोग मूल्य का आधार वस्तु की कुल उपयोगिता होती है।
- **विनिमय मूल्य (Value in Use) :** किसी वस्तु का विनिमय मूल्य उस वस्तु की प्रचलित बाजार कीमत होती है। विनिमय मूल्य का आधार वस्तु की सीमान्त उपयोगिता होती है।
- **उपभोक्ता साम्य (Consumer's Equilibrium) :** जब कोई उपभोक्ता अपनी दी हुई सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर रहा होता है, तो वह संतुलन की स्थिति में होता है। इस स्थिति में वह अपनी आय को खर्च करने के ढ़ंग में परिवर्तन नहीं करता क्योंकि ऐसा करने से उसका संतुष्टि स्तर कम हो जाता है।
- **भारित सीमान्त उपयोगता (Weighted Marginal Utility) :** किसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता में उसकी कीमत का भाग देने से जो भागफल आता है, उसे भारित सीमान्त उपयोगिता कहते हैं। $WMU = \frac{MU}{P}$
- **सीमान्त व्यय इकाई (Marginal Unit of Expenditure) :** किसी वस्तु विशेष पर किये गये कुल व्यय की अन्तिम इकाई को सीमान्त व्यय इकाई कहते हैं।
- **उपभोक्ता की बचत (Consumer's Surplus) :** किसी वस्तु की कीमत के ऊपर उसकी उपयोगिता का आधिक्य ही उपभोक्ता की बचत कहलाती है। इसे वस्तु की कुल उपयोगिता तथा कुल विनिमय मूल्य के अन्तर द्वारा ज्ञात किया जाता है।
- **प्रतिष्ठासूचक वस्तुएँ (Prestigious Goods)** : ये वे वस्तुएँ होती हैं जिनकी कीमत बढ़ने पर उपयोगिता बढ़ती है और इस कारण इन्हें उपभोक्ता ऊँचे दामों पर क्रय करके अपने मिथ्या दम्भ (Snobe appeal) को संतुष्ट करते हैं, जैसे दुर्लभ चित्र, मूर्तियाँ इत्यादि।

3.11 स्व-परख प्रश्न (Self -Test Questions)

अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Very - Short Answer Questions)

1. सीमान्त उपयोगिता का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. सीमान्त उपयोगिता क्यों गिरती हुई होती है?
3. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डालिए।
4. उपभोक्ता के साम्य का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
5. उपयोगिता की माप के गणनावाचक दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
6. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम क्यों लागू होता है?
7. उपभोक्ता की बचत का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
8. उपभोक्ता की बचत क्यों गिरती हुई होती है?
9. उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का आधार क्या है? समझाइए|

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता में अन्तर स्पष्ट कीजिए और इनके बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध को तालिका एवं रेखाचित्र द्वारा समझाइए।
2. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की व्याख्या कीजिए। वास्तविक जीवन में इस नियम को लागू करने में आने वाली कठिनाइयों पर प्रकाश डालिए।
4. "प्रतिस्थापन का नियम आर्थिक जाँच के सभी क्षेत्रों में लागू होता है।" विवेचना कीजिए।
5. उपभोक्ता की बचत की अवधारणा की व्याख्या कीजिए। क्या उपभोक्ता की बचत की सही माप संभव है? कारण सहित स्पष्ट कीजिए।

3.12 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची (References and Bibliography)

- Misra, S.K. & Puri, V.K. : Economics for Managers, Himalaya Publishing House, Bombay, 2006
- Mithani, D.M. : Managerial Economics, Himalaya Publishing House, Bombay, 2009
- Dwivedi, D.N. : Managerial Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. Delhi, 2005

3.13 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- सिंह, गोपाल एवं त्यागी, मंजुला: व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 2009.
- सिंह एवं अग्रवाल: आर्थिक विश्लेषण, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2009-10
- Agarwal, M.D. & Deo Som : Buiness Economics, Ramesh Book Depo, Jaipur, 2008

3.14 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Links)

- https://businessjargons.com/cardinal-approach-to-consumer-equilibrium.html
- https://www.economicsdiscussion.net/cardinal-utility analysis/consumers-behaviour-cardinal-utility-analysis-explained-with-diagram/1111

- http://www.lscollege.ac.in/sites/default/files/e-content/BA%20Part%20I%20-%20Consumer%20Behaviour%20-%20Cardinal%20Approach_0.pdf

इकाई - 4

उपभोक्ता व्यवहार : क्रमवाचक दृष्टिकोण
(Consumer Behaviour : Ordinal Approach)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उपयोगिता की माप का क्रमवाचक दृष्टिकोण

4.3 उदासीनता वक्र का अर्थ एवं परिभाषा

4.4 उदासीनता वक्र की विशेषताएँ

4.5 प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

4.6 उदासीनता वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता साम्य का विश्लेषण

4.6.1 उपभोक्ता साम्य की मान्यताएँ

4.6.2 बजट रेखा या कीमत रेखा

4.6.3 उपभोक्ता साम्य की शर्तें

4.7 उदासीनता वक्र विश्लेषण की उपयोगिता विश्लेषण पर श्रेष्ठता

4.8 सारांश

4.9 अधिगम परिणाम

4.10 शब्दावली

4.11 स्व परख प्रश्न

4.12 संदर्भ व ग्रन्थ सूची

4.13 अन्य पठन सामग्री

4.14 वेब संसाधन/लिंक

4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- उपयोगिता के क्रमवाचक दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।
- उदासीनता वक्र का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- उदासीनता वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता संतुलन के बारे में अवगत हो सकेंगे।
- उदासीनता वक्र विश्लेषण की उपयोगिता विश्लेषण पर श्रेष्ठता को समझ पायेंगे ।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

1871 में **स्टेनले जेवेन्स** (Stanley jevons) पहले ऐसे अर्थशास्त्री थे जिन्होंने अपनी पुस्तक "**दा थ्योरी ऑफ़ पोलिटिकल इकॉनोमी**" (The Theory of Political Economy) में उपभोक्ता की माँग में उपयोगिता के महत्त्व को समझाया था, जिसमें सीमान्त उपयोगिता केआधार पर गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal Approach) की रचना हुई,

जिसे आगे चलकर प्रो. मार्शल ने अधिक स्पष्ट किया। **1881 में एजवर्थ** (Edgeworth) ने अपनी पुस्तक **"मेथेमेटिकल फिजिक्स"** (Mathematical Physics) में क्रमवाचक दृष्टिकोण (Ordinal Approach) की व्याख्या की। बाद में चलकर **जे.आर.हिक्स** तथा **एलन** (Hicks and Allen) ने इसे और अधिक स्पष्ट किया। क्रमवाचक दृष्टिकोण पर आधारित उदासीनता वक्र विश्लेषण हमें उपभोक्ता के व्यवहार विश्लेषण में काफी मदद करता है| इस इकाई में हम उपभोक्ता के क्रमवाचक दृष्टिकोण का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

4.2 उपयोगिता की माप का क्रमवाचक दृष्टिकोण (Ordinal Approach of Utility Measurement)

क्रमवाचक दृष्टिकोण के अनुसार वस्तु या सेवा में निहित उपयोगिता की संख्यात्मक माप संभव नहीं है, इसलिए इसे **रोमन संख्या** I, II, III, IV,व V में क्रम प्रदान किया जाता है| क्योंकि उपयोगिता मन की भावना से जुडा हुआ एक मनोवैज्ञानिक विचार होने से केवल महसूस की जा सकती है। इसलिए उपयोगिता के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जाता है कि अमुक वस्तु अधिक व अमुक वस्तु कम उपयोगी है। क्रमवाचक दृष्टिकोण विभिन्न कारणों की वजह से उपयोगिता को न तो मापनीय मानता है और न ही तुलननीय। इसके अनुसार उपयोगिता को विभिन्न वस्तुओं की पसन्दगी के आधार पर एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है अर्थात उपयोगिता को क्रमवाचक अंकों में व्यक्त किया जा सकता है।

क्रमवाचक दृष्टिकोण के आधार पर अनेक आर्थिक सिद्धांतो को अर्थशास्त्रियों ने समझाया है, जिसमें **जे.आर. हिक्स** (J.R.Hicks) और **आर. जी. डी. ऐलन** (R.G.D.Allen) ने संयुक्त लेख **'रीकंस्ट्रक्शन ऑफ़ दा थ्योरी ऑफ़ वैल्यू'** (Reconstruction of the Theory of Value) में उदासीनता वक्र विश्लेषण को विस्तृत रूप में स्पष्ट किया है| इसकी आगे चलकर गहन और विशद व्याख्या **जे.आर. हिक्स** ने अपनी पुस्तक **"वैल्यू एँड कैपिटल"** (Value and Capital) 1939 में प्रस्तुत की हैं। इसी प्रकार न्यूमेन (Neumen) और **मोर्गेन्सटन** (Morgenstern) ने अपनी पुस्तक स्टैटिस्टिकल यूटिलिटी थ्योरी (Statistical Utility Theory) 1947, व **पॉल सैम्युल्सन** (Paul Samuelson) ने भी अपनी पुस्तक प्रकट अनुराग सिद्धांत (Revealed Preference Theory) 1938 में क्रमवाचक दृष्टिकोण की तथा ऑर्म स्ट्रॉंग ने सीमान्त पसन्दगी सिद्धान्त के द्वारा क्रमवाचक दृष्टिकोण को और अधिक उपयोगी एवं व्यावहारिक बनाया है।

गतिविधि संख्या-1 : आप आम खाने के स्वाद को गणनावाचक अंकों में क्यों नहीं प्रकट कर सकते? आप इसे दूसरे व्यक्ति को कैसे बतायेंगे?

4.3 उदासीनता वक्र का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Indifference Curve)

अधिमान वक्र, उदासीनता वक्र, तटस्थता वक्र या सम संतुष्टि वक्र से आशय ऐसे ज्यॅामितीय वक्र से होता है, जो दो या दो से अधिक वस्तु या सेवाओं के विभिन्न ऐसे संयोगो को बतलाता है, जिसके सभी बिन्दु समान संतुष्टि के सूचक होते हैं। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता किसी भी एक वस्तु या सेवा के प्रति अपना अनुराग या मोह या इच्छा प्रकट नहीं करता है, वह सभी संयोगो के प्रति तटस्थ रहता है। इसलिए इन्हें तटस्थता वक्र कहा जाता है। **प्रो. जे.के. स्मिथ के शब्दों में,** "यह मात्राओं के उन संयोगो को प्रदर्शित करने वाला बिन्दुओं का मार्ग है, जिनके बीच व्यक्ति तटस्थ या उदासीन रहता है । इसलिए इसे तटस्थता या उदासीनता वक्र कहते हैं ।" **प्रो. बोल्डिंग के अनुसार,** "समान क्रम दर्शाने वाली रेखाएँ तटस्थता वक्र कहलाती हैं, क्योंकि ये वस्तुओं के ऐसे संयोगो को बताती हैं, जो एक दूसरे से न तो अच्छे होते हैं और न बुरे होते हैं।"

उदासीनता वक्र को समझने के लिए उदासीनता अनुसूची को समझना आवश्यक है। **एक उदासीनता अनुसूची** दो वस्तुओं के उन वैकल्पिक संयोगों को दर्शाती है, जिनसे किसी उपभोक्ता को प्रति इकाई समय में समान संतुष्टि मिलती है और इसलिए वह उनके प्रति उदासीन रहता है। **उदासीनता अनुसूची का चित्रीयकरण ही उदासीनता वक्र कहलाता है** (Picturization of indifference schedule is called indiffernce curve)। उदासीनता अनुसूची 4.1 के आधार पर खींचे गये उदासीनता वक्र (रेखाचित्र-4.1) को देखने से पता चलता है यह **X तथा Y वस्तु के समान संतुष्टि प्रदाने करने वाले संयोगों को जोड़ने वाला एक बिन्दु पथ** (Locus of Points) है। उदासीनता वक्र को समान संतुष्टि वक्र अथवा सम-उपयोगिता वक्र भी कहते हैं।

तालिका संख्या - 4.1

उदासीनता अनुसूची (Indifference Schedule)

संयोग (Combination)	**X वस्तु की इकाइयाँ (Units of x)**	**Y वस्तु की इकाइयाँ (Units of y)**	**X के लिए Y की सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRS xy)**	**संतुष्टि – स्तर (Satisfaction Level)**
A	1	15	------------	सभी संयोगों से
B	2	10	5y = 1x	समान संतुष्टि/
C	3	6	4y = 1x	उपयोगिता प्राप्त
D	4	3	3y = 1x	होती है।
E	5	1	2y = 1x	

रेखाचित्र संख्या - 4.1

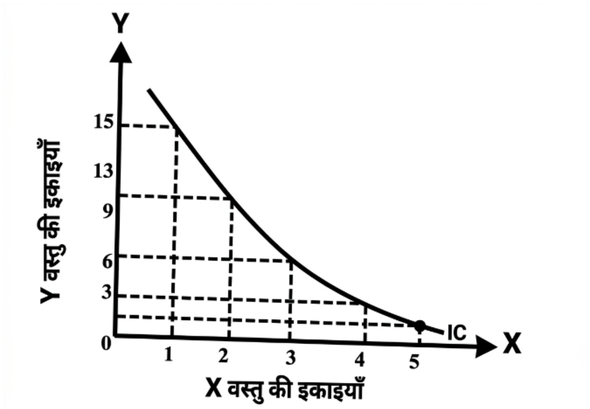

उदासीनता मानचित्र (Indifference Map) : उदासीनता मानचित्र अनेक उदासीनता वक्रों का संग्रह है, जो एक ही मानचित्र में प्रदर्शित किये गये हों। **प्रो. मेयर्स** उदासीनता वक्र परिवार को उदासीनता मानचित्र कहते हैं। जैसे-जैसे कोई उदासीनता वक्र अपने उद्गम बिन्दु से दूर हटता जाता है, वह अपेक्षाकृत संतुष्टि के ऊँचे स्तर और विलोमशः नीचे संतुष्टि स्तर का प्रतीक होता है, जैसा कि रेखाचित्र-4.2 में दर्शाया गया है। **उदासीनता वक्रों की तुलना भौगोलिक मानचित्र की समोच्य रेखाओं** (Contour Lines) से की जाती है। उपभोक्ता के उदासीनता मानचित्र में असंख्य उदासीनता वक्र हो सकते हैं|

रेखाचित्र संख्या - 4.2

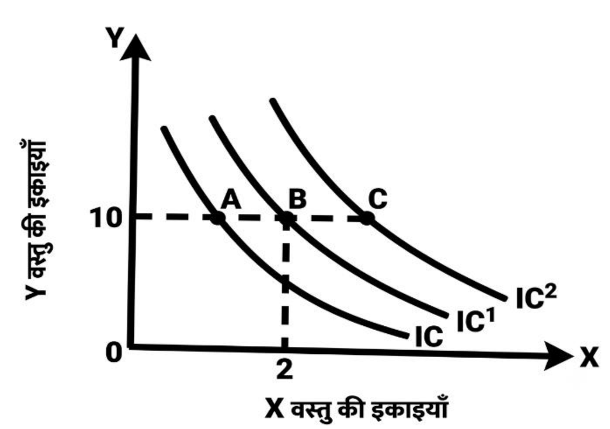

4.4 उदासीनता वक्र की विशेषताएँ (Characteristics of Indifference Curve)

1. **उदासीनता वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है (Indifference curve is negatively sloped) :** समान संतुष्टि के लिए उदासीनता वक्र बायें से दायें नीचे की तरफ झुकते हुए (Slope downward to the right) होते हैं क्योंकि एक वस्तु का उपभोग बढ़ाने से दूसरी वस्तु का उपभोग कम किया जाता है| इसे तालिका 4.1 तथा रेखाचित्र 4.1 द्वारा समझा जा सकता है| तालिकानुसार वस्तु X की मात्रा बढ़ रही है, वही वस्तु Y की मात्रा कम होने से सभी संयोग समान संतुष्टि को बतला रहे हैं। उदासीनता वक्रों का ढाल धनात्मक नहीं होता है। ये OXअक्ष के समानान्तर (Horizantal) भी नहीं होते हैं और न ही OY अक्ष के अनुलम्ब (Vertical) होते हैं।
2. **उदासीनता वक्र अपने मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते हैं (Indifference curves are convex to the origine) :** उदासीनता वक्रों का ऊपरी भाग सापेक्षिक रूप से ढ़ालू और निचला भाग सापेक्षिक रूप से समतल होता है अर्थात् बायीं ओर से दायीं ओर उदासीनता वक्र का ढाल कम होता जाता है। इसका मुख्य कारण **घटती सीमान्त प्रतिस्थापन दर** (Diminishing marginal rate of subsitution) है। तालिका संख्या 4.1 और रेखाचित्र संख्या 4.1 से यह स्पष्ट है कि MRSxy निरन्तर घट रही है| **उदासीनता वक्रों की उन्नतोदरता (Convexity) दोनों वस्तुओं की प्रतिस्थापन्नता पर निर्भर करती है।** यदि दोनों वस्तुएँ एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न हैं, तो उदासीनता वक्र दोनों अक्षों को मिलाने वाली एक सीधी रेखा होती है और यदि दोनों वस्तुएँ एक दूसरे की पूर्ण पूरक हैं, तो उदासीनता वक्र का ढाल अंग्रेजी वर्णमाला के L अक्षर के आकार का होता है, जैसा कि रेखाचित्र संख्या – 4.3 में दर्शाया गया है|

रेखाचित्र संख्या - 4.3

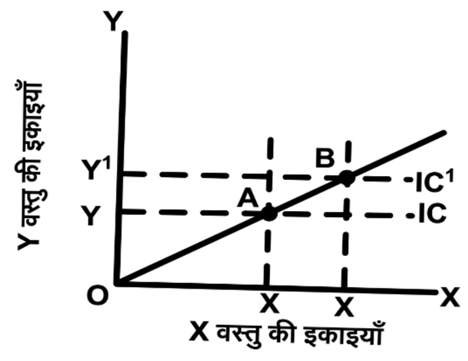

3. **उदासीनता वक्र न तो एक दूसरे को छूते हैं और न ही काटते हैं (Indifference curves neither touch nor intersect each other)** : उदासीनता वक्र एक-दूसरे को काटते नहीं हैं क्योंकि एक उदासीनता वक्र पर स्थित सभी बिन्दु समान संतुष्टि को बतलाते हैं। यदि दो उदासीनता वक्र एक दूसरे को काटते हैं, तो इससे **इनकी संक्राम्यता** (Transitivity) **की मान्यता भंग हो जाती है** अर्थात फिर एक ही बिन्दु पर दोनों वक्र समान संतुष्टि प्रदर्शित करते हैं, जो असंभव है। क्योंकि दो उदासीनता वक्र अलग-अलग संतुष्टि को प्रदर्शित करते हैं। रेखाचित्र - 4.4 इसी विरोधाभास की स्थिति को दर्शाता है। IC पर उपभोक्ता A तथा B संयोगों के प्रति उदासीनता है और इसी प्रकार IC_1 A तथा C संयोगों के प्रति तटस्थ है। चित्रानुसार A=B एवं A=C है, अतः B=C होना चाहिए, जो संभव नहीं है क्योंकि B की तुलना में C संयोग से Y वस्तु की Y1Y2 (BC) मात्रा अधिक मिल रही है, जबकि X वस्तु की मात्रा समान है।

रेखाचित्र संख्या - 4.4

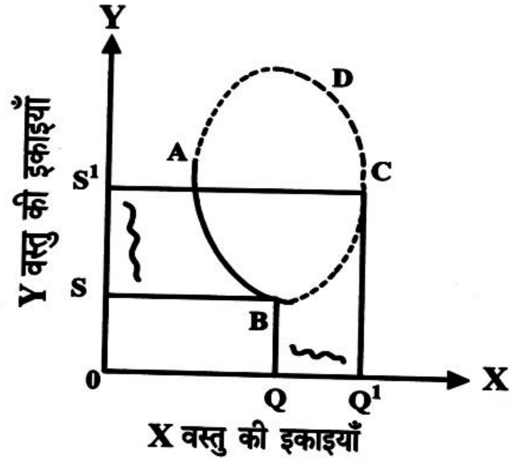

4. **उदासीनता वक्र पर स्थित सभी बिन्दु समान संतुष्टि - स्तर को प्रकट करते हैं (All points on an indifference curve show the same statisfaction level) :** उदासीनता वक्र दो वस्तुओं की मात्राओं के उन संयोगो को प्रदर्शित करने वाला वक्र है, जिसके सभी बिन्दुओं से समान संतुष्टि मिलने के कारण उपभोक्ता सभी संयोगो के प्रति तटस्थ या उदासीन रहता है| इसलिए इसे तटस्थता या उदासीनता वक्र के नाम से जाना जाता है।

5. **उदासीनता वक्र मूलतः अण्डाकार होते हैं (Indifference curves are basically eleptic)** : उदासीनता वक्र सिद्धान्ततः अपने सर्वांगीण रूप में अण्डाकार होते हैं, किन्तु प्रायः इनके केवल उसी भाग को दिखाया जाता है जिसका ढाल ऋणात्मक होता है और जो मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते हैं। इसका कारण यह है कि एक सीमा के पश्चात जब उपभोक्ता किसी वस्तु का अधिक प्रयोग करने लगता है, तो उससे उसे ऋणात्मक संतुष्टि मिलती है, जिसकी क्षतिपूर्ति के लिए उसे दूसरी वस्तु का प्रयोग बढ़ाना पड़ता है, जो अव्यावहारिक है। रेखाचित्र संख्या 4.5 से इसे समझा जा सकता है। चित्रानुसार B बिन्दु के पश्चात उपभोक्ता को Xवस्तु से ऋणात्मक संतुष्टि मिलती है जिसकी क्षतिपूर्ति हेतु वह Y वस्तु की SS_1 मात्रा बढ़ा देता है, फलस्वरूप उदासीनता वक्र अण्डाकार हो जाता है।

रेखाचित्र संख्या -4.5

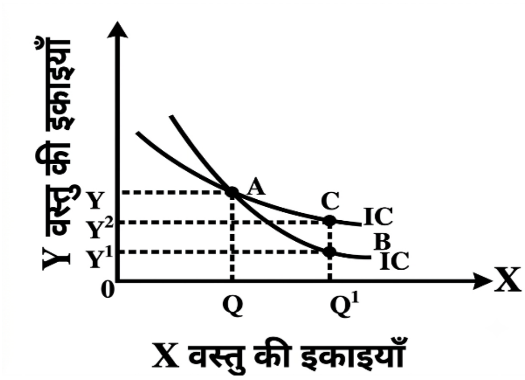

6. **दायीं ओर स्थित कोई भी ऊँचा उदासीनता वक्र अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि का प्रतीक है (Higher indifference curve situated towards right hand side represents higher satisfaction)** : दायीं ओर स्थित ऊँचा उदासीनता वक्र उससे नीचे स्थित वक्र से अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि प्रदान करता है क्योंकि उस पर स्थित सभी संयोगों में किसी एक अथवा दोनों वस्तुओं की मात्रा अधिक होती है। इसे रेखाचित्र-4.6 से आसानी से समझ सकते हैं।

रेखाचित्र संख्या - 4.6

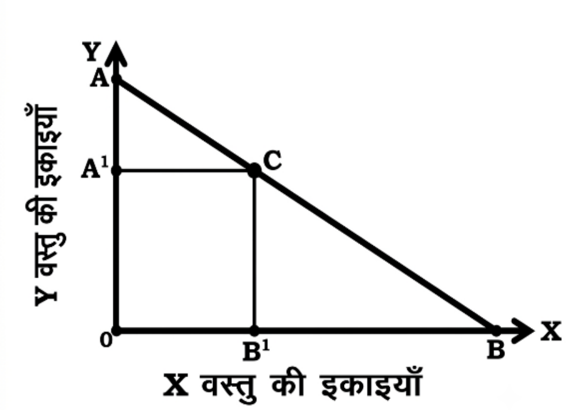

7. **उदासीनता वक्रों का परस्पर समानान्तर होना आवश्यक नहीं है (Indifference curves are not necessarily parallel to each other) :** जिस प्रकार नदी के दोनों किनारे उसकी सम्पूर्ण लम्बाई में समानान्तर नहीं होते, ठीक वैसे ही दो उदासीनता वक्रों का परस्पर समानान्तर होना आवश्यक नहीं है। इसका कारण यह है कि **सभी उदासीनता वक्रों की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान नहीं होती है।** रेखाचित्र-4.7 यही स्पष्ट करता है कि दोनों उदासीनता वक्र एक दूसरे के समानान्तर नहीं है।

रेखाचित्र संख्या - 4.7

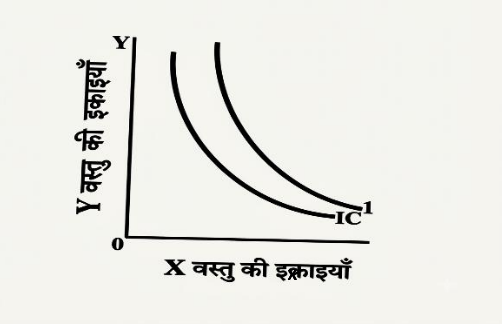

8. **उदासीनता वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं करता (Indifference curve does not touch either axis) :** तकनीकी दृष्टि से एक उदासीनता वक्र दोनों में से किसी भी अक्ष को छू नही सकता क्योंकि यदि यह किसी भी अक्ष को स्पर्श करता है, तो दो वस्तुओं के संयोग की मान्यता समाप्त हो जाती है, जैसा की रेखाचित्र-4.8 में प्रदर्शित किया गया है। IC A बिन्दु पर आधार अक्ष को स्पर्श कर रहा है, तो यहाँ A संयोग में Y वस्तु की मात्रा शून्य होगी और इसी प्रकार IC_1 B बिन्दु पर लम्बवत् अक्ष को छू रहा है, इसलिए B संयोग में X वस्तु की मात्रा शून्य है।

रेखाचित्र संख्या -4.8

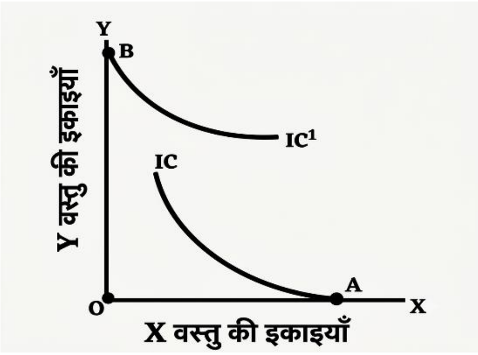

4.5 प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (Marginal Rate of Substitution-MRS)

उदासीनता वक्र विश्लेषण में सीमांत प्रतिस्थापन की दर का विशेष महत्त्व है। प्रतिस्थापन की यह दर ही उदासीनता वक्र का आकार तय करती है। इसी दर के कारण उदासीनता वक्र पर स्थित सभी बिन्दु समान उपयोगिता/संतुष्टि इंगित करते हैं। जिस प्रकार गणनावाचक दृष्टिकोण के उपयोगिता विश्लेषण में सीमान्त उपयोगिता महत्त्वपूर्ण है, उसी प्रकार उदासीनता वक्र विश्लेषण में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर महत्त्वपूर्ण है। साधारण शब्दों में, प्रतिस्थापन की सीमान्त दर वह होती है, जिसमें उपभोक्ता दो वस्तुओं का उपभोग करने के लिए जैसे ही किसी एक वस्तु का उपभोग बढ़ाता है, उसे समान संतुष्टि स्तर पर बने रहने के लिए दूसरी वस्तु की कुछ इकाइयों का त्याग करना पड़ता है। यही त्याग प्रतिस्थापन की सीमान्त दर होती है, जो सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के कारण गिरती हुई होती है। वास्तव में, सीमान्त प्रतिस्थापन दर **X एवं Y वस्तुओं की वैकल्पिक इकाइयों की पारस्परिक विनिमय दर है।** उदाहरण के लिए, **Y वस्तु के स्थान पर X वस्तु के प्रतिस्थापन की दर (MRSxy)Y वस्तु की वह मात्रा है जिसे उपभोक्ता X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए त्यागने को तैयार है।** संतुष्टि के समान अवसर पर बने रहने के लिए जैसे-जैसे X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बढ़ाता है, वैसे-वैसे Y वस्तु की मात्रा घटानी पड़ती है, जो प्रत्येक बार कम होती चली जाती है अर्थात उपभोक्ता X वस्तु की अतिरिक्त इकाई के लिए Y वस्तु की पहले से कम मात्रा का त्याग करना चाहेगा, जो तालिका

संख्या 4.1 और रेखाचित्र संख्या - 4.9 से पूर्णतया स्पष्ट है। रेखा **गणितीय भाषा में उदासीनता वक्र के किसी बिन्दु विशेष पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उस वक्र के ढाल (Slope of IC) का प्रतीक है।** उपभोक्ता जब उदासीनता वक्र पर दायीं ओर नीचे के बिन्दु पर जाता है, तो MRSxy गिरती हुई होती है। रेखाचित्र-4.9 के अनुसार जब उपभोक्ता A से, B,C,D तथा E बिन्दु की ओर जाता है, तो MRSxy गिरती हुई होती है : AF>BG>CH>DJ

रेखाचित्र संख्या - 4.9

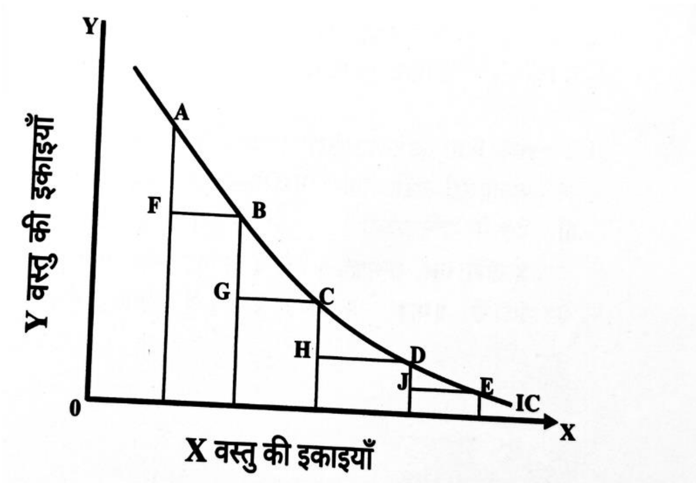

संक्षेप में, X वस्तु की अतिरिक्त मात्रा (ΔX) प्राप्त करने के लिए Y वस्तु का जितना त्याग (ΔY) किया जाता है, वही MRSxy है। इस प्रकार X वस्तु की Y वस्तु के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर $\frac{\Delta Y}{\Delta X}$ है। **सूत्र रूप में:** MRSxy = $\frac{\Delta Y}{\Delta X}$

4.6 उदासीनता वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता साम्य का विश्लेषण (Analysis Of Consumer's Equilibrium Through Indifference Curve Analysis)

मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है और वह अपनी सीमित आय से तथा वस्तुओं की दी गई कीमतों से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करता है । साथ ही वह अपनी असीमित आवश्यकताओं में से कुछ को पूर्ण करने की कोशिश करता है। इसके लिए वह उदासीनता वक्र विश्लेषण की सहायता से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है । इसके लिए उपभोक्ता संतुलन बिन्दु की खोज करता है और यह खोज तब तक जारी रहती है, जब तक कि वह वस्तुओं और सेवाओं के ऐसे संयोग बिन्दु तक न पहुंच जाये जिससे वह हटना पसंद नहीं करता है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता का साम्य बिन्दु वह होगा जहां से उपभोक्ता किसी अन्य बिन्दु पर जाना पसंद नहीं करता है| यह वह सर्वोतम बिन्दु होता है जो उपभोक्ता की आय, वस्तुओं की कीमत, अधिकतम संतुष्टि और उसकी बजट सीमा में होता है।

4.6.1 उपभोक्ता साम्य की मान्यताएँ (Assumptions of Consumer Equilibrium) :

उपभोक्ता साम्य विश्लेषण की निम्नलिखित मान्यताएँ हैं :

(1) उपभोक्ता विवेकशील प्राणी है और वह अपनी संतुष्टि को अधिकतम करना चाहता है।

(2) वस्तुओं का समरूप व विभाजनशील होना जिससे की उन्हें आवश्यकता अनुसार छोटे-छोटे भागों में प्रयोग किया जा सकता है।

(3) उपभोक्ता को दोनों वस्तुओं की कीमतों की पूर्ण जानकारी होती है और कीमतें सामान्यतया गणना अवधि में दी हुई एवं स्थिर होती हैं।

(4) आय, आदत, रुचि, फैशन, स्वभाव व लगाव आदि में गणना अवधि में परिवर्तन नहीं होता है।

(5) उपभोक्ता को बाज़ार सम्बन्धी सभी बातों का पूर्ण ज्ञान होता है।

(6) उपभोक्ता की आय निश्चित होती है और वह अपनी आवश्यकताअनुसार इच्छित वस्तुओं पर खर्च करने के लिए स्वतंत्र होता है।

(7) उपभोक्ता की उदासीनता तथा **पसन्दगी अधिमान संगतिपूर्ण** (Transitive) होते हैं।

4.6.2 बजट रेखा या कीमत रेखा (Price Line or Budget Line)

उदासीनता वक्रों के द्वारा उपभोक्ता के साम्य को समझने के लिए बजट रेखा या कीमत रेखा को समझना भी आवश्यक है। यह वह रेखा होती है, जो दो वस्तुओं के विभिन्न ऐसे संयोगो को बतलाती है, जिसे उपभोक्ता अपनी निश्चित आय तथा वस्तुओं की दी हुई कीमतों पर अधिकतम क्रय कर सकता है । वास्तव में, यह उपभोक्ता की आवश्यकताओं और वस्तु की कीमत व आय का एक बजट होने से इसे बजट रेखा या कीमत रेखा के नाम से जाना जाता है। बजट रेखा को **व्यय रेखा, कीमत अवसर रेखा** (Price Opportunity Line) तथा **कीमत-आय रेखा** के नाम से भी जाना जाता है। इस रेखा से उपभोक्ता के उपभोग की सम्भावनाओं का भी पता चलता है। इसलिए **प्रो. सेम्युल्सन** ने **इसे उपभोग संभावना वक्र** (Consumption Possibility Curve) कहा है। इसे निम्न तालिका संख्या 4.2 से समझा जा सकता है।

तालिका संख्या – 4.2

बजट तालिका

संयोग/बिन्दु	**वस्तु x कीमत (20 रु. प्रति इकाई)**	**वस्तु y कीमत (10 रु. प्रति इकाई)**	**कुल व्यय / कुल आय**
L	5	-	100
M	-	10	100
P	4	2	100
Q	3	4	100
R	2	6	100
S	1	8	100

माना किसी उपभोक्ता के पास 100 रु. हैं और वह दो वस्तुएँ क्रय करना चाहता है। वस्तु X और वस्तु Y की कीमत क्रमशः रु. 20 प्रति इकाई व रु.10 प्रति इकाई है| यदि उपभोक्ता अपनी सम्पूर्ण आय वस्तु X पर व्यय कर देता है, तो वस्तु X की अधिकतम 5 इकाइयाँ क्रय कर सकता है और यदि उपभोक्ता अपनी सम्पूर्ण आय वस्तु Y पर व्यय कर देता है, तो वस्तु Y की अधिकतम 10 इकाइयाँ क्रय कर सकता है, जैसा कि तालिका संख्या 4.2 से स्पष्ट है| इसे निम्न रेखाचित्र 4.10 द्वारा भी समझा जा सकता है।

रेखाचित्र संख्या - 4.10

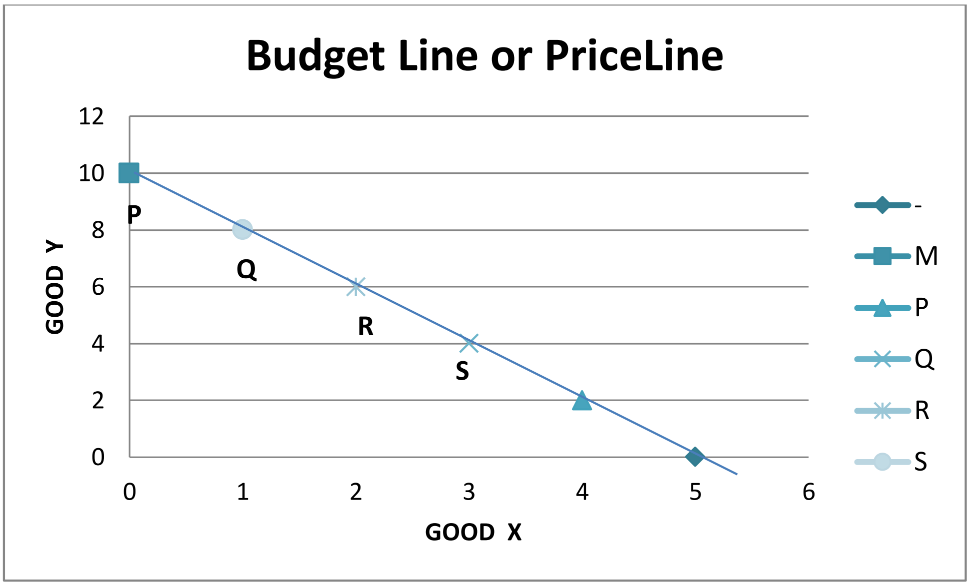

उपरोक्त रेखाचित्र में LM एक बजट रेखा है, जो वस्तु X की अधिकतम 5 इकाइयाँ और वस्तु Y की अधिकतम 10 इकाइयाँ बतला रही है। रेखाचित्र में स्पष्ट है कि P,Q,R,S बिन्दु पर वस्तु X की क्रमशः 4,3,2,1 इकाई को खरीद सकता है और वस्तु Y की 2,4,6,8 इकाइयाँ उपभोक्ता अपनी 100 रु. आय से अधिकतम क्रय कर सकता है|

4.6.3 उपभोक्ता साम्य की शर्तें (Conditions of Consumer's Equilibrium)

उदासीनता वक्र विश्लेषण विधि के द्वारा उपभोक्ता उस समय साम्य की स्थिति में होता है, जब निम्नांकित तीन शर्तें पूरी होती हों :

(i) सन्तुलन बिन्दु पर बजट रेखा उदासीनता वक्र की स्पर्श रेखा (Targent line) हो;

(i) सन्तुलन बिन्दु पर बजट रेखा तथा उदासीनता वक्र का ढाल (Slope) समान हो; तथा

(ii) सन्तुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex) हो अर्थात सन्तुलन बिन्दु पर प्रतिस्थापन की सीमान्तर दर (MRS) घटती हुई हो।

रेखाचित्र संख्या : 4.11

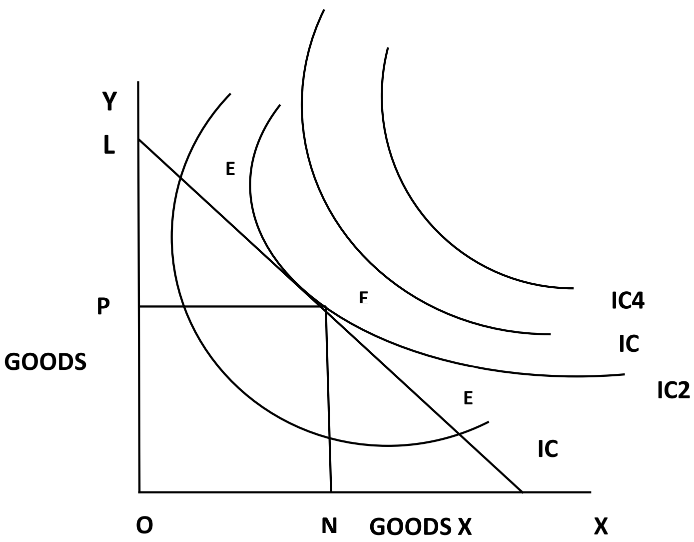

उपरोक्त रेखाचित्र में तीनो शर्तों का परीक्षण करने के लिए उदासीनता मानचित्र और बजट रेखा दोनों का सहारा लिया गया है । साथ ही प्रो. मार्शल द्वारा बतलाया गया अधिकतम संतुष्टि का नियम या सम - सीमांत उपयोगिता नियम MUx/Px = MUy/Py =MUz/Pz की भी अनुपालना को ध्यान में रखा गया है । इस रेखाचित्र में वस्तु x और वस्तु y के लिए AB एक बजट रेखा है, जो वस्तु x की अधिकतम 5 इकाइयाँ और वस्तु y की अधिकतम 10 इकाइयाँ बतला रही है। रेखाचित्र में स्पष्ट है कि 100 रु आय से उपभोक्ता P,Q,R,S बिन्दु पर वस्तु x की क्रमशः 4,3,2,1 इकाई को खरीद सकता है, वहीं दूसरी और वस्तु y की 2,4, 6,8 इकाइयाँ क्रय कर सकता है| चित्र में स्पष्ट है कि IC3, IC4 उपभोक्ता की बजट रेखा से बाहर हैं, जो अप्राप्य हैं| संतुलन की पहली शर्त है कि उदासीनता वक्र रेखा बजट रेखा को स्पर्श करनी चाहिए, जो बिन्दु E पर पूर्ण हो रही। यहाँ E साम्य बिन्दु हैं क्योंकि यह IC_1 की तुलना में ऊँचे उदासीनता वक्र IC_2 पर स्थित होने के करण अधिक संतुष्टि का प्रतीक है। दूसरी शर्त उदासीनता वक्र रेखा, बजट रेखा को जहां पर भी स्पर्श करती है, वहाँ दोनों का ढाल (Slope) समान होना चाहिए। इसका परीक्षण उदासीनता वक्र का ढाल $\frac{\Delta y}{\Delta x}$ से और कीमत रेखा का ढाल $\frac{Px}{Py}$ से देखा जायेगा, जो कि बिन्दु E पर समान है। E बिन्दु पर x तथा y वस्तुओं के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRSxy) तथा इन दोनों वस्तुओं का कीमत अनुपात (Price rato of x and y) समान है। इसलिए यही उपभोक्ता का साम्य बिन्दु होना चाहिए। तीसरी शर्त उपभोक्ता का साम्य वह बिन्दु होगा, जहां उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर हो। यह तभी संभव होता है जब सीमांत प्रतिस्थापन की दर गिरती हुई हो। यह शर्त भी बिन्दु E पर पूर्ण हो रही है।

स्व-मूल्यांकन प्रथम

1. उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण करते समय आप किन-किन बातों, तर्कों व तथ्यों को ध्यान में रखेंगे?
2. उपयोगिता विश्लेषण में आप दोनों दृष्टिकोणों में किसे वरीयता प्रदान करेंगे व क्यों?
3. उदासीनता वक्र विश्लेषण का उपभोक्ता व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है?
4. कीमत रेखा व उदासीनता वक्र रेखा में अंतर को जानने का प्रयास कीजिए।
5. एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा बजट रेखा के निर्माण को सविस्तार समझाइये।

4.7 उदासीनता वक्र विश्लेषण की उपयोगिता विश्लेषण पर श्रेष्ठता (Superiority of Indifference Curve Analysis Over Utility Analysis)

प्रो. मार्शल का उपयोगिता विश्लेषण गणनावाचक दृष्टिकोण पर आधारित है। कुछ विद्वानों, जैसे **रॉबर्टसन** (Robertson), **आर्मस्ट्रांग** (Armstrong), **फ्रैंक एच. नाईट** (Frank H.Knight) आदि अभी भी उपयोगिता विश्लेषण को श्रेष्ठ मानते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य विद्वान उदासीनता वक्र विश्लेषण को ही श्रेष्ठ मानते हैं । चूंकि दोनों प्रकार के विश्लेषणों में बहुत अंतर है, किन्तु इनमें **निम्नांकित समानताएँ भी हैं** :

1. दोनों विश्लेषण यह मानते हैं कि उपभोक्ता विवेकशील है और उसका व्यवहार हमेशा तार्किक होता है और वह अपनी संतुष्टि को अधिकतम करने का प्रयास करता है।

2. प्रो. मार्शल द्वारा बतलाया गया अधिकतम संतुष्टि का नियम या सम सीमांत उपयोगिता नियम अधिकतम संतुष्टि हेतु $\frac{MUx}{Px} = \frac{MUy}{Py} = \frac{MUz}{Pz}$ करने का प्रयास करता है, वहीं उदासीनता वक्र विश्लेषण MRSxy = $\frac{\text{वस्तु } x \text{ की कीमत}}{\text{वस्तु } y \text{ की कीमत}} \frac{Px}{Py}$ करके सीमान्त प्रतिस्थापन की दर को कीमत के अनुपात में करता है। MRSxy=Δx MU of x व Δy MU of y है| इस प्रकार $\frac{MU \text{ of } x}{MU \text{ of } y} = \frac{\Delta y}{\Delta x}$ है| इस प्रकार उदासीनता वक्र विश्लेषण की यह शर्त प्रो. मार्शल के नियम से ही ली गई है, जो **समानुपातिकता** (Proportionately) की शर्त है|

3. दोनों विश्लेषण सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित हैं। उदासीनता वक्र भी मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होना चाहिए अर्थात MRSxy घटती हुई होनी चाहिए|

4. **प्रो. तापस मजूमदार** ने अपनी पुस्तक "Measurement of Utility" में लिखा है कि"हिक्स - ऐलन की मूल अध्ययन विधि वही है, जो मार्शल की सीमांत उपयोगिता की परिकल्पना में है", यानी दोनों ही विधियां उपयोगिता को एक मनोवैज्ञानिक और महसूस करने वाला विचार मानकर चलती हैं।

उदासीनता वक्र विश्लेषण की उपयोगिता विश्लेषण पर श्रेष्ठता निम्न बिन्दुओं से समझी जा सकती है:

1 सर्वप्रथम **प्रो.मार्शल** ने उपयोगिता विश्लेषण में उपयोगिता को माप कर संख्यात्मक रुप से प्रकट किया है, लेकिन समान वस्तु के लिए अलग-अलग उपभोक्ताओं द्वारा अलग-अलग उपयोगिता होती है,इसलिए उपयोगिता की मापनीयता अवास्तविक लगती है| इसके स्थान पर उदासीनता वक्र विश्लेषण में उपयोगिता को मापने के स्थान पर रोमन संख्या में क्रम I, II, III, IV,व V देना अधिक उपयुक्त है, जो उपयोगिता विश्लेषण से अधिक वास्तविक और व्यावहारिक है|

2 **प्रो. मार्शल** मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानते हैं। कीमत में कितना भी परिवर्तन क्यों न हो जाए, लेकिन मुद्रा की सीमांत उपयोगिता में कोई परिवर्तन नहीं होता है, जो कि अवास्तविक और अव्यावहारिक है, किन्तु उदासीनता वक्र विश्लेषण ऐसा नहीं मानता है| दूसरी ओर इस कारण प्रो. मार्शल के इस नियम में यह अन्तर्विरोध है कि उपयोगिता का माप ही संभव नहीं है क्योंकि उपयोगिता को मापने का आधार ही मुद्रा है|

3 **प्रो. मार्शल** द्वारा प्रतिपादित उपयोगिता विश्लेषण में **कीमत प्रभाव की उपेक्षा** की गई है क्योंकि इसमें कीमतों को स्थिर मान लिया गया है; जबकि उदासीनता वक्र विश्लेषण में कीमत प्रभाव, आय प्रभाव और सीमांत प्रतिस्थापन प्रभाव का सटीक और तार्किक विश्लेषण किया गया है।

4 उपयोगिता विश्लेषण केवल एक ही वस्तु या एक ही आवश्यकता की संतुष्टि की बात करता है, जबकि उदासीनता वक्र विश्लेषण में दो या अधिक वस्तुओं की बात कही गई है तथा अन्य वस्तुओं के कीमत प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव की भी चर्चा की गई है|

5 **प्रो. मार्शल** ने माँग और कीमत में सम्बन्ध की व्याख्या बहुत ही साधारण सी की है, लेकिन उदासीनता वक्र विश्लेषण में कीमत और माँग की काफी व्यवहारिक और तार्किक व्याख्या करके गिफिन प्रभाव को प्रतिस्थापन और आय प्रभाव दोनों के आधार पर समझाया है और स्पष्ट किया कि निकृष्ट वस्तुओं की कीमत कम होने पर या उपभोक्ता की आय बढ़ने पर भी उनकी माँग पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है|

6 उदासीनता वक्र विश्लेषण बहुत ही कम और वास्तविक मान्यताओं पर आधारित है, इसलिए भी यह उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है|

निष्कर्ष रूप में उदासीनता वक्र विश्लेषण उपयोगिता विश्लेषण पर सुधार है। इसीलिए **प्रो.तापस मजूमदार** ने कहा है कि "हिक्स एवं ऐलन ने जिस कुशलता तथा सूक्ष्मता से कीमत परिवर्तन के आय व प्रतिस्थापन प्रभावों में भेद किया है,उसके

कारण गणनावाचक सिद्धान्त मानने योग्य नहीं रहता है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि उदासीनता वक्र विश्लेषण उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है और इसमें वैज्ञानिक व तर्क आधारित प्रासंगिक व्याख्या प्रस्तुत करके अर्थशास्त्र को अधिक समृद्ध किया है।

स्व-मूल्यांकन – द्वितीय

1. उदासीनता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता के साम्य का अध्ययन क्यों आवश्यक है?
2. उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण व उदासीनता वक्र विश्लेषण में कौनसा श्रेष्ठ है, तर्कों के आधार पर समझाइये।
3. उदासीनता वक्र विश्लेषण में सीमांत प्रतिस्थापन दर (MRS) क्यों महत्त्वपूर्ण है, उदाहरण सहित समझाइये।
4. उदासीनता वक्र विश्लेषण की प्रमुख विशेषताओं को रेखा चित्रों के द्वारा समझाइये।
5. उपभोक्ता साम्य की शर्तों को विस्तारपूर्वक समझाने का प्रयास कीजिए।

4.8 सारांश (Summary)

उदासीनता वक्र विश्लेषण उपयोगिता की माप के क्रमवाचक दृष्टिकोण पर आधारित है। उदासीनता अनुसूची का चित्रीयकरण ही उदासीनता वक्र कहलाता है। उदासीनता वक्र पर प्रदर्शित दो वस्तुओं के सभी संयोग समान संतुष्टि प्रदान करते हैं, इसलिए इसे समान संतुष्टि वक्र भी कहते हैं। उदासीनता मानचित्र में अनेक उदासीनता वक्र हो सकते हैं। उदासीनता वक्रों की अनेक विशेषताएँ हैं, जिसमें से प्रमुख हैं : ये दायीं ओर नीचे की तरफ झुकते हुए होते हैं, यह मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते हैं, ये एक दूसरे को न तो छूते हैं और न ही काटते हैं, ये किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं करते और न ही ये परस्पर समानान्तर होते हैं, एक ऊँचा दायीं ओर स्थित उदासीनता वक्र अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि का प्रतीक है तथा मूलतः ये अण्डाकार होते हैं। उदासीनता वक्र विश्लेषण विधि के अनुसार उपभोक्ता उस समय साम्य में होता है, जब अग्रांकित तीनों शर्ते एक साथ पूरी होती हों : प्रथम, साम्य बिन्दु पर कीमत रेखा उदासीनता वक्र की स्पर्श रेखा हो; द्वितीय, साम्य बिन्दु पर कीमत रेखा तथा उदासीनता वक्र का ढाल समान हो; तथा तृतीय, साम्य बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर हो। अधिकांश अर्थवेत्ता उदासीनता वक्र विश्लेषण को उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि यह अधिक तर्कसंगत और यथार्थपरक है।

4.9 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थियों को उपभोक्ता के व्यवहार, विभिन्न दृष्टिकोण, उनका अर्थ, सीमांत प्रतिस्थापन की दर, उदासीनता वक्रों की विभिन्न विशेषताएं, उपभोक्ता साम्य, उपभोक्ता के निर्णय में इनका योगदान आदि का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप को समझने में सहायता मिलेगी।

उपभोक्ता व्यवहार का अन्य सामाजिक विज्ञानों में विद्यमान पारस्परिक सम्बन्ध एवं अंतर्निर्भरता को भी समझ सकेंगे। उदासीनता वक्र विश्लेषण एवं उपभोक्ता व्यवहार की विषय सामग्री क्षेत्र की जानकारी के साथ व्यावहारिक जीवन में इनका महत्त्व भी समझ सकेंगे।

4.10 शब्दावली (Glossary)

- **उदासीनता वक्र (Indifference curve) :** उदासीनता वक्र दो वस्तुओं के ऐसे सभी संयोगों को प्रदर्शित करता है, जिसके सभी बिन्दुओं पर एक उपभोक्ता को समान संतुष्टि मिलती है।

- **बजट रेखा (Budget Line) :** इसे कीमत रेखा भी कहते हैं| यह वह रेखा होती है जो दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाती है, जिन्हें एक उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की दी हुई कीमतों पर अपनी निश्चित आय को व्यय करके प्राप्त कर सकता है|
- **उपभोक्ता का संतुलन (Consumer Equilibrium) :** यह एक ऐसा संतुष्टि बिन्दु हैं जहाँ से उपभोक्ता हटना नही चाहता है। इस बिंदु पर उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है|
- **सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (Marginal Rate of Substitution) :** सीमान्त प्रतिस्थापन की दर वह दर होती है, जो उपभोक्ता किसी दूसरी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए पहली वस्तु की जिस मात्रा का त्याग करने को तत्पर होता है।

4.11 स्वपरख प्रश्न (Self-Test Questions)

अति लघु उतरात्मक प्रश्न (very short answer questions)

1. क्रमवाचक दृष्टिकोण क्या है? अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. उदासीनता वक्र से आपका क्या आशय है?
3. उपभोक्ता के साम्य का अर्थ समझाइए।
4. कीमत रेखा क्या है? उदाहरण सहित समझाइए।
5. सीमान्त प्रतिस्थापन की दर क्या है?

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. उदासीनता वक्र किसे कहते हैं?इसकी प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
2. उदासीनता वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता के साम्य का विश्लेषण कीजिये।
3. उदासीनता वक्र विश्लेषण सीमान्त उपयोगिता से किस प्रकार श्रेष्ठ है? समझाइए|

4.12 संदर्भ व ग्रन्थ सूची (References & Bibliography)

- Marshall, A. : Principles of Economics, Macmillan, 1920.
- Machlup, F. : 'Professor Hicks' Revision of Demand Theory', American Economic Review (I957) pp.ll9-35.
- Samuelson, P. : Foundations of Economic Analysis, Harvard University Press, 1947
- Samuelson, P. : Consumption Theory in Terms of Revealed Preference, Economica (1948) pp. 243-53.
- Baumol, W. J. : The Neumann-Morgenstern Utility Index: An Ordinalist View, Journal of Political Economy (1951) pp. 61-6.

4.13 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Alfred W. Stonier and Douglas C. Hague : A Text Book of Economic Theory, Longman Group Limited, London.
- सिंह एवं त्यागी : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 2009.
- Agarwal & Deo : Business Economics, Ramesh Book Depo, Jaipur, 2018.

4.14 वेब संसाधन/लिंक (web resources/ links)

- http://economic-research.pl/Journals/index.php/oc/article/view/266
- http://economic-research.pl/Journals/index.php/oc/article/view/1784
- http://economic-research.pl/Journals/index.php/oc/article/view/266
- https://www.britannica.com/topic/indifference-curve
- https://www.vedantu.com/commerce/indifference-curve

इकाई - 5

माँग विश्लेषण एवं माँग का नियम
(Demand Analysis and Law of Demand)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 माँग का अर्थ एवं परिभाषा

5.3 माँग के प्रकार

5.4 माँग सूची / तालिका

5.5 माँग वक्र

5.6 माँग का नियम

5.7 माँग के नियम के क्रियाशील होने के कारण

5.8 माँग के नियम के अपवाद

5.9 माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन बनाम माँग में परिवर्तन

5.10 माँग के निर्धारक तत्त्व/ माँग फलन

5.11 सारांश

5.12 अधिगम परिणाम

5.13 शब्दावली

5.14 स्व-परख प्रश्न

5.15 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची

5.16 अन्य पठन सामग्री

5.17 वेब संसाधन/ लिंक

5.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- माँग का अर्थ, माँग के प्रकार एवं माँग सूची के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- माँग वक्र और माँग के नियम के बारे में अपनी अवधारणा स्पष्ट कर सकेंगे;
- माँग के नियम के लागू होने के कारण तथा इसके अपवादों से भी अवगत हो सकेंगे;
- माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन और माँग में परिवर्तन के अन्तर को समझ सकेंगे; तथा

- माँग को प्रभावित करने वाले घटकों के बारे में अपनी समझ स्पष्ट कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

वास्तव में देखा जाए, तो सम्पूर्ण अर्थशास्त्र का आधार माँग और पूर्ति ही हैं। माँग की जानकारी के अभाव में न तो उपभोग एवं बाजार का अध्ययन किया जा सकता है और न ही किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण किया जा सकता है। आधुनिक जटिल अर्थतंत्र में सम्पूर्ण उत्पादन व्यवस्था का आधार भी माँग और इसका पूर्वानुमान है। इस इकाई में हम माँग और माँग के नियम के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

5.2 माँग का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Demand)

सामान्य बोलचाल की भाषा में इच्छा, आवश्यकता और माँग को समान अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है; जबकि अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से इनमें काफी अन्तर है। किसी वस्तु की माँग में निम्नांकित पाँच तत्त्व होने आवश्यक हैं-

(i) वस्तु की इच्छा होना; (ii) इच्छापूर्ति के पर्याप्त साधन होना; (iii) साधनों को वस्तु पर खर्च करने की तत्परता होना; (iv) निश्चित कीमत; तथा (v) निश्चित समयावधि।

किसी वस्तु की आवश्यकता में केवल प्रथम तीन तत्त्व ही विद्यमान होते हैं।

बेनहम के अनुसार, ''किसी दिए हुए मूल्य पर किसी वस्तु की माँग उसकी वह मात्रा है जो उस मूल्य पर किसी समय विशेष पर क्रय की जायेगी।'' **मेयर्स** ने माँग को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''किसी वस्तु की माँग उन मात्राओं की सारिणी होती है जिन्हें क्रेता समय विशेष पर सभी संभव मूल्यों पर खरीदने को तत्पर होंगे।''

उपर्युक्त परिभाषाओं और विश्लेषण के अनुसार माँग की निम्नांकित विशेषताएँ होती हैं -

1. माँग एक **प्रभावपूर्ण इच्छा** (effective desire) है अर्थात् माँग के लिए आवश्यकता का होना अनिवार्य है, जिसमें (i) किसी वस्तु की इच्छा होना, (ii) वस्तु को क्रय करने के साधन होना, तथा (iii) क्रय शक्ति को वस्तु पर खर्च करने की तत्परता होना आवश्यक है।
2. किसी वस्तु की माँग का **एक निश्चित (दी हुई) कीमत से संबंध** होता है। इसलिए किसी वस्तु की माँग सदैव उसकी निश्चित कीमत पर ही व्यक्त की जाती है।
3. किसी वस्तु की माँग का **एक निश्चित समयावधि से सम्बन्ध** होता है - जैसे प्रतिदिन, प्रति सप्ताह, प्रति वर्ष आदि।

5.3 माँग के प्रकार (Kinds of Demand)

यों तो किसी वस्तु की माँग अनेक तत्त्वों से प्रभावित होती है, किन्तु यह मुख्यतः निम्नलिखित तीन तत्त्वों से प्रभावित होती है - 1. वस्तु की कीमत, 2. उपभोक्ता की आय, तथा 3. सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें। इन्हीं तीन तत्त्वों को आधार मानकर **प्रो. बोबर** (Bober) ने माँग के निम्नलिखित तीन प्रकार बताये हैं -

1. **मूल्य माँग (Price demand)-** किसी वस्तु की मूल्य माँग, अन्य बातों के समान रहने पर, उस वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं को कहते हैं, जो एक निश्चित समयावधि में विभिन्न परिकल्पित मूल्यों पर उपभोक्ता क्रय करने को तत्पर होंगे। यहाँ विचाराधीन वस्तु की कीमत को छोड़कर माँग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्वों को स्थिर मान लिया जाता है। सार रूप में, मूल्य माँग के अन्तर्गत वस्तु की स्वयं की कीमत परिवर्तन का उसकी माँगी जाने वाली मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को ज्ञात किया जाता है, जिसे **कीमत प्रभाव** (Price effect) कहते हैं। वस्तु की कीमत और उसकी माँगी जाने वाली मात्रा के बीच पाये जाने वाले कार्यात्मक सम्बन्ध को निम्न समीकरण के रूप में व्यक्त किया जाता है :

   $DX = f(Px)$

यहाँ, Dx वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा, f प्रतिफलन (निर्भर करना) तथा Px वस्तु की कीमत है। इस समीकरण का अर्थ है कि अन्य बातें समान रहने पर, X वस्तु की माँग उसकी कीमत पर निर्भर करती है। वस्तु की **कीमत और माँग के बीच विपरीत संबंध** पाया जाता है अर्थात् वस्तु की कीमत बढ़ने पर माँग घटती है और कीमत घटने पर माँग बढ़ती है, जो तालिका – 5.1 तथा रेखाचित्र – 5.1 से सुस्पष्ट है।

तालिका संख्या – 5.1

मूल्य माँग तालिका DX = f (Px)

वस्तु की कीमत (Px) (रु. में)	X वस्तु की माँग (Dx) (इकाइयों में)	वस्तु की कीमत और माँग के बीच संबंध
1 2 3	100 80 40	वस्तु की कीमत और माँग के बीच विपरीत संबंध है। इसलिए कीमत बढ़ने पर माँग घट रही है।

रेखाचित्र संख्या – 5.1

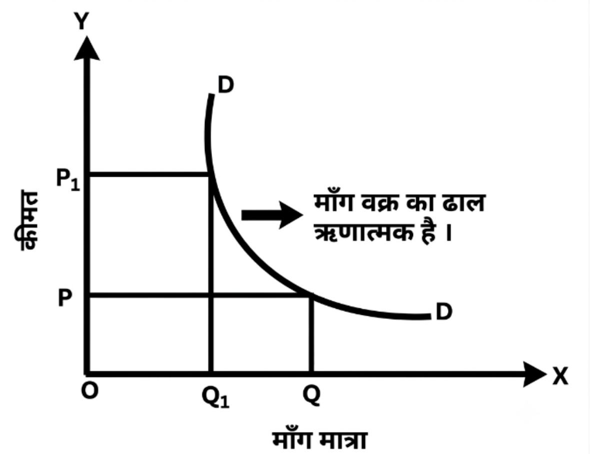

चित्रानुसार प्रारम्भिक कीमत OP तथा माँग OQ है तथा जब कीमत बढ़कर OP1 हो जाती है, तो माँग घटकर OQ1 हो जाती है।

2 **आय माँग (Income demand)-** किसी वस्तु की आय माँग, अन्य बातों के समान रहने पर, उसकी उन विभिन्न मात्राओं को व्यक्त करती है जो एक निश्चित समयावधि में एक उपभोक्ता विभिन्न आय स्तरों पर क्रय करने को तत्पर है। आय माँग का विश्लेषण करते समय उपभोक्ता की आय को छोड़कर वस्तु की माँग को प्रभावित करने वाले अन्य सभी तत्त्वों को अपरिवर्तित मान लिया जाता है। इस प्रकार आय माँग के द्वारा उपभोक्ता की आय में होने वाले परिवर्तनों का वस्तु विशेष की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव को ज्ञात किया जाता है, जिसे **आय प्रभाव** (Income effect) कहते हैं। उपभोक्ता की आय और वस्तु विशेष की माँग के बीच कार्यात्मक संबंध पाया जाता है, जिसे निम्नांकित समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है -

DX = f (Y)

यहाँ, DX वस्तु की माँग, f प्रतिफलन तथा Y आय है। समीकरण यह स्पष्ट करता है कि अन्य बातें समान रहने पर, Xवस्तु की माँग उपभोक्ता की आय का प्रतिफलन है अर्थात् उस पर निर्भर करती है। प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री

ऐंजिल ने अपने उपभोग सिद्धान्त को समझाने के लिए आय माँग अवधारणा का ही प्रयोग किया था, इसलिए आय माँग वक्र को **ऐंजिल वक्र (**Engle curve) भी कहते हैं। विभिन्न वस्तुओं की आय माँग उनकी प्रकृति की भिन्नता के कारण अलग-अलग होती है। हम आय माँग की दृष्टि से वस्तुओं को निम्नांकित दो श्रेणियों में बाँटकर अध्ययन करते हैं -

(i) **श्रेष्ठ वस्तुएँ (Superior goods)-** इन्हें सामान्य वस्तुएँ भी कहते हैं। ये वे वस्तुएँ होती हैं जिनकी माँग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर बढ़ती है और आय घटने पर घटती है। ऐसी वस्तुओं के संदर्भ में उपभोक्ता की आय और वस्तु की माँग के बीच प्रत्यक्ष संबंध पाये जाने के कारण **आय प्रभाव धनात्मक** होता है और इसलिए आय माँग वक्र बायें से दायें ऊपर की ओर उठता हुआ होता है। श्रेष्ठ वस्तुओं की आय माँग को तालिका – 5.2 तथा रेखाचित्र – 5.2 से भली भाँति समझा जा सकता है।

तालिका संख्या – 5.2

श्रेष्ठ वस्तुओं की आय माँग तालिका

उपभोता की आय (Y) (रु. में)	X वस्तु की माँग (Dx) (इकाइयों में)	उपभोता की आय और माँग के बीच संबंध
1000 2000 3000	10 20 30	उपभोता की आय और वस्तु की माँग के बीच धनात्मक संबंध है, इसलिए आय बढ़ने के साथ-साथ वस्तु की माँग बढ़ रही है।

रेखाचित्र संख्या- 5.2

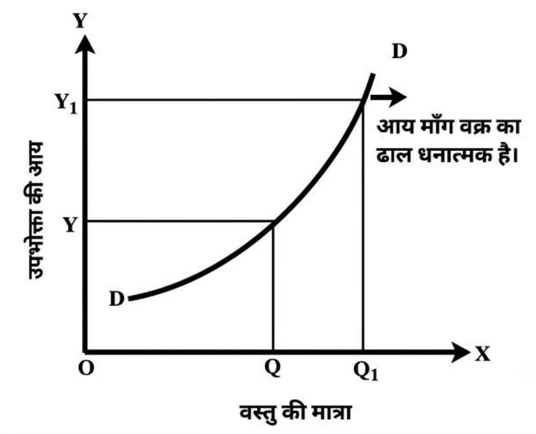

रेखाचित्र 2 में DD उपभोक्ता का आय माँग वक्र बायें से दाहिनी ओर ऊपर उठता हुआ है, जो यह बताता है कि उपभोक्ता की आय OY से बढ़कर OY1 हो जाती है, तो X वस्तु की माँग भी OQ से बढ़कर OQ1 हो जाती है।

(ii) **निकृष्ट वस्तुएँ (Inferior goods)-** इन्हें **हीन या घटिया** वस्तुएँ भी कहा जाता है। ये वे वस्तुएँ होती हैं जिनकी माँग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर कम हो जाती है और आय घट जाने पर बढ़ जाती है। इन वस्तुओं के संबंध में उपभोक्ता की **आय और माँग के बीच ऋणात्मक संबंध** पाया जाता है, इसलिए **आय प्रभाव ऋणात्मक**

होता है। मोटा कपड़ा, मोटा अनाज इत्यादि ऐसी वस्तुएँ के उदाहरण हैं। निष्कृष्ट वस्तुओं की आय माँग को तालिका – 5.3 तथा रेखाचित्र – 5.3 के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

तालिका संख्या– 5.3

निष्कृष्ट वस्तुओं की आय माँग तालिका

उपभोता की आय (Y) (रु. में)	X वस्तु की माँग (Dx) (किलोग्राम में)	उपभोक्ता की आय और माँग के बीच संबंध
5000 8000 10000	10 6 2	उपभोक्ता की आय और वस्तु की माँग के बीच ऋणात्मक संबंध है, इसलिए आय बढ़ने पर माँग घट रही है।

रेखाचित्र संख्या- 5.3

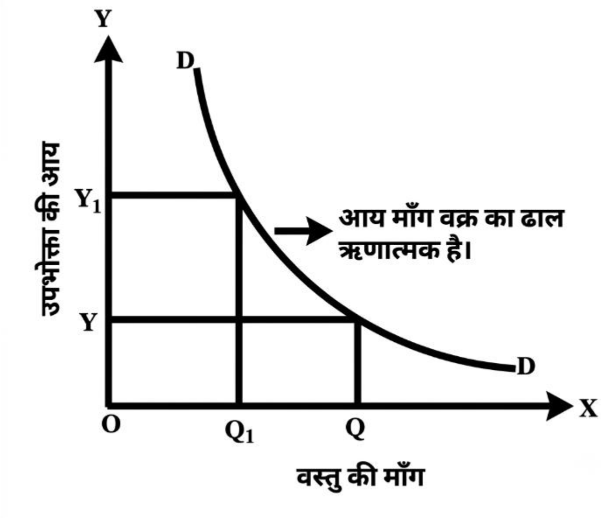

चित्रानुसार उपभोक्ता की आय OY से बढ़कर OY1 हो जाने पर वस्तु की माँग OQ से घटकर OQ1 हो जाती है।

3 **तिरछी या आड़ी माँग (Cross demand) -** किसी वस्तु की माँग स्वयं की कीमत तथा उपभोक्ता की आय के अलावा उससे सम्बन्धित वस्तुओं की कीमत से भी प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, चाय की माँग कॉफी तथा चीनी की कीमतों से भी प्रभावित होती है। अन्य बातें समान रहने पर, किसी वस्तु की तिरछी माँग उन मात्राओं को व्यक्त करती है, जिन्हें उपभोक्ता एक निश्चित समयावधि में उससे सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों पर क्रय करने को तैयार है। तिरछी माँग का विश्लेषण करते समय सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों को छोड़कर वस्तु विशेष की माँग को प्रभावित करने वाले अन्य सभी तत्त्वों को अपरिवर्तित मान लिया जाता है। अतः तिरछी माँग एक वस्तु की माँगी जाने वाली मात्राओं (D_X) तथा सम्बन्धित दूसरी वस्तु की कीमतों (Py) में होने वाले परिवर्तनों के बीच पाये जाने सम्बन्ध को व्यक्त करती है। इस कार्यात्मक सम्बन्ध को **सूत्र रूप में** निम्नांकित प्रकार से लिखा जाता है : -

Dx = f (PR) or Dx = f (Py)

यहाँ Dx, x वस्तु की माँग, f प्रतिफलन, PR सम्बन्धित वस्तु की कीमत, Py सम्बन्धित वस्तु Y की कीमत के अर्थ में है।

किसी **वस्तु की तिरछी माँग उससे सम्बन्धित वस्तु की प्रकृति** पर निर्भर करती है। इस आधार पर तिरछी माँग अग्रांकित दो प्रकार की हो सकती है -

(i) **स्थानापन्न वस्तुओं की तिरछी माँग (Cross demand for substitute goods) -** एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए जिन वस्तुओं को एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है, उन्हें स्थानापन्न अथवा प्रतियोगी वस्तुएँ कहा जाता है। उदाहरण के लिए, चाय के स्थान पर कॉफी, पेप्सी की जगह कोका कोला। वस्तु विशेष की कीमत तथा उसकी सम्बन्धित स्थानापन्न वस्तुओं की माँग के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाये जाने के कारण **स्थानापन्न प्रभाव सदैव धनात्मक** होता है। उदाहरण के लिए, कॉफी की कीमत बढ़ जाने पर चाय की माँग भी बढ़ जाती है, यदि अन्य बातें समान रहें। स्थानापन्न प्रभाव को तालिका – 5.4 तथा रेखाचित्र 5.4 से स्पष्टतः समझा जा सकता है।

तालिका संख्या – 5.4

स्थानापन्न वस्तुओं की तिरछी माँग Dx = f(Py)

कॉफी की कीमत (Py) (प्रति कप रु. में)	चाय की माँग (Dx) (कपों में)	कॉफी की कीमत और चाय की माँग के बीच सम्बन्ध
10 15 20	10,000 14,000 20,000	कॉफी की कीमत तथा चाय की माँग के बीच धनात्मक सम्बन्ध है। इसलिए Py में वृद्धि होने पर Dx में भी वृद्धि हो रही है।

रेखाचित्र संख्या – 5.4

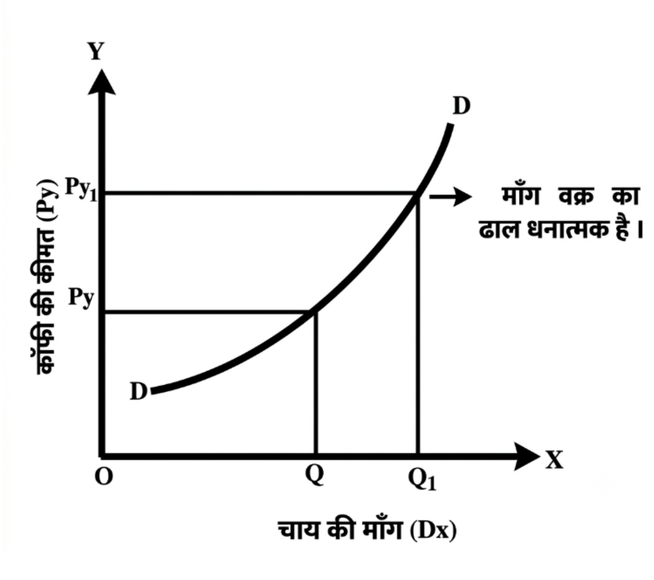

रेखाचित्र 5.4 यह बताता है कि कॉफी की कीमत OPy से बढ़कर OPy1 हो जाने पर चाय की माँग भी OQ से बढ़कर OQ1 हो जाती है, जिसकी वजह से माँग वक्र दायीं ओर ऊपर उठता हुआ है।

(ii) पूरक वस्तुओं की तिरछी माँग (Cross demand for complementary goods)- जब किसी एक आवश्यकता की पूर्ति हेतु एक साथ एक से अधिक वस्तुओं की आवश्यकता होती है, तो इन सब वस्तुओं को एक दूसरे की पूरक वस्तुएँ कहा जाता है। वास्तव में, ये सहयोगी वस्तुएँ हैं जिनका प्रयोग एक दूसरे के बिना संभव नहीं है, जैसे पैन-स्याही, पतंग-डोर इत्यादि। पूरक वस्तुओं में से किसी एक की कीमत में परिवर्तन होने पर उसका अन्य पूरक वस्तुओं की माँग पर प्रभाव पड़ता है, जिसे **पूरक प्रभाव** कहते हैं। **पूरक प्रभाव प्रायः ऋणात्मक** होता है, जिसे तालिका -5.5 तथा रेखाचित्र – 5.5 से समझा जा सकता है।

तालिका संख्या – 5.5

पूरक वस्तुओं की तिरछी माँग

कार की कीमत (Py) (लाख रु. में)	पेट्रोल की माँग (Dx) (हज़ार लीटर में)	कार की कीमत और पेट्रोल की माँग के बीच सम्बन्ध
10 15 20	10,000 7,000 5,000	कार की कीमत और पेट्रोल की माँग के बीच विपरीत संबंध है, इसलिए Py में वृद्धि होने पर Dx में कमी हो रही है।

रेखाचित्र संख्या – 5.5

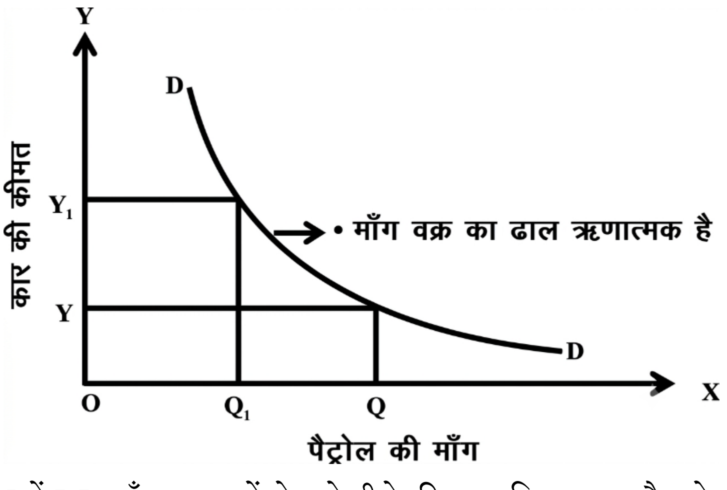

रेखाचित्र – 5.5 में DD माँग वक्र बायें से दाये नीचे की तरफ गिरता हुआ है, जो कार की कीमत और पेट्रोल की माँग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध का प्रतीक है। कार की कीमत OP से बढ़कर OP1 हो जाने पर पेट्रोल की माँग OQ से घटकर OQ1 रह जाती है।

4. माँग के अन्य प्रकार (Other kinds of demand)

(i) व्युत्पन्न माँग (Derived demand) - इसे **अप्रत्यक्ष माँग** भी कहते हैं। जब किसी वस्तु की माँग स्वयं के उपभोग के लिए न की जाकर किसी अन्य वस्तु के उत्पादन के लिए की जाती है, तो ऐसी माँग को व्युत्पन्न माँग कहते हैं। **उत्पादक वस्तुओं की माँग,** जैसे औद्योगिक कच्चा माल, मशीनें, उपकरण इत्यादि तथा **उत्पादन के साधनों की माँग**, जैसे भूमि, श्रम पूँजी इत्यादि अप्रत्यक्ष माँग के सुन्दर उदाहरण हैं क्योंकि इनकी माँग अन्य

उपभोगजन्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए की जाती है। उदाहरणार्थ, कपास की माँग सूती वस्त्र के निर्माण तथा भूमि की माँग अन्न उत्पादन के लिए की जाती है, इसलिए व्युत्पन्न माँग है। किसी उत्पादन के साधन की माँग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग के अलावा साधनों की पारस्परिक प्रतिस्थानापन्नता अथवा पूरकता पर भी निर्भर करती है। उदाहरणार्थ, रासायनिक खाद के कारखाने में गैस की माँग न केवल खाद की माँग पर निर्भर करती है, वरन् खाद उत्पादन के लिए गैस और कोयले के बीच स्थानापन्नता पर भी निर्भर करती है।

(ii) **संयुक्त माँग (Joint demand) -** वस्तुतः **पूरक वस्तुओं की माँग को ही संयुक्त माँग** कहते हैं, जैसे क्रिकेट खेलने के लिए गेंद और बल्ले की माँग, पतंग उड़ाने के लिए पतंग एवं डोर की माँग। जब किसी व्यक्ति द्वारा अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु दो या अधिक वस्तुओं की माँग एक साथ की जाती है, तो इसे संयुक्त माँग कहते है।

(iii) **सामूहिक या मिश्रित माँग (Collective or composite demand) -** किसी वस्तु की विभिन्न प्रयोगों में कुल माँग को सामूहिक माँग कहते हैं। किसी वस्तु की माँग का विभिन्न प्रतियोगी प्रयोगों में योग ही **यौगिक माँग** (Aggregate demand) कहलाता है। उदाहरण के लिए, बिजली-पानी के बिल में दिखाई गयी कुल उपभोग इकाइयाँ मिश्रित माँग का सुन्दर उदाहरण है।

5.4 माँग सूची/तालिका (Demand Schedule)

किसी वस्तु की एक निश्चित समयावधि में विभिन्न कीमतों पर माँगी जाने वाली मात्राओं को सूचीबद्ध कर प्रस्तुत करना ही माँग सूची अथवा माँग सारिणी कहलाती है। माँग सूची किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँगी जाने वाली मात्राओं के बीच पाये जाने वाले **फलनीय सम्बन्ध** (Functional relationship) को व्यक्त करने वाली तालिका है। यह दो प्रकार की होती है -

(i) **व्यक्तिगत माँग तालिका (Individual demand) schedule)-** व्यक्तिगत माँग तालिका एक व्यक्ति की वस्तु विशेष की संभावित कीमतों पर क्रय की जाने वाली संभावित मात्राओं का सांख्यिकीय ब्यौरा है। इसका निर्माण भूतकाल के अनुभवों और प्रतिक्रियाओं के आधार पर किया जाता है।

(ii) **बाजार माँग तालिका (Market demand schedule) -** यह किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं को प्रदर्शित करती है, जो किसी बाजार विशेष के समस्त क्रेता उन्हें विभिन्न परिकल्पित मूल्यों पर क्रय करने को तत्पर होंगे। इसके निर्माण की **दो विधियाँ** हैं – (अ) बाजार विशेष में एक निश्चित समयावधि में वस्तु के सभी उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत माँग तालिकाओं का योग करके; तथा (ब) किसी वस्तु के बाजार में किसी औसत/ प्रतिनिधि उपभोक्ता की माँग तालिका को उपभोक्ताओं की कुल संख्या से गुणा करके। व्यक्तिगत और बाजार माँग तालिका को तालिका संख्या - 5.6 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

तालिका संख्या – 5.6

व्यक्तिगत एवं बाजार माँग तालिका

पेन की कीमत (रू. में)	व्यक्तिगत माँग तालिका			बाजार माँग तालिका			
	माँगी गई मात्रा (संख्या में)			प्रथम विधि		द्वितीय विधि	
	अ की माँग	ब की माँग	स की माँग	बाज़ार माँग (अ, ब, स की माँग का योग)	औसत उपभोक्ता की माँग	उपभोक्ताओं की कुल संख्या	बाज़ार माँग
10	5	6	4	15	5	1000	5000
12	4	5	3	12	4	1000	4000

15	3	2	1	6	2	1000	2000

किसी वस्तु के बाजार में उपभोक्ताओं की संख्या अधिक होने पर बाजार माँग तालिका का निर्माण प्रायः दूसरी विधि के अनुसार किया जाता है, क्योंकि यह विधि कम व्ययसाध्य और श्रमसाध्य है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि माँग सूची का निर्माण अन्य बातों के समान रहने की मान्यता पर आधारित है।

माँग तालिका का महत्त्व: व्यावहारिक जीवन में माँग तालिका विभिन्न आर्थिक एवं प्रबन्धकीय निर्णय लेने में मददगार सिद्ध होती है। माँग तालिका के आधार पर :

1. उत्पादक अपनी वस्तुओं की किस्म, मात्रा एवं मूल्य का निर्धारण करता है;
2. एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है;
3. सरकार कर लगाते समय कर के कारण माँग में होने वाले परिवर्तनों की सीमाओं का आंकलन करती है; तथा
4. सरकार बजट का निर्माण करती है।

5.5 माँग वक्र (Demand Curve)

प्रो. सेम्युलसन के अनुसार, '' माँग सूची का चित्रीयकरण माँग वक्र कहलाता है।'' माँग तालिका पर आधारित होने के कारण माँग वक्र भी दो प्रकार का हो सकता है। (अ) **व्यक्तिगत माँग वक्र**, तथा (ब) **बाजार माँग वक्र**। माँग वक्र द्वारा किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँग के संबंध को रेखाचित्र की सहायता से समझाया जाता है। माँग वक्र वस्तु की कीमत तथा माँग मात्रा के बीच पाये जाने वाले विपरीत सम्बन्ध को दर्शाता है और इस कारण इसका ढाल ऋणात्मक (बायें से दायीं ओर गिरता हुआ) होता है। माँग वक्र के अनेक रूप हो सकते हैं। ये सीधी रेखा, उन्नतोदर (Convex), नतोदर (Concave) तथा इनका आंशिक भाग एक रूप में तथा आंशिक भाग किसी दूसरे रूप में हो सकता है, किन्तु **अधिकांश माँग वक्रों का ढाल सामान्यतः ऊपर बायें से नीचे दायीं ओर झुकता हुआ होता है**, जैसाकि रेखाचित्र – 5.6 में दर्शाया गया हैं।

रेखाचित्र संख्या – 5.6

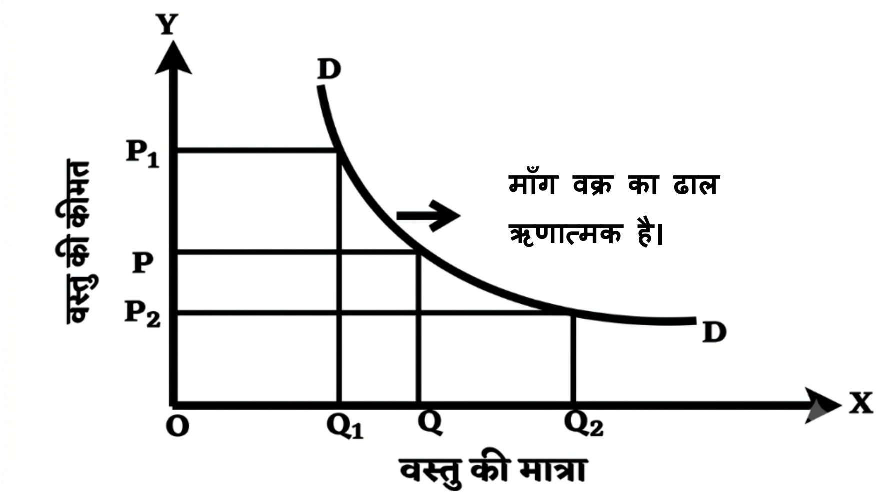

5.6 माँग का नियम (Law of Demand)

अन्य बातों के समान रहने पर, **किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँगी जाने वाली मात्रा के बीच पाये जाने वाले विपरीत सम्बन्ध को व्यक्त करने वाला नियम** ही माँग का नियम कहलाता है। इस नियम के अनुसार, किसी वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा उसकी कीमत की विपरीत दिशा में परिवर्तित होती है अर्थात् वस्तु की कीमत बढ़ने पर उसकी कम मात्रा तथा इसके विपरीत, कीमत घटने पर अधिक मात्रा माँगी जाती है। **सेम्युलसन** के अनुसार, ''जब किसी

वस्तु का मूल्य बढ़ा दिया जाता है, तो अन्य बातों के समान रहने पर, उसकी माँग कम होगी अर्थात् लोग कम मूल्य पर अधिक खरीदते हैं तथा अधिक मूल्य पर कम खरीदते हैं।"

माँग के नियम की मान्यताएँ (Assumptions)

माँग का नियम तभी क्रियाशील होगा, जब अन्य बातें समान रहें या माँग की दशाएँ अपरिवर्तित रहें। ये वाक्यांश माँग के नियम की मान्यताओं/शर्तों की ओर संकेत करता है, जो अग्रांकित हैं :

1. उपभोक्ता की मौद्रिक आय में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
2. विचाराधीन वस्तु की सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
3. उपभोक्ता के स्वभाव, रूचि, पसन्दगी अधिमान, फैशन एवं आदत में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
4. वस्तु के मूल्य में निकट भविष्य में परिवर्तन की संभावना या आशंका नहीं होनी चाहिए।
5. वस्तु प्रतिष्ठासूचक अथवा दिखावटी नहीं होनी चाहिए।
6. उपभोक्ता को वस्तु की नई स्थानापन्न वस्तु का पता नहीं लगना चाहिए।

5.7 माँग के नियम के क्रियाशील होने के कारण (Reasons for Operation of Law of Demand

अधिकांश माँग वक्रों का ढ़ाल ऋणात्मक होता है अर्थात् बायें से दायीं ओर झुकते हुए होते हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों होता है? इस प्रश्न का सरल उत्तर यह है कि वस्तु की कीमत और माँग-मात्रा के बीच ऋणात्मक (विपरीत) सम्बन्ध पाया जाता है, किन्तु यहाँ यह जिज्ञासा भी उठना स्वाभाविक है कि वस्तु की कीमत कम होने से लोग क्यों अधिक खरीदते हैं और कीमत अधिक होने पर कम क्यों खरीदते हैं? दूसरे शब्दों, वस्तु की कीमत और माँग मात्रा के बीच विलोम सम्बन्ध क्यों पाया जाता है? माँग के नियम की व्याख्या करने पर हम समझ सकते हैं कि निम्नांकित कारणों की वजह से माँग का नियम क्रियाशील होता है :

(i) सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का प्रभाव (Law of diminishing marginal utility effect) - माँग का नियम सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है, जो यह स्पष्ट करता है कि जैसे-जैसे उपभोक्ता किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयाँ क्रय करता है, वैसे-वैसे वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता उत्तरोत्तर गिरती चली जाती है। परिणामस्वरूप वस्तु की कम उपयोगिता वाली अतिरिक्त इकाइयों को उपभोक्ता तभी क्रय करेगा जब उनकी कीमत कम हो। इसलिए कम कीमत पर वस्तु को क्रय करते समय उपभोक्ता किसी भी हालत में उससे प्राप्त सीमान्त उपयोगिता से अधिक कीमत नहीं देगा अर्थात् वह अधिकतम कीमत सीमान्त उपयोगिता के बराबर (MU=P) दे सकता है। इसी प्रकार ऊँची कीमत पर उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा खरीदता है क्योंकि कम इकाइयों पर ही उसकी सीमान्त उपयोगिता कीमत के बराबर हो जाती है।

किसी वस्तु का माँग वक्र दायीं ओर नीचे इसलिए गिरता हुआ होता है कि सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के कारण वस्तु का सीमान्त उपयोगिता वक्र भी दायीं ओर नीचे की तरफ गिरता हुआ होता है। **सूत्रबद्ध रूप में :**

वस्तु की अधिक इकाइयों का क्रय →सीमान्त उपयोगिता में कमी →कम कीमत अर्थात् कम कीमत पर अधिक माँग।

वस्तु की कम इकाइयों का क्रय →सीमान्त उपयोगिता में वृद्धि →अधिक कीमत अर्थात् अधिक कीमत पर कम माँग।

(ii) प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution effect)- माँग के नियम के क्रियाशील होने का एक प्रमुख कारण प्रतिस्थापन प्रभाव है। जब किसी वस्तु की कीमत कम हो जाती है और उसकी समस्त स्थानापन्न वस्तुओं की

कीमतें यथावत रहती है, तो विचाराधीन वस्तु उसकी स्थानापन्न वस्तुओं की तुलना में सस्ती हो जाती है। परिणामस्वरूप उपभोक्ता उस सस्ती वस्तु को उसकी मँहगी स्थानापन्न वस्तुओं के स्थान पर प्रतिस्थापन (प्रयोग) करने लगता है, जिससे उसकी माँग बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, यदि चाय पहले की तुलना में सस्ती हो जाती है और इसकी स्थानापन्न वस्तु कॉफी के दाम पूर्ववत् रहते हैं, तो ऐसी स्थिति में उपभोक्ता एक सीमा तक मँहगी कॉफी के स्थान पर सस्ती चाय की अधिक माँग करेगा। यही प्रतिस्थापन प्रभाव है और इसी कारण अधिकांश माँग वक्रों का ढाल दायीं ओर नीचे की तरफ गिरता हुआ होता है।

(iii) **आय प्रभाव (Income effect) -** वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने का अर्थ है उपभोक्ता की **वास्तविक आय** (Real Income) में परिवर्तन होना। किसी वस्तु की कीमत में कमी होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है, जिसका अर्थ है कि उपभोक्ता अब उस वस्तु की पूर्ववत् मात्रा पहले से कम मुद्रा खर्च करके क्रय कर सकता है अथवा पूर्ववत् मौद्रिक खर्च से वस्तु की पहले से अधिक मात्रा खरीद सकता है। इसके परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत में कमी होने से उसकी क्रय की जाने वाली मात्रा बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, एक किलो चाय की कीमत 400रू. होने पर एक उपभोक्ता प्रतिमाह 2 किलो चाय क्रय करता है, जिस पर उसका कुल व्यय 800रू. है। यदि चाय की कीमत गिरकर 300 रू. प्रति किलो रह जाती है, तो 2 किलो चाय पर अब उपभोक्ता का व्यय 600रू. रह जाता है और उसके पास पहले के बराबर चाय लेने पर भी 200 रू. शेष रह जाते हैं, जो उसकी वास्तविक आय में वृद्धि के बराबर है। इस अतिरिक्त आय का सम्पूर्ण भाग अथवा एक भाग उपभोक्ता द्वारा चाय की अतिरिक्त मात्रा क्रय करने पर खर्च किया जायेगा, जिससे चाय की माँग पहले से अधिक होगी। इसके विपरीत, वस्तु की कीमत बढ़ने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय कम हो जाती है जिसकी वजह से वह वस्तु की मात्रा पहले की तुलना में कम क्रय करने लगता है। आय प्रभाव को निम्न प्रकार से **सूत्रबद्ध** किया जा सकता है:

वस्तु की कीमत में कमी →उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि →वस्तु की माँग में वृद्धि

वस्तु की कीमत में वृद्धि →उपभोक्ता की वास्तविक आय में कमी →वस्तु की माँग में कमी।

(iv) **सीमान्त क्रेताओं का प्रभाव (Marginal buyers effect)-** वस्तु की कीमत में कमी होने पर अब उसे ऐसे उपभोक्ताओं द्वारा क्रय किया जाने लगता है जो पहले कीमत ऊँची होने के कारण क्रय नहीं कर पाते थे, क्योंकि अब वह वस्तु उनकी आय सीमा की पहुँच (Affordability range) में आ जाती है। इसलिए कीमत कम होने पर वस्तु की माँग बढ़ जाती है। इसके विपरीत, कीमत बढ़ने पर जो क्रेता वस्तु को पहले क्रय करते थे, अब वे उसके महँगी हो जाने के कारण क्रय करने में असमर्थ हो जाते हैं, परिणामस्वरूप माँग घट जाती है। घटते हुए मूल्य नये ग्राहकों को आकृष्ट कर वस्तु की माँग बढ़ाते हैं और बढ़ते हुए मूल्य वर्तमान क्रेताओं की संख्या को कम कर वस्तु की माँग घटाते हैं।

(v) **वस्तु के विभिन्न प्रयोग (Different uses of commodity) -** वस्तुओं के विविध प्रयोग होने के कारण भी माँग का नियम क्रियाशील होता है। जब वस्तु सस्ती हो जाती है, तो उपभोक्ता उसका कम महत्त्वपूर्ण प्रयोगों में भी प्रयोग करने लगता है, फलतः उसकी माँग बढ़ जाती है। इसके विपरीत, जब वस्तु महँगी हो जाती है, तो उपभोक्ता उसका प्रयोग केवल महत्त्वपूर्ण उपयोगों तक ही सीमित कर देता है, जिसके कारण उसकी माँग कम हो जाती है।

5.8 माँग के नियम के अपवाद (Exceptions to the Law of Demand)

माँग के नियम के अपवाद से तात्पर्य माँग के नियम के लागू नही होने से है। माँग के नियम के अपवाद की स्थिति में वस्तु की कीमत और उसकी माँग मात्रा के बीच विपरीत सम्बन्ध न पाया जाकर **धनात्मक सम्बन्ध** पाया जाता है और इसलिए

माँग वक्र बायें से दायीं ओर ऊपर की तरफ उठता हुआ होता है। इस स्थिति को तालिका – 5.7 तथा रेखाचित्र – 5.7 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

तालिका संख्या – 5.7

माँग तालिका

X वस्तु की कीमत (लाख रु. में)	X वस्तु की माँग (इकाइयों में)	वस्तु की कीमत और माँग के बीच सम्बन्ध
1 2 3	100 120 160	यहाँ वस्तु की कीमत और माँग के बीच धनात्मक सम्बन्ध है, फलतः कीमत बढ़ने पर माँग बढ़ रही है।

रेखाचित्र संख्या – 5.7

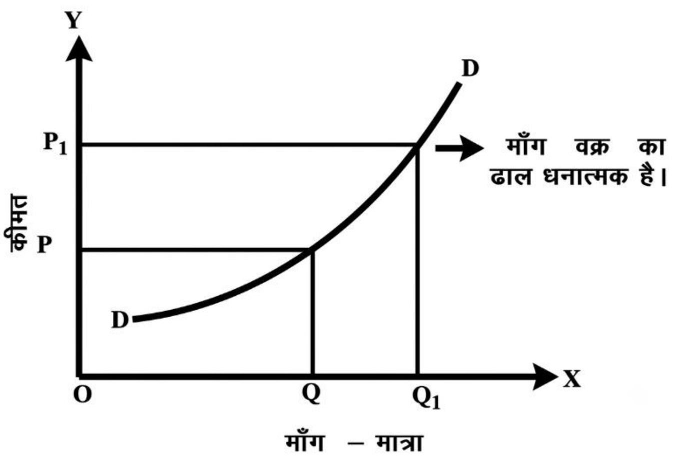

रेखाचित्र – 5.7 में DD वस्तु की माँग वक्र है, जो बायें से दायीं ओर ऊपर की तरफ उठता हुआ है। इसका कारण वस्तु की कीमत और माँग मात्रा के बीच प्रत्यक्ष (समदिशाई) सम्बन्ध होना है। कीमत OP से बढ़कर OP1 हो जाती है, तो माँग भी बढ़कर OQ से OQ1 हो जाती है।

माँग के नियम के निम्नांकित अपवाद हैं :

(i) **वस्तु के मूल्य में परिवर्तन की आशंका (Fear of change in price)-** यदि वस्तु की कीमत में निकट भविष्य में परिवर्तन की संभावना है, तो ऐसी स्थिति में माँग का नियम लागू नहीं होगा। यही कारण है कि **आर्थिक मन्दी और तेजी काल में माँग का नियम लागू नहीं होता है**। यदि भविष्य में वस्तु की कीमत में कमी होने की आशंका है, तो उपभोक्ता पहले से कम मूल्यों पर भी वस्तु की कम मात्रा क्रय करते हैं। इसके विपरीत, यदि भविष्य में वस्तु की कीमत में वृद्धि होने की आशा है, तो ऐसी स्थिति में क्रेता पहले से भी अधिक कीमत होने पर भी वस्तु की अधिक मात्रा क्रय करने लगते हैं। माँग के नियम की मान्यता के संदर्भ में इसे वास्तविक अपवाद नहीं कहा जा सकता है।

(ii) **प्रतिष्ठासूचक वस्तुओं की माँग (Demand for distinction goods)-** दुर्लभ, मूल्यवान एवं प्रतिष्ठासूचक वस्तुओं पर माँग का नियम लागू नहीं होता है क्योंकि ऐसी वस्तुओं की माँग ऊँचे मूल्यों पर अधिक और कम

मूल्यों पर कम होती है। ऐसी वस्तुओं का प्रयोग धनाढ्य व्यक्ति अपनी सम्पन्नता तथा श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए करते हैं। इन वस्तुओं के अन्तर्गत बेश कीमती हीरे-जवाहरात, दुर्लभ कला कृतियाँ, आभूषण तथा प्रसिद्ध लोगों के द्वारा प्रयुक्त की गयी सामग्री आती हैं। अमरीकी अर्थशास्त्री **वेबलन** ने सर्वप्रथम इस प्रकार की वस्तुओं के बारे में माँग के नियम का अपवाद बताया था।

(iii) **अज्ञानता एवं भ्रम की स्थिति (Ignorance and illusion) -** मनोवैज्ञानिक कारणों की वजह से उपभोक्ता अनेक बार मँहगी वस्तुओं को श्रेष्ठ एवं अधिक उपयोगी तथा सस्ती वस्तुओं को निकृष्ट एवं कम उपयोगी मान लेता है, फलस्वरूप कम कीमत पर कम और अधिक कीमत पर अधिक क्रय करने लगता है। बाजार में सदैव कुछ क्रेता ऐसे अवश्य मिल जाते हैं, जो कम कीमत को हीनता और अधिक कीमत को श्रेष्ठता का प्रमाण मानते हैं अर्थात् वस्तु की उपयोगिता का मूल्यांकन उसकी कीमत के आधार पर करते हैं। **प्रो. बेनहम** ने इसका उदाहरण प्रथम विश्वयुद्ध के समय एक तस्वीरों की पुस्तक का दिया है। पुस्तक के प्रथम प्रकाशन के समय उसकी कीमत 10.5 शिलिंग थी, किन्तु वह अधिक नहीं बिकी। उसका जब दूसरा संस्करण निकाला गया, तो उसकी कीमत लगभग तीन गुना से अधिक 3.5 पौण्ड रखी गयी, जिस पर उसकी अनेक प्रतियाँ फटाफट बिक गयी। इसे भी कुछ लोग माँग के नियम का अपवाद नहीं मानते क्योंकि ऊँचे मूल्यों पर उपभोक्ता की रूचि में सुधार हो जाता है, जो नियम की मान्यताओं के विपरीत है।

(iv) **अनिवार्य वस्तुओं की माँग (Demand for necessaries) -** जीवन रक्षक अनिवार्य वस्तुओं के सम्बन्ध में माँग का नियम एक सीमा तक लागू नहीं होता है क्योंकि ऐसी वस्तुओं की माँग को जीवन रक्षा हेतु पूरा करना अनिवार्य होता है। उदाहरण के लिए, खाद्य पदार्थों तथा दवाईयों की माँग पर कीमत बढ़ने और घटने का विशेष असर नहीं पड़ता क्योंकि उनकी एक न्यूनतम मात्रा का प्रयोग करना जीवन रक्षा के लिए आवश्यक है।

(v) **गिफिन का विरोधाभास अथवा निकृष्ट वस्तुओं की माँग (Giffen's paradox or demand for inferior goods)-** माँग के नियम का **एकमात्र सच्चा अपवाद गिफिन का विरोधाभास** है। सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी में सर **रोबर्ट गिफिन** ने यह स्पष्ट किया कि निकृष्ट वस्तुओं पर माँग का नियम लागू नहीं होता। निकृष्ट अथवा हीन वस्तुओं की मुख्य विशेषता यह होती है कि इनकी माँग कम कीमत पर कम और अधिक कीमत पर अधिक होती है। रोबर्ट गिफिन के नाम पर निकृष्ट वस्तुओं को गिफिन वस्तुएँ भी कहा जाता है। लेकिन केवल वे ही निकृष्ट वस्तुएँ गिफिन वस्तुएँ होती हैं जिन पर उपभोक्ता अपनी आय का अपेक्षाकृत काफी बड़ा भाग खर्च करता है। गिफिन वस्तुओं पर माँग का नियम इसलिए लागू नहीं होता है कि इनके मूल्यों में कमी होने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय में जो वृद्धि होती है, उसे वह इन वस्तुओं पर खर्च न करके श्रेष्ठ वस्तुओं पर खर्च करता है, फलतः इनकी माँग कीमत कम होने पर कम हो जाती है। उदाहरण के लिए, ज्वार-बाजरे की कीमत कम होने पर इसकी माँग कम हो जाती है क्योंकि उपभोक्ता कीमत में कमी के कारण वास्तविक आय में हुई वृद्धि को गेहूँ-चावल पर खर्च करने लगता है। इसे ही गिफिन का विरोधाभास कहते हैं।

गिफिन के विरोधाभास का एक अन्य प्रकार से भी स्पष्टीकरण किया जा सकता है। जब किसी वस्तु की कीमत कम होती है, तो उसकी माँग दो प्रभावों के कारण बढ़ जाती है। **पहला प्रतिस्थापन प्रभाव तथा दूसरा आय** प्रभाव। इन दोनों प्रभावों को संयुक्त रूप से कीमत प्रभाव कहते हैं। **सूत्र रूप में -**

कीमत प्रभाव = प्रस्थिापन प्रभाव + आय प्रभाव

जैसाकि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रतिस्थापन प्रभाव सदैव धनात्मक और आय प्रभाव धनात्मक एवं ऋणात्मक हो सकता है, जो वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करता है। **गिफिन वस्तुओं के सन्दर्भ में आय प्रभाव ऋणात्मक होता है तथा प्रतिस्थापन प्रभाव से शक्तिशाली भी होता है।** वस्तुतः यही गिफिन का विरोधाभास है और ऐसी स्थिति में माँग का नियम लागू नहीं होता। माँग का नियम तभी लागू होता है, जब आय प्रभाव या तो धनात्मक हो या फिर ऋणात्मक होने पर प्रतिस्थापन प्रभाव से कम शक्तिशाली हो।

स्व-मूल्यांकन – प्रथम

हिटलर के हस्तलिखित प्रेम - पत्र किस प्रकार की वस्तु है और क्यों? समझने का प्रयास कीजिये।

5.9 माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन बनाम माँग में परिवर्तन (Change in Quantity Demanded VS Change in Demand)

प्रायः माँग गयी मात्रा में परिवर्तन और माँग में परिवर्तन को हम समानार्थी मानते हैं, परन्तु इन दोनों का न केवल अर्थ अलग-अलग है, वरन् इसमें होने वाले परिवर्तनों के कारण, स्वरूप एवं प्रभाव भी अलग-अलग हैं। **माँगी गयी मात्रा के परिवर्तनों को माँग का विस्तार अथवा माँग का संकुचन कहते हैं, जबकि माँग में परिवर्तनों को माँग में वृद्धि या कमी कहते हैं।** माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन का सम्बन्ध वस्तु की स्वयं की कीमत से होता है, जबकि माँग में परिवर्तन का सम्बन्ध, वस्तु की स्वयं की कीमत को छोड़कर माँग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्वों से होता है, जिन्हें माँग की दशाओं के अन्तर्गत रखा जाता है। संक्षेप **में माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन वस्तु की कीमत में परिवर्तन का परिणाम है, जबकि माँग में परिवर्तन वस्तु के गैर-कीमत तत्त्वों (Non-price factors) में परिवर्तन का परिणाम है।**

माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता की माँग तालिका में कोई परिवर्तन नहीं होता है, इसलिए माँग के विस्तार और संकुचन की स्थिति में उपभोक्ता उसी माँग वक्र पर नीचे-ऊपर होता रहता है। परन्तु माँग में परिवर्तन होने की स्थिति में उपभोक्ता की सम्पूर्ण माँग तालिका ही परिवर्तित हो जाती है, फलस्वरूप माँग वक्र भी बदल जाता है।

माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन (Change in Qantity Demanded)- यह केवल वस्तु की स्वयं की कीमत में परिवर्तन के कारण होता है, जिसे माँग के नियम के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। यह और कुछ न होकर मूल्य माँग की ही व्याख्या है। माँगी गयी मात्रा के परिवर्तन मूल्य साक्षेप होते हैं। यदि किसी वस्तु की माँग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्व स्थिर रहें, तो उसकी कीमत में परिवर्तन होने के कारण उसकी क्रय की जाने वाली मात्रा में जो परिवर्तन होता है, उसे माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन कहते हैं। माँग-मात्रा में परिवर्तन **निम्नांकित दो प्रकार** से हो सकता है **-**

(i) **माँग का विस्तार (Expansion)-** अन्य बातों के समान रहने पर, यदि वस्तु की कीमत घट जाने के कारण उसकी क्रय की जाने वाली मात्रा बढ़ जाती है,तो इसे माँग का विस्तार कहते हैं।

(ii) **माँग का संकुचन (Contraction) -** अन्य बातों के स्थिर रहने पर, यदि वस्तु की कीमत बढ़ जाने के कारण उसकी खरीदी जाने वाली मात्रा कम हो जाती है, तो इसे माँग का संकुचन कहते हैं।

उक्त दोनों स्थितियों को रेखाचित्र-5.8 द्वारा स्पष्ट किया गया है। DD वस्तु का माँग वक्र है जिसके A बिन्दु पर OP तथा OQ प्रारम्भिक कीमत एवं मात्रा है। यदि वस्तु की कीमत बढ़कर OP1 हो जाती है, तो इसके कारण माँग - मात्रा घटकर OQ1 हो जाती है। अतः यहाँ QQ1 माँग का संकुचन है। इसी प्रकार जब वस्तु की कीमत घटकर OP2 हो जाती है, तो इसके कारण माँग-मात्रा बढ़कर OQ2 हो जाती है अर्थात् QQ2 बढ़ जाती है, जिसे माँग का विस्तार कहते हैं। माँग संकुचन की स्थिति में उपभोक्ता माँग वक्र के प्रारम्भिक बिन्दु से ऊपर की ओर (B बिन्दु) तथा माँग विस्तार की स्थिति प्रारम्भिक बिन्दु से नीचे की ओर (C बिन्दु) पर खिसक जाता है।

रेखाचित्र संख्या – 5.8

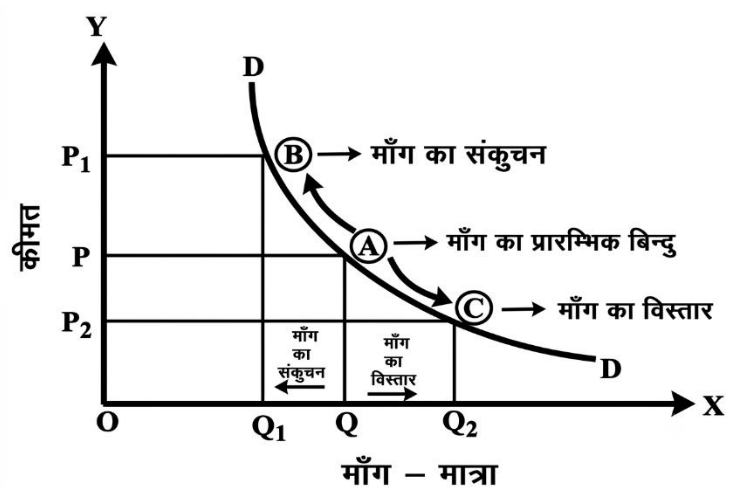

माँग में परिवर्तन (Change in demand)- वस्तु की स्वयं की कीमत के अलावा माँग के अन्य निर्धारक तत्त्वों में से किसी में भी परिवर्तन होने के कारण उसकी क्रय की जाने वाली मात्रा में जो परिवर्तन होता है, उसे माँग में परिवर्तन कहते हैं। माँग में परिवर्तन **निम्नांकित दो प्रकार** का होता है -

(i) माँग में वृद्धि (Increase)- वस्तु की कीमत अपरिवर्तित रहने के उपरान्त भी, उसकी माँग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्वों के कारण, (आय, रूचि, फैशन इत्यादि) यदि उसकी क्रय की जाने वाली मात्रा बढ़ जाती है, तो इसे माँग में वृद्धि कहते हैं। **तकनीकी दृष्टि से माँग में वृद्धि निम्न दो प्रकार की होती है -**

अ) समान (पूर्ववत्) कीमत पर पहले से अधिक मात्रा क्रय किया जाना; तथा ब) पहले से अधिक कीमत पर पूर्ववत् मात्रा क्रय किया जाना। उक्त दोनों स्थितियों को रेखाचित्र – 5.9 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र संख्या – 5.9

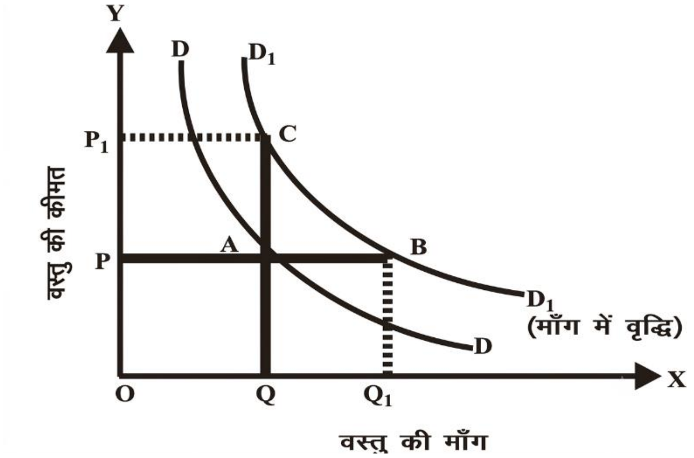

रेखाचित्र - 5.9 में DD मूल माँग वक्र है। इसके A बिन्दु पर OP कीमत और OQ माँग है। D1D1 नया माँग वक्र है, जो माँग में वृद्धि का प्रतीक है। इसके B बिन्दु पर पहले के समान कीमत (OP) पर पहले से अधिक OQ_1 मात्रा माँगी जाती है। नये माँग वक्र के C बिन्दु पर कीमत (OP1) पहले से अधिक है, किन्तु माँग पूर्ववत् (OQ) है। नये माँग वक्र पर B और C बिन्दु माँग में वृद्धि को दर्शाते हैं।

(ii) माँग में कमी (Decrease) - सामान्यतः किसी वस्तु की एक निश्चित कीमत पर, माँग को प्रभावित करने वाले अन्य घटकों की वजह से, पहले से कम मात्रा क्रय किया जाना माँग में कमी कहलाती है। तकनीकी दृष्टि से इसके निम्न दो रूप हैं -

(अ) समान (पूर्ववत्) कीमत पर पहले से कम मात्रा क्रय किया जाना; तथा ब) नीची (पहले से कम) कीमत पर पहले के समान मात्रा क्रय किया जाना। उक्त दोनों स्थितियों को रेखाचित्र – 5.10 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। चित्रानुसार DD मूल माँग वक्र है। इसके बिन्दु A पर OP कीमत तथा OQ माँग है। D_2D_2 नया माँग वक्र है, जो माँग में कमी का प्रतीक है। इसके B बिन्दु पर पूर्ववत् OP कीमत पर पहले से कम मात्रा OQ_1 माँगी जाती है। नये माँग वक्र के C बिन्दु पर कीमत पहले से कम (OP1) है, किन्तु माँग पूर्ववत् OQ है।

रेखाचित्र संख्या – 5.10

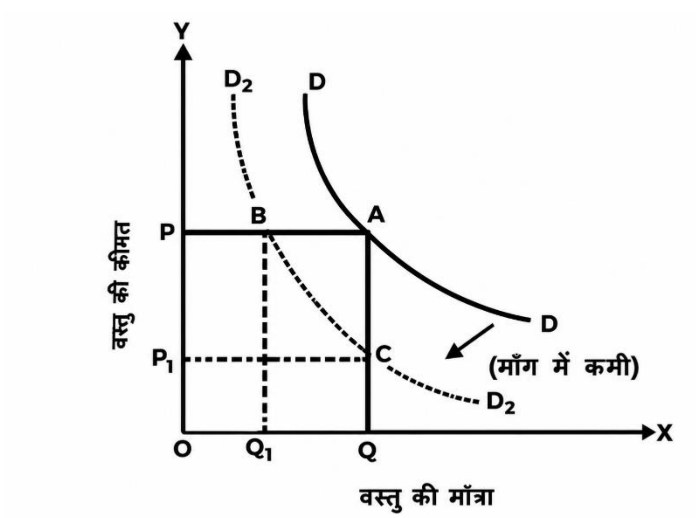

5.10 माँग के निर्धारक तत्त्व/माँग फलन (Determinants of Demand/Demand Function)

किसी वस्तु की माँग को एक से अधिक तत्त्व प्रभावित करते हैं, जिन्हें अर्थशास्त्री माँग के निर्धारक घटक कहते हैं। **प्रो. वाटसन** किसी वस्तु की मात्रा तथा उनके निर्धारक घटकों के आपसी सम्बन्ध को **माँग फलन** के नाम से सम्बोधित करते हैं। किसी वस्तु की माँग के प्रभावित करने वाले घटक अग्रांकित हो सकते हैं -

(i) **वस्तु की कीमत (Price) -** माँग का सबसे प्रमुख निर्धारक घटक वस्तु की स्वयं की कीमत है। सामान्यतया, जैसाकि माँग का नियम बताता है, वस्तु की कीमत तथा उसकी माँग - मात्रा के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् वस्तु की कम कीमत पर अधिक माँग और अधिक कीमत पर कम माँग की जाती है।

(ii) **उपभोक्ता की आय (Income) -** अन्य बातों के समान रहने पर, उपभोक्ता की आय बढ़ने पर वस्तुओं की माँग बढ़ती है और इसके विपरीत, आय घटने पर माँग घटती है। आय और माँग में परिवर्तन के बीच प्रायः प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है, किन्तु निकृष्ट वस्तुओं के सम्बन्ध में यह ऋणात्मक होता है। यहाँ यह भी समझना आवश्यक है कि आय परिवर्तन का प्रभाव विभिन्न वस्तुओं की माँग पर उनकी प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। मौटे तौर पर अनिवार्य वस्तुओं की माँग पर आय प्रभाव अपेक्षाकृत कम तथा विलासिताओं की माँग पर अधिक पड़ता है। वस्तु पर खर्च की गयी राशि का भी उसकी माँग पर प्रभाव पड़ता है।

(iii) **उपभोक्ता की रूचि एवं पसन्दगी अधिमान (Taste and scale of preference) -** वस्तु की माँग पर उपभोक्ता की रूचि, स्वभाव, आदत, फैशन, सामाजिक एवं धार्मिक रीति-रिवाजों का भी प्रभाव पड़ता है। अन्य बातों के यथा स्थिर रहने पर, किसी वस्तु के प्रति उपभोक्ता का पसन्दगी अधिमान जितना अधिक होगा, उसकी माँग उतनी ही अधिक होगी और विलोमशः पसन्दगी अधिमान कम होने पर कम होगी।

(iv) **प्रतिस्थानापन्न और पूरक वस्तुओं कीमतों में परिवर्तन (Change in prices of substitutes and complementary goods)** - किसी वस्तु की माँग को उससे सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में होने वाले परिवर्तन भी प्रभावित करते हैं। यह इसी इकाई में स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रतिस्थानापन्न वस्तुओं की कीमतों तथा उसकी सम्बन्धित वस्तु की माँग के बीच धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है। उदाहरणार्थ, कॉफी की कीमत में वृद्धि होने पर चाय की माँग बढ़ जाएगी। पूरक वस्तुओं की कीमतों तथा उसकी प्रमुख वस्तु की माँग के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। उदाहरणार्थ, दूध/चीनी की कीमतों में वृद्धि होने पर चाय की माँग घट जाएगी। **प्रो. स्टिगलर** ने उक्त चार तत्त्वों को ही माँग के निर्धारक तत्त्व माना है। वास्तव में देखा जाए, तो ये चार तत्त्व ही किसी वस्तु की माँग को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं।

(v) **जनसंख्या (Population)-** जनसंख्या का आकार और उसमें होने वाले परिवर्तन वस्तुओं की माँग को प्रभावित करते हैं। जनसंख्या तथा उसकी वृद्धि की दर अधिक होने पर माँग अधिक होगी और विलोमशः कम होगी। इसके अलावा, जनसंख्या की संरचना भी वस्तुओं की माँग को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, भारत में युवा जनसंख्या होने के कारण उन वस्तुओं की माँग अधिक होगी जो युवाओं की आवश्यकताओं को पूरा करती है।

(vi) **जलवायु एवं मौसम में परिवर्तन (Change in climate)-** वस्तुओं की माँग में जलवायु और मौसम परिवर्तन (गर्मी, सर्दी तथा बरसात) का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, गर्म कपड़ों की माँग यूरोप में अधिक तथा भारत में अपेक्षाकृत कम होगी।

(vii) **धन का वितरण (Distribution of wealth):** यदि समाज में धन का वितरण समान है, तो वस्तुओं की माँग अधिक होती है और असमान वितरण होने पर केवल अमीर लोगों की विलासिता की वस्तुओं की माँग अधिक होगी तथा शेष जनता की वस्तुओं की माँग क्रय शक्ति कम होने के कारण कम होगी।

(viii) **व्यापार की स्थिति (State of trade):** व्यापार की दशाओं में परिवर्तन का वस्तुओं की माँग पर गहरा प्रभाव पड़ता है। मन्दीकाल में विभिन्न वस्तुओं की माँग आय कम होने के कारण घट जाती है, जबकि तेजी काल में बढ़ जाती है।

(ix) **मुद्रा की मात्रा (Quantity of money):** देश में मुद्रा की पूर्ति बढ़ने से अर्थव्यवस्था में स्फीतिक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, फलस्वरूप लोगों की मौद्रिक आय बढ़ने और भविष्य में मूल्य वृद्धि की आशंका से माँग बढ़ जाती है। इसके उलट, अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा कम होने पर माँग कम हो जाती है।

(x) **सरकार की नीति (Govt. policy) :** सरकार अपने बजट में करों, आर्थिक सहायता तथा व्यय की मात्रा में परिवर्तन कर वस्तुओं की माँग को प्रभावित करती है। हम सभी जानते हैं कि करों में वृद्धि करने से माँग कम होती है और आर्थिक सहायता में वृद्धि करने से माँग बढ़ती है और विलोमशः।

(xi) **अन्य तत्त्व (Other factors):** उपर्युक्त तत्त्वों के अलावा, माँग को अन्य तत्त्व भी प्रभावित करते हैं जिनमें वस्तु की पूर्ति, बचत करने की प्रवृत्ति, ज्ञान में वृद्धि इत्यादि सम्मिलित हैं।

माँग फलन को निम्नांकित समीकरण/सूत्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

$DX = f(Px, Y, T, PR, P, C, W, G.....n)$

यहाँ Dx = X वस्तु की माँग, f = फलन, Px = X वस्तु की कीमत, Y= उपभोक्ता की आय, T= रूचि एवं पसन्दगी अधिमान, PR = सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें, P= जनसंख्या, C = जलवायु, W = धन का वितरण, G= सरकार की नीतियाँ तथा n माँग को प्रभावित करने वाले अन्य घटक हैं। उक्त समीकरण स्पष्ट करता है कि X वस्तु की माँग उसको प्रभावित करने वाले तत्त्वों का प्रतिफलन है अर्थात् उन पर निर्भर करती है।

स्व मूल्यांकन - द्वितीय

आपकी आय और अभिरुचि में परिवर्तन हो जाने के कारण अब आप ब्रांडेड कपड़े अधिक खरीदने लगते हैं। समझने का प्रयास कीजिये कि यह माँग में परिवर्तन है अथवा माँग – मात्रा में। अपने उत्तर के कारण भी ज्ञात कीजिए।

5.11 सारांश (Summary)

किसी वस्तु की माँग उसकी प्रभावी इच्छा है जिसका सम्बन्ध एक निश्चित कीमत और एक निश्चित समयावधि से होता है। माँग मुख्यतः तीन प्रकार की होती है -मूल्य माँग, आय माँग तथा तिरछी माँग। व्युत्पन्न माँग, संयुक्त माँग तथा सामूहिक माँग, माँग के अन्य प्रकार हैं। माँग वक्र, माँग तालिका का चित्रीयकरण है। माँग वक्र वस्तु की कीमत तथा माँग - मात्रा के बीच पाये जाने वाले विपरीत सम्बन्ध को बताता है और इसी कारण इसका ढाल ऋणात्मक होता है। अधिकांश माँग वक्र बायें से दायीं ओर नीचे झुकते हुए होते हैं। माँग का नियम अन्य बातों के समान करने पर, वस्तु की कीमत और उसकी माँग - मात्रा के बीच पाये जाने वाले विपरीत सम्बन्ध को स्पष्ट करता है अर्थात् कम कीमत पर वस्तु की माँग अधिक और अधिक कीमत पर माँग कम होगी। माँग का नियम, सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव, आय प्रभाव, सीमान्त क्रेताओं का प्रभाव तथा वस्तु के विभिन्न प्रयोग होने के कारण लागू होता है। जब वस्तु की कीमत और माँग - मात्रा के बीच धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है, तो इसे माँग के नियम का अपवाद कहा जाता है अर्थात् कीमत बढ़ने पर माँग बढ़ती है और कीमत घटने पर माँग घटती है। माँग के नियम का एकमात्र वास्तविक अपवाद गिफिन

का विरोधाभास है। माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन माँग के विस्तार अथवा संकुचन के रूप में होते हैं, जो वस्तु की स्वयं की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप होते हैं। जबकि माँग में परिवर्तन माँग में वृद्धि अथवा माँग में कमी के रूप में होते हैं, जो वस्तु की स्वयं की कीमत को छोड़कर उसकी माँग को प्रभावित करने वाले घटकों में से किसी एक अथवा अधिक में परिवर्तन के फलस्वरूप होता है। किसी वस्तु की माँग को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व हैं, जिनमें मुख्य रूप से वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय, रूचि एवं पसन्द, सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें, जनसंख्या, जलवायु, धन का वितरण, मुद्रा की मात्रा, सरकार की नीति इत्यादि हैं।

5.12 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जानने में सक्षम हो गये होंगे कि:

- अर्थशास्त्र में मांग का क्या आशय है और यह कैसे इच्छा और आवश्यकता से भिन्न है?
- मांग के विभिन्न प्रकार कौन-कौनसे हैं और उनका क्या महत्त्व है?
- मांग अनुसूची तथा मांग वक्र का निर्माण कैसे होता है?
- मांग का नियम क्या है और यह वास्तविक जीवन में क्यों क्रियाशील होता है? व्यवहार में यह कब लागू नहीं होता है?
- किसी वस्तु की मांग किन-किन तत्वों से प्रभावित होती है? मांगी गयी मात्रा में परिवर्तन और मांग में परिवर्तन में क्या अन्तर है?

5.13 शब्दावली (Glossary)

- **माँग -** किसी वस्तु की माँग उसकी वह मात्रा है, जो एक निश्चित कीमत पर एक निश्चित समयावधि में क्रेता क्रय करने को तत्पर होंगे।
- **मूल्य माँग -** अन्य बातों के समान रहने पर, किसी वस्तु की मूल्य माँग उन विभिन्न मात्राओं को कहते हैं, जो एक निश्चित समयावधि में विभिन्न मूल्यों पर उपभोक्ता क्रय करने को तैयार होंगे।
- **कीमत प्रभाव** - वस्तु की स्वयं की कीमत का उसकी माँगी जाने वाली मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को कीमत प्रभाव कहते हैं।
- **आय माँग -** अन्य बातें यथावत रहने पर, किसी वस्तु की आय माँग उसकी उन विभिन्न मात्राओं को व्यक्त करती है, जो एक उपभोक्ता एक निश्चित समयावधि में अपने विभिन्न आय-स्तरों पर क्रय करने को तैयार होगा।
- **आय प्रभाव -** उपभोक्ता की आय में होने वाले परिवर्तनों का वस्तु विशेष की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव को आय प्रभाव कहते हैं।
- **निकृष्ट वस्तुएँ -** ये वे वस्तुएँ होती हैं जिनकी माँग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर घटती है और आय घटने पर बढ़ती है।
- **तिरछी/आड़ी माँग** - अन्य बातों के स्थिर रहने पर, किसी वस्तु की तिरछी माँग उसकी उन मात्राओं को कहते हैं, जिन्हें उपभोक्ता एक निश्चित समयावधि में उससे सम्बन्धित वस्तु की विभिन्न कीमतों पर क्रय करने को तैयार होंगे।

- **व्युत्पन्न माँग** - जब किसी वस्तु की माँग किसी अन्य वस्तु के उत्पादन के लिए की जाती है, तो इसे अप्रत्यक्ष माँग कहते हैं।
- **संयुक्त माँग -** एक आवश्यकता की पूर्ति हेतु दो या अधिक वस्तुओं की माँग एक साथ करना संयुक्त माँग है।
- **सामूहिक/ मिश्रित माँग -** एक वस्तु के उसके समस्त प्रयोगों में माँग के योग को सामूहिक माँग कहते हैं।
- **माँग का नियम -** अन्य बातों के यथास्थिर रहने पर, किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँगी जाने वाले वाली मात्रा के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध को बताने वाला नियम माँग का नियम कहलाता है। यह नियम स्पष्ट करता है कि वस्तु की कीमत और उसकी माँग के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है।
- **माँग के नियम का अपवाद -** यह वह स्थिति होती है जब वस्तु की कीमत और उसकी माँग - मात्रा के मध्य धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् ऊँची कीमत पर अधिक माँग और नीची कीमत पर कम माँग की जाती है।
- **गिफिन का विरोधाभास -** जब आय प्रभाव ऋणात्मक होता है और प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक शक्तिशाली होता है, तो गिफिन का विरोधाभास उत्पन्न होता है। यह उन वस्तुओं पर क्रियाशील होता है जो निकृष्ट होती हैं और जिन पर उपभोक्ता अपनी आय का अपेक्षाकृत अधिक भाग व्यय करता है।
- **माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन -** यह वस्तु की मात्रा में वह परिवर्तन है, जो उसकी स्वयं की कीमतों में परिवर्तन के फलस्वरूप होता है, यदि माँग को प्रभावित करने वाले अन्य घटक स्थिर रहें। यह माँग के विस्तार और संकुचन के रूप में होता है।
- **माँग का विस्तार -** अन्य बातों के समान रहने पर, वस्तु की कीमत में कमी होने पर उसकी क्रय की जाने वाली मात्रा में होने वाली बढ़ोतरी ही माँग का विस्तार कहलाती है।
- **माँग का संकुचन -** अन्य बातों के स्थिर रहने पर, वस्तु की कीमत में वृद्धि होने के कारण उसकी क्रय की जाने वाली मात्रा में होने वाली कमी को ही माँग का संकुचन कहते हैं।
- **माँग में परिवर्तन -** वस्तु की कीमत के अलावा, माँग के निर्धारक तत्त्वों में से किसी में भी परिवर्तन हो जाने के कारण उसकी क्रय की जाने वाली मात्रा में होने वाला परिवर्तन माँग में परिवर्तन कहलाता है। यह माँग में वृद्धि एवं कमी के रूप में होता है।
- **माँग में वृद्धि -** वस्तु की कीमत के अलावा, उसकी माँग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्वों में से किसी में भी परिवर्तन होने के कारण वस्तु की क्रय की जाने वाली मात्रा का बढ़ जाना ही माँग में वृद्धि है।
- **माँग में कमी -** जब वस्तु की कीमत के अतिरिक्त माँग की दशाओं में परिवर्तन हो जाने के कारण वस्तु की क्रय की जाने वाली मात्रा में कमी ही माँग में कमी कहलाती है।

5.14 स्व-परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Very - Short Answer Questions)

1. माँग से आपका क्या तात्पर्य है?
2. माँग के विस्तार का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. मूल्य माँग का परिभाषित कीजिए।
4. आय माँग से आपका क्या अभिप्राय है?

5. तिरछी माँग से आप क्या समझते हैं।
6. गिफिन का विरोधाभास स्पष्ट कीजिए।
7. माँग का संकुचन और माँग में कमी में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
8. गिफिन वस्तुओं से आपका क्या आशय है?

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. माँग-मात्रा में परिवर्तन और माँग में परिवर्तन का अन्तर स्पष्ट कीजिए। उदाहरण एवं रेखाचित्रों से अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।
2. अधिकांश माँग वक्र बायें से दायीं ओर क्यों झुकते हुए होते हैं? क्या इसके कोई अपवाद हैं?
3. माँग के विभिन्न प्रकारों को उदाहरण एवं रेखाचित्रों की सहायता से समझाइए।
4. माँग का प्रभावित करने वाले तत्त्वों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
5. माँग के नियम को स्पष्ट कीजिए और इसके क्रियाशील होने के कारणों को समझाइए।

5.15 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची (References and Bibliography)

- Misra, S.K. & Puri, V.K. : Economics for Managers, Himalaya Publishing House, Bombay, 2006
- Mithani, D.M. : Managerial Economics, Himalaya Publishing House, Bombay, 2009
- Dwivedi, D.N. : Managerial Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., Delhi, 2005

5.16 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- सिंह, गोपाल एवं त्यागी, मंजुला: व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 2009
- सिंह एवं अग्रवाल : आर्थिक विश्लेषण,
- रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2009-10
- Agrwal, M.D. & Deo Som : Buiness Economics, Ramesh Book Depo, Jaipur, 2008
- मिसरा एवं पुरी: व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 2008

5.17 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Links)

- https://sites.google.com/site/economicsbasics/law-of-demand
- https://www.businesswire.com/news/home/20190410005530/en/Why-is-Demand-Analysis-Essential-for-Your-Business-Infiniti-Research-Reveals-Everything-You-Need-to-Know-about-Demand-Analysis

इकाई - 6

माँग की लोच

(Elasticity of Demand)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 माँग की लोच की अवधारणा एवं परिभाषा

6.3 माँग की लोच के प्रकार /प्रकृति

6.3.1 माँग की कीमत लोच

6.3.2 माँग की आय लोच

6.3.3 माँग की तिरछी /आड़ी लोच

6.3.4 माँग की विज्ञापन लोच

6.3.5 माँग की प्रतिस्थापन लोच

6.4 माँग की लोच की श्रेणियाँ/अंश/मात्राएँ

6.5 सारांश

6.6 अधिगम परिणाम

6.7 शब्दावली

6.8 स्व-परख प्रश्न

6.9 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची

6.10 अन्य पठन सामग्री

6.11 वेब संसाधन / लिंक

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- माँग की लोच की अवधारणा के बारे में अपनी समझ विकसित कर सकेंगे,
- माँग की लोच के विभिन्न प्रकारों को जान पायेंगे, तथा

- माँग की लोच की श्रेणियों/अंशों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

अभी तक आप यह समझ चुके होंगे कि माँग का नियम एक **गुणात्मक कथन** (Qualitative statement) है, न कि **परिमाणात्मक कथन** (Quantitative statement) अर्थात माँग का नियम वस्तु की कीमत में एक निश्चित परिवर्तन होने पर उसकी माँग-मात्रा में होने **वाले परिवर्तन की दिशा** (Change in direction) तो बताता है, किन्तु **परिवर्तन की मात्रा** (Quantity of Change) नहीं बताता। माँग के नियम का दोष यह है कि यह वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी माँग - मात्रा में होने वाले परिवर्तन की मात्रा या दर (Magnitude or rate of change) नहीं बताता। इसलिए अर्थवेत्ताओं ने माँग के नियम के इस दोष को दूर करने के लिए माँग की लोच की अवधारणा का विकास किया। वस्तुतः माँग की लोच वस्तु की कीमत में निश्चित परिवर्तन होने के कारण उसकी माँग मात्रा में हुए परिवर्तनों की माप है। इस इकाई में हम माँग की लोच अवधारणा, माँग की लोच के विभिन्न प्रकारों और इसकी श्रेणियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

6.2 माँग की लोच की अवधारणा एवं परिभाषा (Concept and Definition of Elasticity of Demand)

अर्थशास्त्र में लोच की अवधारणा भौतिक शास्त्र से उधार ली गयी है। वस्तु की कीमत में एक निश्चित परिवर्तन होने के कारण उसकी माँग-मात्रा में जो परिवर्तन फलित होता है, उसकी गणितीय माप को ही माँग की लोच कहते हैं। **माँग की लोच वस्तु की कीमत में एक निश्चित परिवर्तन के कारण उसकी माँग-मात्रा में होने वाली प्रतिक्रियात्मकता का गुणांक** (Coefficient) है। यह वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण उसकी माँग-मात्रा में होने वाले परिवर्तन की सीमा का प्रतीक है। माँग की लोच की अवधारणा को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषा यहाँ नीचे दी जा रही है -

ईस्थम (Eastham) : '' माँग की कीमत लोच कीमत में परिवर्तन के कारण माँग-मात्रा में होने वाली प्रतिक्रियात्मकता (Responsiveness) की माप है।''

प्रो. बोल्डिंग (Boulding) : ''कीमत में एक प्रतिशत परिवर्तन के कारण माँग-मात्रा में जो प्रतिशत परिवर्तन होगा, उसे की माँग की लोच कहा जा सकता है।" **सूत्र रूप में :**

$$\text{माँग की लोच} = \frac{\text{माँग} - \text{मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

श्रीमती जॉन रोबिन्सन (Robinson) : ''माँग की लोच किसी कीमत अथवा उत्पादन पर, कीमत में अल्प परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँगी जाने वाली मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन में कीमत के आनुपातिक परिवर्तन का भाग देने से प्राप्त होती है। **सूत्र रूप में :**

$$\text{माँग की लोच} = \frac{\text{माँग} - \text{मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

गणितीय सूत्र के रूप में –

$$ep = \frac{\Delta x/x}{\Delta p/p} \quad \text{or} \quad \frac{\Delta x}{\Delta p} \times \frac{P}{X}$$

सूत्र में, e_P माँग की कीमत लोच, Δx वस्तु की माँग - मात्रा में परिवर्तन, x वस्तु की प्रारंभिक माँग मात्रा, ΔP वस्तु की कीमत में परितर्वन तथा P वस्तु की प्रारम्भिक कीमत का प्रतीक है।

6.3 माँग की लोच के प्रकार/प्रकृति (Kinds/Nature of Elasticity of Demand)

माँग की लोच के विभिन्न प्रकार अग्रांकित हैं -

6.3.1 माँग की कीमत लोच (Price elasticity of demand)

सामान्यतया ' माँग की लोच' शब्द माँग की कीमत लोच के अर्थ में ही प्रयोग किया जाता है जब तक की इसके आगे किसी अन्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है। माँग की कीमत लोच का इसी इकाई में माँग की लोच की अवधारणा एवं परिभाषा शीर्षक के अन्तर्गत विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है। फिर भी संक्षेप में, **माँग की कीमत लोच वस्तु की कीमत में परिवर्तन का उसकी माँगी जाने वाली मात्रा पर पड़ने वाले कीमत प्रभाव (Price effect) की गणितीय माप है।**

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण – माना कि X वस्तु की प्रारम्भिक कीमत 10 रू. प्रति इकाई है जिस पर उसकी माँग-मात्रा 100 इकाइयाँ हैं। अब यदि वस्तु की कीमत बढ़कर 12 रू. प्रति इकाई हो जाती है, जिसके कारण उसकी माँग-मात्रा घटकर 80 इकाई रह जाती है। इस कल्पित उदाहरण में माँग की लोच **निम्नांकित सूत्र** द्वारा इस प्रकार ज्ञात की जाएगी–

$$\text{माँग की कीमत लोच} = \frac{\text{माँग} - \text{मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन } (\Delta X/X)}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन } (\Delta P/P)}$$

$$e_P = \frac{\Delta x}{x} / \frac{\Delta P}{P} \; Or \; \frac{\Delta x}{\Delta P} \times \frac{P}{X}$$

$$\Delta x = x - x1\ (100 - 80) = -20$$

$$\Delta P = P - P1\ (10 - 12) = 2$$

यहाँ, X वस्तु की प्रारंभिक मात्रा और X1 नई परिवर्तित मात्रा है और इसी प्रकार P प्रारंभिक कीमत और P1 नई परिवर्तित कीमत है। उपर्युक्त संख्या को सूत्रबद्ध करने पर माँग की कीमत लोच होगी :

$$ep = \frac{\Delta x}{\Delta p} \times \frac{P}{x} = \frac{-20}{2} \times \frac{10}{100} = -1$$

माँग की कीमत लोच सामान्यतया ऋणात्मक (-) होती है क्योंकि माँग के नियम के अनुसार वस्तु की कीमत और उसकी माँगी जाने वाला मात्रा के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है, किन्तु व्यवहार में ऋणात्मक (-) चिन्ह का सामान्यत: उल्लेख नहीं किया जाता है।

6.3.2 माँग की आय लोच (Income elasticity of demand)

पिछली इकाई - 5 में आप यह पढ़ चुके हैं कि वस्तु की माँग पर उपभोक्ता की आय में होने वाले परिवर्तनों का भी प्रभाव पड़ता है, जिसे आय प्रभाव कहते हैं। **स्टोनियर एवं हेग** के अनुसार, " माँग की आय लोच, किसी वस्तु की माँग में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन और क्रेता की आय में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन के बीच अनुपात को व्यक्त करती है।"

सूत्र रूप में:

$$\text{माँग की आय लोच} = \frac{\text{माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$e_i = \frac{\Delta Q}{Q} / \frac{\Delta Y}{Y} \quad \text{Or} \quad \frac{\Delta Q}{\Delta Y} \times \frac{Y}{Q}$$

यहाँ ei माँग की आय लोच, ΔQ वस्तु की माँग में परिवर्तन, Q वस्तु की प्रारम्भिक माँग, ΔY उपभोक्ता की आय में परिवर्तन, तथा Y प्रारंभिक आय के अर्थ में प्रयुक्त किये गये हैं।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण - माना कि एक उपभोक्ता की आय 1000रू. से बढ़कर 2000 रू. हो जाती है, जिसके फलस्वरूप वस्तु विशेष की माँग 10 से बढ़कर 15 इकाइयाँ हो जाती है। इस कल्पित उदाहरण में माँग की आय लोच निम्नानुसार ज्ञात की जाएगी :

$$e_i = \frac{\Delta Q}{\Delta y} / \frac{Y}{Q} \quad \text{Or} \quad \frac{5}{1000} \times \frac{1000}{10} = 0.5$$

यहाँ वस्तु की आय माँग की लोच धनात्मक है|

माँग की आय लोच के बारे में महत्त्वपूर्ण तथ्य (Important facts)

(i) माँग की आय लोच आय प्रभाव की गणितीय माप है।

(ii) सामान्य और विलासिता की वस्तुओं (Normal and luxury goods) की माँग की आय लोच धनात्मक (+) होती है क्योंकि उपभोक्ता की आय और इन वस्तुओं की माँग के बीच **धनात्मक /प्रत्यक्ष** सम्बन्ध पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता की आय बढ़ने पर इन वस्तुओं की माँग की बढ़ती है। उदाहरण के लिए, जैविक खाद्य पदार्थों (organic foods items) की माँग। ऐसी वस्तुओं को **श्रेष्ठ वस्तुएँ** भी कहा जाता है।

(iii) **गिफिन वस्तुओं** (Giffen goods) की माँग की आय लोच ऋणात्मक (-) होती है क्योंकि इनकी माँग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर घटती है। उदाहरणार्थ, मोटे कपड़ों और मोटे अनाज की माँग।

(iv) माँग कीआय लोच अधिक होने पर आय परिवर्तन का वस्तु की माँग पर प्रभाव अधिक तथा कम होने पर सापेक्षिक रूप से कम प्रभाव पड़ता है।

(v) यदि माँग की आय लोच शून्य है, तो उपभोक्ता की आय में परिवर्तन का वस्तु की माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उदाहरण के लिए, जीवन रक्षक वस्तुओं की आय लोच माँग प्रायः शून्य होती है।

6.3.3 माँग की तिरछी /आड़ी लोच (Cross elasticity of demand)

पिछली इकाई – 5 में आपने में तिरछी माँग के बारे में पढ़ा है और यह जाना होगा कि कुछ वस्तुएँ आपस में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित (स्थानापन्न अथवा पूरक) होती हैं। इसलिए ऐसी किसी वस्तु की माँग पर उसकी स्वयं की कीमत तथा उपभोक्ता की आय के अतिरिक्त उसकी सम्बन्धित वस्तुओं की कीमत का भी प्रभाव पड़ता है। **माँग की तिरछी लोच किसी वस्तु विशेष की कीमत में परिवर्तन का उससे सम्बन्धित दूसरी वस्तु की माँग में होने वाले परिवर्तन की गणितीय माप है।** दूसरे शब्दों में, एक वस्तु की कीमत परिवर्तन का उससे सम्बन्धित दूसरी वस्तु की माँग पर पड़ने वाले **'तिरछे प्रभाव'** (Cross effect) के गुणांक की माप है। **सूत्र रूप में** –

$$\text{माँग की तिरछी लोच} = \frac{\textbf{X} \text{ वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\textbf{Y} \text{ वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$e_x = \frac{\Delta Qx}{Qx} / \frac{\Delta Py}{Py} \quad \text{Or} \quad \frac{\Delta Qx}{\Delta Py} \times \frac{Py}{Qx}$$

यहाँ, ex माँग की तिरछी लोच, QX, X वस्तु की प्रारम्भिक माँग, ΔQx, नई/परिवर्तित माँग, Y प्रारंभिक आय तथा ΔY नई /परिवर्तित आय है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण - कॉफी (X वस्तु) की कीमत 40 रू. प्रति कप से बढ़कर 50 रू. हो जाती है, जिसके फलस्वरूप चाय (Y वस्तु) की माँग एक कस्बे में 400 कप से बढ़कर 500 कप हो जाती है। इस उदाहरण में माँग की तिरछी लोच निम्न प्रकार से ज्ञात की जाएगी :

$$\mathbf{e}_x = \frac{\Delta Qx}{\Delta Py} \times \frac{Py}{Qx} = \frac{100}{10} \times \frac{40}{400} = 1$$

यहाँ माँग की तिरछी लोच इकाई के बराबर और धनात्मक है, जिसका अर्थ है कि X और Y वस्तु एक दूसरे की स्थानापन्न है|

माँग की तिरछी लोच के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य (Important Facts)

(i) स्थानापन्न वस्तुओं की तिरछी लोच धनात्मक होती है और पूरक वस्तुओं की तिरछी लोच ऋणात्मक होती है।

(ii) यदि तिरछी लोच अनन्त है, तो दोनों वस्तुएँ पूर्णतया स्थानापन्न हैं - ऐसी वस्तुएँ वास्तविक जगत मे नहीं पायी जाती हैं।

(iii) तिरछी लोच का गुणांक जितना अधिक धनात्मक होता है, उतनी ही अधिक दोनों वस्तुओं में निकट की स्थानापन्नता होती है और विलोमशः।

(iv) तिरछी लोच का गुणांक जितना अधिक ऋणात्मक होता है, उन दोनों वस्तुओं की परस्पर पूरकता उतनी ही अधिक होती है।

(v) यदि तिरछी लोच का गुणांक शून्य है, तो दोनों वस्तुएँ एक दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र (Independent) या असम्बद्ध (Unrelated) हैं।

6.3.4 माँग की विज्ञापन लोच (Advertisement elasticity of demand)

आजकल व्यावसायिक इकाइयों को अपने उत्पाद को बेचने के लिए विज्ञापन पर काफी बड़ी रकम व्यय करनी पड़ती है। इसलिए इन्हें यह जानना आवश्यक हो जाता है कि बढ़े हुए विज्ञापन व्यय के कारण उसकी बिक्री में कितनी वृद्धि हुई है? माँग की विज्ञापन लोच के द्वारा हम यह जान सकते हैं कि वस्तु विशेष पर किये गये विज्ञापन की निश्चित राशि से उसकी बिक्री पर कितना प्रभाव पड़ा अर्थात् उसमें कितनी वृद्धि हुई? **माँग की विज्ञापन लोच वस्तु विशेष पर किये गये विज्ञापन व्यय में परिवर्तन का उसकी माँग में होने वाले परिवर्तनों की गणितीय माप है** अर्थात् यह **'विज्ञापन प्रभाव'** (Advertising Effect) की गणितीय माप है। दूसरे शब्दों में, माँग की विज्ञापन लोच वस्तु विशेष पर विज्ञापन व्यय में परिवर्तन के कारण उसकी माँग में होने वाली प्रतिक्रियात्मकता (responsiveness) की माप का गुणांक है। **सूत्र रूप में :**

$$\text{माँग की विज्ञापन लोच} = \frac{\text{वस्तु विशेष की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु विशेष पर किये गये विज्ञापन व्यय में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$\mathbf{e}_A = \frac{\Delta x}{x} / \frac{\Delta A}{A} \quad \text{Or} \quad \frac{\Delta x}{\Delta A} \times \frac{A}{x}$$

यहाँ e_A माँग की विज्ञापन लोच, Δx, x वस्तु की माँग में परिवर्तन, X, X वस्तु की प्रारम्भिक माँग, ΔA विज्ञापन व्यय में परिवर्तन तथा A प्रारंभिक विज्ञापन व्यय का प्रतीक है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण: माना कि एक कम्पनी एक वस्तु के विज्ञापन पर अपने खर्च को 50 लाख से बढ़ाकर 100 लाख रू0 कर देती है और इसके कारण उसकी बिक्री 10000 इकाईयों से बढ़कर 25000 हो जाती है। इस उदाहरण से माँग की विज्ञापन लोच इस प्रकार ज्ञात की जाएगी :

$$\mathbf{Ea} = \frac{\Delta X}{\Delta A} \times \frac{A}{X} = \frac{\mathbf{15000}}{\mathbf{50}} \times \frac{\mathbf{50}}{\mathbf{10000}} = \mathbf{1.5}$$

यहाँ, माँग की विज्ञापन लोच धनात्मक हैं और इकाई से अधिक है, जिसका आशय है कि विज्ञापन व्यय में वृद्धि की तुलना में वस्तु की माँग में वृद्धि डेढ़ गुणा अधिक हुई है।

माँग की विज्ञापन लोच के बारें में महत्त्वपूर्ण तथ्य (Important facts)

1. यदि विज्ञापन लोच धनात्मक है, तो वस्तु पर विज्ञापन व्यय करना लाभप्रद है और यदि यह ऋणात्मक है, तो विज्ञापन व्यय करना अनुत्पादक और निरर्थक है।
2. विज्ञापन लोच जितनी अधिक धनात्मक है, वस्तु पर विज्ञापन व्यय में वृद्धि करना उतना ही अधिक लाभप्रद है और विलोमशः जितनी कम है, विज्ञापन व्यय में वृद्धि करना उतना ही कम लाभप्रद है।
3. विज्ञापन में परिवर्तन भी माँग की विज्ञापन लोच के आधार पर ही किया जाता है। जब यह लोच धनात्मक होते हुए भी कम होती जाती है अथवा ऋणात्मक हो जाती है, तो उस विज्ञापन के स्थान पर नया विज्ञापन किया जाना चाहिये।

6.3.5 प्रतिस्थापन लोच (Elasticity of substitution)

प्रतिस्थापन लोच की अवधारणा उदासीनता वक्र विश्लेषण से सम्बन्धित है। एक उपभोक्ता अपने पूर्ववत् संतुष्टि-स्तर पर बने रहने के लिए एक दिये हुए मूल्य अनुपात में परिवर्तन के परिणामस्वरूप एक वस्तु को दूसरी वस्तु से जिस सीमा तक प्रतिस्थापित कर सकता है, उसकी गणितीय माप ही प्रतिस्थापन की लोच कहलाती है। **सूत्र रूप में :**

$$\text{प्रतिस्थापन लोच } (e_s) = \frac{\text{दो वस्तुओं की माँग के अनुपात में परिवर्तन}}{\text{दो वस्तुओं की कीमत के अनुपात में परिवर्तन}}$$

प्रतिस्थापन लोच ऋणात्मक होती है। यदि यह शून्य है, तो दोनों वस्तुएँ असम्बद्ध/स्वतंत्र होने के कारण प्रतिस्थापन के योग्य नहीं हैं। यदि प्रतिस्थापन की लोच अनन्त है, तो दोनों वस्तुएँ वास्तविक जगत में नहीं पायी जाती हैं। प्रतिस्थापन लोच जितनी अधिक होगी, दोनों वस्तुओं के बीच स्थानापन्नता की सीमा उतनी ही अधिक होगी और विलोमशः (Vice-versa)।

प्रतिस्थापन लोच का उपयोग उत्पादन के साधनों का एक दूसरे के स्थान पर प्रतिस्थापन के लिए किया जाता है।

स्व मूल्यांकन – प्रथम

माना कि एक उपभोक्ता की आय 10000 रू0 से बढ़कर 18000 रू0 हो जाती है, फलस्वरूप उसकी निरमा पाउडर की माँग 1 किलोग्राम से घटकर 0.5 किलोग्राम रह जाती है। माँग की आय लोच ज्ञात कीजिये और उसके आधार पर यह समझिए कि निरमा पाउडर किस प्रकार की वस्तु है?

6.4 माँग की कीमत लोच की श्रेणियाँ/अंश/ मात्राएँ (Degrees of Price Elasticity of Demand)

कीमत में होने वाले परिवर्तनों का सभी वस्तुओं की माँग मात्राओं पर पड़ने वाला प्रभाव सदैव समान नहीं होता है। कीमत परिवर्तन का कुछ वस्तुओ की माँग मात्रा पर प्रभाव अधिक, तो कुछ वस्तुओं की माँग मात्रा पर कम प्रभाव पड़ता है। इस बात का ज्ञान हमें माँग की लोच की श्रेणियाँ /अंश से होता है। माँग की कीमत लोच की अग्रांकित पाँच श्रेणियाँ हो सकती हैं :

1. **पूर्णतया लोचदार माँग (Perfectly elastic demand)** : किसी वस्तु की कीमत में अत्यन्त सूक्ष्म (कुछ अर्थवेत्ताओं के अनुसार कीमत में परिवर्तन न होने पर भी) परिवर्तन होने पर उस वस्तु की माँग में असीमित परिवर्तन हो जाता है, तो इसे पूर्णतया लोचदार माँग कहते हैं। माँग की कीमत लोच की यह श्रेणी वास्तविक जगत में नहीं पायी जाती है। इस प्रकार की माँग की लोच अनंत (Infinite) होती है। इसे **रेखाचित्र संख्या 6.1** द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

रेखाचित्र संख्या 6.1

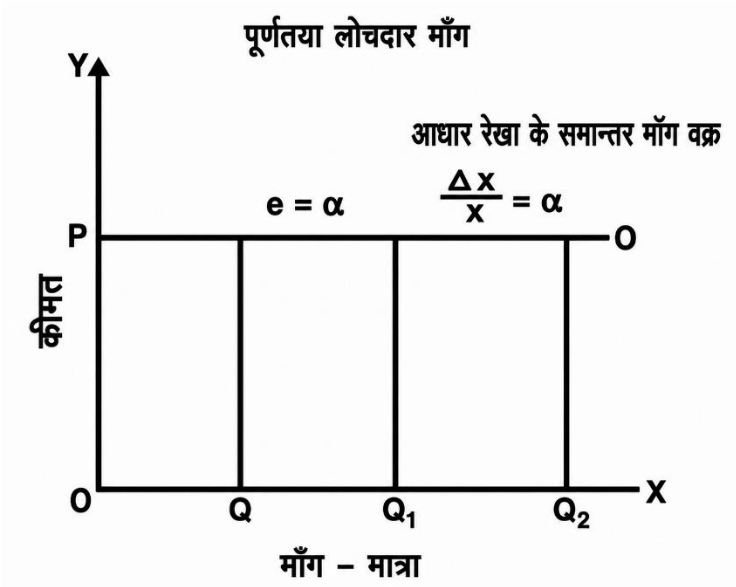

3. **अत्यधिक/सापेक्षतया लोचदार माँग (Highly/Relatively elastic demand) :** जब किसी वस्तु की माँग मात्रा में होने वाला आनुपातिक/प्रतिशत परिवर्तन उसकी कीमत के आनुपातिक/प्रतिशत परिवर्तन से अधिक होता है, तो वस्तु की माँग अत्यधिक लोचदार होती है। उदाहरण के लिये, कार की कीमत 10 प्रतिशत कम हो जाने के कारण उसकी क्रय की जाने वाली मात्रा 20 प्रतिशत बढ़ जाती है, तो कार की माँग की लोच इकाई से अधिक (20%/10% = 2) होगी। सामान्यतया **विलासिता की वस्तुओं की माँग की लोच सापेक्षतया लोचदार होती है।** अत्यधिक लोचदार माँग को **रेखाचित्र संख्या 6.2** द्वारा समझा जा सकता है।

रेखाचित्र संख्या - 6.2

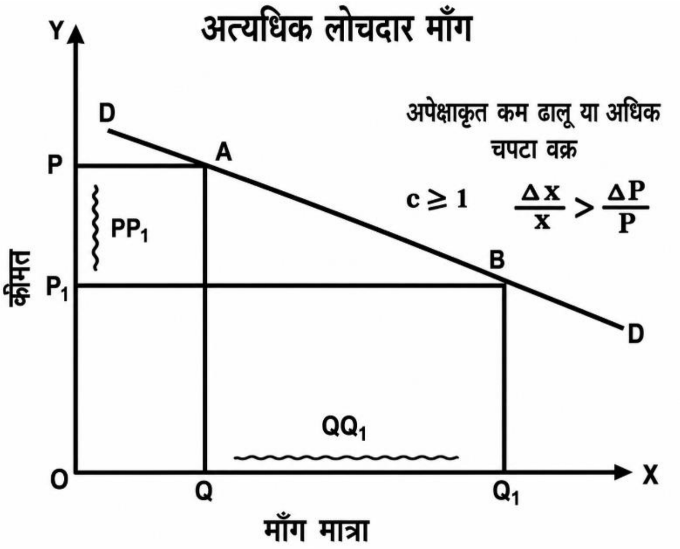

4. **लोचदार माँग/इकाई के बराबर माँग की लोच (Elastic demand/unitary elasticity of demand):** जब किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँग-मात्रा में समानुपाती (समान प्रतिशत) परिवर्तन होता है, तो माँग की लोच इकाई के बराबर होती है। सामान्यतया **आरामदायक वस्तुओं की माँग की लोच इकाई के बराबर होती है**। उदाहरण के लिये, यदि किसी वस्तु की कीमत 10 प्रतिशत कम हो जाती है, परिणामस्वरूप उसकी माँग मात्रा 10 प्रतिशत बढ़ जाती है, तो वस्तु की माँग की लोच इकाई के बराबर (10%/10% = 1) होगी। ऐसी स्थिति में माँग वक्र OX तथा OY अक्षों पर 45 डिग्री का कोण बनाता है। इसे **रेखाचित्र संख्या 6.3** द्वारा दर्शाया गया है।

रेखाचित्र संख्या - 6.3

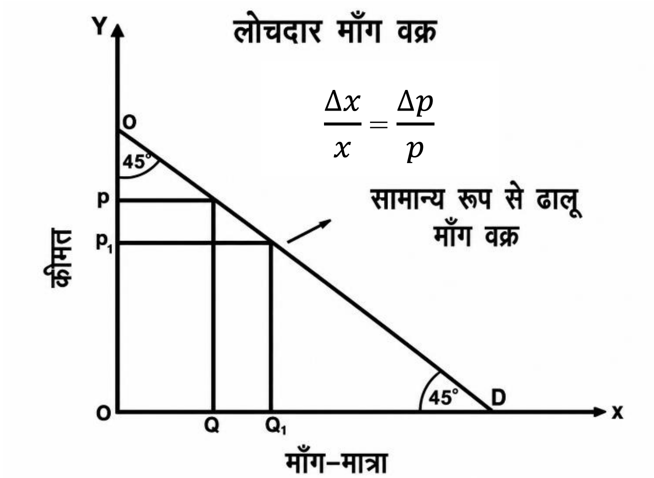

5. **अत्यधिक/सापेक्षतया बेलोचदार माँग (Highly/Relative inelastic demand) :** जब किसी वस्तु की कीमत की तुलना में उसकी माँग मात्रा में होने वाला आनुपातिक/प्रतिशत परिवर्तन कम होता है, तो माँग की लोच सापेक्षतया बेलोचदार होती है। सामान्यतया **अनिवार्य वस्तुओं की माँग की लोच अत्यधिक बेलोचदार अथवा इकाई से कम होती है**। उदाहरणार्थ, यदि गेहूँ की कीमत 20 प्रतिशत कम हो जाती है और

इस कारण से इसकी माँग 5 प्रतिशत बढ़ जाती है, तो गेहूँ की माँग की लोच इकाई से कम (5%/20% = 0.25) होगी। इस स्थिति को **रेखाचित्र संख्या 6.4** के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है।

रेखाचित्र संख्या 6.4

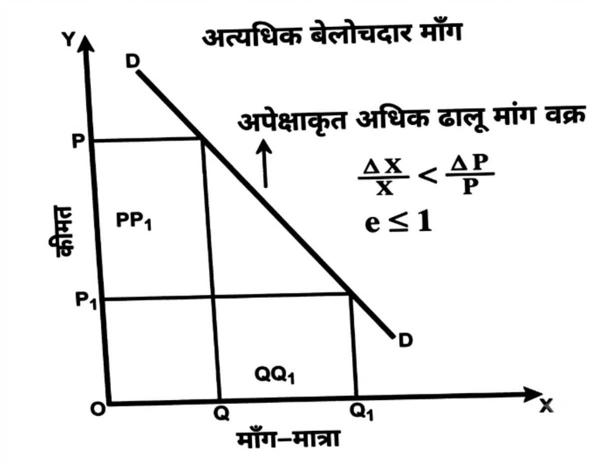

5. **पूर्णतया बेलोचदार माँग (Perfectly inelastic demand):** जब किसी वस्तु की कीमत में अत्यधिक परिवर्तन हो जाने के उपरान्त भी उसकी माँग मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है, तो ऐसी स्थिति में वस्तु की माँग की लोच पूर्णतया बेलोचदार होती है अर्थात **वस्तु की माँग पूर्णतया कीमत निरपेक्ष होती है।** माँग की लोच की यह श्रेणी वास्तविक जगत में नहीं पायी जाती है। उदाहरण के लिये, जब किसी वस्तु की कीमत में अत्यधिक कमी अथवा वृद्धि होने के बावजूद भी उसकी माँग में तनिक भी परिवर्तन नहीं होता है, तो माँग की लोच शून्य होती है। इस स्थिति को **रेखाचित्र संख्या 6.5** द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र संख्या - 6.5
पूर्णतया बेलोचदार माँग

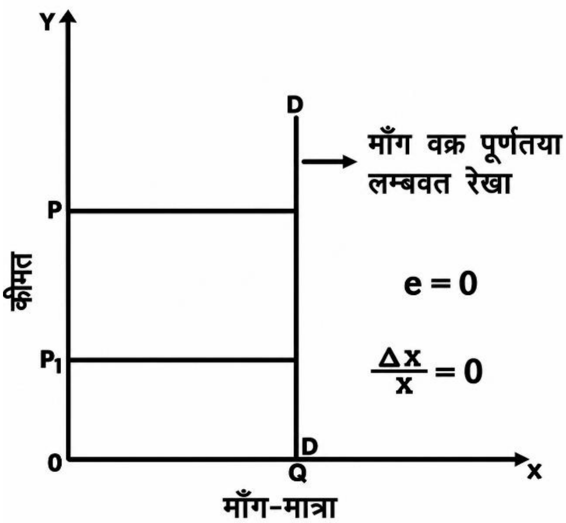

माँग की लोच की श्रेणियाँ एक दृष्टि में (Degrees of Elasticity of Demand at a Glance)

क्र. स.	कीमत में प्रतिशत/आनुपातिक परिवर्तन	माँग-मात्रा में प्रतिशत/आनुपातिक परिवर्तन	माँग की लोच की श्रेणी
1	शून्य / तनिक परिवर्तन	अनंत परिवर्तन	$e=\alpha$
2	कम परिवर्तन	अपेक्षाकृत अधिक परिवर्तन	अत्यधिक लोचदार $e>1$
3	समान परिवर्तन	समान परिवर्तन	लोचदार/इकाई के बराबर $e=1$
4	अधिक परिवर्तन	अपेक्षाकृत कम परिवर्तन	अत्यधिक बेलोचदार $e<1$
5	अत्यधिक/अनंत परिवर्तन	शून्य परिवर्तन	पूर्णतया बेलोचदार $e=0$

रेखाचित्र संख्या 6.6 में माँग की लोच की समस्त श्रेणियों को आसान समझ की दृष्टि से एक साथ प्रदर्शित किया गया है।

रेखाचित्र संख्या - 6.6

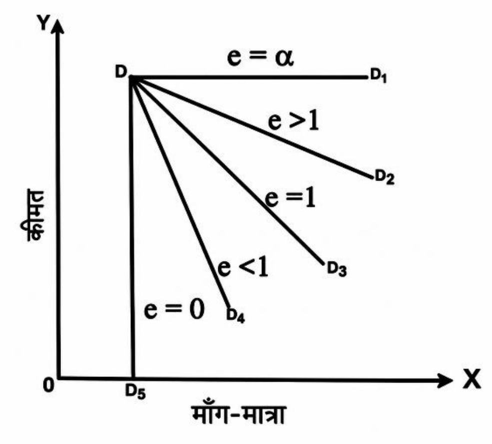

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

माना कि x वस्तु की कीमत 8 रू. से बढ़कर 10 रू. हो जाती है, परिणामस्वरूप y वस्तु की माँग 200 इकाइयों से घटकर 120 रह जाती है। उक्त सूचना के आधार पर माँग की तिरछी लोच ज्ञात कीजिए और इस आधार पर यह समझने की चेष्टा कीजिए की x तथा y वस्तुओं की प्रकृति क्या है?

6.5 सारांश (Summary)

माँग की लोच वस्तु की कीमत में एक निश्चित परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी माँग मात्रा में होने वाले परिवर्तन की मात्रा अथवा दर को बताती है। यह वस्तु की कीमत में एक निश्चत परिवर्तन के कारण उसकी माँग मात्रा में होने वाली प्रतिक्रियात्मकता की गणितीय माप है। प्रो. बोल्डिंग ने इसे प्रतिशत परिवर्तन तथा श्रीमती रोबिन्सन ने इसे आनुपातिक परिवर्तन केआधार पर मापने के लिये अपने सूत्र प्रस्तुत किये हैं। माँग की लोच मुख्यतः तीन प्रकार की होती है - माँग की कीमत लोच, माँग की आय लोच तथा माँग की तिरछी लोच। आधुनिक युग में अर्थशास्त्री विज्ञापन लोच को भी महत्त्वपूर्ण मानने लगे हैं क्योंकि व्यवसाय को अपने उत्पादों को बेचने के लिये विज्ञापन पर भारी व्यय करना पड़ता है। माँग की कीमत लोच कीमत प्रभाव की गणितीय माप है। माँग की आय लोच आय प्रभाव की गणितीय माप है| माँग की तिरछी लोच तिरछे प्रभाव (स्थानापन्न प्रभाव एवं पूरक प्रभाव) की गणितीय माप है, तथा विज्ञापन लोच विज्ञापन प्रभाव की गणितीय माप है। माँग की कीमत लोच का गुणांक प्रायः ऋणात्मक होता है। माँग की आय लोच का गुणांक श्रेष्ठ वस्तुओं के संदर्भ में धनात्मक तथा गिफिन और निकृष्ट वस्तुओं के संदर्भ में ऋणात्मक होता है। स्थानापन्न वस्तुओं के संदर्भ में

माँग की तिरछी लोच धनात्मक तथा पूरक वस्तुओं के संदर्भ में यह ऋणात्मक होती है। माँग की लोच की पांच श्रेणियां होती हैं जो इस प्रकार हैं - पूर्णतया लोचदार माँग, अत्यधिक लोचदार माँग, इकाई के बराबर लोचदार माँग, अत्यधिक बेलोचदार माँग और पूर्णतया बेलोचदार माँग।

6.6 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जानने में सक्षम हो गये होंगे कि:

- मांग की लोच की अवधारणा क्या है और यह क्यों आवश्यक है?
- मांग की लोच के विभिन्न प्रकार कौन-कौनसे हैं?
- मांग की लोच की पांच श्रेणियाँ कौन-कौनसी हैं और इन्हें कैसे समझा जा सकता है?
- विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की मांग की लोच की श्रेणियाँ कैसी होती हैं?

6.7 शब्दावली (Glossary)

- **माँग की कीमत लोच (Price elasticity of demand)** : यह वस्तु की कीमत में एक निश्चित परिवर्तन होने के कारण उसकी माँग मात्रा में होने वाले परिवर्तन की गणितीय माप है। इसे माँग–मात्रा के प्रतिशत/आनुपातिक परिवर्तन में कीमत के प्रतिशत/आनुपातिक परिवर्तन का भाग देकर ज्ञात किया जाता है।
- **माँग की आय लोच (Income elasticity of demand) :** यह उपभोक्ता की आय में होने वाले परिवर्तनों का वस्तु विशेष की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव की गणितीय माप है अर्थात यह आय प्रभाव की गणितीय माप है।
- **माँग की तिरछी/आड़ी लोच (Cross elasticity of demand) :** माँग की इस लोच द्वारा एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन का उससे संबंधित दूसरी वस्तु की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव (तिरछा प्रभाव) को ज्ञात किया जाता है। तिरछा प्रभाव स्थानापन्न वस्तुओं के संदर्भ में स्थानापन्न प्रभाव और पूरक वस्तुओं के संदर्भ में पूरक प्रभाव कहलाता है।
- **माँग की विज्ञापन लोच (Advertisement elasticity of demand) :** यह एक व्यावसायिक इकाई द्वारा वस्तु विशेष पर किये जाने विज्ञापन व्यय में होने वाले परिवर्तनों का उसकी माँग पर पड़ने वाले प्रभाव की गणितीय माप है। इसे विज्ञापन प्रभाव कहते हैं।
- **प्रतिस्थापन लोच (Substitution elasticity) :** एक उपभोक्ता अपने वर्तमान संतुष्टि स्तर पर बने रहने के लिए एक निश्चित मूल्य अनुपात में परिवर्तन के परिणामस्वरूप एक वस्तु को दूसरी वस्तु से जिस सीमा तक प्रतिस्थापित करता है, उसकी गणितीय माप ही प्रतिस्थापन लोच कहलाती है|

6.8 स्व-परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघुरात्मक प्रश्न (Very - Short Answer Questions)

1. माँग की कीमत लोच से आपका क्या आशय है?
2. पूरक वस्तुओं की माँग की तिरछी लोच कैसी होती है?
3. गिफिन वस्तुओं की माँग की आय लोच की प्रकृति कैसी होती है?
4. स्थानापन प्रभाव से आप क्या समझते हैं?

5. निम्नांकित वस्तुओं की माँग की कीमत लोच की श्रेणी बताइए -
(i) जीवन रक्षक दवा, (ii) गेहूँ (iii) कार; तथा (iv) कूलर

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. माँग की कीमत लोच की विभिन्न श्रेणियों को उदाहरण एवं रेखाचित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए।
2. माँग की लोच के विभिन्न प्रकारों को विस्तारपूर्वक समझाइए।

6.9 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- Adhikari M. : Managerial Economics, Khosla Educational Publishers, New Delhi, 2016.
- Misra and Puri : Managerial Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2018.
- Mote, Paul & Gupta : Managerial Economics-concepts & Cases, TataMc-Graw Hill Publishing Company Ltd., Mumbai, 2010

6.10 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Mathur, N.D. : Managerial Economics, Shivam Book House (P.) Ltd., Jaipur, 2010.
- Agrawal & Deo : Business Economics, RBD, Jaipur, 2010.
- सिंह एवं त्यागी : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2009.

6.11 वेब संसाधन लिंक (Web Resources/Links)

- https://www.investopedia.com/terms/e/elasticity.asp
- https://www.investopedia.com/ask/answers/012915/what-difference-between-inelasticity-and-elasticity-demand.asp
https://www.google.com/url?sa=t&rct=j&q=&esrc=s&source=web&cd=&cad=rja&uact=8&ved=2ahUKEwi7tai_3OP4AhV0xTgGHV4rDh8QFnoECB0QAw&url=https%3A%2F%2Fwww.extension.iastate.edu%2Fagdm%2Fwholefarm%2Fhtml%2Fc5-207.html&usg=AOvVaw3Zg-eEIld5FgoCZac-w9q9

इकाई - 7

माँग की लोच को मापने की विधियाँ
(Methods of Measuring Elasticity of Demand)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 माँग की कीमत लोच को मापने की विधियाँ

7.3 माँग की लोच के निर्धारक तत्त्व/माँग की लोच में भिन्नता के कारण

7.4 माँग की लोच के प्रबंधकीय उपयोग / व्यावहारिक महत्त्व

7.5 सारांश

7.6 अधिगम परिणाम

7.7 शब्दावली

7.8 स्व-परख प्रश्न

7.9 सन्दर्भ एवं ग्रन्थ सूची

7.10 अन्य पाठन सामग्री

7.11 वेब संसाधन / लिंक

7.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के पठन के पश्चात आप :

- माँग की लोच को मापने की विभिन्न विधियों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे|
- माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्वों के बारे में जान सकेंगे|
- माँग की लोच के प्रबंधकीय निर्णयों में महत्त्व के बारे में व्यावहारिक समझ उत्पन्न कर सकेंगे|

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

माँग की लोच का आर्थिक विश्लेषण एवं प्रबंधकीय निर्णयों में विशेष महत्त्व है क्योंकि इसकी गणना के द्वारा हम यह पता लगा सकते हैं कि किसी वस्तु की कीमत में एक निश्चित परिवर्तन होने पर उसकी माँग-मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ेगा? और तदनुरूप एक प्रबंधक अपने उत्पाद का उत्पादन नियोजन कर सकता है| माँग की लोच के गुणांक के आधार पर ही एक फर्म अपनी वस्तु की कीमतों में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) का निर्णय करती है| माँग की लोच, जैसा कि आप पिछली इकाई 6 में पढ़ चुके है, वस्तु की कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उसकी माँग – मात्रा में होने वाले परिवर्तन की

गणितीय माप है| इस इकाई में हम माँग की लोच को मापने की विभिन्न विधियों के साथ – साथ, माँग की लोच को प्रभावित करने वाले घटकों तथा माँग की लोच का प्रबंधकीय निर्णयों में महत्त्व के बारे में अध्ययन करेंगे|

7.2 माँग की कीमत लोच को मापने की विधियाँ (Methods of Measuring Price Elasticity of Demand)

विभिन्न अर्थवेत्ताओं के द्वारा माँग की कीमत लोच को मापने की अग्रांकित विधियों का प्रतिपादन एवं प्रयोग किया गया है :

1. **फ्लक्स की प्रतिशत विधि (Flux's Percentage Method) :** जैसा कि नाम से ही विदित है कि माँग की लोच को मापने की इस विधि का प्रतिपादन फ्लक्स द्वारा किया गया है| इस विधि के अनुसार माँग की लोच मापने के लिए **वस्तु की माँग – मात्रा के प्रतिशत परिवर्तन में उसकी कीमत के प्रतिशत परिवर्तन का भाग दिया जाता है और इस प्रकार जो भागफल (गुणांक) प्राप्त होता है, वही माँग की लोच की माप होती** है| **सूत्र के रूप में :-**

$$\text{माँग की लोच (ep)} = \frac{\text{माँग–मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन (\% change in Q.D.)}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन (\% change in price)}}$$

   (i) **इकाई से अधिक लोच (ep>I) :** यदि वस्तु की माँग - मात्रा का प्रतिशत परिवर्तन उसकी कीमत के प्रतिशत परिवर्तन से अधिक होता है, तो माँग की लोच अत्यधिक लोचदार अथवा इकाई से अधिक होती है| माना कि वॉशिंग मशीन की कीमत में 10% कमी होने के कारण उसकी माँग – मात्रा 20% बढ़ जाती है, तो माँग की लोच इकाई से अधिक (20%/10%=2) होगी| विलासिता की वस्तुओं की माँग अत्यधिक लोचदार होती है|

   (ii) **इकाई के बराबर लोच (ep=1) :** यदि वस्तु की कीमत और उसकी माँग – मात्रा में होने वाला प्रतिशत परिवर्तन समान है, तो माँग की लोच लोचदार अथवा इकाई के बराबर होगी| उदाहरणार्थ, यदि कूलर की कीमत में 10% कमी होने के कारण इसकी माँग – मात्रा में भी 10% वृद्धि होती है, तो माँग की लोच इकाई के बराबर (10%/10%=1) होगी| आरामदायक वस्तुओं की माँग की लोच इकाई के बराबर होती है|

   (iii) **इकाई से कम लोच (ep<1) :** यदि वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन की तुलना में माँग – मात्रा में होने वाला प्रतिशत परिवर्तन कम है, तो ऐसी स्थिति में माँग की लोच बेलोचदार अथवा इकाई से कम होगी| उदहारण के लिए, चाय की कीमत में 20% वृद्धि होने के कारण इसकी माँग – मात्रा 10% घट जाती है, तो माँग की लोच इकाई से कम (10%/20%=0.5) होगी| अनिवार्य वस्तुओं की माँग की लोच प्रायः बेलोचदार होती है|

2. **मार्शल की कुल व्यय विधि (Marshall's Total Outlay Method) :** माँग की लोच को मापने की इस विधि का प्रतिपादन प्रसिद्ध ब्रिटिश अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल ने किया था| इस विधि को मार्शल की **इकाई रीति अथवा कुल आगम विधि (Total revenue method)** के नाम से भी जाना जाता है| इस विधि के अनुसार माँग की लोच ज्ञात करने के लिए वस्तु की कीमत परिवर्तन के पहले और कीमत परिवर्तन के पश्चात उस पर किये

जाने वाले कुल व्यय की तुलना की जाती है| इस विधि के अनुसार व्यव्हार में माँग की लोच की निम्नांकित तीन श्रेणियाँ पायी जाती है :

(i) **इकाई से अधिक लोच (ep>I) :** जब वस्तु की कीमत में होने वाला परिवर्तन और उस पर किये जाने वाले कुल व्यय में **परिवर्तन विपरीत दिशा में** होता है, तो माँग की लोच इकाई से अधिक होती है| दूसरे शब्दों में वस्तु की कीमत कम होने पर उस पर किये जाने वाला व्यय बढता है और कीमत में वृद्धि होने पर कुल व्यय कम होता है, तो माँग की कीमत लोच सापेक्षतया लोचदार होती है|

(ii) **इकाई के बराबर लोच (ep=1) :** यदि वस्तु की कीमत में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होने पर भी उस पर किये जाने वाले कुल व्यय में कोई परिवर्तन नहीं होता है, तो माँग की लोच इकाई के बराबर होती है| दूसरे शब्दों, में वस्तु की कीमत परिवर्तन का उस पर किये जाने वाले कुल व्यय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है|

(iii) **इकाई से कम लोच (ep<1) :** यदि वस्तु की कीमत में परिवर्तन और उस पर किये जाने वाले कुल व्यय परिवर्तन में **प्रत्यक्ष अथवा धनात्मक सम्बन्ध** पाया जाता है, तो माँग की लोच इकाई से कम होती है अर्थात वस्तु की कीमत कम होने पर कुल व्यय बढ़ता है और कीमत बढ़ने पर कुल व्यय बढ़ता है|

उपर्युक्त तीनो स्थितियों को तालिका संख्या 7.1 के द्वारा एक कल्पित उदहारण से समझाया गया है|

तालिका संख्या 7.1

कीमत परिवर्तन और कुल व्यय परिवर्तन में सम्बन्ध एवं माँग की लोच

कीमत प्रति इकाई (रु. में)	**इकाई से अधिक लोच (ep>1)**		**इकाई के बराबर लोच (ep=1)**		**इकाई से कम लोच (ep<1)**	
	माँग–मात्रा	**कुल व्यय (रु. में)**	**माँग–मात्रा**	**कुल व्यय (रु. में)**	**माँग–मात्रा**	**कुल व्यय (रु. में)**
1	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**
2	**45**	**90**	**50**	**100**	**60**	**120**
3	**25**	**75**	**33.33**	**100**	**50**	**150**

मार्शल की कुल व्यय विधि को रेखाचित्र संख्या 7.1 द्वारा निरुपित किया गया है|

रेखाचित्र संख्या – 7.1

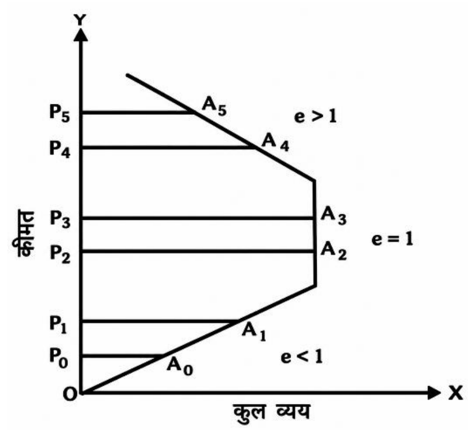

3. **माँग की बिंदु लोच विधि (Point Elasticity of Demand Method) :** जब माँग वक्र के **किसी बिंदु विशेष पर** माँग की लोच ज्ञात की जाती है, तो इसे बिंदु लोच कहते है| बिंदु लोच ज्ञात करना तब अधिक उपयुक्त और तर्कसंगत होता है, जब वस्तु के मूल्य में परिवर्तन अत्यंत सूक्ष्म होते हैं और इस वजह से माँग – मात्रा में परिवर्तन बहुत कम होते हैं| इस कारण से माँग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर माँग की लोच भिन्न – भिन्न होती है| माँग की बिंदु लोच ज्ञात करने की निम्नांकित दो विधियाँ है : (i) ज्यामितीय विधि (ii) चलन कलन विधि|

(i) ज्यामितीय विधि (Geometrical Method) : इस विधि द्वारा माँग की बिंदु लोच निम्नांकित सूत्र द्वारा ज्ञात की जाती है :

$$\text{माँग की बिंदु लोच} = \frac{\text{बिंदु विशेष से माँग वक्र का निचला भाग (LS)}}{\text{बिंदु विशेष से माँग वक्र का ऊपरी भाग (US)}}$$

उपर्युक्त सूत्र का निम्नलिखित दो स्थितियों में प्रयोग किया जाता है :

(अ) जब माँग वक्र एक सरल रेखा के रूप में हो (Linear/Straight Line Demand Curve) :

रेखाचित्र संख्या 7.2

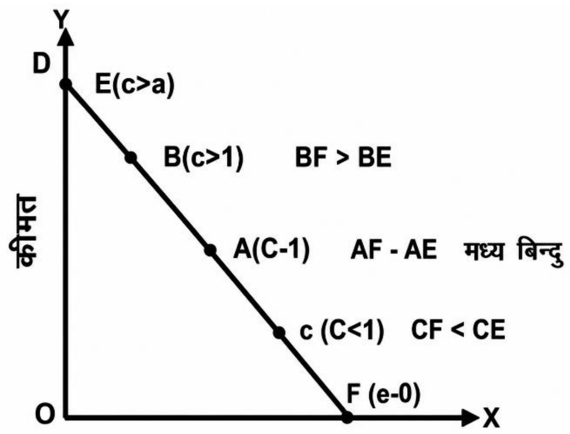

माँग मात्रा

रेखाचित्र संख्या 7.2 में माँग वक्र एक सरल रेखा के रूप में है| माँग की बिंदु लोच ज्ञात करने हेतु दिए गए उपर्युक्त सूत्र का प्रयोग करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरल रेखीय माँग वक्र के मध्य बिंदु पर लोच इकाई के बराबर होती है, मध्य बिन्दु से ऊपर के प्रत्येक बिंदु पर यह इकाई से अधिक और मध्य बिंदु से नीचे के प्रत्येक बिंदु पर इकाई से कम होती है|

(ब) जब माँग वक्र वक्राकार हो (Curvature Demand Curve) : यदि माँग वक्र वक्र की आकृति लिए अर्थात वक्राकार (Curvature) हो, तो माँग की बिंदु लोच ज्ञात करने का सूत्र तो समान रहता है, किन्तु ऐसी स्थिति में **माँग वक्र के जिस बिंदु विशेष की लोच ज्ञात करनी है उस पर एक स्पर्श रेखा** (Tangent line) **खींची जाती है**, ताकि उस बिंदु विशेष पर माँग वक्र एक सरल रेखा के रूप में परिवर्तित हो जाये| फिर सरल माँग वक्र की भांति समान सूत्र का प्रयोग करते हुए माँग की बिंदु लोच ज्ञात कर ली जाती है|

रेखाचित्र संख्या – 7.3

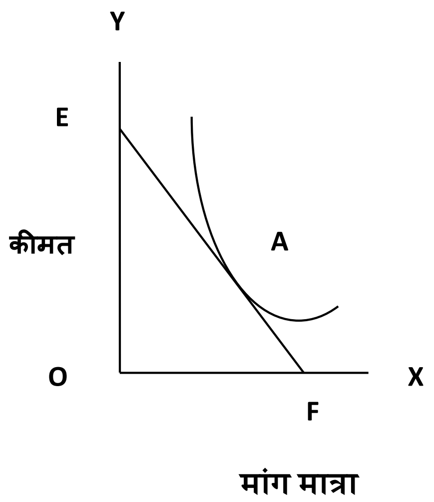

रेखा चित्र 7.3 में DD माँग वक्र वक्राकार है और हमें इसके A बिंदु पर लोच ज्ञात करनी है, तो इस बिंदु पर एक स्पर्श रेखा (EF) खींची जाती है, जिससे यहाँ माँग वक्र एक सरल रेखा के रूप में परिवर्तित हो जाता है और फिर उपर्युक्त वर्णित सूत्र के द्वरा माँग की लोच निम्न प्रकार ज्ञात कर ली जाती है :

$$\textbf{A बिंदु पर माँग की लोच} = \frac{\textbf{A बिंदु से माँग वक्र का निचला भाग}}{\textbf{A बिंदु से माँग वक्र का ऊपरी भाग}} = \frac{AF}{AE}$$

यदि माँग वक्र के किसी अन्य बिंदु पर लोच ज्ञात करनी है, तो इस पर एक अलग स्पर्श रेखा खींचनी पड़ेगी और समान सूत्र द्वारा लोच ज्ञात कर ली जाती है|

चलन – कलन विधि (Differential Calculus Method) : माँग वक्र पर बिंदु लोच ज्ञात करने के लिए इस विधि को अधिक वैज्ञानिक माना जाता है| इसमें लोच ज्ञात करने का सूत्र है :

$$e = \frac{dx.p}{dp.x} = \frac{\Delta x}{\Delta p} \text{ as } \Delta p > 0 \text{ अर्थात् } \Delta p \text{ शून्य की तरफ जाने पर}$$

$$\frac{\Delta x}{\Delta p} = \frac{\Delta x}{\Delta p}$$

4. **माँग की चाप लोच विधि (Arc Elasticity of Demand Method) : जब माँग वक्र के किसी निश्चित भाग पर अथवा दो भिन्न बिंदुओं के बीच माँग की लोच ज्ञात की जाती है, तो इसे चाप लोच कहते हैं|** दो बिंदुओं के बीच की दूरी को भाग अथवा चाप कहते हैं| उदहारण के लिए, रेखाचित्र 7.4 में DD माँग वक्र पर A और B बिंदुओं के बीच की दूरी चाप कहलाती है और इसके बीच की लोच को चाप लोच कहते हैं| वास्तव में, **चाप लोच माँग वक्र के दो बिन्दुओं के बीच मध्य बिंदु पर माँग की लोच की माप होती है** (Arc elasticity is a measure of elasticity of mid – point of an arc of a demand curve) और इसीलिए यह सम्पूर्ण

चाप से गुजरने वाली रेखाओं की औसत होती है| ध्यान रहे कि माँग वक्र के दो बिन्दुओं से अनेक माँग रेखाएँ खींची जा सकती है|

रेखा चित्र संख्या 7.4

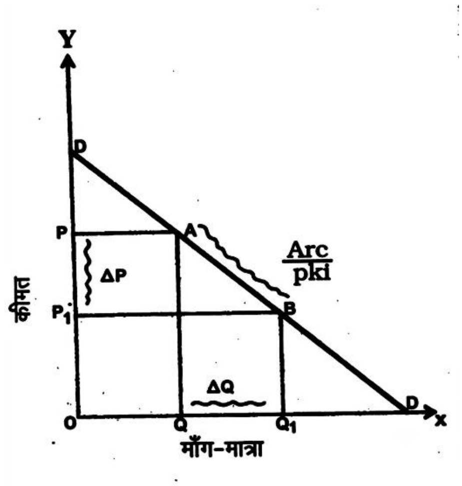

चाप लोच ज्ञात करने की आवश्यकता (Need for calculating Arc Elasticity) : किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के कारण जब हम माँग – मात्रा में परिवर्तन की माप करते हैं, तो सामान्य रूप में सम्पूर्ण माँग रेखा की लोच ज्ञात की जाती है| किन्तु इससे वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता है क्योंकि माँग वक्र के भिन्न – भिन्न क्षेत्रों में लोच अलग – अलग हो सकती है| जैसा कि रेखा चित्र 7.5 (A) तथा (B) से स्पष्ट है| इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि माँग वक्र के भिन्न-भिन्न भागों की लोच अलग से ज्ञात की जाये|

रेखा चित्र संख्या 7.5

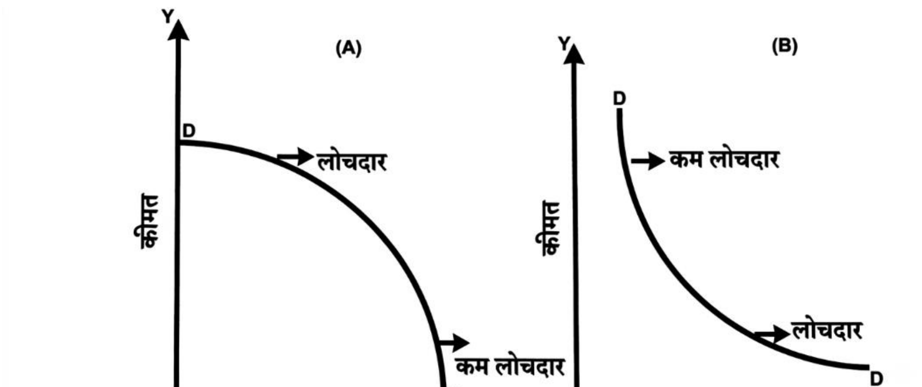

चाप लोच ज्ञात करने के सूत्र : (Formula of Calculating Arc Elasticity) :

(i) पहला सूत्र (First Formula) :

$$\text{माँग की चाप लोच} = \frac{\text{माँग मात्रा में अनुपातिक परिवर्तन } (\Delta x/x)}{\text{कीमत में अनुपातिक परिवर्तन } (\Delta p/p)}$$

$$ep = \frac{\Delta x}{x} \times \frac{p}{\Delta p}$$

उदहारण द्वारा स्पष्टीकरण: निम्नांकित सूत्र के आधार पर माँग वक्र के A तथा B बिंदु के चाप पर लोच ज्ञात करनी है:

	कीमत (रु. में)	माँग - मात्रा (किलोग्राम में)
A बिंदु पर	4	16
B बिंदु पर	3	25

(अ) यदि हम माँग वक्र के A बिंदु से B बिंदु पर जाते हैं, तो उक्त सूत्र में उदहारण की संख्याओं को प्रतिस्थापित करने पर चाप लोच निम्नानुसार -2.25 आती है|

$$ep = \frac{9}{16} \times \frac{4}{-1} = -2.25$$

(व) यदि हम माँग वक्र के B बिंदु से A बिंदु पर जाते हैं, तो उक्त सूत्र से चाप लोच निम्नानुसार -1.08 आती है :

$$ep = \frac{-9}{25} \times \frac{3}{1} = -1.08$$

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि समान कीमत परिवर्तन क्षेत्र में प्रारंभिक बिंदु बदल जाने से माँग की चाप लोच भिन्न-भिन्न क्यों आती है? इस प्रश्न का उत्तर इस बात में निहित है कि A और B बिंदुओं पर प्रारंभिक कीमत और माँग-मात्रा (Initial price and Quantity demanded) अलग-अलग हैं, परिणामस्वरूप इनके आनुपातिक परिवर्तन बदल जाते हैं| प्रारंभिक चयन की दुविधा से बचने के लिए अर्थशास्त्री दोनों कीमतों तथा दोनों मात्राओं का औसत (Arithmetic mean) निकाल लेते हैं, जो वास्तव में चाप लोच की सही अवधारणा है| निम्नलिखित दूसरा सूत्र इसी तथ्य पर आधारित है|

(ii) दूसरा सूत्र (Second Formula) :

$$ep = \frac{X - X1/X + X1}{P - P1/P + P1} \quad OR = \frac{\Delta X/X + X1}{\Delta P/P + P1}$$

यहाँ X प्रारंभिक मात्रा, X_1 नयी मात्रा, P प्रारंभिक कीमत, तथा P_1 नयी कीमत है|

उक्त सूत्र में उदाहरण में दिए गए अंकों को प्रतिस्थापित करने पर :

$$ep = \frac{16-25)/(16+25}{(4-3)/(4+3)} \quad or \quad \frac{(-9)/16+25}{1/7} \quad or \quad \frac{-9/41}{7/1} = 1.54$$

ज्ञातव्य है कि उक्त सूत्र से आप चाहे जिस बिंदु पर कीमत और माँग – मात्रा को प्रारंभिक माने, फिर भी माँग की लोच का गुणांक समान ही आएगा|

स्व मूल्यांकन – प्रथम

आप बिन्दु लोच और चाप लोच में अंतर समझने का प्रयास कीजिये और साथ ही में यह विचार कीजिये की इनको ज्ञात करने की आवश्यकता कब होती है?

7.3 माँग की लोच के निर्धारक तत्त्व/माँग की लोच में भिन्नता के कारण/माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Determinants of Elasticity of Demand / Causes of Difference in Elasticity of Demand/Factors Affecting the Elasticity of Demand)

माँग की लोच को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक निम्नांकित हैं :

1. **वस्तुओं के बीच स्थानापन्नता की सीमा (Extent of sustitutability between goods) :** वस्तुओं के बीच स्थानापन्नता की सीमा जितनी अधिक होती है, माँग की लोच उतनी ही अधिक होती है| एक वस्तु की जितनी अधिक स्थानापन्न वस्तुएँ होती है, उसकी माँग की लोच उतनी ही अधिक होती है, और विलोमशः कम होती है||
2. **वस्तु की प्रकृति (Nature of commodity) :** इस दृष्टि से अनिवार्य वस्तुओं की माँग कम लोचदार (जैसे अनाज, नमक आदि), आरामदायक वस्तुओं की माँग लोचदार तथा विलासिता की वस्तुओं की माँग अत्यधिक लोचदार (जैसे ए.सी., कार आदि) होती है|
3. **वस्तु के विविध उपयोग (Different uses of commodity) : प्रो० मार्शल** का मत है कि एक से अधिक प्रयोग वाली वस्तुओं की माँग की लोच अपेक्षाकृत अधिक होती है (जैसे चीनी, पानी, बिजली आदि) और इसके विपरीत, एक ही प्रयोग में काम आने वाली वस्तु (रेल इंजिन) की माँग कम लोचदार होती है|
4. **वस्तु के प्रयोग स्थगन की सम्भावना (Possibility of postponement of consumption) :** जिन वस्तुओं का प्रयोग भविष्य के लिए आसानी से टाला जा सकता है (विलासिता की वस्तुएँ) उनकी माँग की लोच अधिक होती है और इसके विपरीत, जिन वस्तुओं का प्रयोग टाला नहीं जा सकता (अनिवार्य वस्तुएँ) उनकी माँग की लोच कम होती है|
5. **उपभोक्ता का आय – स्तर (Income Level) :** अत्यधिक धनी और अत्यधिक निर्धन व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली वस्तुओं की माँग की लोच प्रायः कम होती है| मध्यम आय वर्ग के उपभोक्ताओं द्वारा उपयोग की जाने वाली वस्तुओं की माँग की लोच अपेक्षाकृत अधिक होती है, किन्तु एक सीमा के पश्चात आय स्तर में वृद्धि के साथ-साथ यह कम होती जाती है|
6. **वस्तु पर व्यय की मात्रा (Amount of expenditure) :** जिन वस्तुओं पर उपभोक्ता अपनी कुल आय का अपेक्षाकृत बड़ा भाग खर्च करता है (वॉशिंग मशीन, रंगीन टी.वी. आदि), उनकी माँग की लोच अपेक्षाकृत उन व्स्तुओं से अधिक होती है जिन पर वह कुल आय का बहुत कम भाग खर्च करता है (सुई, धागा, पेन, पेन्सिल आदि)|
7. **समय तत्त्व (Time element) : मार्शल** के अनुसार सामान्यतया अल्पकाल में वस्तुओं की माँग कम लोचदार और दीर्घकाल में अधिक लोचदार होती है|
8. **समाज में धन का वितरण (Distribution of wealth) : प्रो० टॉजिग** के मतानुसार समाज में धन के वितरण में जितनी अधिक असमानता होगी, माँग की लोच उतनी ही कम होती है और इसके विपरीत, धन का वितरण जितना समान होगा, माँग की लोच उतनी ही अधिक होगी|
9. **उपभोक्ता की आदत (Habit of consumer) :** यदि उपभोक्ता किसी वस्तु के उपयोग का आदि है, तो उस वस्तु की माँग की लोच कम लोचदार होती है| जैसे शराबी के लिए शराब की माँग| इसी प्रकार सामाजिक परम्पराओं/प्रथाओं के कारण काम में ली जाने वाली वस्तुओं की माँग भी कम लोचदार होती है|

10. **संयुक्त माँग (Joint Demand) :** पूरक वस्तुओं की माँग की लोच मुख्यतः प्रमुख वस्तु की माँग की लोच पर निर्भर करती है| उदाहरणार्थ, चाय के संदर्भ में चीनी और दूध की माँग की लोच चाय की माँग की लोच पर निर्भर करेगी|
11. **वस्तुओं का कीमत स्तर (Price level of goods) :** यदि वस्तु की माँग समाज की **सामूहिक माँग** है, तो ऊँची तथा नीची कीमतों पर कम लोचदार होती है और यदि वस्तु की माँग **वर्ग विशेष** की होती है, तो ऊँची कीमतों पर अधिक और नीची कीमतों पर कम लोचदार होती है|
12. **क्रेताओं की कीमत परिवर्तन की संभावना (Price change expectations of buyers) :** मंदीकाल और तेजीकाल में क्रेताओं के मन में कीमतों में क्रमशः गिरावट और वृद्धि की प्रत्याशा या आशंका रहती है, परिणामस्वरूप मंदीकाल में माँग की लोच कम और तेजीकाल में अधिक होती है|
13. **अन्य तत्त्व (Other Factors) :** उपभोग पर सरकारी नियंत्रण-राशनिंग के समय वस्तु की माँग की लोच कम होती है| घटिया/गिफिन वस्तुओं की माँग की लोच श्रेष्ठ वस्तुओं की तुलना में कम लोचदार होती है तथा वस्तु की किस्म या प्रकार – टिकाऊ वस्तुओं की माँग विनाशी वस्तुओं की अपेक्षा अधिक लोचदार होती है|

यहाँ यह स्पष्ट रूप से समझ लेना आवश्यक है कि किसी वस्तु की माँग की लोच उपर्युक्त वर्णित सभी तत्त्वों का संयुक्त परिणाम है, न कि किसी एक तत्त्व विशेष का|

7.4 माँग की लोच के प्रबंधकीय उपयोग/व्यावहारिक महत्त्व (Managerial Uses of Elasticity of Demand/Practical Importance)

माँग की लोच अवधारणा का सैद्धांतिक महत्त्व होने के अलावा व्यवहार में यह आर्थिक विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है| इसके व्यावहारिक महत्त्व को स्पष्ट करते हुए **लॉर्ड कीन्स** ने यह लिखा है कि "मार्शल की सबसे बड़ी देन माँग की लोच का सिद्धांत हैं| इसके अध्ययन के अभाव में कीमत तथा वितरण के सिद्धांतों की विवेचना संभव नहीं हैं|" माँग की लोच के महत्त्वपूर्ण प्रयोगों का विवेचन निम्नानुसार है :

1. **मूल्य सिद्धांत (Theory of Value) :** फर्म का साम्य सीमान्त आगम (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) द्वारा निर्धारित होता है तथा सीमान्त आगम और माँग की लोच में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है| अतः फर्म द्वारा अपने उत्पाद की कीमत निर्धारण में माँग की लोच का विशेष महत्त्व होता है, जिसे निम्नांकित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया गया है :
   - (i) **एकाधिकारी कीमत निर्धारण (Fixing Monopoly Price) :** एकाधिकारी अपने उत्पाद का मूल्य उसकी माँग के लोच के आधार पर निर्धारित करता है| अन्य बातों के यथावत रहने पर, वह वस्तु की लोच कम होने पर ऊँची कीमत तथा लोच अधिक होने पर नीची कीमत निर्धारित कर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है|
   - (ii) **कीमत विभेद (Price Discrimination):** एकाधिकारी अपनी कीमत विभेद नीति को माँग की लोच के आधार पर ही सफलतापूर्वक लागू कर सकता है| वह कम लोच वाले बाजार में अपनी वस्तु की कीमत ऊँची निर्धारित करता है और अधिक लोचदार बाजार में नीची कीमत रखता है| इसी प्रकार वह **राशिपातन** (Dumping) की नीति को भी माँग की लोच के आधार पर सफल बनाता हैं|
   - (iii) **संयुक्त पूर्ति वाली वस्तुएँ (Joint Supply Goods) :** ऐसी वस्तुओं का मूल्य निर्धारण भी उत्पादक द्वारा माँग की लोच के आधार पर किया जाता है क्योंकि इनकी उत्पादन लागत को अलग-अलग ज्ञात किया जाना संभव नहीं है| जैसे, गेहूँ-भूसा, कपास-बिनोला आदि| संयुक्त पूर्ति वाली वस्तुओं में से

जिसकी माँग की लोच कम होती है, उनकी कीमत ऊँची तथा जिनकी माँग की लोच अधिक होती है, उनकी कीमत नीची रखी जाती है|

(iv) सार्वजनिक उपयोगी वस्तुएँ (Public Utilities) : माँग की लोच का इन वस्तुओं की कीमत निर्धारण में विशेष महत्त्व होता है| उन सार्वजनिक वस्तुओं/सेवाओं का मूल्य अपेक्षाकृत ऊँचा रखा जाता है, जिनकी माँग कम लोचदार होती है बजाय उनके जिनकी माँग की लोच अधिक होती है| उदाहरण के लिए, घरेलू प्रयोग में बिजली की दर अधिक और खेती एवं उद्योगों के लिए कम रखी जाती है|

2. सरकार की आर्थिक एवं वित्तीय नीतियों का निर्धारण (Determination of Govt. Economic & Financial Policies) :

(i) करारोपण नीति (Taxation Policy) : विभिन्न वस्तुओं पर कर लगाते समय वित्त मंत्री उनकी माँग की लोच को ध्यान में रखता है| कम लोच वाली वस्तुओं पर कर से प्राप्त होने वाली आय अपेक्षाकृत उन वस्तुओं से अधिक होती है जिनकी लोच अधिक होती है |

(ii) कर भार विश्लेषण (Tax Burden Analysis) : कर लगाने के कारण करदाताओं पर पड़ने वाले कर भार के न्यायोचित वितरण की दृष्टि से वित्त मंत्री को विभिन्न वस्तुओं की माँग की लोच को ध्यान में रखना पड़ता है| कम लोचदार वस्तुओं पर या तो कर नहीं लगाया जाता है अथवा कम दर से करारोपण किया जाता हैं, जैसे अनाज एवं अन्य खाद्य सामग्री|

(iii) सार्वजनिक स्वामित्व निर्धारण (Determining Public Ownership) : सरकार उन वस्तुओं के उत्पादन को निजी हाथों में देने के स्थान पर स्वयं अपने स्वामित्व एवं नियंत्रण में रखती है, जिनकी माँग की लोच बेलोचदार अथवा कम लोचदार होती है| इसलिए सरकार सार्वजनिक उपयोगिता वाली वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण प्रायः अपने हाथ में रखती है जिससे उपभोक्ताओं का शोषण न हो सके |

(iv) सरकार मंदी और तेजी काल में उन वस्तुओं के मूल्यों पर नियंत्रण रखती है जिनकी माँग की लोच अपेक्षाकृत बेलोचदार होती है तथा ऐसी वस्तुओं का वितरण गरीब लोगों को कम मूल्यों पर अथवा निःशुल्क करती है| राशनिंग की नीति इसका ज्वलन्त उदाहरण है|

3. विदेशी विनिमय दर निर्धारण एवं परिवर्तन (Foreign Exchange Rate Determination and Changes) : कोई भी देश अपनी मुद्रा का विदेशी मुद्रा में मूल्य निर्धारण और उसमें परिवर्तन (अवमूल्यन एवं पुनर्मूल्यन) उसके आयातों एवं निर्यातों की माँग की लोच को ध्यान में रखकर करता है| मुद्रा का अवमूल्यन तभी सफल हो सकता है जब उस देश के निर्यातों और आयातों की माँग लोचदार हो |

4. व्यापार शर्तें (Terms of Trade) : अंतराष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभ किसी भी देश की व्यापार शर्तों पर निर्भर करता है और व्यापार शर्तें व्यापार की जाने वस्तुओं की माँग की लोच पर निर्भर करती है| व्यापार की शर्तें उन देशों के पक्ष में रहती हैं जिनके निर्यातों की माँग बेलोचदार और आयातों की माँग लोचदार हो| इसके विपरीत स्थिति में देश की व्यापार शर्तें प्रतिकूल रहेंगी |

5. आयात–निर्यात प्रशुल्क नीति (Tariff Policy) : आयात और निर्यातों पर कर लगाने से उनकी कीमतों में वृद्धि हो जाती है | अतः इन पर कर लगाने से पूर्व इनकी माँग की लोच को ध्यान में रखना आवश्यक है|

6. सम्पन्नता के बीच गरीबी का विरोधभास (Paradox of Poverty Amidst Prosperity) : सम्पन्नता के बीच गरीबी उत्पन्न होने की व्याख्या माँग की लोच के आधार की जाती है| उदाहरण के लिए, कृषिजन्य

पदार्थो का अधिक उत्पादन होने के बाद भी किसानों की आय नही बढ़ती है क्योंकि कृषिजन्य पदार्थों की माँग की लोच बेलोचदार होती है |

7. **विक्रय संवर्द्धन (Sales Promotion) :** वस्तु के विक्रेता द्वारा उपभोक्ताओं को विभिन्न प्रकार की छूटें प्रदान करना तथा विज्ञापन पर व्यय करना उसकी माँग को कम लोचदार बनाने की नीति और नियत से सम्बन्धित है, ताकि उसकी बिक्री बढ़ सके|

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

आप यह समझने का प्रयास कीजिये कि निम्नांकित वस्तुओं के माँग की लोच कैसी होती है?

(i) पुस्तक की माँग (ii) ब्रांडेड कपड़ो की माँग, तथा (iii) महँगे फोन की माँग

7.5 सारांश (Summary)

माँग की लोच ज्ञात करने के लिए अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्नांकित विधियों का प्रतिपादन एवं प्रयोग किया गया है : प्रथम, फ्लक्स की प्रतिशित विधि के अनुसार माँग की लोच ज्ञात करने के लिए वस्तु की माँग मात्रा के प्रतिशत परिवर्तन में उसकी कीमत के प्रतिशत परिवर्तन का भाग दिया जाता है और इस प्रकार जो भागफल प्राप्त होता है, वही माँग की लोच की माप होती है | श्रीमती रोबिन्सन ने प्रतिशत के स्थान पर अनुपातों का प्रयोग किया है | द्वितीय, मार्शल की कुल व्यय विधि है, जिसके अनुसार वस्तु की कीमत में परिवर्तन के पूर्व एवं कीमत परिवर्तन के पश्चात उस पर किये गये कुल व्यय की तुलना की जाती है | तीसरी, माँग की बिन्दु लोच विधि है, जिसके अंतर्गत ज्यामितिक विधि तथा चलन-कलन विधि द्वारा लोच ज्ञात की जाती है | चौथी, चाप लोच विधि है जिसके अंतर्गत आनुपातिक विधि द्वारा दोनों बिंदुओं की कीमतों तथा दोनों मात्राओं के औसत के आधार पर लोच निकालते हैं| वस्तु की माँग की लोच उसकी स्थानापन्न वस्तुओं की संख्या, वस्तु की प्रकृति, उसके उपयोगों की संख्या, उपभोक्ता के आय-स्तर तथा उस पर खर्च की गयी राशि, प्रयोग स्थगन की संभावना, समय तत्त्व, संयुक्त माँग, उपभोक्ता की आदत तथा अन्य घटकों पर निर्भर करती है| माँग की लोच का कीमत निर्धारण, वितरण, सरकार की आर्थिक एवं वित्तीय नीतियों के निर्धारण, विदेशी विनिमय दर निर्धारण, व्यापार शर्तें, प्रशुल्क नीति, विक्रय संवर्धन तथा सम्पन्नता के बीच विपन्नता के विरोधाभास को समझने में व्यावहारिक एवं प्रबंधकीय उपयोग किया जाता है|

7.6 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जानने में सक्षम हो गये होंगे कि:

- मांग की लोच को किन-किन विधियों द्वारा मापा जा सकता है?
- किस परिस्थिति में कौनसी विधि से मांग की लोच ज्ञात करना उचित रहता है?
- मांग की लोच किन-किन तत्वों से प्रभावित होती है?
- मांग की लोच का प्रबन्धकीय अथवा व्यावसायिक निर्णयों में क्या व्यावहारिक महत्त्व है?

7.7 शब्दावली (Glossary)

- **माँग की बिन्दु लोच (Point Elasticity)** : माँग वक्र के किसी बिन्दु विशेष पर ज्ञात की गयी लोच को बिन्दु लोच कहते हैं |
- **चाप लोच (Arc Elasticity)** : माँग वक्र के किन्हीं दो बिन्दुओं के बीच (भाग/चाप) ज्ञात की गयी लोच को चाप लोच कहते हैं |

7.8 स्व-परख प्रश्न (Self Test Question)

अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Very-Short Answer Questions)

1. बिन्दु लोच किसे कहते है?
2. चाप लोच से आपका क्या तात्पर्य है?
3. श्रीमती रोबिंसन ने माँग की कीमत लोच ज्ञात करने का कौनसा सूत्र दिया हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. माँग की लोच को कैसे मापा जा सकता है? विस्तारपूर्वक समझाइए|
2. माँग की लोच को मापने की विभिन्न विधियों को उदाहरण एवं रेखाचित्रों की सहायता से समझाइए|
3. चाप लोच का महत्त्व स्पष्ट करते हुए इसके मापने के सूत्रों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए|
4. माँग की लोच के प्रबन्धकीय उपयोगों पर प्रकाश डालिए|
5. माँग की लोच में भिन्नता के कारणों को स्पष्ट कीजिए|

7.9 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची (References and Bibliography)

- Mote, Paul & Gupta: Managerial Economics – concepts & cases, Tata Mc- Graw Hill Publishing Company Ltd., Mumbai

7.10 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Mathur, N.D. : Managerial Economics, Shivam Book House (P.) Ltd., Jaipur, 2010.
- Agrawal & Deo : Business Economics, RBD, Jaipur, 2010.
- सिंह एवं त्यागी : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009.

7.11 वेब संसाधन / लिंक (Web Resources/Links)

- https://www.yourarticlelibrary.com/economics/elasticity-as-demand/4-most-important-methods-of-measuring-price-elasticity-of-demand/10672

इकाई - 8

माँग पूर्वानुमान एवं इसकी विधियाँ
(Demand Forecasting and Its Methods)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 माँग पूर्वानुमान का अर्थ एवं परिभाषा
8.3 माँग पूर्वानुमान की विशेषताएँ
8.4 माँग पूर्वानुमान के उद्देश्य
8.5 माँग पूर्वानुमान के निर्धारक तत्त्व
8.6 माँग पूर्वानुमान के सोपान / कदम
8.7 माँग पूर्वानुमान की विधियाँ
8.8 नवीन उत्पाद के लिए माँग पूर्वानुमान
8.9 श्रेष्ठ माँग पूर्वानुमान विधि के गुण
8.10 माँग पूर्वानुमान की सीमाएँ
8.11 माँग पूर्वानुमान का महत्त्व
8.12 सारांश
8.13 अधिगम परिणाम
8.14 शब्दावली
8.15 स्व-परख प्रश्न
8.16 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची
8.17 अन्य पठन साम्रगी
8.18 वेब संसाधन/ लिंक

8.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- माँग पूर्वानुमान का अर्थ, विशेषताएँ तथा उद्देश्यों से परिचित हो सकेंगे।
- माँग पूर्वानुमान के चरण एवं इसके निर्धारक तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- माँग पूर्वानुमान की विभिन्न विधियों के बारे में अपनी समझ विकसित कर सकेंगे।
- एक अच्छी पूर्वानुमान विधि की विशेषताओं/गुणों तथा पूर्वानुमान की सीमाओं के बारे में अपने ज्ञान फलक का विस्तार कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

माँग पूर्वानुमान एक फर्म के अपने उत्पाद की संभावित माँग का आंकलन करने और उसके अनुरूप उत्पादन बढ़ाने हेतु नियोजन करने में सहायता करता है। कोई भी नई फर्म या पहले से बाजार में मौजूद फर्म यदि अपनी उत्पादन क्षमता स्थापित करना चाहती है या विस्तार करना चाहती है, तो उसे अपने उत्पाद के संबंध में भविष्य में बाजार में की जाने वाली माँग से संबधित पूरी जानकारी एकत्रित करना आवश्यक है। इससे बाजार की अनिश्चितता एवं जोखिम को कम किया जा सकता है। औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में पूर्ति की अपेक्षा माँग की स्थिती सदैव ज्यादा अनिश्चित होती है। विकासशील देशों में स्थिति इसके विपरीत होती है। वहां माँग कारक की अपेक्षा पूर्ति कारक का पूर्वानुमान और भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। 2020 तथा 2021 में कोविड-19 के कारण उपजी नई परिस्थितियों ने तो माँग पूर्वानुमान के महत्त्व को और भी अधिक बढ़ा दिया है।

8.2 माँग पूर्वानुमान का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Demand Forecasting)

माँग पूर्वानुमान का अभिप्राय किसी निश्चित भावी अवधि में वस्तु की संभावित माँग का आंकलन करने से है। पूर्वानुमान को राशि (मूल्य) तथा मात्रा या दोनों में व्यक्त किया जा सकता है। यह एक भावी अनुमान है जो भूतकालीन तथ्यों तथा वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर लगाया जाता है। इस प्रकार पूर्वानुमान भविष्य के गर्भ में देखने की एक व्यवस्थित कला है। यह प्रबंधकीय निर्णयों का सार व आर्थिक नियोजन का आधार है। व्यवसाय के प्रत्येक क्षेत्र में भविष्य के बारे में पूर्वानुमान लगाना व्यावसायिक प्रबंध का एक अभिन्न अंग है। एक व्यवसायी अपना नया व्यवसाय तभी प्रारंभ करता है जब वह उस व्यवसाय के अच्छे व लाभदायक भविष्य के प्रति आश्वस्त होता है। व्यवसायी वर्तमान में इस आशा से कार्य करता है कि भविष्य में निश्चित घटनाएँ प्रत्याशित ढ़ंग से घटित होंगी। पूर्वानुमान एक प्रबंधकीय उपकरण है जिसके अन्तर्गत रोकड़, उत्पादन लागत, स्कन्ध, पूर्ति, माँग आदि का वैज्ञानिक पद्धति से अनुमान लगाया जाता है। माँग पूर्वानुमान को **विक्रय पूर्वानुमान** भी कहा जाता है। माँग पूर्वानुमान को विभिन्न विद्धानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं:

रेमण्ड विलर्स के अनुसार,"विक्रय पूर्वानुमान का आशय भावी बाजारों में कम्पनी के भाग का पूर्व निर्धारण करने से है।"

फिलिस कोटलर के अनुसार, "कम्पनी के विक्रय (माँग) पूर्वानुमान का अभिप्राय एक चुनी हुई विपणन योजना तथा वातावरण सम्बन्धी कल्पित दशाओं के आधार पर कम्पनी की बिक्री का अनुमानित स्तर है।"

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार, "विक्रय पूर्वानुमान का अभिप्राय एक प्रस्तावित विपणन योजना या कार्यक्रम तथा पूर्वानुमान लगाने वाली संस्था के बाहर कल्पित आर्थिक एवं अन्य घटकों के संयोग के अन्तर्गत एक निर्दिष्ट भावी अवधि के लिए बिक्री का अनुमान डॉलरों या मौलिक इकाइयो में लगाने से है।"

कण्डिफ एवं स्टिल के अनुसार, "एक प्रस्तावित विपणन योजना के अन्तर्गत भावी अनियंत्रित एवं प्रतिस्पर्धात्मक शक्तियों का अनुमान लगाते हुए किसी विशेष भावी अवधि के लिए बिक्री का अनुमान लगाना ही विक्रय पूर्वानुमान कहलाता है।"

8.3 माँग पूर्वानुमान की विशेषताएँ (Characteristics of Demand Forecasting)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर माँग पूर्वानुमान की निम्न विशेषताएँ हैं :

(i) माँग पूर्वानुमान की प्रकृति भौतिक एवं मौद्रिक दोनों हो सकती है अर्थात् इसे मात्रा एवं मूल्य के रूप में दर्शाया जा सकता है।

(ii) माँग पूर्वानुमान भूतकालीन तथा वर्तमान अनुभव के आधार पर लगाये जाते हैं।

(iii) ये पूर्वानुमान दीर्घकालीन, मध्यमकालीन तथा अल्पकालीन या समयावधि विशेष से सम्बन्धित हो सकते हैं।

(iv) माँग पूर्वामान का विश्लेषण सांख्कीय एवं गणितीय तकनीक पर आधारित होता है।

(v) भविष्य में संभावित माँग मात्र एक अनुमान है।

(vi) माँग पूर्वानुमान भविष्य में आशान्वित परिणाम के लिए वर्तमान नियोजन पर आधारित होता है।

(vii) माँग पूर्वानुमान फर्म स्तर पर या उद्योग स्तर पर लगाया जा सकता है।

(viii) माँग पूर्वानुमान चुनी हुई विपणन योजना, कल्पित वातावरण तथा अनुभवजन्य अनुमानों पर आधारित होता है।

8.4 माँग पूर्वानुमान के उद्देश्य (Objectives of Demand Forecasting)

माँग पूर्वानुमान के उद्देश्यों को समय के अनुसार दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है :

8.4.1 अल्पकालीन उद्देश्य

8.4.2 दीर्घकालीन उद्देश्य

8.4.1 अल्पकालीन उद्देश्य (Short Period Objectives) : एक वर्ष या उससे कम अवधि के लिए जब माँग पूर्वानुमान लगाया जाता है, तो उसे अल्पकालीन माँग पूर्वानुमान कहते हैं। ये उद्देश्य फर्म या उद्योग के व्यष्टि स्तर के होते हैं, जो निम्न प्रकार हैं :

1. **वित्तीय नियोजन (Financial Planning)** : माँग के अनुमान के आधार पर एक फर्म कार्यशील पूजी का कुशलतम प्रबन्धन कर सकती है। वह इस बात के आधार पर आसानी से जान सकती है कि कितनी कार्यशील पूँजी की वर्ष में कितनी बार आवश्यकता पड़ेगी? इससे प्रबन्धकों को वित्तीय नियोजन में सरलता होगी।
2. **आदान नियोजन (Input Planning) :** उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान यह आवश्यक है कि कच्चे माल या श्रम की निरन्तरता बनी रहे। यह तभी सम्भव है जब हमें सम्भावित माँग का पता हो अर्थात माँग का अनुमान होने पर उसी हिसाब से कच्चे माल एवं श्रम की पूर्ति सम्भव है।
3. **उत्पादन नियोजन (Production Planning) :** वस्तु के अत्यधिक उत्पादन से उसका मूल्य गिर जाता है तथा अल्प उत्पादन से मूल्य बढ़ जाता है। माँग पूर्वामान का यह उद्वेश्य है कि वह फर्म को उत्पादन नियोजन में सहायता करे ताकि अधिक या अल्प उत्पादन की स्थिति से बचा जा सके।
4. **उत्पादन क्षमता का अनुकूलतम उपयोग (Optimum Utilisation of Production Capacity) :** यदि माँग पूर्वानुमान सही हो, तो इससे संयंत्र की क्षमता का आदर्शतम उपयोग सम्भव हो पाता है। संयंत्र की क्षमता का पूर्ण विदोहन न होने से लागत बढ़ती है। इस स्थिति को माँग के पूर्वानुमान द्वारा काबू में किया जा सकता हैं।
5. **मूल्य नीति प्रबंधन (Pricing Policy) :** माँग पूर्वानुमान का एक उद्देश्य यह है कि ऐसी मूल्य नीति बनाई जाए जो बाजार की तेजी तथा मंदी के झटकों को बर्दाशित कर सके। मूल्य नीति का समायोजन ऐसा होना चाहिए कि तेजी के समय उत्पाद का मूल्य कम करने की आवश्यकता न पड़े और न ही मंदी के समय उन्हें बढ़ाने की आवश्यकता हो।
6. **विक्रय लक्ष्य निर्धारण (Sales Targeting) :** विभिन्न बाजार क्षेत्रों में माँग एक समान नही होती। माँग पूर्वानुमान में अलग-अलग क्षेत्रों के प्रतिनिधियों द्वारा विक्रय लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है। इससे विक्रय प्रतिनिधियों पर

नियन्त्रण कायम रखना, उनकी कार्य सम्पादन क्षमता को देखते हुए उत्प्रेरणाओं का निर्धारण करना आदि सरल हो जाता है।

8.4.2 दीर्घकालीन उद्देश्य (Long Term Objectives)

एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिये जब पूर्वानूमान लगाये जाते हैं, तो इन्हे दीर्घकालीन पूर्वानुमान कहा जाता है। इन पूर्वानुमानों के उद्देश्य निम्नलिखित होते हैं :

1. **वित्तीय नियोजन (Financial Planning) :** दीर्घकालीन वित नियोजन के लिए यह आवश्यक है कि माँग का दीर्घकालीन अनुमान लगाया जाए। इसी के आधार पर, उपयुक्त व्यवसायिक शर्तो पर पर्याप्त वित समय पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
2. **आदान नियोजन (Input planning) :** हर फर्म यह चाहेगी कि दीर्घकाल में आदानों जैसे कच्चे माल तथा श्रम की पूर्ति सुचारू रूप से बनी रहे। माँग पूर्वानुमान का यह महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है कि संभावित माँग का पता करके उसके आधार पर ही आदानों की पूर्ति की व्यवस्था या नियोजन किया जाए। तभी इन आदानों की उत्पादन में निरन्तरता बनी रहेगी।
3. **उत्पादन विस्तार का नियोजन (Production Expansion Planning) :** एक फर्म भविष्य में अपनी क्षमता को बढ़ाने का निर्णय ले सकती है, किन्तु अपनी उत्पादन क्षमता के विस्तारण की सीमा तय करने से पहले उसे भविष्य में संभावित माँग क्या होगी, इसका विश्लेषण करना चाहिए।
4. **लागत चेतना (Cost Consciousness) :** दीर्घकालीन माँग पूर्वानुमान के द्वारा उत्पादन का पैमाना निर्धारित करने में सहायता प्राप्त होती है जिससे उत्पादन लागत तय करने में भी मदद मिलती है। सही मायने में जागरूक होकर दीर्घकालीन योजना बनाने से लागत कम करने में अत्यन्त सहयोग मिलता है।
5. **दीर्घकालीन कीमत एवं विपणन नीति नियोजन (Long-Term Pricing & Marketing Policy Planning):** दीर्घकालीन माँग पूर्वानुमान के आधार पर ही अपने उत्पादक की भावी कीमत एवं विपणन नीति का उचित प्रकार से निर्धारण कर सकती है ।

8.5 माँग पूर्वानुमान के निर्धारक तत्त्व (Determinants of Demand Forecasting)

माँग पूर्वानुमान के अनेक निर्धारक तत्त्व हैं, जिनके आधार पर सही-सही पूर्वानुमान लगाये जा सकते हैं :

1. **पूर्वानुमान का स्तर (Level of Forecasting) :** माँग का पूर्वानुमान राष्ट्रीय स्तर पर पूर्वानुमान अप्रत्यक्ष स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर लगाया जाता हैं। सहायक कम्पनियाँ अपनी वस्तु के माँग का पूर्वानुमान उद्योग स्तर पर लगाना चाहेगी। फर्म यदि व्यक्तिगत रूप से अपने उत्पादन की माँग जानना चाहती है, तो उसे व्यष्टि स्तर पर माँग पूर्वानुमान लगाना पड़ेगा।
2. **वस्तु की बाजार में स्थिति (Commodity Position in Market) :** यदि वस्तु पहले से ही बाजार में प्रचलित है, तो उसकी माँग का अनुमान लगाना सरल होता है। किन्तु यदि उत्पाद नया है, तो ऐसे में माँग पूर्वानुमान की प्रक्रिया जटिल हो जाती है क्योंकि ऐसी स्थिति में बाजार में चल रही प्रतियोगिता, लोगों की उपभोग की क्षमता आदि का भी विश्लेषण करना पड़ता है।
3. **समयावधि (Time Period) :** माँग पूर्वानुमान को समझने से पहले यह जानना आवश्यक है कि पूर्वानुमान कितनी अवधि के लिए लगाना है? अल्पकाल के लिए यानि एक वर्ष तक के लिए या दीर्घावधि-एक वर्ष से अधिक के लिए? दीर्घावधि में उद्योग की प्रकृति को ध्यान में रखना पड़ता है क्योंकि भविष्य अनिश्चित सूचनाएँ प्रदान करता है।

4. **वस्तुओं का वर्गीकरण (Classification of Commodities) :** माँग पूर्वानुमान उत्पाद या वस्तुओं के वर्गीकरण के अनुसार भी किया जा सकता है। जैसे टिकाऊ उपभोग्य वस्तुएँ, पूँजीगत वस्तुएँ, रक्षा उत्पाद, उपभोग वस्तुएँ, निर्यात वस्तुएँ आदि।
5. **सामान्य और विशिष्ट पूर्वानुमान (General and Specific Forecasting):** सामान्य माँग पूर्वानुमान फर्म स्तर पर किया जाता है ताकि उत्पाद का उचित नियोजन हो सके; जबकि विशिष्ट माँग पूर्वानुमान विशेष क्षेत्र, किसी विशेष वस्तु या वर्ग के अनुसार किया जाता है।
6. **अन्य निर्धारक तत्त्व (Other Determinants):** माँग पूर्वानुमान लगाने में सम्बद्ध जोखिम का प्रकार, प्रतियोगिता की प्रकृति, बाजार से सम्बन्धित अनिश्चितताएँ, सरकारी नीतियाँ आदि भी कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो माँग पूर्वानुमान को प्रभावित करते हैं।

8.6 माँग पूर्वानुमान के सोपान/कदम (Steps of Demand Forecasting)

माँग पूर्वानुमान की प्रक्रिया विभिन्न चरणों से होकर गुजरती है जो निम्न प्रकार है :

1. **उत्पाद की पहचान (Product Identification) :** उत्पाद नवीन है या बाजार में पहले से ही मौजूद है- इसकी पहचान की जाती है।
2. **समयावधि (Time Period) :** माँग पूर्वानुमान अल्पकालीन उद्देश्य के लिए किया जाता है या दीर्घकालीन उद्देश्य के लिए यह निर्धारित किया जाता है।
3. **पूर्वानुमान का स्तर (Level of Forecasting) :** माँग पूर्वानुमान के स्तर का निर्धारण किया जाता है कि पूर्वानुमान फर्म के स्तर पर अर्थात व्यक्तिगत रूप से किया जायेगा या समष्टिगत रूप से राष्ट्रीय स्तर पर ।
4. **प्रभावकारी तत्त्वों की पहचान (Identification of Determinants) :** उन तत्त्वों की पहचान की जाती है, जो माँग पूर्वानुमान को प्रभावित कर सकते हैं।
5. **प्रतियोगिता की प्रकृति (Nature of Competition) :** बाजार में प्रतियोगिता की प्रकृति का पता लगाया जाता है, ताकि उसके अनुरूप बीमा जोखिमों एवं बीमा अयोग्य जोखिमों का पता चल सके।
6. **विधि का चयन (Selection of Method)** : माँग पूर्वानुमान के लिये कौन सी विधि अपनाई जाये, इस बात का निर्धारण किया जाता है।
7. **आंकड़ों का संकलन (Collection of Data) :** बाजार में उत्पाद की कुल माँग, कुल पूर्ति, उपभोक्ताओं की उपभोग क्षमता तथा अन्य फर्मों द्वारा माँग का पूरा किया जाने वाला हिस्सा आदि से संबंधित आंकड़े संकलित किये जाते हैं।
8. **सारणीकरण (Tabulation):** एकत्रित आंकड़ों को सारणीबद्ध किया जाता है और फिर उनका विश्लेषण किया जाता है।
9. **निष्कर्ष (Conclusion) :** उपलब्ध समंको और सूचनाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करने के पश्चात माँग पूर्वानुमान ज्ञात कर प्रस्तुत किये जाते हैं।
10. **पुनरावलोकन (Review):** पूर्व में किये गये अध्ययन के आधार पर भविष्य की चेतावनियों की पहचान करने के उद्देश्य से निष्पादन का पुनरावलोकन किया जाता है और तदनुरूप आवश्यक परिवर्तन एवं समायोजन किया जाता है।

8.7 माँग पूर्वानुमान की विधियाँ (Methods of Demand Forecasting)

माँग पूर्वानुमान की अनेकों विधियां या तकनीक हैं। किसी विशेष समय में कौन सी विधि अपनाई जाएगी, यह उपलब्ध संसाधनों तथा पूर्वानुमान की प्रकृति पर निर्भर करता है। माँग पूर्वानुमान की मुख्य विधियों का वर्णन निम्न प्रकार है :

8.7.1. अनुभव आधारित अनुमान(Experience Based Forecast) : यह माँग पूर्वानुमान की सबसे पारम्पारिक विधि है। इस विधि में सेठ का मुनीम अपने अथवा विक्रय प्रबन्धक अनुभवजन्य अनुमान के आधार पर सम्भावित माँग का निर्णय करता है। मुनीम ऐसी स्थिती में पिछले वर्ष वस्तु की माँग, मौसमी परिवर्तन, संस्कृति, स्थानीय त्यौहार आदि को ध्यान में रखता है। कभी-कभी यह कहा जाता है कि एक मुनीम व्यवस्थित पूर्वानुमान लगाने वाले की तुलना में अधिक अच्छा पूर्वानुमान लगा सकता है। इस ऐतिहासिक साम्यानुमान विधि भी कहते है।

8.7.2. क्रेताओं के दृष्टिकोण का सर्वेक्षण (Survey of Buyers' Intentions): इसे राय सर्वेक्षण **(opinion survey)** विधि भी कहते हैं। इसके लिए या तो हम मौखिक रूप से या प्रकाशित प्रश्नावली द्वारा यह जानकारी प्राप्त कर सकते हैं कि विभिन्न मूल्यों पर वे वस्तु की कितनी मात्रा लेना चाहेंगे या यदि उत्पाद में परिवर्तन करने पर वे इसकी कितनी मात्रा चाहेंगे। चूंकि विक्रेता या वितरक विक्रेताओं के काफी नजदीक होते हैं, अत: उनसे भी प्रश्न पूछे जा सकते हैं। क्रेताओं की राय का सर्वेक्षण संगणना पद्धति अथवा नमूना सर्वेक्षण पद्धति से किया जा सकता है। क्रेता सर्वेक्षण एक बहुत ही खर्चीली विधि है। दिए गए दृष्टिकोण उलझाने वाले, अस्पष्ट एवं भ्रामक हो सकते हैं, अत: उनकी विश्वसनीयता कम होती है।

8.7.3. बाजार परीक्षण विधि (Market Test Method) : इस विधि में सर्वप्रथम कुछ प्रतिनिधि बाजार से चुने जाते हैं जो एक जैसी विशेषताएँ रखते हैं, जैसे – आय वर्ग, व्यवसाय, सामाजिक स्तर, आस्वाद एवं वरीयता आदि। इसके बाद मूल्य परिवर्तन लाकर या विज्ञापन व्यय में परिवर्तन लाकर एवं अन्य नियंत्रित चरों में परिवर्तन लाकर माँग फलन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। यहाँ यह मान्यता रहती है कि अन्य बातें नहीं बदलती हैं।

8.7.4. आर्थिक संकेतांक विधि (Economic Indicators Method) : आर्थिक संकेतांक जैसे राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, उपभोग प्रारूप, विनियोग प्रारूप, योजनाओं में संसाधनों का निरूपण आदि यह समझने में सहायता करते हैं कि लोगों की व्यय योग्य आय में क्या परिवर्तन हुए हैं या योजना के दौरान सरकार किस क्षेत्र में विनियोग करेगी? इन तथ्यों का विश्लेषण करके किसी विशेष वस्तु की माँग पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, यह जाना जा सकता है।

8.7.5 मार्गदर्शक संकेतांक विधि (Leading Indicators Method) : कुछ चर मार्गदर्शक या निदर्शक होते हैं तथा कुछ अन्य परिवेष्टन (Lagging) चर होते हैं। जैसे कि जनसंख्या घनत्व में परिवर्तन को हम मकानों की माँग में परिवर्तन के भविष्यवाणी के लिए काम में ले सकते हैं। यहां जनसंख्या घनत्व एक निदर्शक चर है तथा मकान की माँग एक परिवेष्टन चर है। यह विधि बहुत ही संवेदनशील है और साथ ही उपयुक्त निदर्शक एवं परिवेष्टन चरों का पता लगाना भी आसान कार्य नहीं है।

8.7.6 अन्तिम उपयोग विधि (End Use Method) : मध्यवर्ती वस्तुओं (intermediate goods) के माँग के अनुमान में यह विधि उपयुक्त रहती है। इस विधि को **उपभोग गुणांक विधि (**Consumption Coefficient Method) भी कहते है। इस विधि के प्रयोग के लिए फर्म को कुछ मूलभूत सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है जैसे - (i) उपभोक्ता उद्योगों के उत्पादन स्तरों का प्रक्षेपण, तथा (ii) उपभोग गुणांक। प्रक्षेपित उत्पादन स्तर की सूचनाओं को एकत्र करना अत्यन्त कठिन कार्य है। साथ ही उपभोग गुणांक भी एक अवधि से दूसरी अवधि में परिवर्तित होता रहता है।

8.7.7 उपभोग स्तर विधि (Consumption Level Method) : प्रत्यक्ष रूप में उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगाने में उपभोग स्तर विधि सहायता करती है। इस विधि में माँग की लोच की सहायता से माँग पूर्वानुमान लगाया जाता है। विशेष रूप से माँग की आय लोच तथा माँग की कीमत लोच का उपयोग किया जाता है। माँग की लोच के गुणांक को जानने के बाद इन्ही गुणांकों के आधार पर माँग पूर्वानुमान लगाया जाता है।

वस्तु के अनुमानित मूल्य तथा माँग की कीमत लोच के गुणांक के आधार पर भविष्य में माँग पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। माँग की कीमत लोच का गुणांक केवल छोटे-छोटे अन्तरों या परिवर्तनों में ही ज्ञात किया जा सकता है।

8.7.8 उपनति प्रक्षेपण विधि (Trend Projection Method) : इस विधि के अन्तर्गत विक्रय के काल मालाओं (Time series) के आधार पर उपनति प्रक्षेपण करके माँग पूर्वानुमान लगाया जाता है। पुरानी फर्म अपने विक्रय पर भी काल मालाओं का संकलन कर सकती है। उपनति प्रक्षेपण विधि में यह मान्यता रहती है कि पूर्व में जो घटक माँग को प्रभावित कर रहे थे वे भविष्य में भी माँग को वैसे ही प्रभावित करते रहेंगे। उपनति प्रक्षेपण विधि काम में लेने में आसान एवं सरल है। यदि कोई नई फर्म ऐसा करना चाहे, तो विक्रय के आंकड़े ले सकती है। उपनति ज्ञात करने के लिए निम्नांकित विधियाँ है :

(i) मुक्त हस्त वक्र विधि (Free Hand Curve Method) : सुदीर्घकालीन प्रवृत्ति को मापने की यह विधि अत्यंत सरल है। इस विधि के अनुसार काल श्रेणी के मूल्यों को बिंदु रेखीय पत्र पर अंकित करते हैं। अक्ष X पर समय तथा अक्ष Y पर दिये हुए चर मूल्यों को उचित माप दंड के आधार पर दिखलाते हैं। इसके बाद उच्चावचनों (उतार-चढाव) को ध्यान में रखते हुए इसके बीच से होता हुआ एक वक्र खींचते हैं। यही मुक्त हस्त वक्र कहलाता है, जिसके द्वारा अल्पकालीन उच्चावचनों को दूर करके काल समंको की सुदीर्घकालीन प्रवृत्ति दिखाई देती है। चूंकि इस विधि में गणितीय सूत्रों की जटिलता नहीं है, अत: वे व्यक्ति भी इस विधि का प्रयोग कर सकते हैं, जिन्हें गणित नहीं आता । लेकिन इस विधि में यह दोष भी मौजूद है कि वक्र खींचने वाले भिन्न-भिन्न व्यक्ति हों, तो खींचे गये वक्र भी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। व्यक्तिगत पक्षपात की आशंका भी हो सकती है।

(ii) अर्द्ध माध्य रीति (Semi-Average Method) : इस विधि के अन्तर्गत काल श्रेणी में दिये गये समंकों को बिंदु रेखीय पत्र पर अंकित करके वक्र प्राप्त किया जाता है। काल श्रेणी को दो बराबर भागों में बांट लिया जाता है तथा दोनों भागों के मूल्यों का समान्तर माध्य ज्ञात कर लिया जाता है। यदि विषम समंक दिये गये हों, तो बीच का समंक छोड़कर दो समान भाग करके समान्तर माध्य निकाला जाता है। बिंदु रेखीय पत्र पर इन दोनों समान्तर माध्य बिंदुओं को अंकित करके उन्हें एक सरल रेखा द्वारा मिला दिया जाता है। यही रेखा प्रवृत्ति को दर्शाती है। यह विधि भी अत्यन्त सरल है और इस विधि से प्राप्त उपनति पर पक्षपात की भावना का प्रभाव भी नहीं पड़ता। लेकिन यह विधि उस समय ही प्रयोग में लाई जा सकती है, जब समंकों की दीर्घकालीन प्रवृत्ति रेखीय हो।

(iii) चल माध्य रीति (Moving Average Method) : इस विधि का प्रयोग दीर्घकालीन प्रवृत्ति ज्ञात करने के लिये किया जाता है। चल माध्य निकालने से पूर्व यह निश्चित करना पड़ता है कि कितने वर्षीय चल माध्य ज्ञात करने हैं। ये तीन वर्ष,चार वर्ष, पांच वर्ष या अन्य अवधि के हो सकते हैं। यह समंकों की प्रकृति पर निर्भर करता है। चल माध्य की अवधि का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि समंकों में अधिक उतार-चढ़ाव सामान्यंत: कितने वर्षों बाद आते हैं। इस विधि द्वारा ज्ञात परिणाम भिन्न नहीं होते। यह विधि पक्षपात प्रभाव से सर्वथा मुक्त है तथा इस विधि का प्रयोग करने पर अपेक्षाकृत अधिक शुद्धता की आशा की जा सकती है। लेकिन इस विधि में सबसें बड़ी कठिनाई चल माध्यों की उचित अवधि का निर्धारण करने की है। यदि अवधि का निर्धारण ठीक से नहीं किया गया, तो परिणाम अशुद्ध व भ्रामक भी हो सकते हैं।

(iv) न्यूनतम वर्ग रीति (Least Square Method) : दीर्घकालीन उपनति का अध्ययन करने की यह सबसे बढ़िया विधि है। इस विधि में बीज गणित पर आधारित समीकरण की सहायता से एक रेखा बनाई जाती है, जो दीर्घकालीन उपनति को प्रकट करती है। इस रेखा को **सर्वाधिक उपयुक्त रेखा (Line of Best Fit)** कहा जाता है। न्यूनतम वर्ग रीति से प्राप्त रेखा माध्य मूल्य को प्रदर्शित करती है और अन्य किसी भी रेखा की अपेक्षा अधिक शुद्ध रूप से समंक माला की प्रवृत्ति को प्रकट करती है। न्यूनतम वर्ग रीति द्वारा रेखीय अथवा एक घातीय प्रवृत्ति ज्ञात करने के लिए निम्न समीकरण का प्रयोग किया जाता है :

$$Y = a+bx$$

यहाँ : Y = अभीष्ठ उपनति मूल्य

X = काल या समय की इकाई

a तथा b = अचल मूल्य

प्रवृत्ति मूल्य ज्ञात करने के लिए ‘a’ तथा ‘b’ अचल मूल्यों की परिगणना करना आवश्यक है, जो निम्नलिखित समीकरणों की सहायता से की जाती है :

$$\Sigma y = na + b\Sigma x$$

$$\Sigma xy = a\Sigma x + b\Sigma x^2$$

‘a’ तथा ‘b’ अचल मूल्यों की परिगणना लघु विधि (Short Cut Method) से भी की जा सकती है। लघु विधि में निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जाता है:

$$a = \frac{\Sigma y}{n} \quad \text{तथा} \quad \frac{\Sigma xy}{\Sigma x2}$$

लघु विधि दीर्घ विधि से सरल होने के साथ–साथ शीघ्रगामी भी है।

न्यूनतम वर्ग विधि गणितीय विधि होने के कारण सर्वश्रेष्ठ है। इस विधि द्वारा प्राप्त उपनति मूल्य वास्तविकता के अधिक निकट होते हैं। यह विधि व्यक्तिगत पक्षपात से मुक्त है तथा इसके द्वारा आगामी वर्षों के लिए यथोचित अनुमान लगाये जा सकते हैं। लेकिन न्यूनतम वर्ग विधि की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं। यदि एक उपयुक्त समीकरण का चुनाव ना हो पाये, तो निष्कर्ष गलत भी सिद्ध हो सकते हैं।

स्व- मूल्यांकन – प्रथम

एक उत्पाद समूह की विगत तीन वर्षो की कुल बिक्री तथा उस समूह के एक उत्पाद ‘X’ की बिक्री निम्न प्रकार है:

वर्ष	उत्पाद समूह की बिक्री (रू. में)	उत्पाद ‘X’ की बिक्री (रू.में)	उत्पाहद ‘X’ की बिक्री (% में)
2019	4,00,000	80,000	20%
2020	6,00,000	1,32,000	22%
2021	5,00,000	1,20,000	24%
कुल	15,00,000	3,32,000	22%(औसत)

मान लीजिये कि उत्पाद समूह की कुल बिक्री वर्ष 2022 में रू. 7,50,000 होगी। आप विगत तीन वर्षों की बिक्री के आंकड़ों और उसमें होने वाली वृद्धि के आधार पर पूर्वानुमान कीजिये कि उत्पाद ‘X’ की बिक्री कितनी होगी?

8.8 नवीन उत्पाद के लिए माँग पूर्वानुमान (Demand Forecasting for a New Product)

पहले से ही बाजार में मौजूद उत्पाद की बजाए जब कोई नवीन उत्पाद बाजार में लाना हो, तो उसकी माँग का पूर्वानुमान विभिन्न तरीकों से लगाया जाता है। इस सम्बन्ध में कई विधियां अपनायी जा सकती हैं, जो निम्न प्रकार हैं:

1. **विकासवादी विधि (Evolutionary Method)** : इस विधि के अन्तर्गत बाजार में पहले से उपस्थित उत्पादों को माँग की सूचनाओं के आधार पर नवीन उत्पाद की माँग का पूर्वानुमान लगाया जाता है। उदाहरणार्थ, ब्लैक एँड

व्हाईट टी.वी. के स्थान पर रंगीन टी.वी. के बाजार की संभावनाओं को विकासवादी विधि के आधार पर तलाशा गया होगा।

2. **प्रतिस्थापन विधि (Substitution Method) :** इस विधि के अन्तर्गत नवीन उत्पाद का विश्लेषण पहले से बाजार में उपस्थित उत्पाद के प्रतिस्थापक या स्थानापन्न के रूप में किया जाता है। जैसे बाजार में मौजूद मोबाइल फोन के स्थानापन्न के तौर पर अनेक नई खूबियों वाले आधुनिक तकनीक से सराबोर मोबाइल फोन की माँग का विश्लेषण करना।
3. **विकास वक्र विधि (Growth Curve Method) :** इसके अन्तर्गत पहले विकास दर का अनुमान लगाया जाता है और फिर नवीन उत्पाद की माँग के स्तर पर अनुमान लगाते हैं। इस प्रकार स्थापित उत्पाद ने बाजार में किस प्रकार और किस दर पर विकास किया, इसको आधार मानकर नये उत्पाद की माँग का विश्लेषण किया जाता है।
4. **प्रत्यक्ष मतदान (रायशुमारी) विधि (Direct Opinion Poll Method) :** यह अधिक प्रचलित विधि है जिसके आधार पर फर्में अपने नये उत्पाद की माँग का पूर्वानुमान लगाती हैं। इसके अन्तर्गत उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष तौर पर संपर्क करके उनसे नवीन उत्पाद के सम्बन्ध में राय ली जाती है। यदि उपभोक्ताओं की संख्या ज्यादा है, तो यह जानकारी नमूना (सैम्पल) के आधार पर जुटाई जा सकती है।
5. **अप्रत्यक्ष मतदान विधि (Indirect Opinion Poll Method):** इस विधि के अन्तर्गत कुछ ऐसे विशेषज्ञ, वितरकों व विक्रेताओं, जिन्हें अपने ग्राहकों की पसंद - नापसंद का पूर्ण ज्ञान होता है, के माध्यम से नवीन उत्पाद के सम्बन्ध में ग्राहकों की प्रतिक्रियाओं का सर्वेक्षण करवाया जाता है और फिर उसी सर्वेक्षण के नतीजों के आधार पर नवीन उत्पाद बाजार में लाया जाता है।
6. **नमूना सर्वेक्षण विधि (Sample Survey Method):** इस विधि के अन्तर्गत पहले नवीन उत्पाद कुछ नमूना बाजारों में प्रस्तुत किया जाता है और परिणामों के आधार पर उसे संपूर्ण बाजार-तंत्र में प्रदर्शित कर दिया जाता है। नवीन उत्पाद को बाजार में बिक्री के लिये प्रस्तुत करने की उपरोक्त सभी विधियों की भी अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। इन विधियों पर भी नवीन उत्पाद की प्रकृति, उसकी लागत व मूल्य, बाजार में प्रतियोगिता की स्थिति आदि विभिन्न तत्त्वों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

स्व-मूल्यांकन – द्वितीय

बाजार में विभिन्न बहुराष्ट्रीय व प्रतिष्ठित कम्पनियों के नहाने के साबुन तथा हाथ धोने के उत्पाद उपस्थित हैं। आयुर्वेदिक जड़ी बूटियों की विशेषताओं से भरपूर कुछ नवीन उत्पाद भी प्रतिस्थापन के तौर पर बाजार में प्रचलित हो चुके हैं। कोविड-19 महामारी के फैलने के पश्चात् अब और नवीन प्रकार के उत्पादों की भी माँग की जाने लगी है। एक कम्पंनी पूर्व स्थापित 'नहाने के साबुन' व 'हाथ धोने के उत्पाद' के स्थानापन्न के रूप में एक नवीन उत्पांद बाजार में लाने को उत्सुक है। आप इस सम्बन्ध में कम्पनी को क्या राय देना पसंद करेंगे?

8.9 श्रेष्ठ माँग पूर्वानुमान विधि के गुण (Characteristics of a Good Demand Forecasting Method)

यद्यपि एक फर्म माँग पूर्वानुमान के लिए कोई भी विधि अपना सकती है, किन्तु वह विधि जिसमें निम्नलिखित तत्त्वों का समावेश हो, एक अच्छी विधि प्रमाणित होगी :

1. **सरलता (Simplicity) :** जहां तक हो सके पूर्वानुमान की विधि व्यावहारिक रूप से आसान एवं सरल होनी चाहिए अर्थात उसके प्रयोग करने में कोई कठिनाई नही आनी चाहिए।

2. **सूचनाओं की उपलब्धता (Information Availability) :** एक पूर्वानुमान विधि ऐसी हो कि उसके लिए जितनी भी सूचनाएँ चाहिए, वे सभी आसानी से एकत्रित की जा सकें। सभी चरों की मात्रा का पता लगा सके।
3. **मितव्ययी (Economical) :** माँग पूर्वानुमान के लिए अपनाई गई विधि मितव्ययी एवं कम खर्चीली होनी चाहिए। यद्यपि खर्चीली विधियां जटिल होती हैं, पर उनसे प्राप्त परिणाम अधिक सटीक होते हैं।
4. **लोचशीलता (Flexibility) :** अपनाई गई विधि लचीली होनी चाहिए, ताकि चरों एवं आंकड़ों का आवश्यक समायोजन सम्भव हो सके।
5. **सटीकता (Accuracy) :** एक अच्छा पूर्वानुमान जहां तक हो सके, सटीक परिणाम देने वाला होना चाहिए। वे वास्तविकता के जितने पास होंगे, उनकी सटीकता उतनी ही अधिक होगी।
6. **विश्वसनीयता (Reliability):** अपनाई गई विधि विश्वसनीय होनी चाहिए, तभी लगाया गया पूर्वानुमान जो सूचना प्रदान करेगा वह विश्वसनीय होगा।
7. **सार्वभौमिक व्यावहारिकता (Universal Applicability):** एक अच्छे पूर्वानुमान की व्यावहारिकता सार्वभौमिक होनी चाहिए। यदि उपलब्ध पूर्वानुमान एक ही जैसे या समान हों, तो अलग अलग परिस्थितियों में विभिन्न परिणाम देने वाले होने चाहिए।

8.10 माँग पूर्वानुमान की सीमाएँ (Limitations of Demand Forecasting)

माँग पूर्वानुमान की निम्नलिखित सीमाएँ हैं:

1. **मान्यताएँ (Assumptions) :** माँग पूर्वानुमान मॉडल अनेकों मान्यताओं पर आधारित होते हैं। ये मान्यताएँ अत्यन्त अवास्तविक होती हैं और यही कारण है कि ये गलत परिणाम भी दे सकती हैं।
2. **खर्चीली (Expensive) :** ज्यातादर विधियां अत्यन्त खर्चीली हैं। खर्चीली होने के कारण छोटी फर्मे इन माँग पूर्वानुमान की विधियों/ तकनीकों को काम में ले ही नही पाती।
3. **अविश्वसनीय (Unreliable) :** माँग पूर्वानुमान आंकड़ों पर आधारित होते हैं। यदि संकलित आंकड़ें विश्वसनीय नहीं हैं, तो उनका विश्लेषण भी अविश्वसनीय परिणाम ही देगा।
4. **सावधानीपूर्ण प्रयोग (Cautious Use) :** माँग पूर्वानुमान की तकनीकों का प्रयोग अत्यधिक सावधानी पूर्वक करना चाहिए। तथ्यों के सत्यापन में पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए, अन्यथा इनसे प्राप्त परिणाम सही नहीं होंगे।

8.11 माँग पूर्वानुमान का महत्त्व (Significance of Demand Forecasting)

1. **वित्त का आधार (Basis of Finance) :** वित्त की आवश्यकता का अनुमान माँग पूर्वानुमान के आधार पर ही लगाया जाता है। यदि उपयुक्त समय पर सही मात्रा में वित्त उपलब्ध हो, तो उत्पादन कुशलता पूर्वक सम्भव होता है, क्योंकि वित्त व्यवसाय का जीवन रक्त है।
2. **उत्पादन नियोजन (Production Planning):** उत्पादन नियोजन अति आवश्यक है। माँग पूर्वानुमान अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उत्पादन नियोजन में सहायता करता है। माँग पूर्वानुमान के अनुसार ही उत्पादन करना चाहिए, ताकि अति-उत्पादन और न्यून-उत्पादन से बचा जा सके।
3. **उत्पादन का पैमाना (Scale of Production):** किसी भी वस्तु के उत्पादन का पैमाना क्या रहेगा; यह माँग पूर्वानुमान पर निर्भर करता है। जिन वस्तुओं की माँग भविष्य में बढ़ने वाली होती है, उनका उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है।

4. **मानव संसाधन नियोजन (Man Power Planning):** भविष्य में वस्तु की संभावित माँग क्या होगी, उसके आधार पर ही मानव संसाधन नियोजन किया जाता है। किसी व्यवसाय में कुशल एवं अकुशल श्रमिकों की किस अनुपात में आवश्यकता होगी या कितने तकनीशियन लगाए जाएँ तथा और कितने कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ेगी, यह सभी माँग पूर्वानुमान द्वारा लगाए गए अनुमानों पर ही निर्भर करेगा।
5. **आदान पूर्ति का आधार (Basis of Input Supply):** आदानों की निरन्तर पूर्ति बनाए रखने के लिए माँग पूर्वानुमान का महत्त्व नकारा नही जा सकता अर्थात इसके आधार पर ही उपयुक्त मात्रा में आदानों जैसे कच्चे माल, श्रम आदि की पूर्ति नियमित रूप से की जाती है।
6. **मूल्य नीति का आधार (Basis of Price Policy):** मूल्य निर्धारण में भी माँग पूर्वानुमान सहायता करता है। सटीक माँग पूर्वानुमान के बगैर एक अच्छी मूल्य नीति नही बनाई जा सकती है।
7. **लक्ष्यों का आधार (Basis of Targets):** विक्रय प्रतिनिधियों के लिए लक्ष्यों के निर्धारण में माँग पूर्वानुमान को ही आधार बनाया जाता है। विक्रय प्रतिनिधियों को माँग के अनुमान के आधार पर ही वार्षिक या मासिक लक्ष्य पूर्ति करने को कहा जाता है।

8.12 सारांश (Summary)

साधारण बोलचाल की भाषा में माँग पूर्वानुमान से आशय किसी निश्चित भावी अवधि के लिये वस्तु की संभावित माँग या संभावित बिक्री का अनुमान लगाने से है। ये अनुमान मात्रा (Quantity) अथवा मूल्य (Value) या दोनों रूपों में व्यक्त किये जा सकते हैं। भविष्य अनिश्चित होता है, अत: व्यवसाय में जोखिम का तत्त्व निहित रहता है। इस जोखिम को जितना कम कर लिया जाये, उतना ही अच्छा रहता है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर पूर्वानुमान लगाये जाते हैं। पूर्वानुमान प्रबंधकीय निर्णयों का सार एवं वित्तीय नियोजन का आधार है। पूर्वानुमान की अनेक विधियां प्रचलित हैं। इनमें से कुछ परम्परागत हैं और कुछ आधुनिक सांख्यिकीय एवं गणितीय आधारित जटिल विधियां भी हैं। सभी विधियों के अपने-अपने गुण दोष है। अत: उपक्रम की प्रकृति व आकार के आधार पर किसी एक श्रेष्ठ विधि का चयन किया जाता है। पूर्वानुमान अल्पकालीन, मध्यकालीन या दीर्घकालीन हो सकते हैं। माँग पूर्वानुमान को निर्धारित करने वाले अनेक तत्त्व हैं तथा इसकी अनेक सीमाएँ भी हैं। माँग पूर्वानुमान आदान पूर्ति, मानव संसाधन नियोजन, उत्पादन नियोजन, वित्तीय नियोजन तथा मूल्य नीति का आधार है। किसी भी व्यावसायिक क्रियाकलाप के लिए माँग पूर्वानुमान आधार-शिला का कार्य करता है। किसी वस्तु की माँग का जितना सही पूर्वानुमान लगाया जायेगा, उसके उत्पादन व आपूर्ति को उतना ही अच्छे ढंग से नियंत्रित किया जा सकेगा। यदि बाजार में कोई नवीन उत्पाद लाना है, तो उसकी माँग का पूर्वानुमान लगाना सर्वथा भिन्न स्थिति में होता है।

8.13 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

"मांग पूर्वानुमान एवं इसकी विधियाँ" इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी मांग पूर्वानुमान के अर्थ, विशेषताएं, उद्देश्य, निर्धारक तत्त्व, विभिन्न चरण/कदम आदि से भलीभांति अवगत हो गए होंगे, ऐसी आशा की जाती है। मांग पूर्वानुमान की अनेक विधियाँ हैं जिनके अपने-अपने गुण-दोष हैं। इन सभी विधियों का अवलोकन करने के पश्चात् यह निश्चित हो जाता है कि विद्यार्थी यह समझने में समर्थ हो गये हैं कि किस उत्पाद हेतु कौनसी विधि के आधार पर पूर्वानुमान लगाया जाना चाहिए। माँग पूर्वानुमान की अपनी सीमाएं भी होती है तोउसका अपना महत्त्व भी होता है। विद्यार्थी अध्ययन सामग्री का अध्ययन करने पर यह अंतर करने में सक्षम हो गये होंगे कि बाज़ार में पहले से मौजूद उत्पाद तथा बाज़ार में लाये जाने वाले नवीन उत्पाद की मांग पूर्वानुमान हेतु किन तत्वों को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए।

8.14 शब्दावली (Glossary)

- **माँग पूर्वानुमान (Demand Forecasting) :** बाजार में उपभोक्ता की क्रय शक्ति, उसकी आदत, रूचि, फैशन, रीति रिवाज आदि के आधार पर वास्तविक खरीद से पहले किसी वस्तु विशेष की माँग का अनुमान लगाना ही माँग पूर्वानुमान कहलाता है।
- **माँग (Demand) :** एक दिये हुए समय में तथा एक निश्चित कीमत पर किसी वस्तु की जो मात्रा कोई उपभोक्ता खरीदने को तत्पर रहता है, उस मात्रा को उस वस्तु की माँग कहते हैं।
- **अल्पकालीन पूर्वानुमान (Short Period Forecasting) :** एक वर्ष या कम अवधि के लिए जब कोई पूर्वानुमान लगाया जाता है, तो इसे अल्पकालीन पूर्वानुमान कहा जाता हैं।
- **दीर्घकालीन पूर्वानुमान (Long Term Forecasting) :** जब एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए पूर्वानुमान लगाया जाता है, तो इसे दीर्घकालीन पूर्वानुमान कहते हैं।
- **व्यष्टिगत (Micro Level)** : किसी एक इकाई यथा फर्म या उद्योग के सम्बन्ध में अध्ययन व्यष्टिगत कहलाता है। लघु स्तर पर लगाया जाने वाला पूर्वानुमान व्यष्टिगत होता हैं।
- **समष्टिगत** (Macro Level) : जब व्यापक स्तर पर कोई पूर्वानुमान लगाया जाता है, तो इसे समष्टिगत कहते हैं। ऐसे पूर्वानुमान ज्यादातर राष्ट्रीय स्तर पर या संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए होते 8.1**5 स्व-परख प्रश्न (**Self Test Questions)

अति लघुरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Questions)

1. माँग पूर्वानुमान से आप क्या समझते हैं?
2. श्रेष्ठ पूर्वानुमान विधि के किन्हीं दो गुणों का उल्लेख कीजिए।
3. माँग पूर्वानुमान के कोई दो महत्त्व बताइये।
4. माँग पूर्वानुमान की कोई दो महत्त्वपूर्ण सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
5. माँग पूर्वानुमान के कोई दो महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. माँग पूर्वानुमान को परिभाषित कीजिए? माँग पूर्वानुमान के मुख्य लक्षण क्या है?
2. माँग पूर्वानुमान से आप क्या समझते है? किसी व्यवसाय के लिए माँग के पूर्वानुमान का क्या महत्त्व है? माँग पूर्वानुमान से सम्बद्ध विभिन्न चरण क्या हैं?
3. माँग पूर्वानुमान की विभिन्न विधियों को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।
4. एक नवीन उत्पाद के माँग पूर्वानुमान की विभिन्न विधियों को समझाइये।

8.16 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- सारस्वत, लोढ़ा, शर्मा, गोधा : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर
- माथुर, गुप्ता : व्यावसायिक अर्थशास्त्र शिवम् बुक हाउस, जयपुर
- Aggarwal M.D., Som Deo : 'Business Economics', Ramesh Book Depot, Jaipur, 2010
- Mathur, N.D. : 'Business Economics', Shivam Book House, Jaipur, 2010
- Jain, K.P. : 'Modern Micro Economics', Ratan Publication Mandir, Agra

- Ahuja H.L.: 'Advance Economic Theories', S. Chand & Company, New Delhi

8.17 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Koutsoyiannis, A. : 'Modern Micro Economics', London, Macmillan.
- Curwen, Peter J. : 'Managerial Economics', London, Macmillan.
- Nemmers, E.E. : 'Managerial Economics', Test and Cases, New York, John Willy & Sons, Inc.
- Samuelson Paul, and William Nordhaus : 'Economics', New Delhi, Tata McGraw – Hill Education.

8.18 वेब संसाधन/लिंक (Web Resourses/Links)

- https://www.businessmanagementidea.com>demand
- https://www.economicsdiscussion.net........
- https://www.hmoob.in>wiki>........
- https://tutorships.in>methods of demand

इकाई -9

पूर्ति ,पूर्ति का नियम एवं पूर्ति की लोच
(Supply, Law of Supply and Elasticity of Supply)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 पूर्ति का अर्थ एवं परिभाषा
9.3 पूर्ति के निर्धारक घटक
9.4 पूर्ति का नियम एवं इसके क्रियाशील होने के कारण
9.5 पूर्ति के नियम के अपवाद
9.6 पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन एवं पूर्ति में परिवर्तन
9.7 पूर्ति की लोच की अवधारणा एवं श्रेणियाँ
9.8 पूर्ति की लोच का मापन
9.9 पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व
9.10 सारांश
9.11 अधिगम परिणाम
9.12 शब्दावली
9.13 स्व-परख प्रश्न
9.14 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची
9.15 अन्य पठन सामग्री
9.16 वेब संसाधन/लिंक

9.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के पठन के पश्चात आप यह जानने में सक्षम हो सकेंगे कि

- पूर्ति का आशय क्या है और इसे कौन-कौन से तत्त्व प्रभावित करते हैं?
- पूर्ति – मात्रा और पूर्ति में परिवर्तन में क्या अन्तर है?
- पूर्ति का नियम क्या है और इसके क्रियाशील होने के क्या कारण हैं?
- पूर्ति की लोच क्या है और इसकी कितनी श्रेणियाँ होती हैं?
- पूर्ति की लोच को कैसे मापा जाता हैं?

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

सामान्यतया वस्तुओं की कीमत निर्धारण में माँग (Demand) और पूर्ति (Supply) दो महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ संयुक्त रूप से कार्य करती हैं। एक निश्चित समय पर वस्तु की कीमत निर्धारण में माँग और पूर्ति की शक्तियाँ समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

किसी वस्तु की पूर्ति का अभिप्राय वस्तु की उन मात्राओं से है जिन्हें एक विक्रेता विभिन्न संभव कीमतों पर एक निश्चित समय में बेचने को तैयार रहता है| माँग की भांति पूर्ति भी किसी समय की अवधि तथा कीमत से जुड़ी होती है। पूर्ति का नियम उत्पादकों और विक्रेताओ के व्यवहार का वर्णन करता है क्योंकि वे उत्पाद की उत्पादन क्षमता को बाजार की स्थितियों से प्राप्त करने की योजना बनाते हैं, जिससे आपूर्ति में वृद्धि होती हैं। अतः कीमत निर्धारण की प्रक्रिया में पूर्ति का नियम, पूर्ति को प्रभावित करने वाले घटकों, पूर्ति की लोच और पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का अध्ययन करना भी आवश्यक है। इस इकाई में हम पूर्ति और पूर्ति की लोच का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

9.2 पूर्ति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Supply)

सामान्य शब्दों में पूर्ति का अर्थ किसी वस्तु अथवा सेवा की उपलब्ध मात्रा से लगाया जाता है, किंतु अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से किसी वस्तु की पूर्ति का अभिप्राय वस्तु की उस मात्रा से है, जिसे विक्रेता या उत्पादक एक निश्चित अवधि में निश्चित कीमत पर बेचने को तत्पर रहता है। माँग की भांति पूर्ति भी किसी निश्चित समय की अवधि तथा निश्चित कीमत से जुड़ी होती है । पूर्ति की कुछ प्रमुख अर्थशास्त्रियों की परिभाषा निम्नानुसार है :

थॉमस के अनुसार, "वस्तुओं की पूर्ति वह मात्रा है जो एक बाजार में किसी निश्चित समय पर विभिन्न कीमतों पर बिकने के लिए प्रस्तुत की जाती है।"

प्रोफेसर मेयर के अनुसार, "पूर्ति किसी वस्तु की मात्राओं की अनुसूची है, जो विभिन्न कीमतों पर किसी विशेष समय या समय की अवधि में उदाहरणार्थ एक दिन, एक सप्ताह आदि जिसमें पूर्ति की सभी दशाएँ स्थिर हो ,विक्रय के लिए प्रस्तुत की जाए।"

बेनहम के शब्दों में, "पूर्ति का तात्पर्य वस्तु की उस मात्रा से लगाया जाता है जो प्रति इकाई समय में बिक्री के लिए उपलब्ध है।"

पूर्ति के अर्थ को अच्छी तरह समझने के लिए यह आवश्यक है कि पूर्ति एवं स्टॉक में अंतर समझ लिया जाए। स्टॉक किसी भी वस्तु की उस मात्रा को कहते हैं जो एक निश्चित समय पर बाजार में उपलब्ध है; जबकि पूर्ति से आशय स्टॉक के उस भाग से होता है, जिसे एक उत्पादक एक निश्चित मूल्य पर एक निश्चित समय पर बेचने के लिए तैयार होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पूर्ति स्टॉक का वह भाग है जो बाजार में बिक्री के लिए लाया जाता है। उदाहरण के लिए, एक फर्म के गोदाम में 100 टन चावल है और वह 1 लाख रू. प्रति टन निश्चित बाजार मूल्य पर एक निश्चित समयावधि में केवल 50 टन चावल ही बेचने को तत्पर है। ऐसी दशा में स्टॉक 100 टन है; जबकि पूर्ति केवल 50 टन ही है।

पूर्ति तालिका या अनुसूची (Supply schedule) : एक निश्चित समय मे किसी बाजार में विभिन्न मूल्यों पर बेचे जाने वाली वस्तु की मात्रा को एक तालिका के रूप में व्यक्त किया जाए, तो उसे पूर्ति तालिका कहा जाता है। **वाटसन** के अनुसार, "पूर्ति तालिका का एक निश्चित समय पर बाजार में किसी वस्तु के मूल्य एवं वस्तु की पूर्ति में संबंध व्यक्त करती है। इस प्रकार पूर्ति तालिका से आशय एक ऐसी तालिका से है जिसके अंतर्गत एक वस्तु की विभिन्न मात्राओं को दर्शाया जाता है, जो एक बाजार में एक निश्चित समय में विभिन्न मूल्यों पर बेची जाती है। एक निश्चित समय में विभिन्न कीमतों पर बाजार में वस्तु की बेची जाने वाली मात्राओं को यदि तालिका में व्यक्त कर दिया जाए, तो इसे पूर्ति तालिका कहते हैं, पूर्ति तालिका दो प्रकार की होती है :

(i) व्यक्तिगत पूर्ति तालिका (Individual supply schedule): यह तालिका एक विक्रेता की पूर्ति फलन को स्पष्ट करती है। एक विक्रेता किसी विशेष समय अवधि में विभिन्न कीमतों पर वस्तु की जितनी मात्रा बाजार में बेचने को तैयार रहता है, उसे यदि तालिका के रूप में प्रदर्शित किया जाए, तो इसे व्यक्तिगत पूर्ति तालिका कहते हैं। इसे तालिका संख्या 9.1से समझा जा सकता है।

तालिका संख्या – 9.1 व्यक्तिगत पूर्ति

वस्तु की कीमत प्रति इकाई (रू. में)	**पूर्ति की मात्रा (इकाइयां)**
1	20
2	40
3	60
4	80
5	100

(ii) बाजार पूर्ति तालिका (Market Supply Schedule) : बाजार की सभी फर्में एक निश्चित समयावधि में विभिन्न कीमतों पर बाजार में वस्तु की कुल कितनी मात्रा बेचने को तैयार हैं, इसका एक तालिका में प्रदर्शन बाजार पूर्ति तालिका करती है । इस प्रकार बाजार पूर्ति तालिका से अभिप्राय: बाजार में किसी विशेष वस्तु की उत्पादन की आपूर्ति करने वाली सभी फर्मो की पूर्ति के जोड़ से है। यह समस्त बाजार की पूर्ति तालिका होती है।

तालिका संख्या – 9.2 बाजार पूर्ति

वस्तु की कीमत प्रति इकाई (रू. में)	**पूर्ति मात्रा**			**बाजार की कुल पूर्ति A+B+C**
	विक्रेता A	**विक्रेता B**	**विक्रेता C**	
5	60	40	70	170
4	50	30	65	145
3	35	15	55	105
2	20	5	30	55
1	10	2	10	22

पूर्ति वक्र (Supply Curve): किसी वस्तु की पूर्ति तालिका का रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुतीकरण ही पूर्ति वक्र कहलाता है। अन्य शब्दों में, पूर्ति के अन्य निर्धारक तत्त्वों के समान रहने पर, किसी वस्तु का मूल्य एवं पूर्ति की मात्रा के संबंध को प्रदर्शित करने वाला वक्र, पूर्ति वक्र कहलाता है। पूर्ति तालिका चूँकि व्यक्तिगत फर्म या बाजार दोनों की हो सकती है, इसलिए पूर्ति वक्र भी किसी व्यक्तिगत फर्म या बाजार का हो सकता है। पूर्ति वक्र को रेखाचित्र की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है :

रेखाचित्र संख्या – 9.1

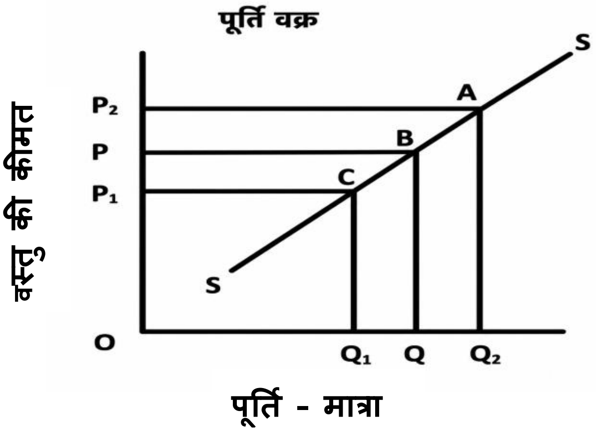

रेखाचित्र-9.1 में SS पूर्ति वक्र है, जो कि बायीं से दायीं ओर ऊपर चढ़ता हुआ है। यह वक्र बताता है कि वस्तु की कम कीमत पर पूर्ति कम तथा अधिक कीमत पर अधिक की जाएगी, लेकिन यह आनुपातिक हो आवश्यक नहीं है। रेखाचित्र में कीमत OP पर पूर्ति OQ है। कीमत बढ़कर OP_2 हो जाने पर पूर्ति बढ़कर OQ_2 एवं कीमत घटकर OP_1 होने पर पूर्ति घटकर OQ_1 हो जाती है। इस तरह पूर्ति वक्र कीमत तथा पूर्ति की मात्रा के मध्य धनात्मक संबंध को बताता है।

9.3 पूर्ति के निर्धारक घटक (Factors Affecting Supply)

किसी वस्तु या सेवा की पूर्ति बाजार में अनेक कारकों से प्रभावित होती हैI कुछ ऐसे कारक हैं जिनसे पूर्ति प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है, जैसे वस्तु की बाजार कीमत और वस्तु को उत्पादित करने वाले साधनों की कीमत। कुछ अन्य कारक भी परोक्ष रूप से पूर्ति को प्रभावित करते हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नांकित हैं :

1. **वस्तु की कीमत (Price of the Commodity):** किसी वस्तु की कीमत तथा पूर्ति में प्रत्यक्ष संबंध होता है। सामान्य दशाओं में कीमत बढ़ने से वस्तु की पूर्ति बढ़ती है तथा कीमत कम होने से वस्तु की पूर्ति घटती है।
2. **संबंधित वस्तुओं की कीमतें (Prices of Related Goods) :** किसी वस्तु विशेष की पूर्ति अन्य संबंधित वस्तुओं की कीमतों से अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित होती है। जैसे चावल की कीमत में वृद्धि होने से गेहूं की पूर्ति गिर जाती है क्योंकि चावल की कीमतों में वृद्धि चावल के उत्पादकों को अधिक उत्पादन हेतु प्रेरित करेगी, इसलिए गेहूं का उत्पादन कम एवं उसकी पूर्ति घटने लगेगी।
3. **उत्पादन के साधनों की कीमत (Prices of Factors of Production) :** वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की कीमत बढ़ने पर उसकी उत्पादन लागत बढ़ जाती है, फलस्वरूप वस्तु की पूर्ति कम हो जाती है| इसके विपरीत, जिन वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की कीमत घट जाती है, उनकी उत्पादन लागत घटने से पूर्ति बढ़ जाती है।
4. **तकनीकी स्तर (Technological Level) :** तकनीकी स्तर में सुधार से नवीन एवं कम लागत वाली उत्पादन तकनीकों का आविष्कार होता है, जिससे उत्पादन लागत में कमी तथा उत्पादन की पूर्ति में वृद्धि होती है।
5. **फर्मो की संख्या (Number of Firms) :** किसी वस्तु की बाजार पूर्ति फर्मो की संख्या से भी प्रभावित होती है| फर्मो की संख्या अधिक होने पर पूर्ति अधिक होती है। इसके विपरीत, फर्मों की संख्या कम होने पर पूर्ति कम हो जाती है|
6. **परिवहन लागतें (Transport Cost) :** बाजार पूर्ति पर परिवहन लागतों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, बेहतर परिवहन सुविधाओं के कारण लागतें कम हो जाती हैं, तो इससे वस्तु की पूर्ति बढ़ जाती है।

7. **फर्म के उद्देश्य (Goal of Firm) :** यदि फर्म का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है, तो केवल अधिक कीमत पर ही अधिक पूर्ति की जाएगी। इसके विपरीत, यदि फर्म का उद्देश्य बिक्री या उत्पादन या रोजगार को बढ़ाना है, तो वर्तमान कीमत पर अधिक पूर्ति होगी।
8. **भविष्य की संभावित कीमत (Expected Future Price) :** भविष्य में वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन की संभावना भी पूर्ति को प्रभावित करती है| यदि भविष्य में वस्तु की कीमत बढ़ने की संभावना हो, तो वर्तमान में पूर्ति घट जाएगी। इसके विपरीत, भविष्य में कीमत घटने की संभावना हो, तो वर्तमान में पूर्ति बढ़ जाती है।
9. **सरकारी नीति (Government Policy) :** सरकार की कर (Taxes), अनुदान (Subsidies) आदि की नीतियों का वस्तु की बाजार पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। सरकार द्वारा किसी वस्तु की पूर्ति पर कठोर नियंत्रण, कर भार में वृद्धि आदि की नीतियों के परिणाम स्वरूप उसकी पूर्ति कम हो जाती है। सरकार की व्यापारिक नीतियां भी पूर्ति को प्रभावित करती हैं।
10. **देश की आर्थिक स्थिति (Economic Condition of the Nation) :** यह घटक भी पूर्ति को प्रभावित करता है। देश में समृद्धि की स्थिति में पूर्ति में वृद्धि तथा मंदी की स्थिति में पूर्ति में कमी आती है क्योंकि यह स्थियियाँ जनसाधारण की क्रय शक्ति एवं माँग को प्रभावित करती हैं।

9.4 पूर्ति का नियम एवं इसके क्रियाशील होने के कारण (Law of Supply and Causes of its Operation)

पूर्ति का नियम किसी वस्तु की कीमत तथा पूर्ति की मात्रा के मध्य संबंध को व्यक्त करता है। यह नियम बताता है कि अन्य बातें स्थिर रहती हैं, तो पूर्ति कीमत में वृद्धि के साथ बढ़ती है और कीमत में गिरावट के साथ घट जाती है । इस प्रकार यह नियम किसी वस्तु की कीमत और पूर्ति मात्रा के बीच सीधा संबंध दर्शाता है। **डोले** के अनुसार "पूर्ति के नियम में कहा गया है कि अन्य चीजें समान रहने पर, कीमतें जितनी अधिक हैं, पूर्ति भी उतनी अधिक होगी या कम कीमत पर पूर्ति की मात्रा भी कम होगी।" **पूर्ति का नियम यह स्पष्ट करता है कि वस्तु की ऊँची कीमत पर अधिक पूर्ति तथा नीची कीमत पर कम पूर्ति होती है (Higher the price, higher the supply and lower the price, lower the supply)।**

पूर्ति के नियम के क्रियाशीलता के कारण (Cause of operation of law of supply) :

पूर्ति वक्र प्राय: बायें से दायें ऊपर की ओर उठता हुआ होता है क्योंकि वस्तु की कीमत और उसकी पूर्ति के बीच धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है| परंतु ऐसा क्यों होता है? इसके प्रत्युत्तर में निम्न कारण बताए जा सकते हैं :

1. **लाभ में वृद्धि (Increase in profit) :** वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने के फलस्वरुप उत्पादकों का लाभ बढ़ता है और वह अधिक मात्रा में वस्तुएँ बेचने के लिए प्रेरित होते हैं। वस्तुओं के मूल्य में कमी होने पर या तो विक्रेताओं का लाभ कम हो जाता है अन्यथा बहुत से विक्रेताओं को जिनकी उत्पादन लागत अपेक्षाकृत ऊंची है, नुकसान होने से वस्तु की पूर्ति घटा देते हैं| इस कारण मूल्यों में वृद्धि अथवा कमी से विक्रेताओं को होने वाले लाभ की मात्रा में परिवर्तन ही इस नियम के क्रियाशील होने का प्रमुख कारण है।
2. **दीर्घकाल में माँग और पूर्ति में समायोजन (Adjustment in Demand and Supply in Long term)** : समय अवधि भी पूर्ति को प्रभावित करती है| यह जितनी कम या अधिक होगी पूर्ति में उतना ही कम या अधिक परिवर्तन किया जा सकेगा| इस कारण दीर्घकाल में माँग के अनुरूप पूर्ति में परिवर्तन किया जा सकता है; किन्तु अल्पकाल में पूर्ति में तत्काल परिवर्तन नहीं किया जा सकता।
3. **नए उत्पादकों एवं विक्रेताओं का प्रवेश (Entry of New Producers and Sellers) :** वस्तु का मूल्य बढ़ने पर लाभ से प्रेरित होकर नए उत्पादक एवं विक्रेता भी बाजार में प्रवेश करने लगते हैं। ऐसे उत्पादक जो कम

कीमत होने के कारण उत्पादन नहीं करते थे, वे अब उत्पादन करने लगते हैं और जो विक्रेता पहले पूर्ति करते थे अब अधिक लाभ से प्रेरित होकर वस्तु की पूर्ति बढ़ा देते हैं। इसके विपरीत, कीमत गिरने पर उत्पादकों की संख्या घट जाती है।

पूर्ति के नियम की मान्यताएँ (Assumptions of the Law of Supply)

पूर्ति का नियम, 'अन्य बातें समान रहने पर' ही लागू होता है। यह वाक्यांश नियम की मान्यताओं को व्यक्त करता है। इस नियम की मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैं :

1. उत्पत्ति के साधनों के मूल्य यथावत रहने चाहिए।
2. क्रेताओं एवं विक्रेताओं की आय स्थिर होनी चाहिए।
3. वस्तु की कीमत में अधिक परिवर्तन की आशंका नहीं होनी चाहिए।
4. उत्पादकों एवं विक्रेताओं के तकनीकी ज्ञान में वृद्धि नहीं होनी चाहिए।
5. क्रेताओं एवं विक्रेताओं की रूचि, वरीयता एवं पसंद स्थिर रहनी चाहिए।
6. बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होनी चाहिए।
7. वस्तु स्वतंत्र और विभाज्य होनी चाहिए।
8. क्रेताओं और विक्रेताओं का व्यवहार विवेकशील होना चाहिए।

9.5 पूर्ति के नियम के अपवाद (Exceptions to the Law of Supply)

व्यवहार में, अनेक बार पूर्ति का नियम क्रियाशील नहीं होता है अर्थात् कीमत बढ़ने पर पूर्ति नहीं बढ़ती और कीमत घटने पर पूर्ति मात्रा कम नहीं होती। पूर्ति के नियम के लागू न होने की स्थिति को इसका अपवाद माना जाता है। निम्नांकित दशाओं में पूर्ति का नियम लागू नहीं होता है :

1. अगर भविष्य में वस्तु की कीमत में और अधिक वृद्धि की संभावना है, तो कीमतों के बढ़ने के बावजूद भी पूर्ति की मात्रा में वृद्धि नहीं होगी क्योंकि उत्पादक एवं विक्रेता उसका अधिक स्टॉक करना पसंद करेंगे जिससे वस्तु को भविष्य में ऊंची कीमतों में बेचा जा सके। वस्तु की कीमत में कमी होने की आशंका की स्थिति में भी नियम लागू नहीं होता है। संक्षेप में, तेजीकाल और मंदीकाल पूर्ति के नियम के अपवाद हैं।
2. पूर्ति का नियम ऐतिहासिक, कलात्मक एवं दुर्लभ वस्तुओं पर लागू नहीं होता है क्योंकि ऐसी वस्तुओं की सीमितता के कारण इसकी पूर्ति को नहीं बढाया जा सकता। ऐसी वस्तु निरुत्पादनीय होती हैं।
3. यह नियम नीलामी की वस्तुओं पर भी लागू नहीं होता क्योंकि इनकी मात्रा पूर्व निश्चित होती है, अतः आपूर्ति को नहीं बढ़ाया जा सकता। परिस्थितिवश इनकी पूर्ति मात्रा को कम या स्थगित किया जा सकता है।
4. कुछ कृषिजन्य पदार्थों पर यह नियम लागू नहीं होता है क्योंकि उनकी पूर्ति अपेक्षाकृत प्राकृतिक कारणों से अधिक प्रभावित होती है। जैसे, प्राकृतिक विपदा के कारण फसलों आदि का नष्ट हो जाना।
5. स्थानापन्न एवं पूरक वस्तुओं पर पूर्ति का नियम अक्षरश:लागू नहीं होता है।

स्व मूल्यांकन – प्रथम

1. यदि बाज़ार में निकट भविष्य में मंदी आने की संभावना है तो क्या वस्तु को विक्रेता पहले की अपेक्षा अधिक पूर्ति करेगा? यही हाँ तो क्यों?
2. बाज़ार पूर्ति तालिका (Market Supply Schedule) को उदाहरण सहित समझाइए।
3. पूर्ति के नियम के अनुसार पूर्ति और मूल्य में कैसा सम्बन्ध है?
4. क्या पूर्ति वक्र सीधा हो सकता है?

9.6 पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन एवं पूर्ति में परिवर्तन (Change in Quantity Supplied and Change in Supply)

पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन अन्य बातें यथावत रहने पर, केवल वस्तु की स्वयं की कीमत में परिवर्तन होने के कारण होता है, जबकि पूर्ति में परिवर्तन वस्तु की स्वयं की कीमत के अलावा पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य घटकों के कारण होता है।

पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन (Change in Quantity Supplied) : जब वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा में परिवर्तन केवल उसकी स्वयं की कीमत के कारण होता है, तो इसे पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन कहते हैं। ये निम्नांकित दो प्रकार से हो सकता है :

(i) पूर्ति का विस्तार (Extension of Supply) : अन्य बातें समान रहने पर, जब किसी वस्तु की कीमत बढ़ने के फलस्वरुप उसकी बेची जाने वाली मात्रा अधिक हो जाती है, तो इसे पूर्ति का विस्तार कहा जाता है।

(ii) पूर्ति का संकुचन (Contradiction of Supply) : अन्य बातें समान रहने पर, जब किसी वस्तु की कीमत कम होने के फलस्वरूप उसकी बेची जाने वाली मात्रा कम हो जाती है, तो इसे पूर्ति का संकुचन कहते हैं|

उक्त दोनों स्थितियों को रेखाचित्र संख्या 9.2 से समझा जा सकता है|

चित्रानुसार जब वस्तु की कीमत OP से बढ़कर OP2 हो जाती है, तो पूर्ति-मात्रा OQ से बढ़कर OQ2 हो जाती है। इसे पूर्ति का प्रसार कहते हैं। इस स्थिति में विक्रेता पूर्ति वक्र के A बिन्दु से खिसकर B बिन्दु पर चला जाता है। इसी प्रकार जब वस्तु की कीमत OP से घटकर op_1 रह जाती है, तो पूर्ति-मात्रा OQ से घटकर OQ1 हो जाती है। इसे पूर्ति का संकुचन कहते हैं। इस स्थिति में विक्रेता पूर्ति वक्र के A बिन्दु से खिसकर C बिन्दु पर आ जाता है। पूर्ति-मात्रा के परिवर्तन की स्थिति में वस्तु का विक्रेता उसी पूर्ति वक्र पर ऊपर - नीचे होता रहता है। पूर्ति विस्तार की स्थिति में विक्रेता प्रारम्भिक बिन्दु से दायीं ओर ऊपर की तरफ (A से B बिन्दु) तथा पूर्ति संकुचन की स्थिति में प्रारम्भिक बिन्दु से बायीं ओर नीचे की तरफ खिसक जाता है।

रेखाचित्र संख्या – 9.2

पूर्ति मात्रा में परिवर्तन

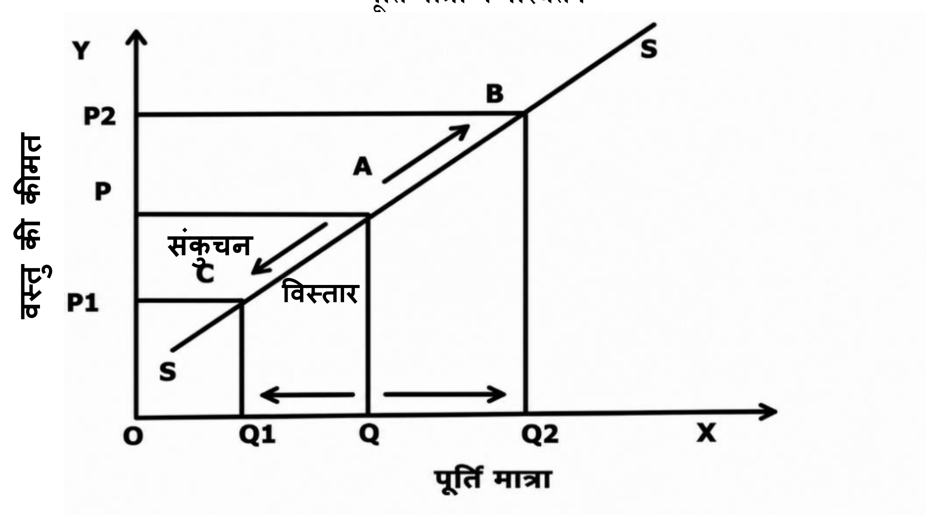

पूर्ति में परिवर्तन (Change in Supply) : जब वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा मे होने वाला परिवर्तन उसकी स्वयं की कीमत के अलावा अन्य किसी कारण से होता है, तो इसे पूर्ति में परिवर्तन कहते हैं। यह निम्नांकित दो रूपों में हो सकता है :

(i) पूर्ति में वृद्धि (Increase in Supply) : जब वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा उसकी स्वयं की कीमत के अतिरिक्त अन्य किसी भी कारण से बढ़ जाती है, तो इसे पूर्ति में वृद्धि कहते हैं। पूर्ति में वृद्धि की स्थिति में पूर्ति वक्र खिसकर दायीं ओर चला जाता है। पूर्ति में वृद्धि निम्नांकित दो प्रकार से हो सकती है।

(अ) समान कीमत पर पहले से अधिक पूर्ति; तथा

(ब) पहले से कम कीमत पर पहले के समान पूर्ति।

उक्त दोनों स्थितियों को रेखाचित्र- 9.3 द्वारा स्पष्ट किया गया है। रेखाचित्रानुसार SS प्रारम्भिक पूर्ति वक्र है और पूर्ति में वृद्धि को नये पूर्ति वक्र S1S1 द्वारा दिखाया गया है। प्रारम्भिक कीमत OP पर प्रारम्भिक पूर्ति OQ है जो अब बढ़कर उसी कीमत पर OQ1 हो जाती है, जिसे S1S1 पूर्ति वक्र के B बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है। इसी प्रकार जब कीमत OP से घटकर OP1 रह जाती है, तो भी पूर्ति समान (OQ) बनी रहती है, जिसे S_1S_1 पूर्ति वक्र के C बिन्दु द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र – 9.3

पूर्ति में वृद्धि

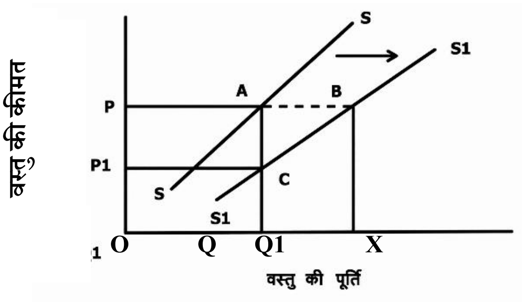

(ii) पूर्ति में कमी (Decrease in supply) : जब वस्तु की कीमत के अलावा उसकी बेची जाने वाली मात्रा अन्य किसी भी कारण से कम हो जाती है, तो इसे पूर्ति में कमी कहते हैं। इस स्थिति में विक्रेता नये पूर्ति वक्र पर चला जाता है, जो प्रारम्भिक पूर्ति वक्र के बायीं ओर नीचे की तरफ होता है। पूर्ति में कमी के भी निम्नांकित दो रूप हो सकते हैं :

(अ) समान कीमत पर पहले से कम पूर्ति; तथा

(ब) पहले से अधिक कीमत पर पूर्ववत पूर्ति।

उक्त दोनों स्थितियों को रेखाचित्र – 9.4 द्वारा समझा जा सकता है। प्रारम्भिक पूर्ति वक्र SS है और नया पूर्ति वक्र S2S2 जो पूर्ति में कमी को प्रदर्शित करता है। प्रारम्भिक कीमत OP है जिस पर प्रारम्भिक पूर्ति OQ (SS वक्र के A बिन्दु पर) है। नये पूर्ति वक्र (S_2S_2) के B बिन्दु पर समान कीमत (OP) पर पहले से कम पूर्ति (OQ_1) है। इसी प्रकार पहले से अधिक कीमत (OP_2) पर पहले के समान मात्रा (OQ) बेची जा रही है जिसे S_2S_2 के C बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है।

रेखाचित्र – 9.4

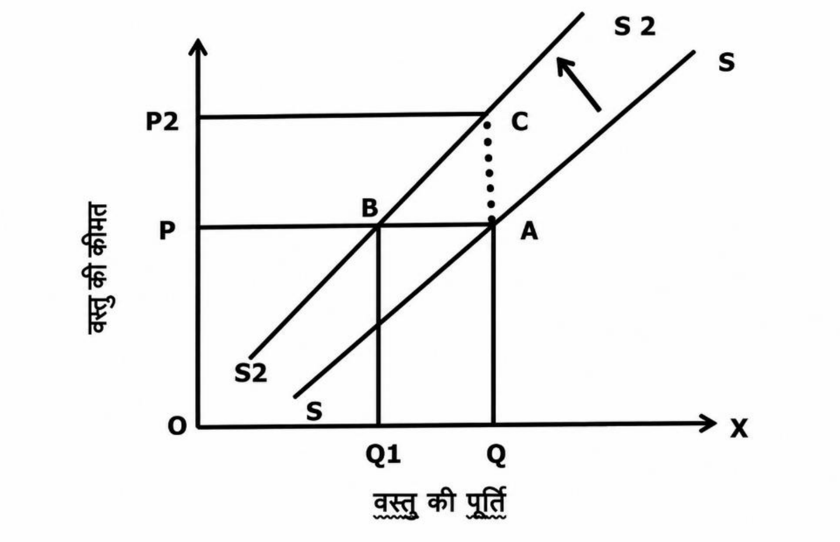

उपर्युक्त विश्लेषण से यह सुस्पष्ट है कि पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन वस्तु की स्वयं की कीमत के कारण होता है, जबकि पूर्ति में परिवर्तन गैर-कीमत तत्त्वों (Non-price factors) के कारण होता है। पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन की स्थिति में विक्रेता उसी पूर्ति वक्र पर ऊपर-नीचे खिसक जाता हैं, जबकि पूर्ति में परिवर्तन की स्थिति में पूर्ति वक्र ही बदल जाता है।

9.7 पूर्ति लोच की अवधारणा एवं इसकी श्रेणियाँ (Concept of Elasticity of Supply and its Degrees)

पूर्ति का नियम एक गुणात्मक कथन (Qualitative statement) है, जो वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के कारण उसकी पूर्ति-मात्रा में परिवर्तन की दिशा तो बताता है, परन्तु उसमें परिवर्तन की दर की माप नहीं करता। पूर्ति की लोच इसी की माप करती है। वस्तु की कीमत में एक निश्चित परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति की मात्रा में जो परिवर्तन आता है, उसकी गणितीय माप ही पूर्ति की लोच कहलाती है| गणितात्मक सूत्र के रूप में पूर्ति की लोच को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

पूर्ति की लोच (es) = वस्तु की मात्रा में आनुपातिक / प्रतिशत परिवर्तन ($\Delta Q/Q$)

वस्तु की कीमत में आनुपातिक / प्रतिशत परिवर्तन ($\Delta P/P$)

यहाँ, es = पूर्ति की लोच

S/Q = पूर्ति का प्रारंभिक मात्रा,

$\Delta S/\Delta Q$ = पूर्ति में परिवर्तन,

P = वस्तु की प्रारम्भिक कीमत,

ΔP = कीमत में परिवर्तन है।

$$es = \frac{\Delta S}{S} \Big/ \frac{\Delta P}{P} \quad \text{or} \quad \frac{\Delta S}{\Delta P} \times \frac{S}{P}$$

यहाँ S और Q समानार्थी हैं

लिप्से के अनुसार, "पूर्ति की लोच वस्तु की कीमत में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन तथा उसके फलस्वरुप पूर्ति में होने वाले वास्तविक प्रतिशत परिवर्तन का अनुपात है।"

पूर्ति की लोच की श्रेणियाँ (Degrees of Elasticity of Supply) :

कीमत में परिवर्तन का सभी वस्तुओं की पूर्ति मात्रा पर समान प्रभाव नहीं पड़ता है अर्थात् वस्तुओं की पूर्ति की लोच भिन्न-भिन्न हो सकती है। इस दृष्टि से पूर्ति की लोच को निम्नांकित पांच श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

1. **पूर्णतया लोचदार पूर्ति (Perfectly Elastic Supply) :** जब किसी वस्तु की कीमत में सूक्ष्म परिवर्तन होने पर अथवा बिना परिवर्तन हुए भी उसकी पूर्ति में अनन्त परिवर्तन हो जाता है, तब वस्तु की पूर्ति पूर्णतया लोचदार कही जाती है। यह एक काल्पनिक स्थिति है, वास्तविक जीवन में ऐसी वस्तुएँ नहीं पाई जाती। रेखाचित्र 9.5 में SS पूर्ति रेखा आधार अक्ष के समानान्तर एक पड़ी अर्थात् क्षैतिज रेखा है।

रेखाचित्र – 9.5

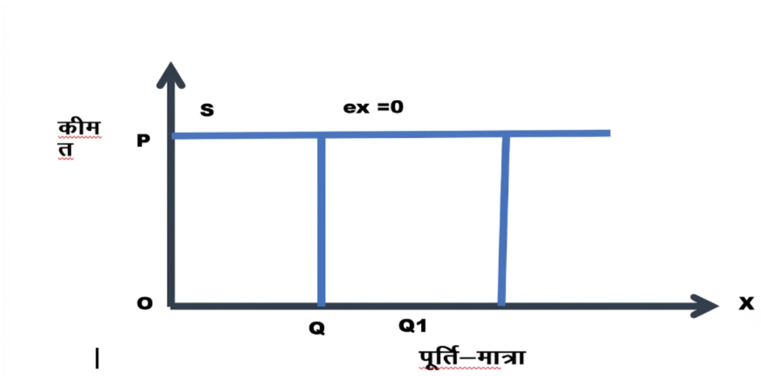

2. **अत्यधिक लोचदार पूर्ति (Highly Elastic Supply) :** जब किसी वस्तु की पूर्ति-मात्रा में होने वाला आनुपातिक/ प्रतिशत परिवर्तन उसकी कीमत के आनुपातिक/प्रतिशत परिवर्तन से अधिक हो, तो उसे अत्यधिक लोचदार पूर्ति कहते हैं - जैसे कीमत में 20% परिवर्तन होने पर पूर्ति में 30% परिवर्तन हो, तो पूर्ति की लोच इकाई से अधिक (e>1) होगी। रेखाचित्र 9.6 द्वारा इसे आसानी से समझा जा सकता है|

रेखाचित्र संख्या – 9.6

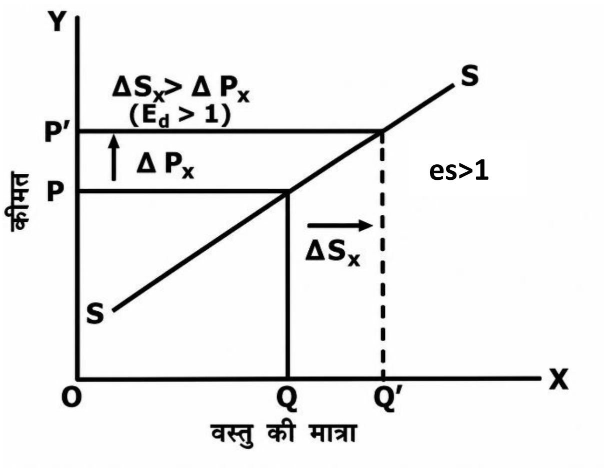

3. **सामान्य लोचदार पूर्ति (Moderate Elastic Supply) :** जब किसी वस्तु की कीमत और उसकी पूर्ति में समान आनुपातिक/ प्रतिशत परिवर्तन होता है, तो पूर्ति की लोच इकाई के बराबर होती है। जैसे यदि वस्तु की कीमत में 20% परिवर्तन होने पर उसकी पूर्ति में भी 20% परिवर्तन हो, तो पूर्ति की लोच सामान्यतया लोचदार (es=1) होती है। रेखाचित्र 9.7 से यह स्पष्ट है|

रेखाचित्र संख्या – 9.7

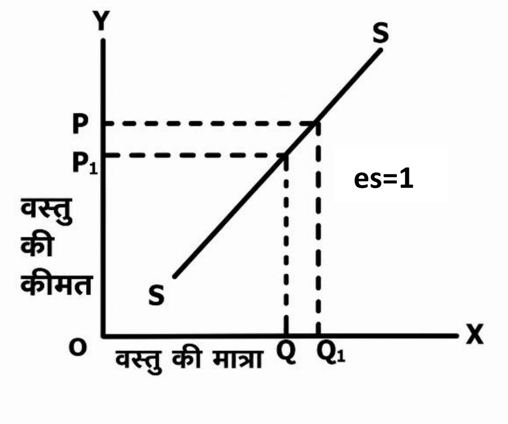

4. **अत्यधिक बेलोचदार पूर्ति (Highly Inelastic Supply) :** जब वस्तु की पूर्ति-मात्रा का आनुपातिक/प्रतिशत परिवर्तन उसकी कीमत के आनुपातिक/प्रतिशत परिवर्तन से कम होता है, तो पूर्ति की लोच इकाई से कम (es<1) होती हैं। उदाहरणार्थ वस्तु की कीमत में 10% परिवर्तन होने पर उसकी पूर्ति – मात्रा में केवल 5 % परिवर्तन होता है, तो पूर्ति की लोच 0.5 होगी अर्थात इकाई से कम होगी| रेखाचित्र 9.8 से यह स्पष्ट है|

रेखाचित्र संख्या – 9.8

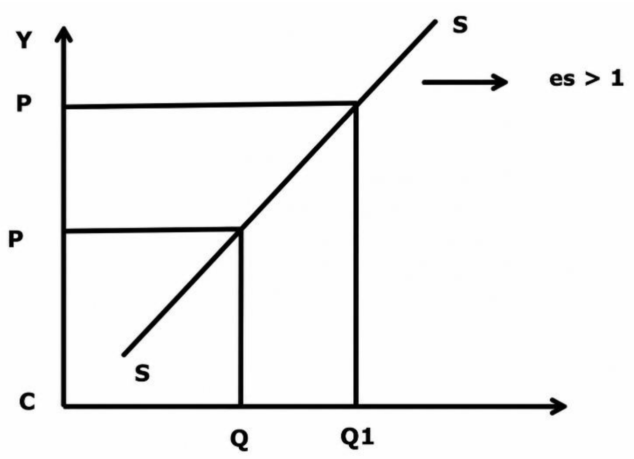

5. **पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति (Perfectly Inelastic Supply) :** जब किसी वस्तु की कीमत में बहुत अधिक या अपरिमित परिवर्तन होने पर भी वस्तु की पूर्ति में अत्यंत सूक्ष्म या कोई परिवर्तन नहीं हो, तो उसे पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति कहा जाएगा। वास्तविक जीवन में ऐसी वस्तु नहीं पाई जाती जिसकी पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार हो। रेखाचित्र 9.9 में SS पूर्ति रेखा OY अक्ष के समानान्तर खड़ी (लम्बवत) रेखा है।

रेखाचित्र संख्या – 9.9

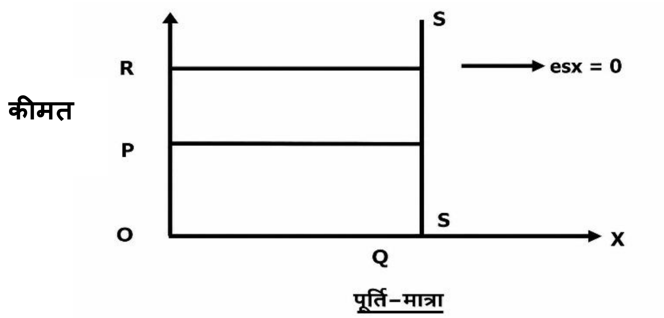

9.8 पूर्ति की लोच का मापन (Measurement of Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच को मापने का मुख्यतः निम्नलिखित दो विधिया हैं :

6. **आनुपातिक या प्रतिशत विधि (Proportional or Percentage Method) :** इस विधि के अंतर्गत पूर्ति की लोच को मापने के लिए पूर्ति में होने वाले आनुपातिक/प्रतिशत परिवर्तन को कीमत में होने वाले आनुपातिक/ प्रतिशत परिवर्तन से विभाजित किया जाता है तो इसेजो भागफल आता है, वह पूर्ति की लोच होती है। **सूत्र रूप में :**

$$es = \frac{\Delta S}{S} / \frac{\Delta P}{P} or \frac{\Delta S}{\Delta P} \times \frac{S}{P}$$

7. **रेखागणितीय अथवा बिन्दुविधि (Geometrical or Point Method) :** इस विधि द्वारा पूर्ति रेखा के किसी बिन्दु विशेष पर पूर्ति की लोच ज्ञात की जाती है। उदाहरणार्थ, रेखाचित्र संख्या 9.9 में SS पूर्ति वक्र के A बिन्दु पर पूर्ति की लोच ज्ञात करनी है। इस बिन्दु पर लोच ज्ञात करने के लिए SS रेखा को OX अक्ष पर D बिन्दु तक बढ़ाया जाता है अर्थात SS पूर्ति वक्र DS बन जाता हैं।

   सूत्रानुसार :

   $\boldsymbol{es} = \frac{\Delta S}{\Delta P} \times \frac{S}{P}$ होती है। इस सूत्र को रेखाचित्र 9.9 के आधार पर इस प्रकार लिखा जाएगा:

   $\boldsymbol{es} = \frac{OQ}{PP1} \times \frac{OP}{OQ}$ ....(i)

   रेखाचित्रानुसार, $OQ_1 = AC$; $PP_1 = CB$ एवं $OP = QA$ है।

   इन्हें समीकरण (i) में रखने पर बदलकर निम्नांकित हो जाता है :

   $\boldsymbol{es} = \frac{AC}{CB} \times \frac{QA}{OQ}$ ....(ii)

   रेखाचित्र में, $\Delta\, BCA$ तथा ΔAQD समानुपाती हैं। अत : AC के स्थान पर DQ एवं CB के स्थान पर QA लिखा जा सकता है। इन्हें समीकरण (ii) में रखने पर बदलकर निम्नांकित हो जाता है :

   $\boldsymbol{es} = \frac{DQ}{QA} \times \frac{QA}{OQ}$ ....(iii)

अर्थात $\frac{DQ}{OQ}$ हो जाता है। चित्रानुसार DQ<OQ है, इसलिए पूर्ति की लोच इकाई से कम (es<1) है।

ज्ञातव्य है कि यदि D बिन्दु मूल बिन्दु (O) पर होता, तो पूर्ति की लोच इकाई के बराबर और यदि यह मूल बिन्दु के बायीं और होता (अर्थात पूर्ति वक्र OY अक्ष को मूल बिन्दु से ऊपर स्पर्श करता) तो पूर्ति की लोच इकाई से अधिक होती है। इन्हें रेखाचित्र 9.9 में देखा जा सकता हैं।

9.9 पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Factors Affecting the Elasticity of Supply)

वस्तु की पूर्ति की लोच पर निम्न घटकों का प्रभाव पड़ता है :

1. **वस्तु की प्रकृति (Nature of Commodity) :** सामान्यतया शीघ्र नाशवान प्रकृति की वस्तुओं की पूर्ति लोच कम लोचदार होती है क्योंकि इन्हें अधिक लंबे समय तक संग्रह नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत, टिकाऊ वस्तुओं की पूर्ति की लोच अधिक लोचदार होती है क्योंकि इनका संग्रह किया जा सकता है।
2. **उत्पत्ति के नियम (Laws of Returns) :** जिन वस्तुओं का उत्पादन उत्पत्ति ह्रास नियम के अंतर्गत होता है, उन वस्तुओं की पूर्ति अपेक्षाकृत कम लोचदार होती है। इसके विपरीत, जिन वस्तुओं का उत्पादन उत्पत्ति वृद्धि नियम के अंतर्गत होता है, उन वस्तुओं की पूर्ति अधिक लोचदार होती है।
3. **समयावधि (Time-period) :** समय जितना अधिक होगा, पूर्ति की लोच उतनी ही अधिक लोचदार होगी क्योंकि दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन कर पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है। इसके विपरीत, अल्पकाल में उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन नहीं होने के कारण पूर्ति की लोच कम लोचदार होगी।
4. **उत्पादन तकनीक (Production Technique) :** जिन वस्तुओं के उत्पादन में उच्च तकनीक की आवश्यकता नहीं होती, उनकी पूर्ति अधिक लोचदार होगी; जबकि उच्च एवं जटिल तकनीक की आवश्यकता होने पर पूर्ति को शीघ्र परिवर्तित नहीं किया जा सकता। अत: पूर्ति कम लोचदार होगी।
5. **पूँजी व श्रम की आवश्यकता (Requirement of Capital & Labour) :** जिन वस्तुओं के उत्पादन में कम पूँजी या सीमित श्रम की आवश्यकता होती है, वहाँ पूर्ति अधिक लोचदार होगी, जबकि अधिक पूँजी या अधिक कुशल श्रमिकों की आवश्यकता की दशा में पूर्ति की लोच कम लोचदार होगी क्योंकि इन उत्पादन साधनों को जुटाने में समय लगता है।
6. **सरकारी नीतियाँ (Govt. Policies) :** यदि सरकारी आर्थिक नीतियाँ उदार एवं लोचपूर्ण होती हैं, तो वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होती है और विलोमशः कम।

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

1. तकनीकी में परिवर्तन से आपूर्ति वक्र कैसे प्रभावित होता है ?
2. गणितात्मक सूत्र के रुप में पूर्ति की लोच को व्यक्त कीजिए।
3. पूर्णत: बेलोचदार पूर्ति मात्र काल्पनिक है। क्या आप इससे सहमत हैं? यदि हाँ तो क्यों?

9.10 सारांश (Summary)

पूर्ति किसी वस्तु की वह मात्रा है जो एक दी हुई कीमत पर प्रति इकाई समय में एक उत्पादक/विक्रेता बेचने को इच्छुक है। पूर्ति अनुसूची किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं को दर्शाती है, जो एक विक्रेता उसके विभिन्न मूल्यों पर बेचने हेतु

बाजार में प्रस्तुत करता है। पूर्ति अनुसूची का रेखाचित्रीय निरूपण ही पूर्ति वक्र कहलाता है। पूर्ति का नियम वस्तु की कीमत और उसकी पूर्ति-मात्रा के बीच प्रत्यक्ष एवं धनात्मक सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। दूसरे शब्दों में, ऊँची कीमत पर अधिक पूर्ति और नीची कीमत पर कम पूर्ति होती है। पूर्ति का नियम लाभ में वृद्धि, उत्पादन क्षमता में परिवर्तन, प्रौद्योगिकी में परिवर्तन, उत्पादकों की संख्या तथा माँग के अनुरूप पूर्ति में समायोजन की प्रवृत्ति इत्यादि घटकों के कारण क्रियाशील होता है। पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन केवल वस्तु की स्वयं की कीमत में परिवर्तन के कारण होते हैं, जबकि पूर्ति में परिवर्तन वस्तु की स्वयं की कीमत को छोड़कर पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्वों में परिवर्तन के कारण होता है। वस्तु की कीमत में एक निश्चित प्रतिशत होने के कारण उसकी पूर्ति-मात्रा में जो प्रतिशत परिवर्तन फलित होता है, उसकी गणितीय माप ही पूर्ति की लोच कहलाती है। पूर्ति की लोच की पाँच श्रेणियाँ हो सकती हैं, किन्तु व्यवहार में केवल तीन श्रेणियाँ ही पायी जाती हैं – अत्यधिक लोचदार, सामान्य लोचदार एवं अत्यधिक बेलोचदार पूर्ति। पूर्ति की लोच को प्रतिशत विधि/आनुपातिक विधि, तथा बिन्दु विधि द्वारा मापा जाता है।

9.11 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

अर्थशास्त्र में पूर्ति-विश्लेषण का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका विधिवत अध्ययन न केवल विद्यार्थी बल्कि सरकार, उत्पादकों और अर्थव्यवस्था से संबंधित सभी वर्गों के लिए नीति-निर्धारण में अत्यंत उपयोगी है।

इसके अध्ययन और विश्लेषण से उत्पादकों के लिए व्यावसायिक लागतों को नियंत्रित कर उत्पादन क्षमता में वृद्धि सम्बन्धी निर्णय लेना सहज हो जाता है।

पूर्ति के अर्थशास्त्र का अध्ययन एवं विश्लेषण सरकार के लिए भी राजकीय कर-नीति के निर्धारण एवं अन्य आर्थिक बाधाओं को नियंत्रित कर विकास की गति को बढ़ाने में सहायक होता है।

उपभोक्ता की क्रय क्षमता और संबंधित अन्य निर्णय भी पूर्ति के अर्थशास्त्र से प्रभावित होते हैं।

9.12 शब्दावली (Glossary)

1. **पूर्ति (Supply) :** किसी वस्तु की वह मात्रा जो एक उत्पादक उसकी एक निश्चित कीमत पर एक निश्चित समयावधि में बिक्री हेतु प्रस्तुत करता है।

2. **पूर्ति–मात्रा में परिवर्तन (Change in Quantity Spplied) :** अन्य बातों के यथावत रहने पर, जब किसी वस्तु की बिक्री हेतु प्रस्तुत मात्रा उसके स्वयं के मूल्य के कारण परिवर्तित होती है, तो इसे पूर्ति-मात्रा में परिवर्तन कहते हैं। यह पूर्ति का विस्तार और पूर्ति का संकुचन दो रूपों में हो सकती है।

3. **पूर्ति में परिवर्तन (Change in Supply) :** जब वस्तु की बिक्री हेतु प्रस्तुत मात्रा में वस्तु की स्वयं की कीमत के अतिरिक्त अन्य किसी भी कारण से परिवर्तन होता है, तो इसे पूर्ति में परिवर्तन कहते हैं। यह भी दो रूपों में (पूर्ति में वृद्धि एवं पूर्ति में कमी) हो सकता है।

4. **पूर्ति का नियम (Low of Supply) :** अन्य बातों के समान रहने पर, पूर्ति का नियम किसी वस्तु की कीमत और उसकी पूर्ति-मात्रा के बीच प्रत्यक्ष अथवा धनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। इस नियम के अनुसार वस्तु की ऊँची कीमत पर पूर्ति अधिक और नीची कीमत पर पूर्ति कम होगी।

5. **पूर्ति की लोच (Elasticity of Supply) :** किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उसकी पूर्ति-मात्रा में जो परिवर्तन होता है, उसकी गणितीय माप ही पूर्ति की लोच कहलाती है।

9.13 स्व-परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Questions)

1. पूर्ति एवं स्टॉक में अन्तर बताइए।
2. पूर्ति की लोच की अवधारणा से आपका क्या तात्पर्य है?
3. पूर्ति के नियम के कोई दो अपवादों का उल्लेख कीजिए।
4. पूर्ति का संकुचन एवं पूर्ति में कमी के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. पूर्ति के नियम की व्याख्या कीजिए तथा इसके अपवाद बताइए।
2. पूर्ति की लोच को मापने की विधियाँ स्पष्ट कीजिए।
3. पूर्ति से आपका क्या आशय है? पूर्ति को प्रभावित करने वाले घटकों का विवेचन कीजिए।
4. पूर्ति की लोच की विभिन्न श्रेणियाँ स्पष्ट कीजिए।

9.14 सन्दर्भ व ग्रन्थ सूची (References & Bibliography)

- Mithani, D.M : Managerial Economics, Himalaya Publishing House 2017
- Sloman John : Essentials of Economics, Pearson Education, 2007.
- Gupta,G.S. : Managerial Economics, New Delhi : Tata McGraw-Hill, 2010

9.15 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- झिंगन एम्.एल.: प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र, वृन्दा पब्लिकेशन प्रा. लि. नई दिल्ली
- सिंह,शर्मा,चौधरी : प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र, रमेश बुक डिपो, जयपुर
- द्विवेदी डी.एन. : प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र, एस. चाँद, नई दिल्ली

9.16 वेब संसाधन/लिंक (Web resources/Links)

- http://www.economist.com
- http://www.indianbusiness.nic.in

इकाई - 10

अल्पकालीन उत्पादन फलन अथवा उत्पत्ति के नियम (Short - Term Production Function or Laws of Returns)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 उत्पादन फलन
10.3 उत्पादन फलन की मान्यताएँ
10.4 उत्पत्ति वृद्धि नियम
10.5 उत्पत्ति वृद्धि नियम के क्रियाशील होने के कारण
10.6 उत्पत्ति समता नियम या समान प्रतिफल नियम
10.7 उत्पत्ति ह्रास नियम
10.8 उत्पत्ति ह्रास नियम की आधुनिक व्याख्या
10.9 उत्पत्ति ह्रास नियम अथवा परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के क्रियाशील होने के कारण
10.10 उत्पत्ति ह्रास नियम के क्रियाशील होने का क्षेत्र
10.11 उत्पत्ति ह्रास नियम का उपयोग एवं महत्त्व
10.12 सारांश
10.13 अधिगम परिणाम
10.14 शब्दावली
10.15 स्व-परख प्रश्न
10.16 सन्दर्भ एवं ग्रन्थ सूची
10.17 अन्य पाठन सामग्री
10.18 वेब संसाधन/लिंक

10.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- उत्पादन फलन का अर्थ समझ सकेंगे;
- अल्पकालीन उत्पादन फलन अथवा उत्पत्ति के नियमों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- उत्पत्ति के नियमों के क्रियाशील होने के कारणों से अवगत हो सकेंगे; तथा
- उत्पत्ति ह्रास नियम के महत्त्व के बारे में अपनी समझ विकसित कर सकेंगे|

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

अर्थशास्त्र में यह माना जाता है कि उपभोग आर्थिक क्रियाओं का जनक है, परन्तु बिना उत्पादन के उपभोग नहीं हो सकता। जिस प्रकार प्रत्येक उपभोक्ता अपने सीमित साधानों से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक उत्पादक का भी यह प्रयास रहता है कि वह न्यूनतम लागत संयोग से अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सके। वस्तु अथवा सेवा का उत्पादन करने के लिए उत्पत्ति के साधनों–भूमि, पूँजी, श्रम, संगठन एवं साहस का संयोग करना आवश्यक होता है। उत्पादनकर्ता का प्रयास होता है कि वह इन संसाधनों का कुशलतम उपयोग कर कुल लागत को न्यूनतम कर अपने लाभ को अधिकतम कर सके। इसके लिए प्रत्येक उत्पादक अपने उत्पादन की योजना बनाते समय उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ तकनीक एवं उत्पत्ति के साधनों के विभिन्न वैकल्पिक संयोगों से प्राप्त हो सकने वाले उत्पादन का अनुमान लगाता है एवं अन्त में साधनों के उसी संयोग को अपनाता है, जिससे न्यूनतम लागत पर सर्वाधिक उत्पादन संभव हो सके। इस निर्णयन में उत्पादन फलन का विशेष महत्त्व है। इस इकाई में हम उत्पादन फलन तथा अल्पकालीन उत्पादन फलन अथवा उत्पत्ति के नियमों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

10.2 उत्पादन फलन (Production Function)

उत्पत्ति की मात्रा उत्पादन प्रक्रिया में विनियोजित साधनों की मात्रा पर निर्भर करती है। इन साधनों को पड़तें (Inputs) भी कहा जाता है तथा जो उत्पादन होता है, उसे उत्पाद (Output) कहते हैं। तकनीकी रूप से भौतिक पडतों व भौतिक उत्पाद के मध्य स्थित संबंध को उत्पादन फलन कहा जाता है। **प्रो. सेम्यूलसन** के अनुसार,''उत्पादन फलन एक दिए हुए तकनीकी ज्ञान की स्थिति में उत्पत्ति के विशिष्ट साधनों के प्रत्येक संयोग द्वारा संभव उत्पादन की मात्रा को अभिव्यक्त करने वाला एक तकनीकी संबंध है।''

प्रो. रिचर्ड बिलास के अनुसार,''उत्पादन फलन, प्रति इकाई समय में, फर्म के संसाधनों की आदाओं एवं उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं की मात्राओं के बीच एक भौतिक संबंध है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्पादन फलन शब्द उस भौतिक संबंध को अभिव्यक्त करता है जो एक फर्म के साधनों की इकाइयों एवं प्राप्त वस्तुओं व सेवाओं की उत्पत्ति के बीच पाया जाता है। संक्षेप में **आगत–निर्गत (Input-Output) भौतिक संबंध को ही उत्पादन फलन कहा जाता है। गणितीय रूप में इसे निम्नानुसार अभिव्यक्त किया जा सकता है :**

$Qx= f (a,b,c,----------------n,TT)$

उपरोक्त सूत्र में :

(i) Qx = वस्तु x के उत्पादन की भौतिक मात्रा,

(ii) a,b,c,----------------n = उत्पत्ति के विभिन्न साधनों की फर्म द्वारा प्रयुक्त मात्राओं,

(iii) TT = प्रति इकाई समय व तकनीकी ज्ञान की स्थिर स्थिति एवं

(iv) f = उत्पादन की मात्रा एवं साधनों के बीच पायें जाने वाले संबंध का सूचक है।

उपरोक्त सूत्र इस तथ्य को इंगित करता है कि दी हुई समयावधि एवं तकनीकी ज्ञान की स्थिर अवस्था में वस्तु की मात्रा उसके उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की मात्रा पर निर्भर करती है।

10.3 उत्पादन फलन की मान्यताएँ (Assumptions of Production Function)

1. फर्म समय विशेष पर उपलब्ध सर्वाधिक उपयुक्त तकनीक का प्रयोग करती है।
2. अवधि विशेष में उत्पादन तकनीक एवं प्रौद्योगिक ज्ञान को स्थिर माना जाता है।
3. उत्पादन फलन का संबंध किसी निश्चित समयावधि तक सीमित माना जाता है।
4. अल्पकाल में उत्पत्ति के साधनों में आवश्यक रूप से कुछ साधन स्थिर एवं शेष परिवर्तनीय होते हैं।
5. दीर्घकाल में उत्पत्ति के सभी साधनों में परिवर्तन करना संभव है।

उत्पादन फलन को दो भागों में विभक्त किया गया है :

1. अल्पकालीन उत्पादन फलन (Short Term Production Function or Laws of Returns)
2. दीर्घकालीन उत्पादन फलन (Long Term Production Function or Returns to Scale)

अल्पकालीन उत्पादन फलन अथवा उत्पत्ति के नियम (Short Term Production Function or Laws of Returns) :

अल्पकालीन उत्पादन फलन से आशय उत्पत्ति के नियमों अथवा परिवर्तनशील अनुपातों के नियम से है। इस उत्पादन फलन की अवस्था में फर्म के लिए अपने सभी साधनों में परिवर्तन करना संभव नहीं होता। अल्पकाल में उत्पत्ति के साधनों के संयोगों मे कुछ साधन स्थिर एवं शेष परिवर्तनशील होते हैं। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति का कम से कम एक साधन स्थिर होता है । सामान्यतः यह अविभाज्य साधन होता है, जबकि शेष साधन विभाज्य अथवा परिवर्तनशील होते हैं। स्थिर अथवा अविभाज्य साधन वे साधन हैं, जो एक निश्चित उत्पादन स्तर तक नहीं बदलते अथवा जिन्हें बदलना या तो फर्म के लिए संभव नहीं होता अथवा फिर हितकर नहीं होता। अल्पकाल में स्थिर अथवा अविभाज्य साधन/साधनों के साथ जब फर्म अपने परिवर्तनशील साधन/साधनों की मात्रा में वृद्धि करती है, तो इससे भौतिक उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी निम्नांकित प्रवृत्तियों में से कोई एक प्रवृत्ति हो सकती है, जिसका अध्ययन उत्पत्ति के नियमों के अन्तर्गत किया जाता है :

1. कुल उत्पादन में क्रमशः बढती दर से वृद्धि हो;
2. कुल उत्पादन में क्रमशः समान दर से वृद्धि हो; अथवा
3. कुल उत्पादन में क्रमशः घटती दर से वृद्धि हो|

परम्परागत अर्थशास्त्रियों ने उपर्युक्त तीनों प्रवृत्तियों को एक दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र मानकर उन्हें उत्पत्ति के तीन नियमों में वर्गीकृत किया है, जो अग्रानुसार है :

10.4 उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns)

अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definition) : उत्पत्ति के साधनों के संयोग में जब अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए, किसी एक परिवर्तन साधन की मात्रा में वृद्धि करने से कुल उत्पादन में यदि अनुपात से अधिक वृद्धि होती

हो, तो इसे उत्पत्ति वृद्धि नियम अथवा वर्धमान प्रतिफल नियम कहते हैं। प्रो. मार्शल ने इस नियम को केवल उद्योगों के संबंध मे प्रतिपादित किया। **मार्शल** के अनुसार,''जब श्रम व पूँजी की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो संगठन में सुधार होता है, जिसके परिणामस्वरूप श्रम व पूँजी की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। अतः उन उद्योगों में जिनमें कच्चे माल का उत्पादन नहीं होता श्रम एवं पूँजी में वृद्धि करने से उत्पत्ति अनुपात से अधिक बढ़ती है।'' **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** के अनुसार,''जब किसी उत्पादन साधन का अधिक मात्रा में उपयोग किया जाता है तो सामान्यतः संगठन मे सुधार संभव होता है। इससे उत्पादन की इकाई की कार्यकुशलता बढ़ जाने से उत्पादन में वृद्धि करने के लिए उत्पादन साधन की भौतिक मात्रा में समानुपातिक वृद्धि नहीं करनी पड़ती।''

उपरोक्त पारिभाषाओं का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि **प्रो. मार्शल** ने इस नियम को केवल विनिर्माण उद्योगों से संबधित बताया है, वही आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इस नियम के संदर्भ में यह अभिमत किया है कि यह नियम उद्योगों के साथ - साथ कृषि पर भी समान रूप से लागू होता है। केवल अंश का अन्तर है। यह नियम यह मानता है कि स्थिर अथवा अविभाज्य साधन के साथ जब परिवर्तन साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है, तो संगठन में सुधार होता है, साधनों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है, उत्पादन के आकार में विस्तार से अविभाज्य एवं स्थिर साधन की क्षमता का अधिक प्रयोग होने के कारण फर्म को आन्तरिक एवं बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं। इन सबके परिणामस्वरूप कुल उत्पादन में साधनों के अनुपात से अधिक वृद्धि होती है। यह क्रम तब तक चलता है, जब तक कि विनियोजित साधनों में अनुकूलतम संयोग नहीं हो जाता। इस बिन्दु पर सीमांत एवं औसत उत्पादन अधिकतम होता है।

उत्पत्ति वृद्धि नियम को हम एक उदाहरण के द्वारा भी समझ सकते हैं। माना कि एक उत्पादक अपनी फर्म में श्रम व पूँजी की इकाइयों को बढ़ाता है, यह मानते हुए कि शेष साधन स्थिर हैं, उसकी कुल उत्पत्ति, सीमांत एवं औसत उत्पत्ति निम्नानुसार है :

तालिका संख्या – 10.1

उत्पत्ति वृद्धि नियम

परिवर्तन साधन श्रम व पूँजी की इकाइयां (N)	**कुल भौतिक उत्पादन (TPP)**	**सीमांत उत्पादन (MPP)**	**औसत उत्पादन (APP)**
1	10	10	10
2	25	15	12.5
3	45	20	15
4	70	25	17.5
5	100	30	20

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों श्रम और पूँजी की मात्राऐं बढायी जा रही है, त्यों-त्यों सीमांत उत्पत्ति एवं औसत उत्पत्ति दोनों बढ़ रही है तथा कुल उत्पादन में भी बढ़ती हुई दर से वृद्धि हो रही है। सीमांत उत्पादन में वृद्धि की दर औसत उत्पादन की वृद्धि दर की तुलना में अधिक है। इस कारण से कुल उत्पादन भी बढ़ती हुई दर से प्राप्त होता है। इसको हम रेखाचित्र के द्वारा भी समझ सकते है :

रेखाचित्र संख्या – 10.1

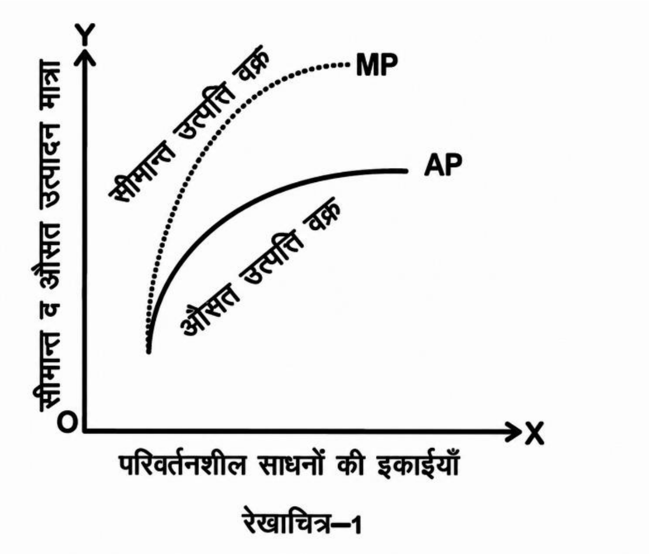

प्रस्तुत चित्र, जो कि उपरोक्त तालिका पर आधारित नहीं है, में OX अक्ष पर परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों तथा OY अक्ष पर सीमांत उत्पत्ति एवं औसत उत्पत्ति की मात्रा को दर्शाया गया है। सीमांत उत्पत्ति वक्र (MPC) औसत उत्पत्ति वक्र (APC) की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ रहा है, इस कारण कुल उत्पादन भी बढ़ती दर से प्राप्त होता है।

उत्पत्ति वृद्धि नियम एवं लागत (Law of Increasing Returns and Cost) : इस नियम को लागत की दृष्टि से लागत ह्वास नियम कहा जाता है| इसका कारण यह है कि जिस अनुपात में परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में वृद्धि की जाती है, उसकी तुलना में भौतिक उत्पादन की मात्रा में अक्षेपाकृत अधिक वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप सीमांत लागत (MC) एवं औसत लागत (AC) दोनों ही घटती हुई होती है। सीमांत लागत औसत लागत की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक तेजी से गिरती है। यह कमी उस समय तक जारी रहती है, जब तक की साधनों के बीच आदर्शतम (Optimum) संयोग स्थापित नहीं हो जाता है। इसे रेखाचित्र 10.2 की सहायता से स्ष्ट किया गया है।

रेखाचित्र संख्या – 10.2

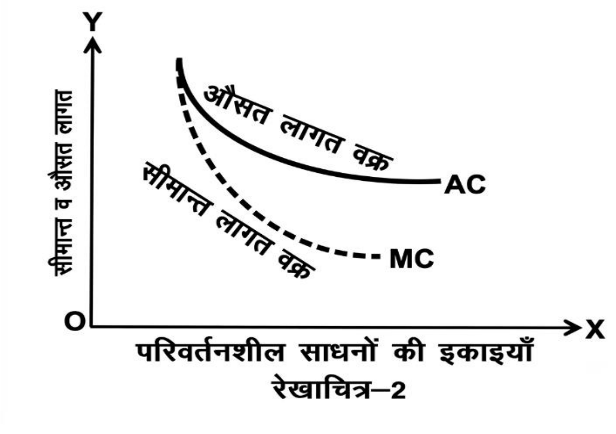

इस रेखाचित्र में औसत लागत वक्र (AC) तथा सीमान्त लागत वक्र (MC) को दिखाया गया है, जो यह इंगित करते हैं कि ज्यों-ज्यों उत्पादन बढ़ता है, त्यों-त्यों सीमान्त एवं औसत लागत घटती जाती है, परन्तु सीमान्त लागत औसत लागत की तुलना में अधिक तीव्र गति से कम होती है।

10.5 उत्पत्ति वृद्धि नियम के क्रियाशील होने के कारण (Reasons of Operation of the Law)

उत्पत्ति वृद्धि नियम निम्न कारणों से लागू होता है :

1. **साधनों की अविभाज्यता (Indivisibility of Factors) :** उत्पत्ति के कुछ साधन स्थिर अथवा अविभाज्य होते हैं। जैसे – साहसी, प्रबंधक, भूमि, भवन, प्लांट एवं मशीनरी इत्यादि। उत्पादन की एक निर्धारित क्षमता तक उनमें परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती। ऐसी स्थिति में जब तक अविभाज्य साधन की पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं हो जाता, तब तक उत्पादन बढ़ाने के लिए केवल परिवर्तनशील साधनों की इकाइयां ही बढ़ानी होती है। परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों में वृद्धि करने पर स्थिर साधन की क्षमता का भी इस्तेमाल होने लगता है और साथ ही साधनों में परस्पर अनुकूलतम अनुपात में संयोग स्थापति होने के कारण उत्पादन में बढ़ती दर से वृद्धि होती है तथा लागत घटती है।

2. **आतंरिक एवं बाह्य बचतें (Internal and External Economies) :** जब उत्पादन का आकार बढ़ता है, तो फर्म को दो प्रकार की बचतें प्राप्त होती है, जिन्हें आन्तरिक एवं बाह्य बचतों के नाम से जाना जाता है। **आंतरिक बचतें** वे बचतें होती है, जो फर्म को स्वयं का आकार बढ़ने के कारण प्राप्त होती हैं, जैसे – फर्म का आकार बढ़ने से उसकी सौदा करने की शक्ति बढ़ जाती है जिससे वह क्रय किए जाने वाले कच्चे माल एवं अन्य वस्तुओं को पहले की तुलना में कम दर पर प्राप्त करने में सक्षम होती है। प्रति इकाई विज्ञापन व्यय भी कम हो जाता है, इसके अतिरिक्त माल सम्प्रेषण अथवा मंगवाने का खर्च भी पहले की तुलना में कम हो जाता है। श्रम विभाजन एवं विशिष्टिकरण के लाभ भी उसे प्राप्त होते हैं। जबकि **बाह्य बचतें** वे बचतें होती हैं, जो उद्योग की सभी फर्मों को समान रूप से उपलब्ध होती है। जैसे- फर्म विशेषज्ञों की सेवाऐं भी आसानी प्राप्त करने में सक्षम होती है। परिवहन एवं आवागमन के सस्ते एवं सुगम साधन, शोध एवं अनुसंधान से प्राप्त लाभ, सरकार से उद्योग विशेष को मिलने वाली छूटें इत्यादि बाह्य बचतों के उदाहरण हैं। यह सब मिलकर फर्म की लागत को घटा देते हैं।

3. **परिवर्तनशील साधन की पर्याप्त पूर्ति एवं विभाज्यता (Adequate Availability of Factors and indivisibility) :** नियम यह मानकर चलता है कि यद्यपि फर्म के लिए स्थिर साधन की मात्रा में वृद्धि करना अल्पकाल में संभव नहीं है, परन्तु वह परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में आसानी से वृद्धि कर सकती है। साथ ही यह भी मान लिया गया है कि परिवर्तनशील साधनों की इकाइयां विभाजनीय भी है। इस कारण अनुकूलम संयोग की प्राप्ति तक उत्पादन अधिक तेजी से बढ़ता है। औद्योगिक क्षेत्र में मानव का हस्तक्षेप अधिक होने के कारण इस नियम की क्रियाशीलता अधिक देखी जा सकती है। उद्योंगों में उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति अपेक्षाकृत लोचदार होती है। सभी साधनों की मात्रा में आवश्यकतानुसार संयोग स्थापित करना सरल होता है, साथ ही श्रम विभाजन, विशिष्टिकरण, वैज्ञानिक आविष्कार एवं अनुसंधान, नयी तकनीक का प्रयोग एवं प्रतिस्थापन भी संभव होता है।

10.6 उत्पत्ति समता नियम या समान प्रतिफल नियम (Law of Constant Returns)

अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definition) : उत्पत्ति के साधनों के संयोग में स्थिर अथवा अविभाज्य साधन के साथ परिवर्तनशील साधनों की इकाइयां बढ़ाने पर यदि कुल उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती हो, जिस

अनुपात में परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों को बढ़ाया गया हो, तो इसे उत्पत्ति समता नियम अथवा समान प्रतिफल नियम की अवस्था कहा जाता है। वास्तव में, यह नियम उत्पत्ति वृद्धि नियम एवं उत्पत्ति ह्रास नियम के बीच संधिकाल में अल्प समय के लिए ही लागू होता है। **मार्शल** के अनुसार,''उत्पादन के जिस स्तर पर उत्पत्ति वृद्धि तथा उत्पत्ति ह्रासमान दोनों नियमों के प्रभाव बराबर हो जाते हैं, वहां उत्पत्ति स्थिरता नियम लागू होने लगता है।'' **स्टिगलर** के अनुसार,''जब सभी उत्पादक सेवाओं को एक दिये हुए अनुपात में बढ़ाया जाता है, तो उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है। ''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्पत्ति समता नियम की अवस्था में उत्पादन में होने वाली वृद्धि की दर ठीक उसी अनुपात में होती है जिस अनुपात में परिवर्तनशील साधनों में वृद्धि की जाती है। यह नियम उत्पत्ति वृद्धि नियम के बाद की अवस्था में लागू होता है। उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत जब परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों में उत्तरोतर वृद्धि की जाती है, तो उत्पादन एक ऐसे स्तर पर पहुच जाता है, जहां उत्पत्ति वृद्धि नियम का लागू होना समाप्त हो जाता है तथा उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होना प्रारंभ नहीं होता है। इस संधिकाल में उत्पत्ति समता नियम कार्यशील होता है।

उत्पत्ति समता नियम को हम एक उदाहरण के द्वारा भी समझ सकते हैं। माना कि एक उत्पादक अपनी फर्म में श्रम व पूँजी की इकाइयों को बढ़ाता है, यह मानते हुए कि शेष साधन स्थिर हैं, तो उसकी कुल उत्पत्ति, सीमांत एवं औसत उत्पत्ति निम्नानुसार है :

तालिका संख्या – 10.2

उत्पत्ति समता नियम

परिवर्तन साधन श्रम व पूँजी की इकाइयाँ (N)	**कुल भौतिक उत्पादन (TPP)**	**सीमांत उत्पादन (MPP)**	**औसत उत्पादन (APP)**
1	20	20	20
2	40	20	20
3	60	20	20
4	80	20	20
5	100	20	20

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों श्रम और पूँजी की मात्रा बढ़ायी जा रही है, त्यों -त्यों सीमांत उत्पत्ति एवं औसत उत्पत्ति दोनों समान दर से बढ़ रही है तथा कुल उत्पादन में भी उसी दर से वृद्धि हो रही है। इसे रेखाचित्र 10.3 की सहायता से स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत चित्र, जो कि उपरोक्त तालिका पर आधारित नहीं है, में OX अक्ष पर परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों तथा OY अक्ष पर सीमांत उत्पत्ति एवं औसत उत्पत्ति की मात्रा को दर्शाया गया है। सीमांत उत्पत्ति वक्र MPP औसत उत्पत्ति वक्र APP दोनों ही क्षितिज के समानान्तर हैं तथा एक दूसरे के बराबर हैं अर्थात परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में वृद्धि करने पर सीमान्त एवं औसत उत्पादन स्थिर रहता है।

रेखाचित्र संख्या - 10. 3

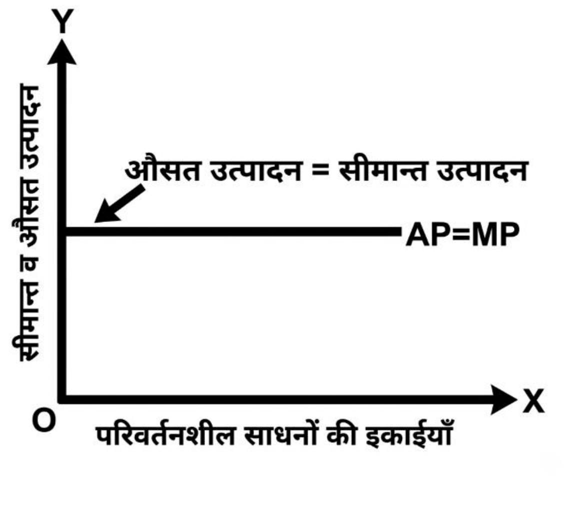

उत्पत्ति समता नियम एवं लागत (Law of Constant Returns & Cost) : इस नियम को लागत की दृष्टि से लागत समता नियम कहा जाता है। इसका कारण यह है कि जिस अनुपात में परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में वृद्धि की जाती है, भौतिक उत्पादन की मात्रा में भी उसी अनुपात में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप सीमांत लागत (MC) एवं औसत लागत (AC) दोनों एक दूसरे के बराबर एवं क्षितिज के समानांतर होती है, जिसे इस रेखाचित्र 10.4 में प्रदर्शित किया गया है।

रेखाचित्र संख्या – 10. 4

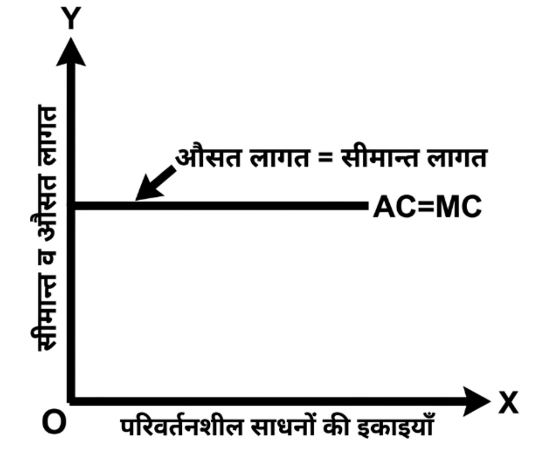

समता नियम के क्रियाशील होने के कारण (Reasons of Operation) : उत्पत्ति वृद्धि नियम की अवस्था में जब परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाती है, तो अनुकूलम सीमा के बाद साधनों का आदर्श संयोग समाप्त होने लगता है। उत्पादन के साधनों में वृद्धि से जो मितव्ययतायें या बचतें प्राप्त होती है, वे फर्म के आकार के विस्तार

से होने वाली अमितव्ययताओं या अपव्ययों के कारण समाप्त हो जाती है। इस कारण से उत्पादन लागत भी ठीक उसी अनुपात में बढ़ जाती है, जिस अनुपात में साधन की मात्रा में वृद्धि की गयी हो।

10.7 उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns)

अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definition) : उत्पत्ति के साधनों के संयोग में स्थिर अथवा अविभाज्य साधन के साथ परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों में वृद्धि किए जाने पर जब उत्पादन घटती दर से बढ़ता हो, तो इस अवस्था को उत्पत्ति ह्रास नियम की अवस्था कहा जाता है। वस्तुतः जब स्थिर अथवा अविभाज्य साधन के साथ परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों में उत्तरोतर वृद्धि की जाती है, तो एक सीमा के बाद साधनों का अनुकूलतम संयोग समाप्त हो जाता है| इस कारण उत्पादन में उस अनुपात में वृद्धि नहीं होती, जिस अनुपात में परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है अर्थात सीमान्त उत्पत्ति एवं औसत उत्पत्ति क्रमशः घटती जाती है, फलस्वरूप कुल उत्पादन में धीमी गति से वृद्धि होती है। इसे ही उत्पत्ति ह्रास नियम की अवस्था कहा जाता है। **प्रो. बेनहम** के शब्दों में, "साधन संयोग में जैसे – जैसे किसी एक साधन के अनुपात में वृद्धि की जाती है, एक सीमा के पश्चात उस साधन का सीमान्त और औसत उत्पाद गिरेगा|" उत्पत्ति ह्रास नियम को हम एक उदाहरण के द्वारा भी समझ सकते हैं। माना कि एक कृषक अपनी दस हेक्टर भूमि में श्रम व पूँजी की इकाइयों को बढ़ाता है जिससे उसकी कुल उत्पत्ति, सीमांत एवं औसत उत्पत्ति निम्नानुसार परिवर्तित होती है :

तालिका संख्या – 10.3

उत्पत्ति ह्रास नियम

परिवर्तन साधन श्रम व पूँजी की इकाइयां (N)	कुल भौतिक उत्पादन (TPP)	सीमान्त उत्पादन (MPP)	औसत उत्पादन (APP)
1	15	15	15
2	28	13	14
3	39	11	13
4	48	9	12
5	55	7	11

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों श्रम और पूँजी की मात्रा बढ़ायी जा रही है, त्यों -त्यों सीमांत उत्पत्ति एवं औसत उत्पत्ति दोनों घट रही है। सीमान्त उत्पादन में गिरावट की दर औसत उत्पादन में गिरावट की दर से अधिक होने के कारण कुल उत्पादन में घटती दर से वृद्धि हो रही है। इसको हम रेखाचित्र 10.5 के द्वारा भी समझ सकते हैं। प्रस्तुत चित्र, जो कि उपरोक्त तालिका पर आधारित नहीं है, में OX अक्ष पर परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों तथा OY अक्ष पर सीमांत उत्पत्ति एवं औसत उत्पत्ति की मात्रा को दर्शाया गया है। सीमांत उत्पत्ति वक्र (MP) औसत उत्पत्ति वक्र (AP) दोनों ही बायीं और नीचे की तरफ गिरते हुए हैं।

रेखाचित्र संख्या – 10.5

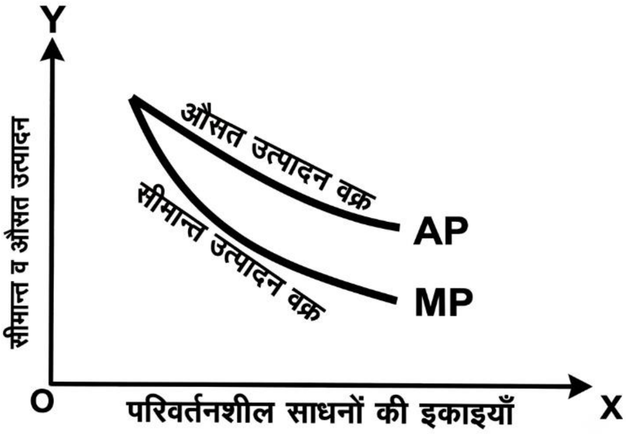

उत्पत्ति ह्रास नियम एवं लागत (Law of Diminishing Returns & Cost) : इस नियम को लागत की दृष्टि से **लागत वृद्धि नियम** कहा जाता है। इसका कारण यह है कि जिस अनुपात में परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में वृद्धि की जाती है, भौतिक उत्पादन की मात्रा में उस अनुपात में वृद्धि नहीं होती है। परिणामस्वरूप सीमांत लागत (MC) एवं औसत लागत (AC) दोनों ही बढ़ती हुई होती हैं तथा सीमांत लागत (MC) में बढ़ने की दर औसत लागत (AC) की तुलना में अधिक होती है। इसे रेखाचित्र संख्या 10.6 की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र संख्या – 10.6

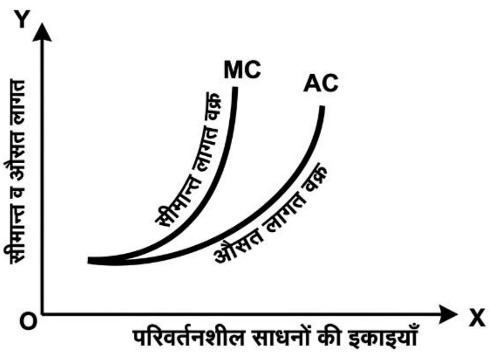

स्व-मूल्यांकन – प्रथम

- किसी कृषक से संपर्क कर उसके स्थिर एवं परिवर्तनशील संसाधनों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करें।
- कृषक द्वारा श्रम व पूँजी की इकाइयों में उत्तरोत्तर वृद्धि करने के पश्चात् भी एक सीमा के बाद कृषि पैदावार में वृद्धि क्यों नहीं होती? जानने का प्रयास कीजिए।
- खनन उद्योग/इकाई में एक निश्चित सीमा तक खनन के पश्चात् खनन कार्य बंद कर दिये जाने के क्या कारण हो सकते हैं? समझने का प्रयास कीजिए।

- मत्स्य आखेट लागत तटीय क्षेत्रों में सुदूर समुद्रीय क्षेत्रों की तुलना में अपेक्षाकृत रूप से कम आती है। कारणों को जानने का प्रयास कीजिए।

10.8 अल्पकालीन उत्पादन फलन की आधुनिक व्याख्या अथवा परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Modern Interpretation of Short–Term Production Function Or Law of Variable Proportions)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने उत्पत्ति ह्रास नियम को व्यापक स्वरूप प्रदान किया है। उनके अनुसार उत्पत्ति ह्रास नियम न केवल कृषि, वरन उत्पत्ति के प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से लागू होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इस नियम की व्यापक क्रियाशीलता पर बल देते हुए इस नियम को परिवर्तनशील अनुपातों का नियम अथवा अनुपातों का नियम अथवा ह्रास मान प्रतिफलों का नियम अथवा सीमान्त उत्पादकता ह्रास नियम भी कहा है। **प्रो. बोल्डिंग** के अनुसार,''यदि उत्पत्ति की अन्य इकाइयों को स्थिर रखकर किसी एक इकाई की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाए, तो परिवर्तनशील इकाई की सीमान्त भौतिक उत्पादकता क्रमशः घटती है।'' **प्रो. बेहनम** के अनुसार,''जैसे - जैसे उत्पत्ति के साधनों के संयोग में किसी एक साधन का अनुपात बढ़ाया जाता है, तो एक बिन्दु के पश्चात उस साधन का सीमान्त और औसत उत्पाद घटने लगेगा।'' **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** के अनुसार,''उत्पत्ति ह्रास नियम यह बताता है कि किसी एक उत्पत्ति के साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाए तथा अन्य साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाए, तो एक निश्चित बिन्दु के बाद उत्पादन में घटती दर से वृद्धि होगी।''

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने के उपरान्त निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि किसी एक साधन को स्थिर रखकर, अन्य साधनों में वृद्धि करने अथवा अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक साधन में वृद्धि करने अथवा कुछ साधनों को स्थिर रखकर अन्य साधनों में वृद्धि करने पर परिवर्तनशील अनुपातों का नियम आवश्यक रूप से लागू होता है। यह एक सार्वभौमिक नियम है, जो अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है। इस नियम को उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है| माना कि एक कपड़ा उत्पादक अपने कारखाने में उत्पादन में वृद्धि करने के लिए अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए परिवर्तनशील साधन श्रम की इकाइयों में उत्तरोत्तर वृद्धि करता है, जिसके परिणामस्वरूप कुल उत्पादन (TP), सीमान्त उत्पादन (MP) एवं औसत उत्पादन (AP) में होने वाले परिवर्तन को निम्नांकित तालिका में दर्शाया गया है :

तालिका संख्या – 10.4

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की अवस्थाएँ

परिवर्तन साधन श्रम व पूँजी की इकाइयां (N)	कुल उत्पादन (TP)	सीमांत उत्पादन (MP)	औसत उत्पादन (AP)	उत्पादन की अवस्थाएँ
1	10	10	10	प्रथम
2	30	20	15	अवस्था
3	60	30	20	
4	80	20	20	
5	90	10	18	द्वितीय
6	90	0	15	अवस्था
7	80	-10	11.4	तृतीय
8	60	-20	7.5	अवस्था

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि श्रम की प्रथम चार इकाइयों के प्रयोग तक उत्पादन की प्रथम अवस्था लागू होती है। श्रम की चौथी इकाई की सीमान्त उत्पत्ति एवं औसत उत्पत्ति दोनों बराबर हैं। द्वितीय अवस्था पांचवी एवं छठी इकाई तक है। छठी इकाई का सीमान्त उत्पादन शून्य है, इस बिन्दु पर कुल उत्पादन 90 अधिकतम है। इसके बाद श्रम की आठवीं इकाई तक सीमान्त उत्पादन और औसत उत्पादन दोनों गिर रहे हैं| सीमान्त उत्पादन के ऋणात्मक होने के कारण कुल उत्पादन में भी गिरावट हो रही है। परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीनों अवस्थाओं को रेखाचित्र 10.7 द्वारा स्पष्ट किया गया है :

रेखाचित्र नं. 10.7

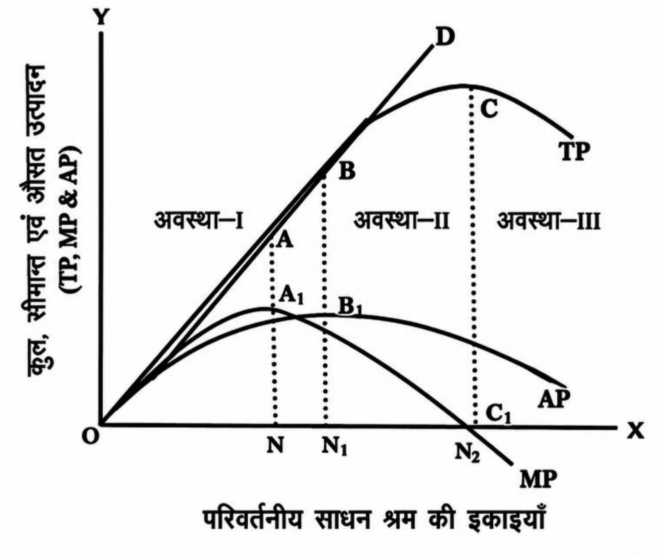

प्रथम अवस्था (Stage I) : प्रस्तुत चित्र से स्पष्ट है कि यह अवस्था परिवर्तनशील साधनों की ON_1 मात्रा तक है। कुल उत्पादन वक्र TP के बिन्दु Aतक कुल उत्पादन में बढ़ती दर से वृद्धि हो रही है क्योंकि इस बिन्दु तक सीमान्त उत्पादन MP एवं औसत उत्पादन AP दोनों ही बढ़ती दर से बढ़ रहे हैं तथा सीमान्त उत्पादन में वृद्धि की दर औसत उत्पादन में हो रही वृद्धि की तुलना में अधिक है। इस बिन्दु Aको मोड़ (Turning point) बिन्दु भी कहा जाता है। इस बिन्दु के पश्चात सीमान्त उत्पादन गिरने लग जाता है, परन्तु गिरता हुआ सीमान्त उत्पादन धनात्मक होने के कारण कुल उत्पादन में वृद्धि तो हो रही है, परन्तु धीमी गति से। कुल उत्पादन वक्र TP के बिन्दु Aसे पूर्व के ढाल (Slope) एवं बाद के ढाल में अन्तर का यही कारण है। N1 साधन मात्रा पर सीमान्त उत्पादन MP व औसत उत्पादन AP दोनों एक दूसरे के बराबर हैं।

प्रथम अवस्था के कारणों पर विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि जब स्थिर अविभाज्य साधन के साथ परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों में वृद्धि की जाती है, तो स्थिर अविभाज्य साधन की अप्रयुक्त क्षमता का उपयोग होने लगता है। साधनों का संयोग भी अनुकूलम होने लगता है। फर्म को श्रम विभाजन व विशिष्टिकरण के लाभ प्राप्त होते हैं और साथ ही संगठन में भी सुधार होता है। इन सब कारणों से इस अवस्था के प्रारंभ में एक बिन्दु तक सीमान्त उत्पादन व औसत उत्पादन बढ़ती दर से बढ़ने के कारण कुल उत्पादन में भी बढ़ती दर से वृद्धि होने लगती है, परन्तु उस बिन्दु के पश्चात

सीमान्त उत्पादन गिरने लगता है| परन्तु फिर भी यह धनात्मक होने के कारण कुल उत्पादन में वृद्धि तो होती है, परन्तु धीमी गति से।

द्वितीय अवस्था (Stage II) : इस अवस्था में सीमान्त उत्पादन MP एवं औसत उत्पादन AP दोनों ही गिरते हुए होते हैं। गिरता हुआ सीमान्त उत्पादन एक निश्चित बिंदु पर पर शून्य (0) हो जाता है, उस बिन्दु पर कुल उत्पादन अधिकतम होता है। औसत उत्पादन भी इस अवस्था में गिरता हुआ होता है, परन्तु फिर भी यह धनात्मक होता है साथ ही इसमें गिरने की दर सीमान्त उत्पादन में गिरने की दर की तुलना में कम होती है| इस कारण कुल उत्पादन में धीमी गति से बढ़ोतरी होती है। कुल उत्पादन एक बिन्दु पर अधिकतम हो जाता है, यह वह बिन्दु है जहां परिवर्तनशील साधन का सीमान्त उत्पादन शून्य (0) होता है। प्रस्तुत चित्र में यह अवस्था परिवर्तनशील साधनों की N1से N2 मात्रा तक दृश्यगत है। N2 बिन्दु पर सीमान्त उत्पादन शून्य (0) है तथा इस बिन्दु पर कुल उत्पादन CC1अधिकतम है।

यह अवस्था उत्पत्ति वृद्धि नियम की समाप्ति एवं उत्पत्ति ह्रास नियम के प्रारंभ होने के बीच की अवस्था हैं, जो पूर्णतः अस्थायी व संक्रमणकालीन स्थिति का सूचक मात्र है।

तृतीय अवस्था (Stage III) : इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है। औसत उत्पादन भी गिरता हुआ होता है। सीमान्त उत्पादन के ऋणात्मक होने के कारण कुल उत्पादन भी गिरने लग जाता है। प्रस्तुत चित्र में N2 बिन्दु के पश्चात् यह अवस्था दृश्यगत है।

10.9 उत्पत्ति ह्रास नियम अथवा परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के क्रियाशील होने के कारण (Causes of the Operation of the Law of Diminishing Returns or Law of Variable Proportions)

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के क्रियाशील होने के निम्नांकित कारण हैं :

1. एक या एक से अधिक साधनों की स्थिरता।
2. उत्पत्ति के साधनों में प्रतिस्थापन की लोच सीमित होती है।
3. साधनों की कमी या सीमितता।
4. अल्पकाल में उत्पत्ति कला या तकनीक में सुधार का अभाव|
5. अल्पकाल में किसी फर्म द्वारा अपनी क्षमता से अधिक उत्पादन करना।

10.10 उत्पत्ति ह्रास नियम के क्रियाशील होने का क्षेत्र (Scope of Operation of the Law of Diminishing Returns)

1. **कृषि क्षेत्र :** मार्शल ने इस नियम की व्याख्या कृषि क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए की है, जो विस्तृत खेती एवं गहन खेती दोनों पर ही लागू होता है।

   मार्शल के अनुसार,''यदि कृषि कला में कोई सुधार न हो, तो सामान्यतः कृषि में प्रयुक्त श्रम और पूँजी की मात्रा में वृद्धि से कुल उत्पादन में अनुपात से कम वृद्धि होती है।" मार्शल ने अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए लिखा कि कृषि कला में उन्नति होने से पूँजी और श्रम की एक निश्चित मात्रा से अधिक उपज प्राप्त की सकती है। इसी प्रकार यदि भूमि के टुकड़े पर प्रयुक्त पूँजी श्रम की मात्रा उसके पूर्ण विदोहन के लिए अपर्याप्त है, तो कृषि की प्रचलित कला से ही पूँजी और श्रम की उत्तरोत्तर इकाइयों में वृद्धि करके अनुपात से अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है, परन्तु इन दशाओं के अभाव में पूँजी और श्रम की इकाइयों में उत्तरोत्तर वृद्धि से कुल उपज में घटती दर से वृद्धि होती है। इस

तरह मार्शल के अनुसार एक निश्चित भू भाग पर ज्यों-ज्यों पूँजी और श्रम की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाती है, त्यों -त्यों सीमान्त उत्पादन में क्रमशः कमी होती जाती है। यह संभव है कि प्रारंभ में कुछ समय तक एक निश्चित बिन्दु तक सीमान्त उत्पत्ति घटने के बजाय बढ सकती है, पर एक निश्चित सीमा के बाद यह अन्ततःअवश्य घटती जाती है। विस्तृत कृषि के अन्तर्गत पूँजी और श्रम की मात्रा पूर्ववत रखते हुये यदि भूमि के क्षेत्र को बढ़ाया जाता है, तो ऐसी स्थिति में भी यह नियम लागू होता है क्योंकि सभी भूमि एक समान नहीं होती है, उनकी उर्वरता शक्ति में भिन्नता पाई जाती है।

2. **मत्स्य आखेट :** मछली पकड़ने में भी वह नियम समान रूप से लागू होता है। श्रम और पूँजी की इकाइयों में उत्तरोत्तर वृद्धि किये जाने के उपरान्त भी एक सीमा के पश्चात सीमान्त उत्पत्ति में कमी आती है।
3. **खनन उद्योग :** खान खोदने में भी यह नियम लागू होता है क्योंकि ज्यों-ज्यों खानें खोदते जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी गहराई बढ़ती जाती है। श्रम और पूँजी की इकाइयों में उत्तरोत्तर वृद्धि किये जाने के उपरान्त भी एक सीमा के पश्चात सीमान्त उत्पत्ति में कमी आती है अर्थात लागत बढ़ती है और उत्पादन कम होने लगता है।
4. **भवन निर्माण :** जब एक ही भूखण्ड पर बहु मंजिला भवन निर्माण किया जाता है, तो प्रत्येक ऊपरी मंजिल की लागत अपेक्षाकृत नीचे वाली मंजिलों की तुलना में बढ़ने के पीछे भी इसी नियम की क्रियाशीलता है।
5. **विनिर्माणकारी उद्योग :** प्राथमिक क्षेत्रों में उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता शीघ्र ही दिखाई देने लगती है। विनिर्माणकारी उद्योगों में तकनीकी ज्ञान के विकास के कारण इस नियम की क्रियाशीलता को कुछ समय के लिए टाला जा सकता है, परन्तु एक सीमा के पश्चात् यह आवश्यक रूप से लागू होता है।

10.11 उत्पत्ति ह्रास नियम का उपयोग एवं महत्त्व (Significance and Uses of the Law of Diminishing Returns)

इस नियम का महत्त्व निम्न विवरण से स्पष्ट है :

1. यह अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम है जो उत्पत्ति के हर क्षेत्र में समान रूप से लागू होता है| कृषि क्षेत्र, मत्स्य आखेट, खनन उद्योग, भवन निर्माण, विनिर्माणकारी उद्योग धन्धों में इस नियम की क्रियाशीलता इस नियम के सार्वभौमिक स्वरूप को व्यक्त करती है।
2. **माल्थस** के जनसंख्या सिद्धान्त का आधार भी यही नियम है, जिन्होनें अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में जनसंख्या वृद्धि दर की तुलना खाद्यान्न वृद्धि दर से की है। कृषि क्षेत्र में इस नियम की क्रियाशीलता के कारण ही इन दरों में अन्तर आ जाता है।
3. **रिकार्डो** का लगान सिद्धान्त भी इसी नियम पर आधारित है, जो गहन खेती एवं विस्तृत खेती पर समान रूप से लागू होता है।
4. **वितरण का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त,** जो उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के पुरस्कार निर्धारण का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है, इसी नियम पर आधारित है।
5. **उत्पत्ति का प्रतिस्थापन सिद्धान्त** भी इस नियम का प्रतिफल है क्योंकि प्रत्येक उत्पादक उत्पत्ति के साधनों की सीमान्त उत्पत्ति गिरने के कारण ही एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन को प्रतिस्थापित करता रहता है, जब तक की वह सन्तुलन में न पहुँच जाये।
6. जनसंख्या के प्रवास के पीछे भी यही सिद्धान्त कार्य करता है।

7. यह नियम अनेक अविष्कारों का जन्मदाता है। इस नियम की क्रियाशीलता को स्थगित करने के लिए ही नये - नये अविष्कार किये जाते रहते हैं।

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

- किसी निर्माणकारी फर्म का अवलोकन कर उसके स्थिर अविभाज्य एवं परिवर्तनशील साधनों को समझने का प्रयास कीजिए।
- परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि करने के पश्चात भी फर्म का उत्पादन एक सीमा तक बढ़ने के बाद कम क्यों होने लगता है?कारणों को जानने का प्रयास कीजिए।
- आपके मत से किसी निर्माणकारी इकाई को परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में किस स्तर तक वृद्धि करनी चाहिए? समझने का प्रयास कीजिए।

10.12 सारांश (Summary)

उत्पत्ति ह्रास नियम उत्पत्ति के क्षेत्र में आवश्यक रूप से लागू होने वाला नियम माना जाता है। उत्पादन की प्रारम्भिक अवस्था में जब तक उत्पत्ति के विभिन्न साधनों में अनुकूलतम संयोग नहीं हो जाता, उत्पत्ति वृद्धि नियम क्रियाशील रहता है। इसके उपरान्त साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि किये जाने पर साधनों का अनुकूलतम संयोग समाप्त हो जाने के कारण उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। इन दोनों नियमों के बीच एक अल्पकालीन अवस्था होती है, जिसे उत्पत्ति समता नियम कहा गया है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने उत्पत्ति के नियमों की व्याख्या परिवर्तनशील अनुपातों के नियम अथवा आनुपातिकता के नियम के अन्तर्गत की है तथा उत्पत्ति वृद्धि नियम एवं उत्पत्ति समता नियम को इस नियम की प्रथम दो अवस्थाएँ माना है। उनके अनुसार, यह नियम न केवल कृषि क्षेत्र, वरन् अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में लागू होता है। अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्रों में इस नियम की क्रियाशीलता शीघ्र ही हो जाती है, जबकि विनिर्माण उद्योगों में इस नियम की क्रियाशीलता को कुछ समय के लिए टाला जा सकता है, परन्तु अन्ततः यह नियम क्रियाशील होता है।

10.13 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस अध्याय के अध्ययन से विद्यार्थी को उत्पादन फलन- इसकी मान्यताओं, प्रकारों की जानकारी के साथ साथ अल्पकालीन उत्पादन फलन- जिसे उत्पत्ति के नियमों के नाम से भी जाना जाता है की तीनों अवस्थाओं का ज्ञान होगा। साथ ही नियम के लागू होने के कारणों, लागतों पर प्रभाव, क्रियाशीलता के क्षेत्र एवं महत्त्व कि भी जानकारी होगी।

लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. उत्पत्ति वृद्धि नियम के क्रियाशील होने के कारणों पर प्रकाश डालिये।
2. उत्पत्ति ह्रास नियम अथवा परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के क्रियाशील होने के कारणों को समझाइये।
3. उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थव्यवस्था के किन क्षेत्रों में लागू होता है ? समझाइये।
4. उत्पत्ति ह्रास नियम के महत्त्व पर प्रकाश डालिये।

10.14 शब्दावली (Glossary)

- **उत्पादन फलन (Production Function) :** यह उत्पादन के साधनों और उत्पादन की मात्रा के मध्य पाए जाने वाला भौतिक सम्बन्ध है|

- **उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns) :** इसके अंतर्गत उत्पादन के साधनों की मात्रा में वृद्धि की अपेक्षा उत्पादन में होने वाली वृद्धि का अनुपात अधिक होता है|
- **उत्पत्ति समता नियम (Law of Constant Returns) :** जब उत्पादन के साधनों की मात्रा और उत्पत्ति की मात्रा में होने वाला परिवर्तन समानुपाती हो, तो इस स्थिति को उत्पत्ति समता नियम कहते हैं|
- **उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Deminishing Returns) :** जब उत्पत्ति की मात्रा में होने वाली वृद्धि उत्पादन के साधनों की मात्रा में वृद्धि से कम होती है, तो इस स्थिति को उत्पत्ति ह्रास नियम की संज्ञा दी जाती है।
- **सीमान्त उत्पाद (Marginal Product) :** परिवर्तन साधन की एक इकाई की वृद्धि के परिणामस्वरूप कुल उत्पादन में जो परिवर्तन होता है, उसे सीमान्त उत्पादन कहते हैं| यह साधन की अतिरिक्त इकाई का उत्पादन है|

10.15 स्व-परख प्रश्न (Self-Test Questions)

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Type Questions)

1. उत्पादन फलन से आप क्या समझते है?
2. उत्पादन फलन के निर्धारक तत्त्व बताइए?

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. उत्पत्ति ह्रास नियम के आधुनिक स्वरूप की व्याख्या कीजिए?
2. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम स्पष्ट करते हुए इसके क्रियाशील होने के कारणों पर प्रकाश डालिए|
3. उत्पत्ति ह्रास नियम की विभिन्न अवस्थाओं को उदहारण एवं रेखाचित्र की सहायता से समझाइये|

10.16 सन्दर्भ एवं ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- Ahuja H.L., Business Economics,S. Chand & Company, New Delhi
- Seth. M.L., Principles of Economics, Laxmi Narayan Publications
- Misra &Puri, Busniess Economices, Himalaya Publishing House

10.17 अन्य पाठन सामग्री (Other Reading Material)

- Agrawal M.D. & SomDeo, Business Economics, RBD, Jaipur
- Varshney & Maheshwar, Managerial Economics, Sutan Chand & Sons
- सिंह एवं त्यागी : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 2009.

10.18 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Link)

- https://www.toppr.com/guides/economics/production-and-costs/production-function/
- https://www.tutor2u.net/economics/reference/production-function-in-the-short-run
- https://opentextbc.ca/principlesofeconomics2eopenstax/chapter/ production-in-the-short-run/

इकाई -11

दीर्घकालीन उत्पादन फलन/पैमाने के प्रतिफल
(Long -Term Production Function/ Returns To Scale)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 दीर्घकालीन उत्पादन फलन

11.3 दीर्घकाल उत्पादन फलन की विशेषताएँ एवं मान्यताएँ

11.4 पैमाने के प्रतिफल तथा उत्पत्ति के नियमों के अन्तर

11.5 दीर्घकालीन उत्पादन फलन/पैमाने के प्रतिफलों के तीन रूप

 11.5.1 पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल

 11.5.2 पैमाने के समतामान प्रतिफल

 11.5.3 पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल

11.6 पैमाने के प्रतिफलों का एकीकृत रूप

11.7 सारांश

11.8 अधिगम परिणाम

11.9 शब्दावली

11.10 स्व-परख प्रश्न

11.11 सन्दर्भ एवं ग्रन्थ सूची

11.12 अन्य पाठन सामग्री

11.13 वेब संसाधन/लिंक

11.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के पठन के पश्चात् आप :

- अल्पकालीन उत्पादन फलन और दीर्घकालीन उत्पादन फलन में अंतर कर सकंगे।
- पैमाने के प्रतिफलों को ठीक से समझ सकेंगे।
- पैमाने के प्रतिफलों के क्रियाशील होने के कारणों से अवगत हो सकेंगे।
- समोत्पाद वक्र की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

अर्थशास्त्र में यह मान्यता है कि उपभोग आर्थिक क्रियाओं का उदगम बिन्दु है जिसके लिए उत्पादन का होना अपरिहार्य है। जिस प्रकार प्रत्येक उपभोक्ता अपने सीमित साधनों से अपनी कुल सन्तुष्टि को अधिकतम करने का प्रयास करता है एवं इसके लिए वह अपने उपभोग क्रम में बदलाव लाता रहता है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक उत्पादक का भी यह प्रयास रहता है कि वह अपने कुल लाभ को अधिकतम करे। इसके लिए वह न्यूनतम लागत संयोग से अधिकतम उत्पादन करने का प्रयास करता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक उत्पादक न्यूनतम साधनों का विनियोग कर अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसके लिए उत्पत्ति के साधनों यथा - भूमि, पूँजी, श्रम, संगठन एवं साहस का आदर्श संयोग स्थापित होना आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक उत्पादक अपने उत्पादन की योजना बनाते समय, समय विशेष पर उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ तकनीक एवं उत्पत्ति के साधनों के विभिन्न वैकल्पिक संयोगों से प्राप्त हो सकने वाले उत्पादन का अनुमान लगाता है एवं अन्त में साधनों के उसी संयोग को अपनाता है, जिससे वह न्यूनतम लागत पर सर्वाधिक उत्पादन प्राप्त कर सके। इस निर्णयन में उत्पादन फलन का विशेष महत्त्व है। इस इकाई में हम पैमाने के प्रतिफलों (दीर्घकालीन उत्पादन फलन) का विस्तृत अध्ययन करेंगे|

उत्पादन फलन के निर्धारक तत्त्व (Determinants of Production Function)

1. **प्रोद्यौगिकी स्थिति (State of Technology) :** उत्पादन फलन को निर्धारित करने वाला पहला तत्त्व प्रौद्योगिकी या तकनीकी स्थिति है अर्थात् फर्म के लिए उत्पादन की कितनी तकनीकें उपलब्ध है? जब तकनीकी प्रगति होती है, तो नये-नये उत्पादन फलन का जन्म होता है क्योंकि सामान्यतः पहले से श्रेष्ठ तकनीकी विधियों के प्रयोग से उन्हीं आगतों से अधिक उत्पादन अथवा कम आगतों से यथावत् मात्रा मे उत्पादन होता है। इस प्रकार तकनीकी ज्ञान एवं प्रबन्धकीय योग्यता में परिवर्तन भी उत्पादन फलन में परिवर्तन लाते हैं।
2. **उत्पादन आगतों की इकाइयां (Units of Inputs) :** यदि उत्पादन विधि पूर्ववत् रहे तो निर्गत की मात्रा प्रयुक्त किये जाने वाले आगतों की मात्रा पर निर्भर करेगी। अल्पकाल में निर्गत की मात्रा उत्पत्ति के नियमों व दीर्घकाल में पैमाने के प्रतिफलों के अधीन होती है।

11.2 दीर्घकालीन उत्पादन फलन (Long Term Production Function)

चूँकि दीर्घकाल में व्यावसायिक फर्मों के लिये उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में इच्छानुकूल परिवर्तन करना सम्भव होता है और अल्पकाल की भाँति किसी भी साधन की मात्रा स्थिर रखने की समस्या नहीं आती। अतः दीर्घकाल में व्यावसासिक फर्मों द्वारा **उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में समानुपातिक परिवर्तन** (Change in equal proportion) **करने से उत्पादन की भौतिक मात्रा पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे दीर्घकालीन उत्पादन फलन**

कहा जाता है। दीर्घकालीन उत्पादन फलन के अन्तर्गत उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में एक साथ समान अनुपात में परिवर्तन करके उत्पादन की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभावों का विष्लेषण किया जाता है। इसमें फर्म के **उत्पादन का पैमाना बदल जाता है।** अतः इसे पैमाने के प्रतिफलों (Returns to scale) के नाम से भी पुकारा जाता है। इसकी व्याख्या करने के लिये समोत्पत्ति वक्रों (ISO-product curves) एवं पैमान रेखा अथवा विस्तार पथ (Scale line) की सहायता लेनी पड़ती है।

समोत्पाद वक्र (ISO-Product Curve) : समोत्पाद वक्र उत्पादन के दो साधनों के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताता है जिनसे उत्पादक वस्तु की समान मात्रा उत्पादित कर सकता है। दूसरे शब्दों में, समोत्पाद वक्र उत्पादन साधनों के विभिन्न संयोगो के बिन्दुओं का वह मार्ग है जिसके प्रत्येक बिन्दु पर उत्पादित वस्तु की कुल मात्रा समान होती है। **प्रो. कीर स्टेड** के अनुसार,''समोत्पाद रेखा दो साधनों के उन सब संभावित संयोगों को बताने वाली रेखा है जिनसे समान कुल उत्पादन प्राप्त होता है।" समोत्पाद वक्र उत्पादक के लिए समान उत्पादन वक्र है, अतः इसे उत्पादन तटस्थता वक्र भी कहा जाता है। जिस प्रकार तटस्थता वक्र या उदासीनता वक्र किसी उपभोक्ता के लिए दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगो को प्रकट करता है जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि मिलती है, उसी प्रकार समोत्पति रेखा भी उत्पादन के दो संसाधनों के उन विभिन्न वैकल्पिक संयोगों को बताती है जिनसे समान कुल उत्पादन प्राप्त होता है। **प्रो. कोहन एवं सीयर्ट** के अनुसार,''एक समोत्पाद वक्र वह वक्र होता है जिस पर उत्पादन की अधिकतम प्राप्य योग्य दर समान होती है।''

पैमाना रेखा अथवा विस्तार पथ (Scale Line or Expansion Path) : कोई भी उत्पादक फर्म ज्यों-ज्यों उत्पादन साधनों की मात्रा में वृद्धि करके उत्पादन में वृद्धि के लिए उत्पादन के पैमाने का विस्तार करती है, तो भिन्न-भिन्न सम लागत वक्रों पर स्थित न्यूनतम लागत साधन संयोग के जो बिन्दु समोत्पाद रेखाओं के स्पर्श होने से प्राप्त होते हैं, उन साम्य बिन्दुओं को यदि एक लाइन द्वारा जोड़ दिया जाए, तो उन बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा को पैमाना रेखा अथवा विस्तार पथ कहते हैं। दूसरे शब्दों में, **समोत्पाद वक्रों के विभिन्न स्पर्श बिन्दुओं को जोड़ने वाली रेखा को पैमाना रेखा अथवा विस्तार पथ कहते हैं।**

11.3 दीर्घकालीन उत्पादन फलन की विशेषताएँ एवं मान्यताएँ (Characteristics and Assumptions of Long-Term Production Function)

(1) दीर्घकालीन उत्पादन फलन का सम्बन्ध दीर्घकाल से है, जिसमें समय इतना लम्बा होता है कि फर्म उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में समानुपातिक परिवर्तन कर सकती है।

(2) इसके अन्तर्गत उत्पादन की तकनीक एवं प्रौद्योगिकी स्थिर मानी जाती है।

(3) उत्पादन की गणना भौतिक मात्रा में की जाती है, मौद्रिक मूल्यों में नहीं।

(4) फर्में उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में समानुपातिक परिवर्तन कर उत्पादन की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करती है। अतः यह पैमाना बदलने का अध्ययन है।

(5) उत्पादन साधनों की कीमतें स्थिर मानकर विश्लेषण किया जाता है।

(6) व्यावसायिक फर्में पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में कार्यशील मानी जाती है।

11.4 पैमाने के प्रतिफल तथा उत्पत्ति के नियमों के अन्तर (Difference Between Returns to Scale and Laws of Returns)

कभी-कभी कुछ लोग पैमाने के प्रतिफलों (Returns to scale) परिव्यय के प्रतिफलों (Returns to outlay) तथा उत्पत्ति के नियमों (Laws of returns) में कोई अन्तर नही करते, पर अर्थशास्त्र की दृष्टि से इनमें काफी अन्तर है। पैमाने

के प्रतिफल दीर्घकाल में उत्पत्ति के सभी साधनों में समानुपातिक परिवर्तन से उत्पत्ति की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं, जबकि उत्पत्ति के नियमों के अन्तर्गत फर्म द्वारा अल्पकाल में एक या कुछ साधनों की स्थिर रखकर अन्य साधनों की मात्रा में वृद्धि से उत्पत्ति की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को समझा जाता है| उत्पत्ति के नियमों में साधनों का अनुपात बदल जाता है, इसी कारण इन्हें परिवर्तनशील अनुपातों का नियम कहते हैं।

लागत परिव्यय के प्रतिफलों का सम्बन्ध दीर्घकाल से होते हुए भी इसमें उत्पत्ति के सभी साधनों की मात्रा को समान रूप से या समानुपातिक परिवर्तन न कर विभिन्न साधनों को भिन्न भिन्न अनुपातों में परिवर्तन किया जाता है, जैसे x में 70 प्रतिशत, y में 70 प्रतिशत तथा z में 40 प्रतिशत परिवर्तन किया जाता है, जबकि पैमाने के प्रतिफलों में सभी साधनों की मात्रा में समानुपातिक परिवर्तन किया जाता है, जैसे $2x + 2y + 2z$ अथवा $3x + 3y + 3z$ आदि| पैमाने के प्रतिफलों में सभी साधन एक से अनुपात (1: 1: 1) में परिवर्तित किये जाते हैं; जबकि परिव्यय के प्रतिफलों के अन्तर्गत साधनों की मात्रा में भिन्न भिन्न अनुपातों में परिवर्तन किये जाने से उनका अनुपात बदलता रहता है। इसे **स्टोनियर एवं हेग** ने **परिव्यय के प्रतिफलों का नाम दिया है**, जबकि **लिप्से व स्टेनर** ने इसे **प्रतिस्थापन के प्रतिफल** (Returns to substitution) का नाम दिया है। इन सब में साधनों की कीमतों (Factor prices) को स्थिर मान लिया जाता है।

स्व मूल्यांकन – प्रथम

अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उत्पादन फलन में अंतर के आधार समझने का प्रयास कीजिये।

11.5 दीर्घकालीन उत्पादन फलन/पैमाने के प्रतिफलों के तीन रूप (Three Forms of Long Term Production Function/Returns to Scale)

पैमाने के प्रतिफल

(1) ↓ **पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल**

(2) ↓ **पैमाने के समतामान प्रतिफल**

(3) ↓ **पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल**

11.5.1 पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

जब उत्पादन के साधनों की मात्रा में एक निश्चित अनुपात में वृद्धि करने पर उत्पादन की मात्रा उस अनुपात से अपेक्षाकृत अधिक दर से बढ़ती हो, तो उसे पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल कहते हैं अर्थात् इसके अन्तर्गत **उत्पादन की मात्रा में वृद्धि साधनों की मात्रा में की गई आनुपातिक वृद्धि से अधिक होती है।** उदाहरण के लिए, यदि $X + Y$ साधन 100 इकाइयाँ उत्पादन करते हैं और $2X + 2Y$ साधन मिलकर 250 इकाइयाँ उत्पादन करते हैं , तो यह स्थिति पैमाने के वर्धमान प्रतिफल की होती है| सरल शब्दों में, साधनों में 20 प्रतिशत वृद्धि होने पर उत्पादन की मात्रा 20 प्रतिशत से भी अधिक जैसे 40 प्रतिशत या 60 प्रतिशत बढ़ जाती है, तो उत्पादन की इस दशा को पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल कहा जाता है। इसमें साधनों की मात्रा में समान अनुपात में वृद्धि करने पर भी उत्पत्ति में अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में वृद्धि होती है। पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल को समोत्पाद रेखाओं तथा पैमाने की रेखा की सहायता से भी समझा जा सकता है। पैमाने के वर्धमान प्रतिफलों को अग्रांकित रेखाचित्र 11.1 द्वारा स्पष्ट किया गया है :

रेखाचित्र संख्या – 11.1

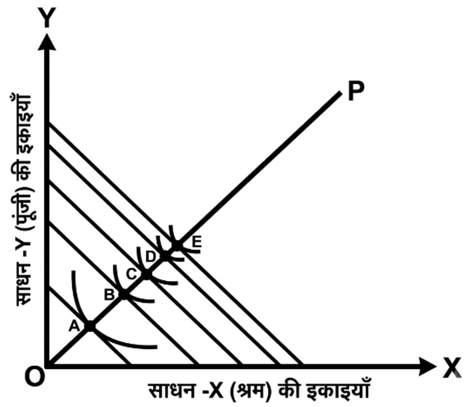

प्रस्तुत रेखाचित्र में OP पैमाने की रेखा है जो विभिन्न समोत्पाद रेखाओं को क्रमशः A, B, C, D तथा E बिन्दु पर काटती है। इसमें E बिन्दु तक पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं, क्योंकि BC की दूरी AB की दूरी से कम है, CD की दूरी BC से कम है व DE की दूरी CD से कम है। अतः समान मात्रा में उत्पादन बढ़ाने के लिए उत्तरोत्तर कम साधनों की मात्रा बढ़ानी पड़ती है अथवा कम साधनों पर भी उत्तरोत्तर बढ़ती उत्पत्ति प्राप्त होती है।

पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल और लागतें (Increasing Returns to Scale & Costs) : पैमाने के वर्धमान प्रतिफल प्राप्त होने की स्थिति में साधनों के दिए हुए मूल्यों पर फर्म की दीर्घकालीन औसत लागत एवं दीर्घकालीन सीमान्त लागत दोनों घटती हैं, किन्तु दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC) दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) की अपेक्षा तीव्र गति से गिरती है। इसे रेखाचित्र 11.2 से स्पष्ट किया गया है|

रेखाचित्र संख्या – 11.2

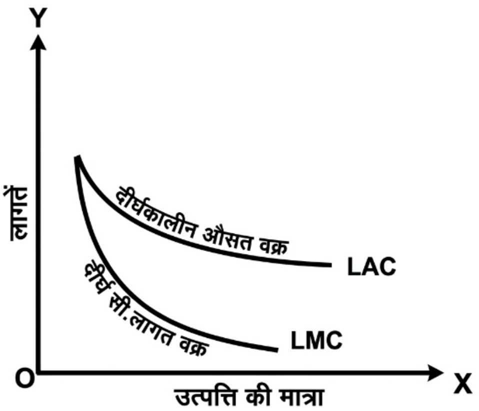

पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल क्रियाशील होने के कारण (Causes of Operation of Increasing Returns to Scale) : सामान्यतः पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल लागू होने के दो कारण माने जाते हैं : (1) साधनों की अविभाज्यता, एवं (2) विशिष्टीकरण के लाभ, परंतु **स्टीगलर** ने वर्धमान प्रतिफल के क्रियाशील होने के चार कारण बताये हैं :

(1) अतिरिक्त क्षमता का प्रयोग (Use of surplus capacity) : यह पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के क्रियाशील होने का प्रमुख कारण है| स्थिर अथवा अविभाज्य साधन के साथ विभाजनशील साधनों के संयोग से उत्पादन की प्रक्रिया संभव होती है| अल्पकाल में स्थिर अथवा अविभाज्य साधन को घटाना - बढ़ाना संभव नहीं होता, इसका तात्पर्य है कि एक निश्चित उत्पादन स्तर तक इसमें कोई बदलाव करने की आवश्यकता नहीं होती| माना x वस्तु के उत्पादन के लिए एक प्लांट की स्थापित समता 10000 इकाइयाँ हैं। अब यदि फर्म 5000 इकाइयों का ही उत्पादन करती है, तो भी उसे इसी प्लांट का प्रयोग करना होगा। यदि माँग बढ़ने पर फर्म अपना उत्पादन 10000 इकाइयों तक भी बढ़ा ले, तो भी उसे प्लांट के आकार में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

दीर्घकालीन उत्पादन फलन की स्थिति में वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त होने का यह प्रमुख कारण है कि उत्पादन बढ़ाने पर स्थाई लागतें नहीं बढ़ती, केवल परिवर्तनशील लागतों में ही परिवर्तन आता है। दीर्घकालीन सीमांत लागत व दीर्घकालीन औसत लागत दोनों ही गिरती हुई होती हैं, इस कारण कुल लागत भी कम होती है। साहसी, विशेषज्ञ या प्रबन्धक के संदर्भ में भी यही स्थिति होती है।

(2) वृहद क्रय पर बचतें (Savings on bulk purchase) : उत्पादन प्रकिया को सतत रूप से जारी रखने हेतु उत्पादन के साधनों की आवश्यकता होती है। इन साधनों की मात्राओं को क्रय करने के दो तरीकें हैं :

1. आवश्यकता अनुरूप क्रय करना तथा 2. वर्तमान में ही अतिरिक्त इकाइयों का क्रय कर लिया जाना। जब आवश्यकता के अनुरूप क्रय किए जाने की नीति अपनाई जाती है, तो बाजार माँग के अनुसार उत्पादन का निर्धारण कर आवश्यकता के अनुसार कच्चा माल क्रय किया जाता है| परंतु क्रय मात्रा कम होने से पूर्तिकर्ताओं द्वारा कीमत में कोई कमी नहीं की जाती, जबकि बड़ी मात्रा में अतिरिक्त इकाइयों को क्रय करने की स्थिति में पूर्तिकर्ताओं द्वारा न केवल कीमतों में कमी की जाती है, वरन् साख एवं अन्य सुविधाएं भी प्रदान की जाती हैं, जैसे निशुल्क परिवहन, बीमा इत्यादि। इन सबका परिणाम लागत में कमी की रूप में दिखाई पड़ता है ।

(3) विशिष्टीकरण (Specialisation) : उत्पादन का पैमाना बढ़ने पर उत्पादन कार्य में विशिष्टीकरण प्राप्त किया जा सकता है। इससे उत्पादन साधनों की कुशलता बढ़ती है । विशिष्टीकरण का तात्पर्य है, बड़े कार्य को उप - क्रियाओं में विभक्त करना एवं उनका निष्पादन पृथक - पृथक व्यक्तिओं/प्रक्रियाओं द्वारा संम्पन्न करवाया जाना। प्रायः लघु स्तर पर उत्पादन करने से विशिष्टीकरण को अपनाना संभव नहीं होता, परंतु दीर्घकाल में जब उत्पादन का पैमाना बढ़ाया जाता है, तो श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होना स्वाभाविक है, जो अंततः लागतों में कमी लाते हैं।

(4) आंतरिक तथा बाह्य बचतें (Internal and external economies) : जब उत्पादन का आकार बढ़ता है, तो फर्म को दो प्रकार की बचतें प्राप्त होती हैं, जिन्हें आन्तरिक एवं बाह्य बचतों के नाम से जाना जाता है। आंतरिक बचतें वे बचतें होती हैं, जो फर्म को स्वयं का आकार बढ़ने के कारण प्राप्त होती है, जैसे - फर्म का आकार बढ़ने से उसकी सौदा करने की शक्ति बढ़ जाती है जिससे वह क्रय किए जाने वाले कच्चे माल एवं अन्य वस्तुओं को पहले की तुलना में कम दर पर प्राप्त करने में सक्षम होती है। प्रति इकाई विज्ञापन व्यय भी कम हो

जाता है| इसके अतिरिक्त माल सम्प्रेषण अथवा मंगवाने का खर्च भी पहले की तुलना में कम हो जाता है। **श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण के लाभ भी उसे प्राप्त होते है।** जबकि बाह्य बचतें वे बचतें होती हैं, जो उद्योग की सभी फर्मों को समान रूप से उपलब्ध होती हैं। जैसे- विशेषज्ञों की सेवाएँ, परिवहन एवं आवागमन के सस्ते एवं सुगम साधन, शोध एवं अनुसंधान से प्राप्त लाभ, सरकार से उद्योग विशेष को मिलने वाली छूटें इत्यादि बाह्य बचतों के उदाहरण हैं। यह सब मिलकर फर्म की लागत को घटा देते हैं।

11.5.2 पैमाने के समतामान या समता प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

जब उत्पादन प्रक्रिया में **कुल उत्पत्ति की मात्रा ठीक उसी अनुपात में बढ़ती है जिस अनुपात में साधनो की मात्रा बढ़ाई जाती है**, तो उसे पैमाने के समता प्रतिफल की स्थिति कहते हैं। एक फर्म के लिए साधनों की दी हुई कीमत पर कुल लागत और उत्पत्ति उसी अनुपात में बढ़ती है जिस अनुपात में साधनों की मात्रा को बढ़ाया जाता है। जैसे यदि x + y साधन मिलकर 100 इकाइयाँ उत्पादित करते हैं, तो 2x + 2y साधन 200 इकाइयाँ या 3x + 3y साधन 300 इकाइयाँ, तो यह अवस्था पैमाने के समता प्रतिफल की दशा प्रदर्शित करती है। दूसरे शब्दो में, साधनों की मात्रा 20 प्रतिशत बढ़ने पर कुल उत्पत्ति भी 20 प्रतिशत अथवा सभी साधनों में 50 प्रतिशत वृद्धि करने पर कुल उत्पत्ति में भी 50 प्रतिशत वृद्धि जो जाये, तो यह समतामान प्रतिफल का परिचायक है। पैमाने के समतामान प्रतिफलों को रेखाचित्र 11.3 द्वारा स्पष्ट किया गया है|

रेखाचित्र संख्या – 11.3

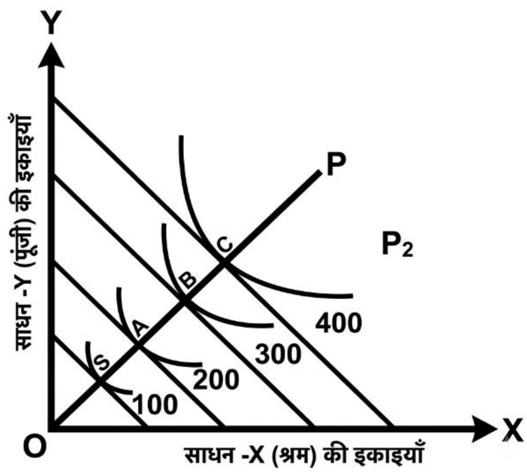

उपरोक्त रेखाचित्र में OP पैमाने की रेखा या विस्तार पथ (Expansion path) है। OP रेखा के बिन्दु S,A,B और C उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं पर साधन X और साधन Y के न्यूनतम लागत संयोगों का सूचक है, जो भिन्न-भिन्न समोत्पादक रेखाओं पर स्थित हैं। जब साधन X तथा साधन Y की दो-दो इकाइयाँ थी, तो कुल उत्पादन 200 था, पर जब दोनों साधनों की इकाइयाँ बढ़ाकर क्रमशः 3-3 एवं 4-4 कर दी गई, तो उत्पादन भी उसी अनुपात में बढ़कर क्रमशः 300 और 400 हो जाता है। रेखाचित्र में (SA=AB=BC) होने से स्पष्ट है कि यह पैमाने के समान प्रतिफल की स्थिति है।

पैमाने के समता प्रतिफल और लागतें (Constant Returns to Scale and Costs) : पैमाने के समता प्रतिफल की दशा में सीमान्त लागत एवं औसत लागत स्थिर रहती है एवं दोनों एक दूसरे के बराबर होती हैं अर्थात् LAC = LMC, जैसा कि रेखाचित्र 11.4 से स्पष्ट है। दोनों प्रकार की लागतें एक ही क्षितिजाकार रेखा के रूप में हैं, जो उत्पादन बढ़ने पर भी स्थिर हैं।

रेखाचित्र संख्या – 11.4

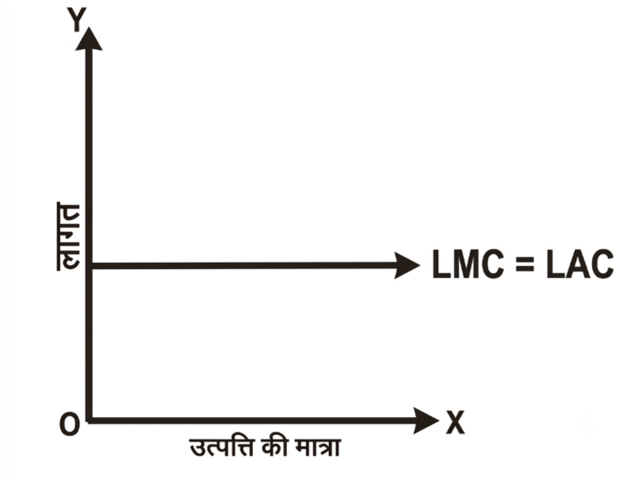

11.5.3 पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Diminishing Returns to Scale)

जब उत्पादन के साधनों में समानुपातिक वृद्धि करने पर कुल उत्पादन में अनुपात से अपेक्षाकृत कम वृद्धि होती है, तो उसे पैमाने के ह्रासमान या घटते हुए प्रतिफल कहते हैं अर्थात इसके अन्तर्गत **उत्पादन की मात्रा में वृद्धि साधनों की मात्रा में हुई आनुपातिक वृद्धि से कम होती है,** जैसे उत्पादन के साधन x +y मिलकर 100 इकाइयाँ उत्पादित करते हैं, 2x +2y मिलकर 180 इकाइयाँ उत्पादन करते हैं तथा 3x + 3y मिलकर 240 इकाइयाँ उत्पादन करते हैं। अतः इसमें उत्पत्ति की मात्रा अपेक्षाकृत कम दर से बढ़ती है। सरल शब्दों में, अगर साधनों की मात्रा में 40 प्रतिशत वृद्धि करने पर उत्पत्ति की मात्रा में 40 प्रतिशत से कम जैसे 20 प्रतिशत या 30 प्रतिशत ही वृद्धि होती है, तो इसे पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल कहा जाता है। यह स्थिति सामान्यतः तब आती है जब उत्पत्ति के विभिन्न साधनों में सर्वोत्तम संयोग के बाद भी उत्पादन इकाइयों की मात्रा बढ़ाई जाती है। पैमाने के ह्रासमान प्रतिफलों को रेखाचित्र 11.5 द्वारा स्पष्ट किया गया है :

रेखाचित्र संख्या – 11.5

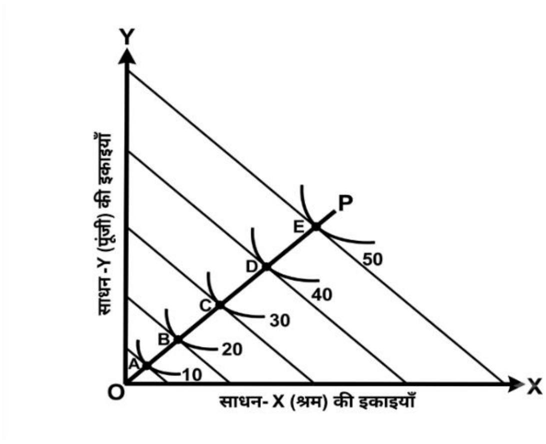

उपरोक्त रेखचित्र में OP उत्पादन पैमाना रेखा (Scale line) है, जो विभिन्न सम उत्पाद रेखाओं के क्रमशः A,B,C,D,E बिन्दु को काटती है। पैमाना रेखा OP के बिन्दु BC की दूरी AB से अधिक है, CD की दूरी BC से अधिक है, एवं DE की दूरी CD से अधिक है अर्थात समान उत्पादन मात्रा में वृद्धि के लिए साधनों की उत्तरोत्तर अधिक मात्रा लगानी पड़ती है। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति की मात्रा साधनों में की गई वृद्धि के अनुपात से कम बढ़ती है।

पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल एवं लागतें (Diminishing Returns to Scale and Costs): पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल लागू होने पर दीर्घकालीन सीमान्त एवं औसत लागत बढ़ती है, जिसे रेखाचित्र 11.6 द्वारा स्पष्ट किया गया है। दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC) दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ती है क्योंकि सीमान्त लागत जिस गति से बढ़ती है सीमान्त उत्पादन उस गति से नहीं बढ़ता है।

रेखाचित्र संख्या – 11.6

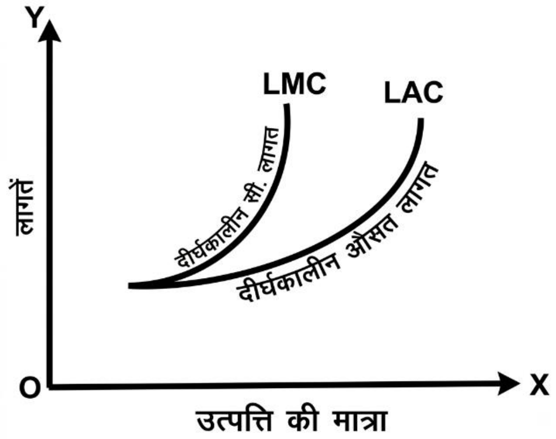

पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल क्रियाशील होने के कारण (Causes of Operation of Diminishing Returns to Scale) : पैमाने के ह्रासमान या घटते प्रतिफल के क्रियाशील होने के अनेक कारण हैं। मुख्यतः जब उपक्रम का आकार अनुकूलतम आकार से अधिक बड़ा हो जाता है, तो उसमें जटिलताएँ (Complexities) बढ़ जाती हैं। प्रशासनिक एवं संगठनात्मक समस्याओं में वृद्धि होने लगती है। श्रमिकों की वृद्धि से उनकी क्रियाओं को नियन्त्रित करना और उनमें समन्वय करना कठिन हो जाता है। निर्णयों में विलम्ब होता है एवं संगठन की कुशलता घट जाती है, अतः उपक्रम में **अनुकूलतम सीमा के बाद पैमाने की मितव्ययताएँ समाप्त हो जाती हैं एवं अमितव्ययताएँ (Diseconomies) बढ़ जाती हैं।** अतः बड़े उद्योगों में भी एक सीमा के बाद अधिक साधनों के प्रयोग से उत्पत्ति साधनों में वृद्धि के अनुपात से कम बढ़ती है, अतः पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल क्रियाशील होते हैं।

11.6 पैमाने के प्रतिफलों का एकीकृत रूप (Integrated Form of Returns to Scale)

दीर्घकाल में उत्पत्ति के सभी साधनों की मात्रा में समानुपातिक परिवर्तन करना सम्भव है। अतः जब प्रारंभिक अवस्था में साधनों की मात्रा बढ़ाई जाती है तो (1) अविभाज्य साधनों का अधिक अच्छा प्रयोग होने, (2) विशिष्टीकरण के लाभ मिलने, तथा (3) आन्तरिक एवं बाह्य बचतों के कारण पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं। जैसा कि तालिका संख्या 11.1 में क्रम संख्या 4 तक की अवस्था तक पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त होने की स्थिति है। इसे रेखाचित्र 11.7 में

भी A से D बिन्दु तक बताया गया है। बिन्दु D के बाद जब उत्पत्ति के और अधिक साधन बढ़ाये जाते है, तो कुछ समय तक (जब तक कि पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति नहीं आती) इस संक्रमण काल (Transitional period) में पैमाने के समता प्रतिफल प्राप्त होते हैं, जैसा कि अग्र तालिका में क्रम संख्या 5 एवं 6 संयोग पर स्पष्ट है, जिसे रेखाचित्र में पैमाना रेखा के E तथा F बिन्दुओं पर दर्शाया गया है। अनुकूलतम स्थिति के बाद भी अगर उत्पत्ति के साधनों की मात्रा में वृद्धि की जाती है, तो बड़े पैमाने की जटिलताओं, प्रशासनिक समस्याओं, नियंत्रण में कठिनाइयों तथा संगठन में अकुशलता से उत्पादन में घटती दर से वृद्धि होती है। अतः पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति उत्पन्न होती है, जिसे तालिका में संयोग 7 से 9 तक दर्शाया गया है।

तालिका संख्या – 11.1

पैमाने के प्रतिफलों का एकीकृत रूप

साधन संयोग क्रम	उत्पादन का पैमाना	कुल उत्पादन (टन में)	प्रत्येक पैमाना स्तर पर		पैमाने के प्रतिफल
	श्रम + पूँजी की इकाइयाँ		साधनों में प्रतिशत परिवर्तन	उत्पादन में प्रतिशत परिवर्तन	
1	1+1	10	-	-	पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल
2	2+2	30	100	200	
3	3+3	60	50	100	
4	4+4	84	33.3	40	
5	5+5	105	25.0	25.0	पैमाने के समता प्रतिफल
6	6+6	126	20.0	20.0	
7	7+7	140	16.7	11.1	पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल
8	8+8	154	14.3	10.0	
9	9+9	165	12.5	7.14	

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जब तक उत्पादन का पैमाना प्रथम से चतुर्थ संयोग तक बढ़ाया जाता है, जहाँ उत्पादन के साधन श्रम एवं पूँजी की (4+4) इकाइयां है, तो उन सभी साधन संयोगों पर उत्पादन में प्रतिशत परिवर्तन साधनों के प्रतिशत परिवर्तन की तुलना में अधिक होता है, अतः इन चारों साधन संयोगों पर पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल (Increasing returns to scale) प्राप्त होते हैं। पाँचवें एवं छठे साधन संयोगों के उत्पादन पैमाने पर उत्पादन के साधनों में प्रतिशत परिवर्तन तथा उत्पादन की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन समान है, जो क्रमशः कॉलम 4 और 5 में दर्शाये गये हैं| अतः ये दोनो संयोग पैमाने के समतामान प्रतिफल (Constant returns to scale) के द्योतक हैं। सातवें, आठवें एवं नवें साधन संयोग पर उत्पादन में प्रतिशत परिवर्तन साधनों की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन की तुलना में कम है अर्थात साधनों में प्रतिशत परिवर्तन उत्पादन में प्रतिशत परिवर्तन से अधिक है, अतः पैमाने के इन स्तरों पर पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Diminishing returns to scale) लागू हो रहा है। समोत्पत्ति वक्रों व पैमाने की रेखा द्वारा पैमाने के प्रतिफलों की तीनों स्थितियों का निरूपण रेखाचित्र 11.7 के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र संख्या – 11.7

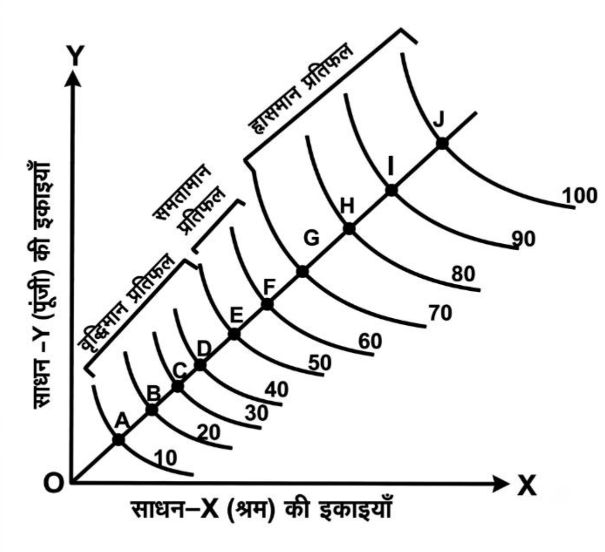

उपर्युक्त रेखाचित्र में श्रम तथ पूँजी साधनों के विभिन्न संयोगों के आधार पर समान मात्रा की वृद्धि दर्शाते हुए समोत्पाद वक्र खींचे गए हैं। OP पैमाने की रेखा विभिन्न समोत्पाद रेखाओं को क्रमशः A,B,C,D,E,G,H,I तथा J बिन्दुओं पर काटती है। पैमाने की रेखा को A,B,C तथा D बिन्दुओं पर काटने वाले समोत्पादक वक्र वर्धमान प्रतिफल की स्थिति बताते हैं क्योंकि श्रम और पूॅजी की उत्तरोत्तर कम मात्रा लगाने पर भी समान उत्पत्ति प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में, समान मात्रा में श्रम और पूँजी की इकाइयों से उत्तरोत्तर बढ़ती उत्पत्ति प्राप्त होती है जैसाकि रेखाचित्र में BC की दूरी AB की दूरी से कम है, CD की दूरी BC से कम है अर्थात् CD < BC < AB|

रेखाचित्र में E तथा F बिन्दुओं पर काटने वाले समोत्पादक वक्र पैमाने के समतामान प्रतिफल की स्थिति दर्शाते हैं, क्योंकि समान उत्पत्ति मात्रा बढ़ाने के लिए समान अनुपात में श्रम और पूँजी साधन बढ़ाने पड़ते हैं, जैसा कि DE दूरी EF दूरी के बराबर है अर्थात् DE = EF|

रेखाचित्र में G से J तक काटने वाले समोत्पाद वक्र पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति बताते हैं। इस अवस्था में समान मात्रा में उत्पत्ति बढ़ाने के लिए श्रम और पूँजी साधनों में उत्तरोत्तर बढ़ते अनुपात में वृद्धि करनी पड़ती है,यही कारण है कि GH की दूरी FG से अधिक है, HI की दूरी GH से अधिक है। IJ की दूरी HI से अधिक है| संक्षेप में IJ> HI> GH > FG| अतः उत्पत्ति की मात्रा में साधन अनुपात से कम वृद्धि होती है।

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

विचार कीजिये कि पैमाने के वर्धमान प्रतिफल मनुष्यकृत आर्थिक गतिविधियों में तथा पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल प्राकृतिक गतिविधियों में शीघ्रता से क्यों लागू होते हैं?

11.7 सारांश (Summary)

उत्पादन फलन की दीर्घकालीन अवधारणा, जिसे पैमाने के प्रतिफलों के नाम से जाना जाता है, इसके अंतगर्त इस बात का अध्ययन किया जाता है कि जब उत्पत्ति के सभी साधनों में समानुपातिक परिवर्तन किया जाता है, तो उसका उत्पादन पर क्या प्रभाव होता है? दीर्घकालीन उत्पादन फलन में साधनों का मूल अनुपात नहीं बदलता । साधनों की मात्रा बढ़ाने

पर तीन स्थितियां हो सकती हैं, जो वर्धमान प्रतिफल, समता प्रतिफल एवं ह्रासमान प्रतिफल के नाम से जानी जाती हैं| वर्धमान प्रतिफल प्राप्त होने का कारण साधनों की अप्रयुक्त क्षमता का प्रयोग, श्रम विभाजन - विशिष्टीकरण, आंतरिक एवं बाह्य बचतें इत्यादि हैं। इस कारण उत्पादन बढ़ाने पर दीर्घकालीन सीमांत लागत एवं दीर्घकालीन औसत लागत में गिरावट होने लगती है। दीर्घकालीन सीमांत लागत अपेक्षाकृत तीव्र दर से गिरती है, इस कारण कुल लागत भी कम होने लगती है। समता प्रतिफल की अवस्था में जब साधनों की मात्रा मे उत्तरोत्तर वृद्धि की जाती है, तो जिस अनुपात में उत्पत्ति के साधनों को बढ़ाया जाता है, उत्पादन ठीक उसी अनुपात में बढ़ता है। दीर्घकालीन सीमांत लागत व औसत लागत स्थिर रहती है एवं एक दूसरे के बराबर होती हैं| इसे समता प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था के बाद भी यदि साधनों की मात्रा में वृद्धि की जाती है, तो साधनों का आदर्श संयोग समाप्त हो जाता है| इस कारण कुल उत्पादन में उस अनुपात में वृद्धि नहीं होती, जिस अनुपात में साधनों की मात्रा को बढ़ाया जाता है, फलस्वरूप दीर्घकालीन लागतें भी बढ़ने लगती हैं। इस स्थिति को ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति कहते हैं| यहां यह भी उल्लेखनीय है कि संपूर्ण विश्लेषण में साधनों और उत्पादन की भौतिक मात्रा को ध्यान में रखा जाता है न कि उनकी कीमतों को।

11.8 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी को दीर्घकालीन उत्पादन फलन- जिसे पैमाने के प्रतिफल के नाम से भी जाना जाता है, की जानकारी होने के साथ-साथ इसकी विशेषताओं, मान्यताओं का भी ज्ञान होगा ।

विद्यार्थी पैमाने के प्रतिफल तथा उत्पत्ति के नियमों में अंतर भी समझ सकेंगे पैमाने के प्रतिफलों के तीनों रूपों, लागतों पर प्रभाव, क्रियाशील होने के कारणों को भी समझ सकेंगे ।

11.8 शब्दावली (Glossary)

- **दीर्घकालीन उत्पादन फलन (Long – Term Production Function)** : इसे पैमाने का प्रतिफल भी कहते हैं क्योंकि दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होने के कारण फर्म द्वारा उत्पादन का पैमाना बदला जा सकता है|
- **समोत्पाद वक्र (ISO – Product Curve)** : यह वक्र उत्पादन के दो साधनों के ऐसे सभी संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे समान मात्रा में उत्पादन प्राप्त होता है|
- **विस्तार पथ (Expansion Path)** : इसे पैमाना रेखा भी कहा जाता है| यह समोत्पाद वक्रों के विभिन्न स्पर्श बिंदुओं को जोड़ने वाली रेखा होती है|

11.9 स्व-परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Type Questions)

1. पैमाने के प्रतिफलों से आप क्या समझते हैं?
2. दीर्घकालीन उत्पादन फलन का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
3. पैमाने के प्रतिफलों एवं उत्पत्ति के नियमों में अंतर बताइए।
4. पैमान के बढ़ते हुए प्रतिफल लागू होने के कोई दो महत्त्वपूर्ण कारण बताइए।

निबंधात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. समोत्पाद वक्रों की सहायता से पैमाने के प्रतिफलों की पूर्ण व्याख्या कीजिए।
2. पैमाने के प्रतिफलो का विश्लेषण कीजिए तथा उनके लागू होने के कारण बताइए।
3. पैमाने के प्रतिफलों को रेखाचित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

4. पैमाने के बढ़ते, समता एवं ह्रासमान प्रतिफलों को सम-उत्पाद वक्रों की सहायता से समझाइए।

11.10 सन्दर्भ एवं ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- Ahuja H.L. : Business Economics, S. Chand & Company, New Delhi
- Seth. M.L.: Principles of Economics, Laxmi Narayan Publications
- Agrawal M.D. & SomDeo : Business Economics, RBD, Jaipur
- Misra &Puri : Busniess Economics, Himalaya Publishing House

11.11 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- सिंह एवं त्यागी : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 2009
- Agrawal M.D. & SomDeo : Business Economics, RBD, Jaipur
- Varshney & Maheshwari : Managerial Economics, Sultan Chand & Sons

11.12 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Link)

- https://www.toppr.com/guides/economics/production-and-costs/production-function/
- https://keydifferences.com/difference-between-short-run-and-long-run-production-function.html

इकाई - 12

अल्पकालीन लागत विश्लेषण
(Short - Term Cost Analysis)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 लागत का अर्थ एवं अवधारणाएँ

12.3 अल्पकालीन लागतों के प्रकार

12.4 औसत लागत वक्र एवं सीमांत लागत वक्र में संबंध

12.5 अल्पकालीन लागत के निर्धारक तत्त्व

12.6 सारांश

12.7 अधिगम परिणाम

12.8 शब्दावली

12.9 स्व-परख प्रश्न

12.10 संदर्भ व ग्रन्थ सूची

12.11 अन्य पठन सामग्री

12.12 वेब संसाधन/लिंक

12.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के पठन के पश्चात आप :

- लागत का अर्थ एवं इसके प्रकारों को ठीक से समझने में सक्षम होंगे;
- लागत को निर्धारित करने वाले विभिन्न तत्त्वों के बारे में जान सकेंगे;
- औसत लागत एवं सीमान्त लागत के मध्य आपसी सम्बन्ध की समझ विकसित कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

उत्पादन फलन में लागतों का इतना ही महत्त्व है, जितना आगम का। लागत एवं आगम एक सिक्के के दो पहलू हैं। उत्पादन की प्रक्रिया एवं फलन लागत व आगम के बिना संभव नहीं है। ये दोनों ही समयावधि के अनुसार (अल्पावधि व दीर्घावधि) निश्चित होते हैं। इस इकाई की विषय वस्तु अल्पकालीन लागतों का विश्लेषण है । हम इस इकाई में यह जानने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार अल्पकालीन लागतें भौतिक उत्पादन फलन पर प्रभाव डालती हैं। अन्य शब्दों में, लागत एवं उत्पादन के सम्बन्ध को हम लागत फलन (Cost function) भी कह सकते हैं। लागत फलन, भौतिक उत्पादन फलन, साधनों एवं उत्पादन में प्रयोग की जाने वाली तकनीक पर निर्भर करता है। हमको यह भी समझना होगा कि लागत विश्लेषण किस प्रकार आपूर्ति प्रबन्धन को प्रभावित व निर्धारित करता है।

12.2 लागत का अर्थ एवं अवधारणाएँ (Meaning of Cost and Concepts)

उत्पादन एक ऐसा उपक्रम है जिसे विभिन्न साधनों के संयोजन से पूरा किया जाता है। ये सभी साधन किसी न किसी कीमत पर प्राप्त किये जा सकते हैं। मूलतः इन सभी साधनों की कीमतें, जिनसे हम एक अनुकूल उत्पादन का निर्माण करने का प्रयास करते हैं, लागत कहलाती है। लागत का अर्थ समझने के लिये हमें लागत की विभिन्न अवधारणाओं को समझना होगा। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से निम्न लागत आवधारणाओं को समझना उचित होगा :

1. लेखांकन लागतें एवं आर्थिक लागतें (Accounting Costs and Economic Costs)

जब भी कभी एक साहसी को उत्पादन की क्रिया को करना होता है, तो उसे विभिन्न साधनों की कीमत मुद्रा के रूप में चुकानी पड़ती है। अतः सभी प्रकार का मौद्रिक हस्तान्तरण जो उत्पादक बाहरी एजेन्सी को करता है और उन्हें अपनी लेखा पुस्तकों में दर्ज करता है, इन्हें लेखांकन लागतें कहा जाता है। इन्हें हम **प्रत्यक्ष लागतें** (Explicit costs) भी कहते हैं। प्रत्यक्ष लागतों को **स्पष्ट लागतें** भी कहा जाता है जिसमें निम्नांकित व्यय सम्मिलित किये जाते हैं:

(i) उत्पादन लागतें, यथा कच्चे माल की कीमत, मजदूरों की मजदूरी, ब्याज, किराया, घिसाई व्यय आदि।

(ii) विक्रय लागतें, यथा विज्ञापन व्यय, प्रचार-प्रसार पर होने वाला व्यय।

(iii) अन्य लागतें, यथा बीमा व्यय, सुरक्षा व्यय, कर आदि।

परन्तु अर्थशास्त्री के दृष्टिकोण से लागत का अर्थ इन चुकाई गई मौद्रिक लागतों के अतिरिक्त भी होता है। यदि एक साहसी अपनी स्वयं की पूँजी व्यवसाय में लगाता है, तो यह देखता है कि यदि यही पूँजी अन्य स्थान पर निवेशित करता, तो उसे कितना प्रत्याय (Return) प्राप्त होता। इसी प्रकार यदि साहसी किसी अन्य स्थान पर कार्य करता, तो उसे कितना वेतन मिलता। एक लेखाकार अपनी लेखा पुस्तकों में इस लागत को वर्णित नहीं करता है। लेकिन एक अर्थशास्त्री लेखांकन लागत के अतिरिक्त उस लागत को भी संज्ञान में लेगा जो प्रत्यक्ष लागत (Explicit cost) के अतिरिक्त है, अर्थात् उसकी पूँजी की लागत एवं उसकी मेहनत का प्रतिफल। इस प्रकार की लागतें **आरोपित लागतें** (Implicit costs) कहलाती हैं। इन दोनों का योग आर्थिक लागत है। आरोपित लागतों को **अस्पष्ट/अव्यक्त लागतें** भी कहा जाता है। ये लागतें साहसी के स्वयं के साधनों एवं सेवाओं की आरोपित लागतें (Imputed value of entrepreneur's own resources and services) होती हैं।

लेखांकन लागतें = प्रत्यक्ष लागतें (मौद्रिक लागतें)

आर्थिक लागतें = प्रत्यक्ष लागतें + आरोपित लागतें

इसी प्रकार लेखांकन लाभ व आर्थिक लाभ में भी अंतर है-यथा-

लेखांकन लाभ	=	कुल आगम - लेखांकन लागतें
(Accounting Profit)	=	(Total Revenue - Accounting Costs)
आर्थिक लाभ	=	कुल आगम - आर्थिक लागतें
(Economic Profit)	=	(Total Revenue- Economic Costs)

2. अवसर लागत (Opportunity Cost)

इस धारणा के अनुसार किसी वस्तु की लागत उस वस्तु को उत्पादित करने के लिये किसी अन्य वस्तु का त्याग है, जो उन्हीं साधनों से उत्पादित की जा सकती थी, जिससे कि हमने कथित वस्तु बनाई है। उदाहरण के लिये, यदि किन्हीं साधनों

से एक एकड़ भूमि में चावल व गेहूँ दोनो ही उत्पादित कर सकते हैं, लेकिन हम चावल के स्थान पर गेहूँ का उत्पादन करते हैं, तो गेहूँ की अवसर लागत चावल की वह मात्रा है जिसके उत्पादन का हमने त्याग किया है। यही बात सभी प्रकार के उत्पादनों पर लागू होती है क्योंकि उत्पादन का एक साधन विभिन्न प्रयोगों में काम में आता है और हम किसी भी वस्तु के उत्पादन में काम में लिये गये साधनों के लिये किसी न किसी वस्तु के उत्पादन का परित्याग करते ही हैं। **बेनहम** के अनुसार, ''किसी वस्तु की अवसर लागत वह दूसरा श्रेष्ठ विकल्प है जिसका उन्हीं साधनों से या उनके समान ही मौद्रिक लागत के साधनों से उसकी बजाय उत्पादन किया जा सकता था''। इस बात को **रेखाचित्र-12.1** के द्वारा समझा जा सकता है। मूल रूप से अर्थशास्त्र में यह चुनाव के सिद्धांत की अच्छी तरह व्याख्या करता है। अर्थव्यवस्था में लिये गये एक मुख्य केन्द्रीय निर्णय, क्या उत्पादन किया जाये, का यह मूल आधार है।

रेखाचित्र संख्या – 12.1

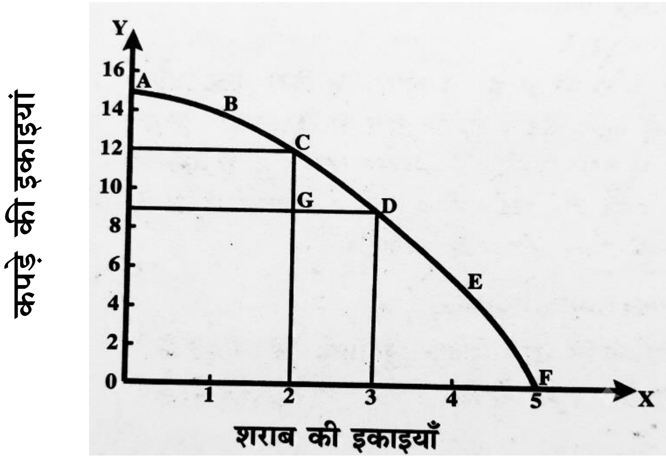

रेखाचित्रानुसार AF वक्र एक **रूपान्तरण रेखा** (Transformation line) है, जो कपड़े और शराब के उन सभी वैकल्पिक संयोगों को दर्शाती है, जो उपलब्ध साधनों से उत्पादित किये जा सकते हैं। AF वक्र के C बिन्दु पर शराब की 2 इकाइयाँ तथा कपड़े की 12 इकाइयों का उत्पादन होता है| यदि हम इसी वक्र के D बिन्दु पर जाते हैं, तो इस पर शराब की 3 इकाइयाँ तथा कपड़े की 9 इकाइयों का उत्पादन होता है। इसका यह आशय हैं कि शराब की एक अतिरिक्त उत्पादन करने के लिए कपड़े की 3 इकाइयों का त्याग करना पड़ेगा। अतः एक अतिरिक्त इकाई शराब (GD) के उत्पादन की अवसर लागत कपड़े की तीन इकाइयों (CG) के उत्पादन की हानि है। यहाँ यह बात ध्यान में रहे कि अवसर लागत **साधन की विशिष्टता की सीमा** पर निर्भर करती है। साधन जितना अधिक विशिष्ट होगा, उतनी ही कम उसकी अवसर लागत होगी और विलोमशः।

3. प्रत्यक्ष लागतें व अप्रत्यक्ष लागतें (Direct and Indirect Costs)

प्रत्यक्ष लागतें वे लागतें होती हैं जो उत्पादन के साथ आसानी से पहचानी जा सकती हैं। अप्रत्यक्ष लागतें आसानी से नहीं पहचानी जा सकती हैं, क्योंकि इनका भुगतान अप्रत्यक्ष रूप से होता है। **सभी प्रत्यक्ष लागतें स्पष्ट लागतें होती हैं, जबकि अप्रत्यक्ष लागतें अस्पष्ट लागतें होती हैं।**

स्व मूल्यांकन – प्रथम

1. लागतों पर किये गए विश्लेषणों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि लागत एक महत्वपूर्ण अवधारणा है और समस्त कीमत तंत्र पर लागतों का असर पड़ता है।

(A) लागत की अवधारणा क्या है?

(B) रूपांतरण रेखा की क्या भूमिका है?

12.3 अल्पकालीन लागतों के प्रकार (Types of Short-Term Costs)

लागत निर्धारण में समय का बहुत अधिक महत्त्व होता है। अल्पकालीन लागतें इतने समय के लिये होती हैं, जब हम एक समय में कुछ लागत स्थिर रख पाते हैं और कुछ लागत परिवर्तनशील कर सकते हैं। उदाहरण के लिये, अल्पकाल में हम कच्चे माल, श्रमिक आदि को उत्पादन की मात्रा के अनुसार परिवर्तित कर सकते हैं, लेकिन इतना समय नहीं होता है कि हम फर्म के आकार अर्थात् उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन कर पायें। अतः अल्पकाल में कुछ लागतें परिवर्तनशील एवं कुछ लागतें स्थिर होती हैं, जिन्हें हम क्रमशः परिवर्तनशील लागतें (Variable costs) एवं स्थिर लागतें (Fixed costs) कहते हैं।

1. कुल स्थिर लागतें (Total Fixed Costs-TFC) : इन लागतों को **अप्रत्यक्ष लागतें**, **पूरक लागतें** (Supplementary Costs) तथा **उपरिव्यय** (Overhead Costs) भी कहा जाता है। ये वे लागतें हैं जो उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन होने पर भी अपरिवर्तित रहती हैं। इस कारण से ये लागतें शून्य उत्पादन पर भी उतनी ही होती हैं, जितनी अधिकतम उत्पादन पर। उदहरणार्थ, भूमि एवं भवन का किराया, पूँजी पर ब्याज, बीमा प्रभार, स्थायी कर्मचारियों का वेतन इत्यादि।

2. कुल परिवर्तनशील लागतें (Total Vasiable Costs-TVC) : ये वे **लागते हैं जो उत्पादन की मात्रा के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं।** इन लागतों की मुख्य विशेषता यह है कि इनका **उत्पादन की मात्रा के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध** (Direct Sulation) होता है अर्थात् उत्पादन बढ़ने पर बढ़ने लगती हैं और उत्पादन घटने पर घटने लगती हैं। इस कारण से इन्हे **प्रत्यक्ष लागतें** (Direct Costs) कहा जाता है। इनको **प्रमुख लागतें** (Prime Costs) अथवा **अस्थिर लागतें** के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि परिवर्तनीशील लागतों का **उत्पादन की मात्रा के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो होता है, किन्तु आनुपातिक नहीं।** इन लागतों में होने वाला परिवर्तन उत्पादन में उत्पत्ति के नियमों की क्रियाशीलता पर निर्भर करता है।

3. कुल लागतें (Total Costs - TC)) : कुल परिवर्तनशील लागतों एवं कुल स्थिर लागतों के योग को ही कुल लागत (Total cost) कहा जाता है। **सूत्र रूप में :**

कुल लागतें = कुल स्थिर लागतें + कुल परिवर्तनशील लागतें

(TC) = (TFC) + (TVC)

उपरोक्त तीनों लागतों को हम तालिका संख्या 12.1 तथा रेखाचित्र – 12.2 द्वारा समझा सकते है

तालिका – 12.1

उत्पादन इकाइयाँ (Q)	**कुल स्थिर लागतें (TFC)**	**कुल परिवर्तनशील लागतें (TVC)**	**कुल लागतें (TC)**
0	1000	-	1000
100	1000	1000	2000
200	1000	2000	3000
300	1000	3000	4000
400	1000	4000	5000
500	1000	5000	6000

उपरोक्त तालिका - 12.1 में हम यह देख सकते हैं कि कुल स्थिर लागतें (TFC) Rs.1000 ही हैं चाहे उत्पादन की मात्रा शून्य है अथवा 500 इकाइयाँ हैं; जबकि परिवर्तनशील लागतें उत्पादन की मात्रा बढ़ने के साथ-साथ बढ़ रही हैं। यह स्पष्ट है कि उत्पादन शून्य इकाई होने पर भी स्थिर लागत रूपये 1000 है क्योंकि एक फर्म को उत्पादन नहीं होने पर भी कुछ न कुछ लागत वहन करनी पड़ती है। इन दोनों लागतों को यदि जोड़ दिया जाये, तो वह कुल लागत हो जाती है।

रेखाचित्र – 12.2

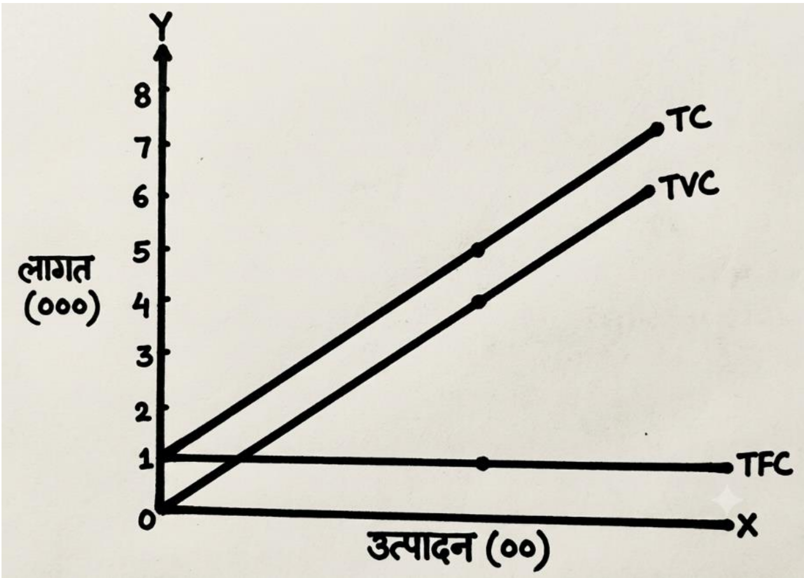

रेखाचित्रानुसार OX अक्ष पर उत्पादन की इकाइयाँ और OY अक्ष पर लागतों को दर्शाया गया है। हम देख रहे है कि जब उत्पादन की मात्रा शून्य है, तो कुल स्थिर लागत (TFC) रूपये 1000 है जो आगामी किसी भी उत्पादन स्तर पर भी सीधी पड़ी रेखा के रूप में है अर्थात् स्थिर है। परन्तु हम यह भी देख रहे हैं कि जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हो रही है, वैसे-वैसे कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) में भी वृद्धि हो रही है। हम यह जानते हैं कि उत्पादन में वृद्धि के लिये हमें श्रमिकों, कच्चा माल आदि पर अधिक व्यय करना पड़ता है। इसलिये परिवर्तनशील लागत वक्र उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ एक सीधी रेखा के रूप में दायीं ओर ऊपर जा रहा है। कुल लागत (TC) वक्र जैसा कि बताया गया है, वह भी उत्पादन वृद्धि के साथ दायीं ओर ऊपर बढ़ता जा रहा है क्योंकि इसमें परिवर्तनशील व स्थिर दोनों लागतों का समावेश है।

स्थिर एवं परिवर्तशील लागतों में अन्तर (Difference between fixed and Variable Costs) : स्थिर एवं परिवर्तशील लागतों में निम्नांकित अंतर है :

(I) परिवर्तनशील लागतें उत्पादन की मात्रा के साथ – साथ परिवर्तन होती रहती हैं, जबकि स्थिर लागतें उत्पादन की मात्रा से असंबंधित रहती हैं क्योंकि उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है|

(II) स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों के बीच अंतर केवल अल्पकाल में ही होता है| दीर्घकाल में तो सभी लागतें परिवर्तनशील हो जाती है|

(III) स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है क्योंकि मार्शल के अनुसार इनके बीच अंतर केवल श्रेणी (Degree) का होता है, न कि किस्म (Kind) का|

(IV) औसत स्थिर लागत (Average Fixed Cost - AFC) : कुल स्थिर लागतों में वस्तु की उत्पादित कुल इकाइयों/मात्रा का भाग देने पर जो भागफल आता है उसे औसत स्थिर लागत कहते हैं। यह उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन

के विपरीत दिशा में परिवर्तित होती है। जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे यह कम होती चली जाती है, किन्तु यह कभी भी शून्य नहीं होती है। **सूत्र रूप में:**

$$\text{औसत स्थिर लागत (AFC)} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत } (TFC)}{\text{कुल उत्पादन मात्रा } (Q)}$$

रेखाचित्र - 12.3 में AFC रेखा/वक्र को प्रदर्शित किया गया है। वास्तव में, इस वक्र की आकृति **आयताकार अधिपरवलय** (Rectangular Ryperbala) से मिलती-जुलती होती है। यह वक्र बायें से दायें नीचे की ओर गिरता हुआ होता है, किन्तु यह x अक्ष को स्पर्श नहीं करता है। प्रारम्भ में यह अधिक ढ़ालू और बाद में चलकर कम ढ़ालू अथवा चपटा होता चला जाता है।

रेखाचित्र संख्या - 12.3

औसत स्थिर लागत वक्र

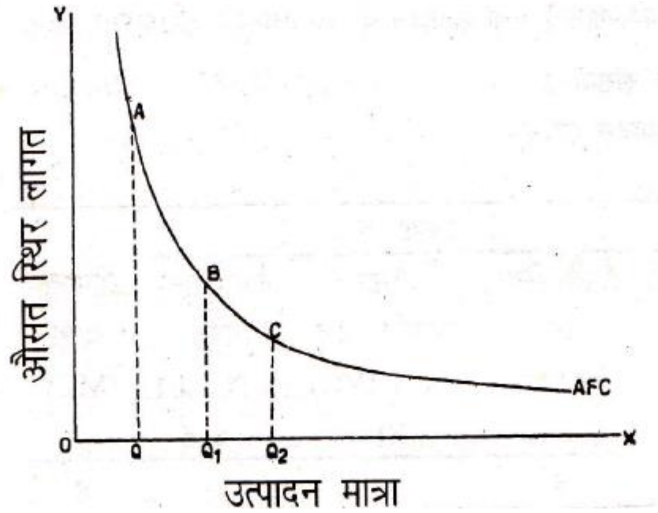

5. औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost - AVC) : जब हम कुल परिवर्तनशील लागत को कुल उत्पादन की मात्रा से विभाजित करते हैं, तो जो भागफल आता है, उसे औसत परिवर्तनशील लागत कहते हैं।**सूत्र रूप में:**

$$\textbf{औसत परिवर्तन लागत (AVC)} = \frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागतें } (\mathbf{TVC})}{\text{कुल उत्पादन मात्रा } (Q)}$$

AVC रेखा (वक्र) की आकृति आंग्लभाषा के U अक्षर जैसी होती है, जो उत्पादन प्रक्रिया में उत्पत्ति के नियमों की क्रियाशीलता के कारण होती है। प्रारम्भ में यह उत्पत्ति वृद्धि नियम की क्रियाशीलता वजह से साधनों की औसत उत्पादकता बढ़ने के कारण घटती हुई होती है और साधनों के अनुकूलतम संयोजन(Optimal Combination of Factors) के कारण यह न्यूनतम होती है। तत्पश्चात उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण साधनों की औसत उत्पादकता घटने लगती है, परिणामस्वरूप यह बढ़ने लगती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि औसत परिवर्तनशील लागत और साधनों की औसत उत्पादकता के बीच परस्पर विपरीत सम्बन्ध होता है। इस बात को रेखाचित्र-12.4 के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

रेखाचित्र - 12.4

औसत परिवर्तनशील लागत वक्र

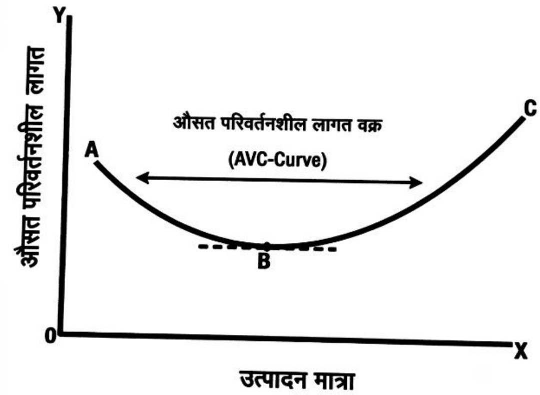

6. औसत कुल लागत (Average Total Cost – ATC) : वस्तु की कुल लागत में उसकी उत्पादित कुल मात्रा का भाग दिया जाता है, तो जो भागफल प्राप्त होता है, उसे औसत कुल लागत अथवा औसत लागत कहते हैं। **सूत्र रूप में:**

औसत कुल लागत (ATC/AC) $= \frac{\text{कुल लागतें } (\mathbf{TC})}{\text{कुल उत्पादन मात्रा } (\boldsymbol{Q})}$

औसत लागत को **निम्नांकित सूत्र** द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है:

औसत लागत = औसत स्थिर लागत + औसत परिवर्तनशील लागत

(AC) = (AFC) + (AVC)

औसत लागत (AC) वक्र भी AVC वक्र की भाँति U अक्षर की आकृति जैसा होता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि औसत लागत (AC) औसत स्थिर लागत (AFC) तथा औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) का योग होता है, इसलिए जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जाता है, औसत लागत (AC) गिरने लगती है, जिससे औसत लागत (AC) वक्र और औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) वक्र के बीच अन्तर कम होता जाता है और जब औसत स्थिर लागत (AFC) वक्र x-अक्ष के निकट पहुँचता है, तो औसत परिवर्तनशील लागत वक्र औसत लागत वक्र के निकट हो जाता है| रेखाचित्र - 12.5 से औसत लागत वक्र की आकृति को समझा जा सकता है। कुछ सीमा तक औसत परिवर्तनशील लागत बढ़ते प्रतिफल के कारण सामान्यतया घटती है, लेकिन एक बिन्दु के बाद उत्पादन बढ़ने पर औसत परिवर्तनशील लागत ह्यसमान प्रतिफल के कारण बढ़ने लगती है।

रेखाचित्र - 12.5

औसत लागत वक्र

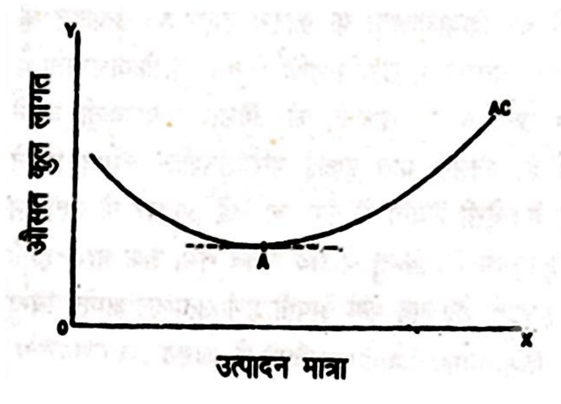

7. सीमांत लागत (Marginal Cost-MC) : सीमान्त लागत उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादित करने से कुल लागत में वृद्धि को कहा जाता है। यह वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत है। इसे निम्नांकित **दो सूत्रों** द्वारा ज्ञात किया जा सकता हैः

(i) सीमान्त लागत (MC) = $\frac{\text{कुल लागत में परिवर्तन } (\Delta TC)}{\text{कुल उत्पादन मात्रा में परिवर्तन } (\Delta Q)}$

(ii) $MC = TC_n - TC_{n-1}$

यहाँ TC_n = n इकाइयों की कुल लागत तथा TC_{n-1} = n-1 इकाइयों की लागत है।
सीमान्त लागत (MC) वक्र भी अंग्रेजी के U अक्षर जैसा ही होता है। प्रारम्भ में यह गिरती हुई और न्यूनतम बिन्दु पर पहुँचने के पश्चात बढ़ती हुई होती है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि सीमांत लागत (MC) स्थिर लागत पर निर्भर नहीं करती है। चूँकि स्थिर लागत उत्पादन की मात्रा बदलने पर नहीं बदलती है, अतः सीमांत स्थिर लागत नहीं होती है। अल्पकाल में उत्पादन मात्रा में परिवर्तन करने पर केवल परिवर्तशील लागत ही बदलती है, स्वाभाविक है कि **सीमांत लागत में होने वाला परिवर्तन केवल परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप ही होता है।** हम यह भी कह सकते है कि **सीमांत लागत कुल परिवर्तनशील लागत में वृद्धि के बराबर होती है** जैसा कि तालिका-12.2 से स्पष्ट है। रेखाचित्र संख्या 12.6 में सीमान्त लागत वक्र की आकृति को प्रदर्शित किया गया है|

रेखाचित्र संख्या - 12.6

सीमान्त लागत वक्र

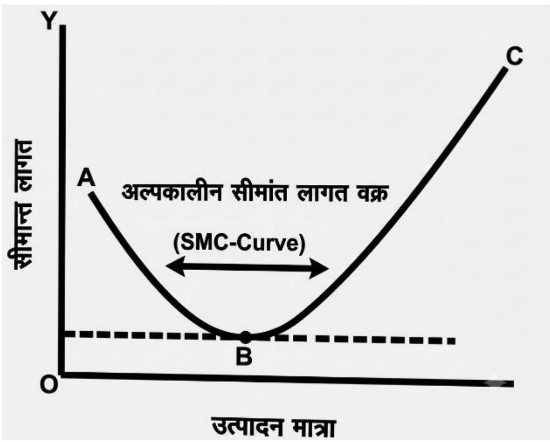

अब हम सभी लागतों को तालिका संख्या-12.2 के माध्यम से समझ सकते हैं।

तालिका संख्या - 12.2

उत्पादन मात्रा (Q)	**कुल स्थिर लागत (रू.) (TFC)**	**कुल परिवर्तनशील लागत (रू.) (TVC)**	**कुल लागत (रू.) (TC)**	**सीमांत लागत (रू.) (MC)**	**औसत स्थिर लागत (रू.) (AFC)**	**औसत परिवर्तनशील लागत (रू.) (AVC)**	**औसत लागत (रू.) (AC)**
0	100	-	100	-	-	-	-

1	100	25	125	25	100	25	125
2	100	45	145	20	50	22.5	72.5
3	100	60	160	15	33.33	20	53.33
4	100	80	180	20	25	20	45.00
5	100	106	206	26	20	21.2	41.2
6	100	136	236	30	16.67	22.66	39.33
7	100	173	273	37	14.28	24.71	38.99

रेखाचित्र - 12.7

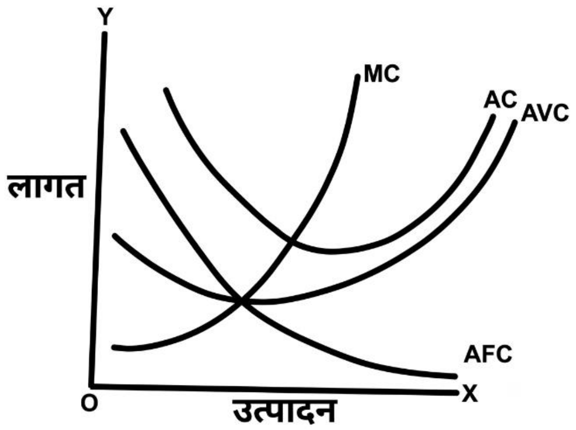

रेखाचित्र - 12.7 से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि औसत स्थिर लागत उत्पादन की मात्रा बढ़ने के साथ लगातार नीचे गिरती है, लेकिन शून्य नहीं होती है। औसत लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत U आकार की होती है, परन्तु उल्लेखनीय है कि औसत लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत के मध्य की दूरी अंत में जाकर कम हो जाती है क्योंकि औसत परिवर्तनशील लागत भी एक बिन्दु के पश्चात् बढ़ने लगती है।

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

(A) अल्पकालीन लागतें कितने प्रकार की हैं?

(B) कुल लागत पर परिवर्तनशील लागतों का क्या प्रभाव पड़ता है?

(C) सीमान्त लागत क्या है?

12.4 औसत लागत वक्र एवं सीमांत लागत वक्र में सम्बन्ध (Relationship between AC and MC Curve)

इन दो प्रकार के वक्रों में महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। औसत लागत एवं सीमांत लागत में सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि किसी अन्य औसत और सीमांत मात्राओं के मध्य पाया जाता है। जब सीमांत लागत औसत लागत से कम होती है, तो औसत लागत घटती है और जब सीमांत लागत औसत लागत से अधिक होती है, तो औसत लागत बढ़ती है। उदाहरण के लिये, क्रिकेट का एक खिलाड़ी पहली पारी में 50 रन बनाता है और दूसरी पानी में 45 रन बनाता है, तो उसका औसत दोनों

पारियों का कम होगा। क्योंकि उसकी सीमांत पारी की रन संख्या पहली पारी से कम है। इसी प्रकार यदि दूसरी पारी में वह 60 रन बनाता है, तो उसकी औसत रन संख्या में वृद्धि होगी क्योंकि दूसरी पारी में उसने अधिक रन बनाये हैं। अतः

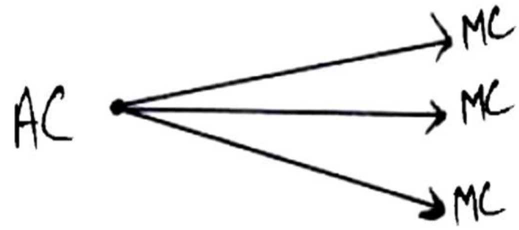

रेखाचित्र संख्या - 12.8

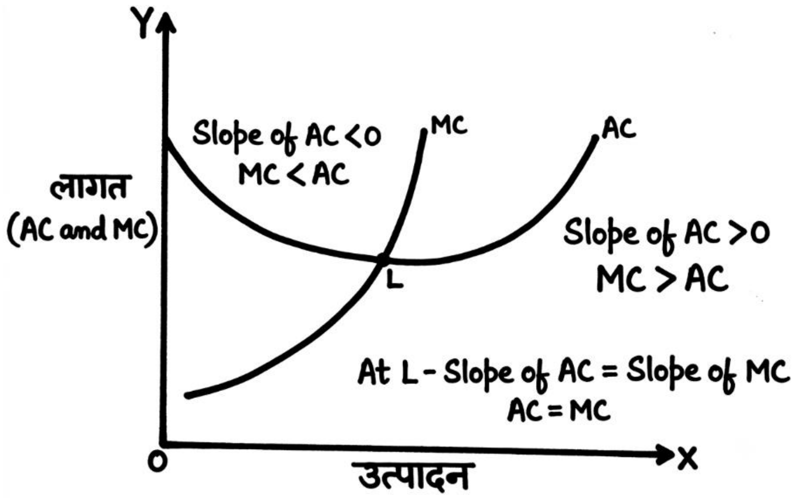

रेखाचित्र संख्या 12.8 से AC व MC का संबंध गणितीय रूप से भी जाना जा सकता है, जैसा कि पूर्व में दिये गये क्रिकेट के उदाहरण से स्पष्ट है। **औसत लागत व सीमांत लागत में सम्बन्ध को निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है;**

1. जब औसत लागत वक्र का ढलान ऋणात्मक (अर्थात् नीचे की ओर गिरता हुआ) है (AC < 0) जिसे AL से दिखाया गया है, सीमांत लागत, औसत लागत से कम है।
2. जब औसत लागत वक्र का ढलान धनात्मक (अर्थात् नीचे से ऊपर) है (AC > 0), तब सीमांत लागत औसत लागत से अधिक है।
3. जब औसत लागत का ढलान शून्य (जैसा कि बिन्दु L पर) है, तो औसत लागत सीमांत लागत के बराबर है अर्थात् L बिन्दु पर दोनों लागत बराबर हैं।

अल्पकालीन लागत वक्रों के कुछ सामान्य बिन्दु निम्नलिखित है :

1. अल्पकाल में AVC, AC, MC सभी U आकार के होते हैं, जो उत्पादन के परिवर्तनशील अनुपातों के सिद्धान्त को बताता है।
2. AFC वक्र आयताकार अधिपरवलय (Rectangular hyperbola) होता है।

3. सीमांत लागत वक्र औसत परिवर्तशील लागत एवं औसत लागत वक्र को नीचे से उनके न्यूनतम बिन्दु पर काटकर ऊपर जाता है।
4. प्रत्येक फर्म एक निश्चित अनुकूलतम उत्पादन करती है जहाँ पर उसकी औसत लागत न्यूनतम होती है।
5. औसत लागत के न्यूनतम स्तर पर स्थिर एवं परिवर्तनशील उत्पादन के साधन अनुकूलतम स्तर पर होते हैं।

12.5 अल्पकालीन लागत के निर्धारक तत्त्व (Factors Determining Short Run Cost)

1. उत्पादन का स्तर (Level of Output) : उत्पादन की मात्रा में और कुल लागतों में प्रत्यक्ष अथवा सीधा सम्बन्ध होता है। जैसे-जैसे उत्पादन में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे लागत में भी वृद्धि होती है यद्यपि वृद्धि की दर कम या अधिक हो सकती है।

2. इकाई का आकार (Size of Plant) : फर्म की इकाई का आकार अथवा पैमाना लागत से विपरीत सम्बन्ध रखता है। जैसे-जैसे पैमाना बढ़ता है, एक सीमा तक लागत घटती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अल्पकाल में इकाई का पैमाना बढ़ाने जितना समय नहीं होता है, बल्कि उत्पादन की वृद्धि परितर्वनशील साधन की मात्रा में परितर्वन से ही सम्भव है।

3. साधनों की कीमत (Price of Inputs) : उत्पादन के साधनों की कीमत पर लागत अत्यधिक निर्भर है। साधनों की कीमत वृद्धि से लागत में अचानक वृद्धि हो सकती है। यद्यपि यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि परिवर्तनशील साधन स्थिर साधन के किस अनुपात में काम में लिये जाते हैं।

4. प्रबन्धकीय कुशलता (Managerial Efficiency) : प्रबन्धकीय कुशलता से लागतों का गहरा सम्बन्ध है। कुशलता में वृद्धि से उत्पादकता में वृद्धि व लागत में कमी होती है, अथवा इसके विपरीत भी होता है।

5. तकनीकी स्थिति (State of Technology) : तकनीकी ज्ञान की स्थिति लागत का महत्त्वपूर्ण निर्धारक है, यद्यपि अल्पकाल में अत्यधिक तकनीकी परिवर्तन संभव नहीं है। दीर्घकाल में तकनीकी परिवर्तन अधिक आसान है। परन्तु तकनीक का उपयोग एवं उसकी कुशलता का प्रभाव लागत पर अवश्य होता है। नई तकनीक के प्रयोग से लागत में कमी आती है।

गतिविधि संख्या – 1 (Activity No. - 1) : निम्नलिखित तालिका को पूर्ण कीजिए।

उत्पादन मात्रा	TFC	AFC	TVC	TC	AVC	AC	MC
0	60	-	-	-	-	-	-
1	-	-	-	-	-	-	-
2	-	-	100	-	-	-	-
3	-	-	-	-	-	-	5
4	-	-	-	-	-	28.75	-
5	-	-	-	-	15	-	-
6	-	-	-	-	-	-	45

गतिविधि संख्या - 2(Activity No. - 2) : औसत परिवर्तनशील लागत और सीमान्त लागत के सम्बन्ध को गतिविधि संख्या-1 में दी गयी तालिका से समझने का प्रयास कीजिए।

12.6 सारांश (Summary)

यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि लागत का प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में अत्यधिक महत्त्व है। फर्म द्वारा वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा, उसका कीमत निर्धारण, आदि के बारे में निर्णय लिये जाने में विभिन्न लागत अवधारणाओं को समझना और उन्हें व्यवहार में लाने का अत्यधिक महत्त्व है। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक युग में यह और भी अधिक समीचीन है कि लागत के विभिन्न व्यवहारों का जितनी अधिक कुशलता से उपयोग किया जायेगा, व्यवसाय के उद्देश्यों की प्राप्ति होने में उतनी ही अधिक सुविधा होगी तथा व्यवसाय के दीर्घकालीन अस्तित्व को हम सुनिश्चित कर सकेंगे। हमें यह समझना होगा कि कुल लागतों को हम एकमेव रूप में न देखकर उनके उन भागों यथा औसत एवं सीमांत लागतों को भी समझें जिससे उत्पादन एवं कीमत का निर्धारण अल्पकाल व दीर्घकाल में सुचारू रूप से किया जा सके।

12.7 अधिगम परिणाम (Glossary)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी को औसत लागत वक्र एवं सीमांत लागत वक्र के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त होगी।

विद्यार्थी लागत के अर्थ व अवधारणाओं को भी समझ सकेंगे।

विद्यार्थी अल्पकालीन लागतों के प्रकारों को भी भली भांति समझ सकेंगे।

12.8 शब्दावली (Glossary)

- **लेखांकन लागतें (Accounting Costs) :** ये मौद्रिक लागतें होती हैं, जो एक फर्म उत्पादन के साधनों का प्रयोग करने के बदले चुकाती है।
- **आरोपित लागतें (Implicit Costs) :** वस्तु विशेष के उत्पादन में प्रयुक्त उद्यमी के स्वयं के साधनों का प्रचलित बाजार दर पर पुरस्कार ही आरोपित लागतें होती हैं।
- **अवसर लागत (Opportunity Cost) :** किसी उत्पादन के साधन के सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग से प्राप्त आय को अवसर लागत कहते हैं। इसे किसी उपयोग को त्यागने की भी लागत कहते हैं।
- **सीमान्त लागत (Marginal Cost) :** किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के कारण उसकी कुल लागत में जो परिवर्तन होता है, उसे सीमान्त लागत कहते हैं।
- **प्रमुख लागतें (Prime Costs) :** ये परिवर्तनशील लागतें होती हैं, जो उत्पादन मात्रा में परिवर्तिन के साथ परिवर्तित होती रहती हैं।
- **पूरक लागतें (Supplementary Costs) :** इन्हे स्थिर लागतें कहा जाता है जिनका उत्पादन की मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

12.9 स्व-परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Questions)

1. अवसर लागत का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. लेखांकन लागतें क्या हैं?
3. आर्थिक लागतें क्या हैं?
4. औसत स्थिर लागत वक्र आयताकार अधिपरवलय क्यों होता है ?

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. प्रमुख और पूरक लागतों में अन्तर कीजिए। अपने उत्तर की पुष्टि में उदाहरण एवं रेखाचित्र प्रस्तुत करें।
2. औसत लागत और सीमान्त लागत का अर्थ स्पष्ट करते हुए इनके बीच सम्बन्ध समझाइए।

12.10 सन्दर्भ व ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- Dean, Joel : Managerial Economies, Prentic Hall of India, 2018
- Stonier, Alfred W, Hague, Douglas C : A Text Book of Economic Theory , 2012
- Gupta G.S. : Managerial Economics, Tata Mc Graw Hill Publishing Company, 1990.

12.11 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

1. Mithani, D.M. : Managerial Economics, Himalaya Publishing House.
2. Singh, Tyagi : Business Economics, Himalaya Publishing House , 2009
3. Agrawal, Deo : Business Economics, Ramesh Book Depot, 2017-18
4. Dwivedi, D.N. : Managerial Economics, Vikas Publishing, Edn. 1st.

12.12 वेब संसाधन/लिंक (Web Resource/Link)

- **https://www.economicsdiscussion.net/cost/short-run-cost-analysis-of -a-firm/16954**
- **http://policonomics.com/cost-analysis/**

इकाई - 13

दीर्घकालीन लागत विश्लेषण एवं आगम विश्लेषण (Long-Term Cost Analysis and Revenue Analysis)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 दीर्घकालीन औसत लागत का अर्थ एवं इसके वक्र का निर्माण
13.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की विशेषताएँ
13.4 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र और दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र के मध्य सम्बन्ध
13.5 दीर्घकालीन औसत लागत का उपयोग एवं महत्त्व
13.6 आगम अवधारण एवं इसके प्रकार
13.7 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्ध
13.8 एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्ध
13.9 सारांश
13.10 अधिगम परिणाम
13.11 शब्दावली
13.12 स्व-परख प्रश्न
13.13 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची
13.14 अन्य पठन सामग्री
13.15 वेब संसाधन/लिंक

13.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के पठन के पश्चात् आप :

- दीर्घकालीन लागतों एवं आगम अवधारणाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- दीर्घकालीन औसत लागत और दीर्घकालीन सीमान्त लागत के मध्य संबंध को समझ सकेंगे।
- दीर्घकालीन औसत लागत के उपयोग एवं महत्त्व से अवगत हो सकेंगे।
- विभिन्न बाजार दशाओं के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्धों के बारे में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

दीर्घकाल एक ऐसी अवधि होती है जिसमें उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं जिसके कारण एक उत्पादक अपनी आपूर्ति को वस्तु की बाजार माँग के अनुरूप पूर्णत: परिवर्तित एवं समायोजित कर सकता है। दीर्घावधि का एक फर्म की उत्पादन की लागतों और आगम दोनों पर प्रभाव पड़ता है। चूँकि लागत कीमत निर्धारण का आधार होती है और उस पर आधारित कीमत बाजार में वस्तु की माँग को प्रभावित कर फर्म के आगम और लाभ को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, फर्म की लागत और आगम ही फर्म के साम्य (कीमत एवं उत्पादन मात्रा) का निर्धारण करते हैं। अतः हमें दीर्घकालीन लागतों एवं आगम का ज्ञान होना आवश्यक है। हम इस इकाई में दीर्घकालीन लागतों एवं आगम का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

13.2 दीर्घकालीन औसत लागत का अर्थ एवं इसके वक्र का निर्माण (Meaning of Long Term Average Cost and Construction of its Curve)

दीर्घकालीन औसत लागत को समझने के लिए सबसे पहले हमें दीर्घकाल का अर्थशास्त्रीय अर्थ समझना आवश्यक है। आर्थिक विश्लेषण में दीर्घकाल इतनी लम्बी अवधि होती है, जिसमें फर्म उत्पादन के पैमाने में इच्छित परिवर्तन कर सकती है, क्योंकि दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। **लेफ्टविच** के अनुसार, ''दीर्घकाल को वैकल्पिक आर्थिक स्थितियों, जिनमें से किसी में भी फर्म प्रवेश कर सकती है, कि श्रृंखला के रूप में देखना ज्यादा उपयोगी होगा"। **फर्ग्यूसन** के शब्दों में, ''दीर्घकाल नियोजन क्षितिज होता है। वास्तव में, समस्त आर्थिक क्रिया अल्पकाल में घटित होती है ----इस अर्थ में दीर्घकाल समस्त संभव अल्पकालीन स्थितियों से बनता है, जिनमें एक आर्थिक साधन चुनाव कर सकता है"।

चूँकि दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, इसलिए दीर्घकाल में कोई भी लागत स्थिर नहीं होती है अर्थात् सभी लागतें परिवर्तनशील होती हैं। इस कारण से दीर्घकाल में केवल कुल लागत, औसत लागत और सीमान्त लागत ही होती है।

दीर्घकालीन कुल लागत (LTC) में वस्तु के उत्पादन की कुल इकाइयों (Q) का भाग देने पर जो भाग फल प्राप्त होता है, उसे दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) कहते हैं। दीर्घकालीन औसत लागत को **निम्नांकित सूत्र** द्वारा ज्ञात किया जा सकता है :

दीर्घकालीन औसत लागत = दीर्घकालीन कुल लागत ÷ उत्पादन की कुल मात्रा

$$LAC = LTC \div Q$$

उदाहरण - मानाकि किसी फर्म की 50 इकाइयों के उत्पादन की दीर्घकालीन कुल लागत 500रू.है, तो उपरोक्त सूत्र के अनुसार, फर्म के उत्पादन की दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) 500/50 = 10 रू. होगी।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long-Term Average Cost Curve-LAC)

चूँकि दीर्घकालीन **नियोजन काल** होता है, इसलिए दीर्घकाल में एक फर्म अपने उत्पादन के पैमाने में जितनी बार परिवर्तन करेगी, उसे उतने ही अल्पकालीन औसत लागत वक्र (SAC) प्राप्त होंगे। ये विभिन्न अल्पकालीन लागत वक्र इस बात को स्पष्ट करते हैं कि उत्पादन के पैमाने/संयंत्र के आकार में परिवर्तन (Change in Scale of Production/Size of Plant) का लागत पर क्या प्रभाव पड़ता है? इन विभिन्न अल्पकालीन औसत लागत वक्रों (SACs) के बिन्दुओं को मिलाकर दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) प्राप्त किया जा सकता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) एक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की विभिन्न मात्राओं की प्रति इकाई न्यूनतम संभव लागत (Minimum Possible Per Unit Cost) बताने वाला वक्र है। चूँकि दीर्घकाल में फर्म द्वारा अपने उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन किया जा सकता है,

इसलिए फर्म भिन्न-भिन्न उत्पादन मात्राओं के लिए भिन्न-भिन्न अल्पकालीन वक्रों का अपनी अनुकूलतम स्थिति के संदर्भ में चुनाव कर सकती है। **दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) को उत्पादन की प्रति इकाई लागत के नाम से भी जाना जाता है।**

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की न्यूनतम संभव औसत लागत (Minimum possible average cost) को व्यक्त करता है। **प्रो. जे.एन. बेन** के अनुसार, ''दीर्घकालीन औसत लागत वक्र वह वक्र है जो सभी संभव उत्पादन के स्तरों के लिए न्यूनतम लागत को प्रकट करता है।''

मानाकि एक फर्म के सामने उत्पादन पैमाने के तीन विकल्प उपलब्ध हैं। दीर्घकाल में फर्म इन तीनों विकल्पों में से किसी भी विकल्प का चुनाव कर सकती है। यहाँ अब फर्म के सामने चुनाव की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस समस्या का समाधान इस बात में निहित है कि फर्म अपने उत्पादन के पैमाने का चयन उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग के आधार पर करेगी| दूसरे शब्दों में, यदि फर्म की वस्तु की माँग अधिक है, तो वह बड़े पैमाने के उत्पादन का चयन करेगी और इसके विपरीत, माँग कम होने की स्थिति में छोटे पैमाने का चुनाव करेगी। फर्म उत्पादन के पैमाने का चयन करते वक्त इस बात को अवश्य ध्यान में रखती है कि चयनित उत्पादन का पैमाना ऐसा हो, जिस पर वस्तु की प्रति इकाई औसत लागत न्यूनतम हो। इस बात को **रेखाचित्र संख्या 13.1** द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्रानुसार यह स्पष्ट है कि यदि फर्म वस्तु की OB मात्रा का उत्पादन करना चाहती है, तो वह सबसे छोटे आकार के पैमाने को चुनेगी, जो SAC_1 पर आता है। यद्यपि OB मात्रा का उत्पादन SAC_2 पर भी किया जा सकता है, जहाँ दीर्घकालीन औसत लागत (SAC_1) के समान(BQ) है। यदि फर्म वस्तु की OC मात्रा का उत्पादन करना चाहती है, तो वह SAC_2 का चयन करेगी क्योंकि इस पर दीर्घकालीन औसत लागत (CK) न्यूनतम है, जो SAC_1 पर औसत लागत (CJ) से कम है। यदि फर्म वस्तु की OD मात्रा का उत्पादन करना चाहती है, तो वह ऐसा SAC_2 तथा SAC_3 दोनों में से किसी भी पैमाने पर कर सकती है क्योंकि इस उत्पादन मात्रा की दीर्घकालीन औसत लागत (DS) दोनों पर समान है।

रेखाचित्र संख्या 13.1

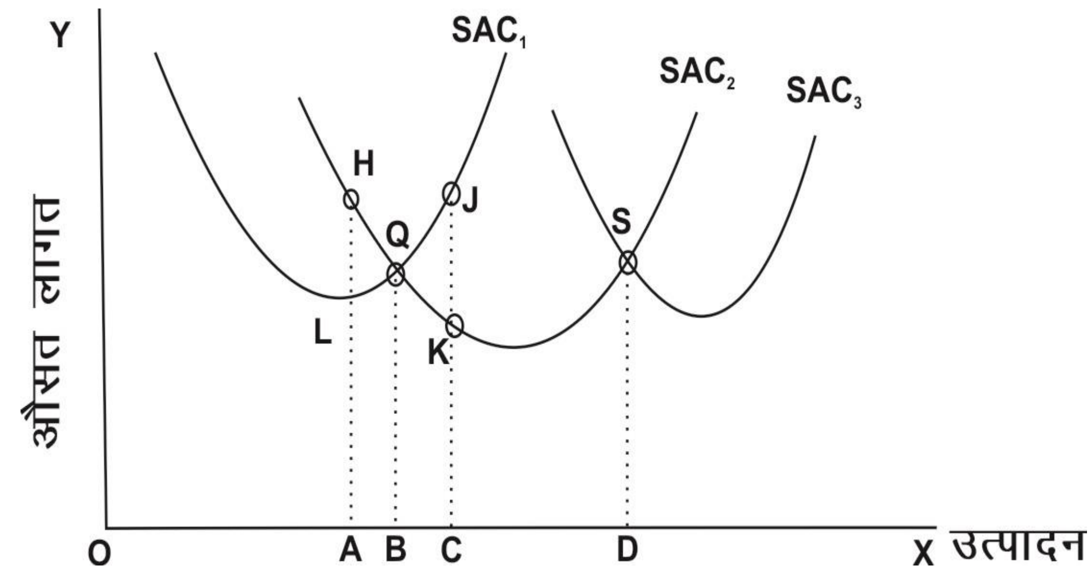

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) विभिन्न उत्पादन के पैमानों के चयन से भिन्न-भिन्न होगा क्योंकि यह विभिन्न अल्पकालीन औसत लागत वक्रों (SAC_s) के उन भागों से बनता है जिन पर फर्म दीर्घकाल में उत्पादन करती है। **यदि संयंत्रों की संख्या सीमित होती है, तो LAC वक्र सीधा (Smooth)**

न होकर टेढ़ा-मेढ़ा होता है। किन्तु फर्म दीर्घकाल में प्रायः अनेक संयंत्रों का निर्माण कर सकती है जिसके कारण LAC वक्र का आकर सतत एवं सीधा होता है। इस प्रकार एक दीर्घकालीन औसत लागत **(LAC) वक्र को विभिन्न अल्पकालीन औसत लागत वक्रों (SAC_3) को स्पर्श करने वाली रेखा के रूप में व्यक्त किया जाता है,** जिसे **रेखाचित्र संख्या 13.2** में प्रदर्शित किया गया है। चित्रानुसार दर्शाये गये विभिन्न SAC वक्र विभिन्न उत्पादन के पैमानों को बताते हैं। इन सभी SAC वक्रों को स्पर्श करती हुई एक रेखा खींच दी जाये, तो फर्म का दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC प्राप्त हो जाता है। चूंकि LAC वक्र सभी SAC वक्रों को लपेट लेता है, इसलिए इसे **'लपेटने वाला वक्र'** या **'आवरण वक्र'** कहते हैं, किन्तु इसका सही नाम **नियोजन वक्र** (Planning Curve) है क्योंकि यह वक्र फर्म की उत्पादन मात्रा एवं लागत सम्बन्धी सूचनाएँ प्रदान करता है, जिसके आधार पर फर्म दीर्घकाल में अपनी उत्पादन मात्रा एवं लागत का नियोजन कर सकती है।

रेखाचित्र संख्या 13.2

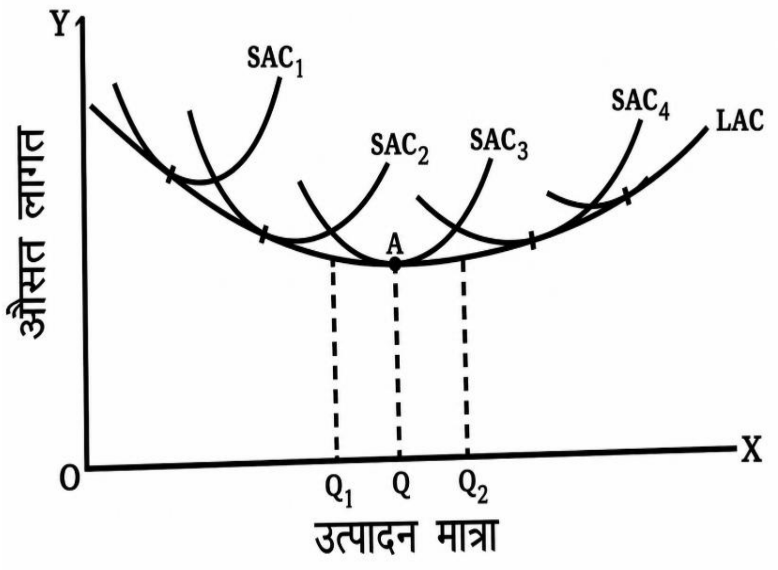

रेखाचित्र 13.2 में अनेक अल्पकालीन लागत वक्र हैं जिनको स्पर्श करता हुआ दीर्घकालीन औसत लागत वक्र बना है अर्थात् दीर्घकालीन औसत लागत वक्र विभिन्न अल्पकालीन औसत वक्रों को स्पर्श करता हुआ होता है, जो विभिन्न संभव उत्पादन के पैमानों की न्यूनतम औसत लागत को प्रदर्शित करता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को देखने से ज्ञात होता है **कि इसकी आकृति अंग्रेजी वर्ण के U अक्षर** जैसी (U-Shaped) होती है, किन्तु यह अल्पकालीन औसत लागत वक्रों की तुलना में अधिक चपटा होता है। इसके U आकृति के होने का कारण **पैमाने के प्रतिफलों** (Returns to Scale) के नियम का लागू होना है, जिसके कारण प्रारम्भ में यह बायें से नीचे की ओर गिरता हुआ होता है और बाद में न्यूनतम बिन्दु पर पहुंचने के पश्चात दायीं ओर ऊपर की तरफ उठता हुआ होता है। दीर्घकाल में उत्पादक के पास यह विकल्प रहता है कि वह अपनी प्रति इकाई उत्पादन लागत को न्यूनतम रखने के लिए एक संयंत्र को छोड़कर दूसरे संयंत्र को अपना ले, जबकि अल्पकाल में उत्पादक के पास ऐसा कोई विकल्प नहीं होता है।

गतिविधि संख्या-1 (Activity No.-1) : निम्नलिखित तालिका में दी गयी सूचना से आप दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) एवं दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC) ज्ञात कीजिए।

तालिका संख्या – 13.1

उत्पादन की इकाइयाँ (Q)	दीर्घकालीन कुल लागत (LTC)	दीर्घकालीन औसत लागत (LAC)	दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LMC)
1	10		
2	18		
3	24		
4	28		

13.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की विशेषताएँ (Characteristics of Long – Term Average Cost Curve)

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) अल्पकालीन औसत लागत (SAC) से कम होती है। अतः **(LAC) रेखा हमेशा (SAC) रेखाओं के नीचे रहती है**, क्योंकि किसी भी दी हुई उत्पादन की मात्रा की दीर्घकालीन औसत लागत अल्पकालीन औसत लागत से अधिक नहीं हो सकती है।
2. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) का निम्नतम बिन्दु उत्पादन की न्यूनतम लागत और **फर्म के अनुकूलतम आकार** (Optimum size of firm) को प्रकट करता है।
3. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) अंग्रेजी वर्णमाला के **अक्षर U आकार का या तश्तरी की तरह (Dish like) होता है।** LAC वक्र का फैलाव SAC वक्र की तुलना में अधिक होने के कारण यह **अपेक्षाकृत अधिक चपटा** (More flatter) होता है। समयावधि जितनी अधिक होगी, LAC वक्र का आकार भी उतना ही अधिक चपटा होगा। LAC वक्र के अधिक चपटे होने का अर्थ यह है की दीर्घकाल में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होने पर औसत लागत में परिवर्तन की दर अल्पकाल की तुलना में कम होती है| इसे रेखाचित्र-13.3 द्वारा दिखाया गया है।
4. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) विभिन्न अल्पकालीन औसत लागत वक्रों (SAC_s) से मिलकर बनता है, क्योंकि दीर्घकाल विभिन्न अल्पकालों का योग होता है|
5. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) अल्पकालीन औसत लागत वक्रों (SACs) की **स्पर्श रेखा** (Tangent line) होती है। LAC वक्र किसी भी SAC वक्र को नहीं काटता है। यदि LAC वक्र किसी SAC वक्र को काटता है, तो इसका यह आशय है कि किसी उत्पादन की मात्रा की दीर्घकालीन औसत लागत उसकी अल्पकालीन औसत लागत से अधिक हो सकती है, जो सही नहीं है।
6. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) फर्म के लिए विभिन्न उत्पादन मात्राओं की न्यूनतम औसत लागत व अनुकूलतम उत्पादन स्तर को बताता है।
7. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) फर्म के लिए **विभिन्न उत्पादन मात्राओं की न्यूनतम लागत संभावनाओं** को व्यक्त करता है।

8. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं का आवरण होता है। यह सभी अल्पकालीन औसत लागत रेखाओं को अपने आवरण में छिपा लेता है। इस कारण इसे **आवरण वक्र** (Envelope Curve) भी कहते हैं।

9. दीर्घकाल फर्म का नियोजन काल होता है। दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) वक्र फर्म की दीर्घकालीन उत्पादन एवं लागत की सर्वश्रेष्ठ संभावनाओं को बताता है, इसलिए इसे फर्म का **नियोजन वक्र** (planning curve) कहा जाता है।

10. (LAC) वक्र किसी एक वक्र को छोड़कर शेष अल्पकालीन औसत लागत (SACs) वक्रों को उनके न्यूनतम बिन्दुओं पर स्पर्श नहीं करता है।

11. दीर्घकालीन औसत वक्र (LAC) का आकार व स्वरूप उद्योग में क्रियाशील **पैमाने के प्रतिफल** (Returns to scale) नियमों की प्रकृति पर निर्भर करता है। बढ़ते पैमाने के प्रतिफल के कारण LAC गिरती हुई होती है और घटते पैमाने के प्रतिफल के कारण LAC बढ़ती हुई होती है।

स्व-मूल्यांकन – प्रथम

1. "दीर्घकालीन औसत लागत वक्र वह वक्र है जो सभी संभव उत्पादन के स्तरों के लिए न्यूनतम लागत को प्रकट करता है।" यह कथन किसका है ?

(अ) प्रो. हिक्स (ब) प्रो. मार्शल
(स) प्रो. जे.एन. बेन (द) प्रो. पीगू

2. दीर्घकालीन में उत्पादन के सभी साधन होते हैं :-

(अ) स्थिर (ब) परिवर्तनशील
(स) स्थिर एवं परिवर्तनशील (द) इनमें से कोई नहीं

3. यदि दीर्घकालीन कुल लागत 500 रु. हैं और कुल उत्पादन 50 इकाइयों का है तो दीर्घकालीन औसत लागत होगी ?

(अ) 10 रु. (ब) 100 रु.
(स) 50 रु. (द) 5 रु.

4. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को कहा जाता है : -

(अ) लिफाफा वक्र (ब) नियोजन वक्र
(स) आवरण वक्र (द) उपर्युक्त सभी

13.4 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र और दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र के मध्य सम्बन्ध (Relationship between Long-term Average Cost Curve and Long-Term Marginal Cost Curve)

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र और दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र के बीच वही सम्बन्ध होता है, जो अल्पकालीन औसत लागत वक्र और अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र के मध्य होता है, जिसका विस्तृत विवरण इकाई - 12 में दिया गया है। इसे **रेखाचित्र संख्या 13.3** से भी समझ सकते हैं।

रेखाचित्र संख्या - 13.3

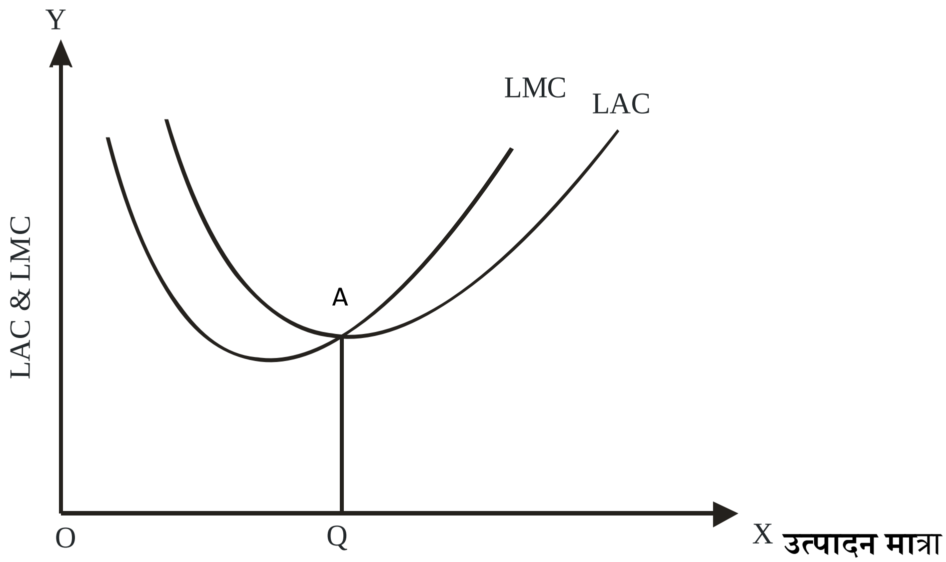

रेखाचित्रानुसार प्रारंभ में LAC तथा LMC दोनों गिरती हुई हैं, लेकिन LMC तेज गति से गिरने के कारण LAC के नीचे है। LMC सदैव LAC को उसके न्यूनतम बिन्दु (A) पर काटती है और तत्पश्चात् दोनों लागतें बढ़ती हुई होती हैं। LMC तेज गति से बढ़ने के कारण LAC के उपर रहती है। LAC तथा LMC का आकार पैमाने के प्रतिफलों (Returns to scale) की क्रियाशीलता पर निर्भर करता है|

13.5 दीर्घकालीन औसत लागत का उपयोग एवं महत्त्व (Uses and Importance of Long – Term Average Cost)

जैसा कि आप पूर्व में पढ़ चुके हैं कि दीर्घकालीन औसत लागत वक्र किसी भी फर्म के प्रत्येक सम्भावित उत्पादन की मात्रा के लिए संभावित न्यूनतम लागत का प्रतीक है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र फर्म का नियोजन वक्र (Planning curve) होता है, अतः यह **भावी नियोजन के लिए** प्रबंधकों के लिए विशेष उपयोगी होता है। दीर्घकालीन औसत लागत एवं दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का फर्म तथा इसके प्रबंधकों के लिए व्यावसायिक निर्णयों में उपयोग एवं महत्त्व इस प्रकार है :

1. **उत्पादन का अनुकूलतम आकार का निर्धारण (Determining the Optimum Size of Production)** : दीर्घकालीन औसत वक्र किसी भी फर्म / उत्पादक के उत्पादन के अनुकूलतम आकार के निर्धारण में आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान करता है। फर्म के उत्पादन का अनुकूलतम आकार दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर होता है, जहाँ उसकी दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) न्यूनतम होती है।

2. **संयंत्र निर्माण व विस्तार संबंधी निर्णय (Decision regarding construction and expansion of plant)** : दीर्घकालीन औसत वक्र के माध्यम से उत्पादन प्रबन्धक ये निर्णय लेता हैं कि नया संयंत्र लगाया जाये अथवा पुराने संयंत्र का विस्तार किया जाए? या फिर संयंत्र के आकार में परिवर्तन कर उसे बड़े आकार का अथवा छोटे आकार का किया जाए? इस संबंध में निम्नलिखित दशाएँ हो सकती हैं :

(अ) **अनुकूलतम स्तर से कम उत्पादन की दशा (Condition of less than optimum level of production) :** इस स्थिति में फर्म के लिए यह अधिक मितव्ययतापूर्ण होगा कि वह छोटे आकार के संयंत्र का अधिक उपयोग करने के स्थान पर बड़े संयंत्र का कम उपयोग करने को प्राथमिकता दे, क्योंकि अनुकूलतम आकार से कम उत्पादन करने पर उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है, परिणामस्वरूप प्रति इकाई उत्पादन लागत कम आती है। जबकि इसके विपरीत, अनुकूलतम आकार के बाद उत्पादन करने पर उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण प्रति इकाई लागत बढ़ने लगती है। अतः बड़े संयंत्र पर उत्पादन करने से प्राप्त होने वाली बचतें छोटे संयंत्र पर उत्पादन करने की तुलना में अधिक होती हैं और अनुकूलतम स्तर से कम उत्पादन करने पर दीर्घकालीन औसत लागत अपेक्षाकृत कम आती है।

(ब) **अनुकूलतम स्तर से अधिक उत्पादन की दशा (Condition of more than optimum level of production):** इस स्थिति में छोटे संयंत्र का अधिक उपयोग करना बड़े संयंत्र के कम उपयोग की तुलना में अधिक मितव्ययतापूर्ण एवं सस्ता होता है क्योंकि अनुकूलतम स्तर के बाद उत्पादन करने पर उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है, परिणामस्वरूप प्रति इकाई उत्पादन लागत बढ़ने लगती है। छोटे संयंत्र पर अपव्यय एवं अमितव्यताएँ बड़े आकार के संयंत्र की तुलना में कम होती हैं। अतः अनुकूलतम स्तर से अधिक उत्पादन के लिए छोटे आकार के संयंत्र का अधिक उपयोग मितव्ययतापूर्ण होता है|

13.6 आगम अवधारणा एवं इसके प्रकार (Concept of Revenue and its Types)

उत्पादक किसी वस्तु का उत्पादन विक्रय करने के लिए करता है। जब उत्पादक/विक्रेता किसी वस्तु का विक्रय करता है, तो उसे विक्रय से जो राशि प्राप्त होती है, अर्थशास्त्र में उसे आगम कहते हैं।

आगम निम्नांकित तीन प्रकार का होता है :

1. **कुल आगम (Total Revenue)** : एक उत्पादक /विक्रेता द्वारा विक्रय की जाने वाली वस्तु की इकाइयों की कुल संख्या को उसके प्रति इकाई मूल्य से गुणा करके कुल आगम प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी उत्पादक ने किसी वस्तु की 100 इकाइयों का विक्रय 10 रूपए प्रति इकाई से किया है, तो कुल आगम 100 x 10 = 1000 रूपए होगा। इस प्रकार उत्पादक को किसी वस्तु की समस्त इकाइयों की बिक्री से जो राशि प्राप्त होती है, उसे कुल आगम कहते हैं। इसे वस्तु विशेष को बेचने से प्राप्त **कुल बिक्री राशि** (Sales turnover) भी कहा जाता है।

   कुल आगम = विक्रय की गई इकाइयों की कुल संख्या x प्रति इकाई विक्रय मूल्य

   $$(TR) = (Q) \times (P)$$

2. **औसत आगम (Average Revenue) :** औसत आगम से आशय वस्तु की प्रति इकाई कीमत से है अर्थात् जब कुल आगम में वस्तु की बेची गई कुल इकाइयों की संख्या का भाग देने से जो भागफल आता है, उसे औसत आगम कहते हैं| उदाहरण के लिए, यदि कुल आगम 1000 रूपए है और कुल बिक्री की इकाइयों की संख्या 100 है, तो औसत आगम 10 रूपए होगा।

औसत आगम = कुल आगम ÷ वस्तु की बेची गई इकाइयों की कुल संख्या

Average Revenue = (Total Revenue) ÷ (Total No. of Units sold)

or

AR = TR ÷ Q

औसत आगम वस्तु की प्रति इकाई कीमत के बराबर होता है, इसलिए औसत आगम को वस्तु की कीमत भी कहा जाता है। परन्तु जब विक्रेता एक ही वस्तु को अलग-अलग कीमतों पर बेचता है, तब औसत आगम वस्तु की कीमत से अलग होता है।

3. **सीमान्त आगम (Marginal Revenue) :** किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से कुल आगम में जो परिवर्तन होता है, वही सीमान्त आगम कहलाता है। दूसरे शब्दों में, वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का विक्रय करने पर प्राप्त होने वाली राशि सीमान्त आगम कहलाती है। सीमान्त आगम कुल आगम में परिवर्तन की दर को बताता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई उत्पादन/विक्रेता किसी वस्तु की 100 इकाइयों का विक्रय 10 रूपए प्रति इकाई करता है, तो उसे कुल आगम 100 x 10 = 1000 रूपए प्राप्त होगा। अब यदि विक्रेता को 101 इकाइयों के विक्रय करने से 1010 रू. प्राप्त होते हैं, तो यहाँ सीमान्त आगम 10रू. होगा अर्थात् एक अतिरिक्त इकाई का विक्रय करने से कुल आगम में (1010 – 1000) = 10 रूपए का परिवर्तन हुआ है, यही सीमान्त आगम है।

सीमान्त आगम ज्ञात करने का सूत्र (Formula of Computing Marginal Revenue)

$$MR = \frac{\Delta TR}{\Delta Q}$$

यहाँ, MR सीमान्त आगम, ΔTR कुल आगम में परिवर्तन तथा ΔQ कुल बेची गई इकाइयों की संख्या में परिवर्तन का प्रतीक है।

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार, $MR = \frac{\Delta TR}{\Delta Q}$

$$= \frac{(1010-1000)}{(101-100)} = \frac{10}{1} = 10$$

अतः यहाँ सीमान्त आगम (MR) 10 है।

सीमान्त आगम ज्ञात करने का एक और **निम्नांकित सूत्र है** :

MR = (TRn) – (TRn-1)

यहाँ TRn, n इकाइयों का कुल आगम और TRn-1, n-1 इकाइयों का कुल आगम है। उपरोक्त उदाहरण के अनुसार:

MR = (TRn) – (TRn-1)

= (1010) – (1000) = 10 MR

13.7 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्ध (Relationship between Average Revenue and Marginal Revenue under Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में किसी वस्तु के अनेक क्रेता एवं विक्रेता होते हैं, इन्हें बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है। बाज़ार में वस्तु की कुल माँग व पूर्ति के द्वारा उसकी कीमत का निर्धारण होता है। उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत पर पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म वस्तु का समान कीमत पर मनचाही मात्रा में विक्रय कर सकती है अर्थात् फर्म **कीमत ग्रहण करने वाली होती है, न कि कीमत निर्धारण करने वाली** (Firm is a price taker, not a price maker)| चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत उद्योग में कार्यरत सभी फर्मों के लिए समान रहती है, इसलिए ऐसी स्थिति में विक्रेता द्वारा समान कीमत पर वस्तु की मनचाही मात्रा का विक्रय किया जा सकता है। इस परिस्थिति में, वस्तु का औसत आगम तथा सीमान्त आगम वस्तु की कीमत के बराबर होता है| (AR = MR = P) पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम रेखा एक क्षैतिज पड़ी रेखा होती है, क्योंकि फर्म बाजार में प्रचलित कीमत पर अपनी वस्तु की कितनी भी मात्रा बेच सकती है अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म एक दी हुई कीमत पर वस्तु की जितनी मात्रा बेचना चाहे वह कीमत में कमी किये बिना बेच सकती है। इसलिए उद्योग में कार्यरत विभिन्न फर्मों का वस्तु की माँग वक्र पूर्णतया लोचदार होता है अर्थात् यह क्षैतिजीय वक्र (Horizontal curve) होता है। **फर्म का माँग वक्र ही फर्म के लिए औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र भी होता है**। पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम रेखा भी एक क्षैतिज पड़ी रेखा होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम और सीमान्त आगम बराबर होते हैं क्योंकि कीमत में कमी किये बिना ही फर्म अपनी वस्तु की मनचाही मात्रा बेच सकती है| पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कार्यरत फर्म की वस्तु की **माँग की लोच पूर्णतया लोचदार** (Perfectly elastic) होती है| **सीमान्त आगम एवं औसत आगम रेखा OX अक्ष के समानान्तर (क्षैतिज) पड़ी रेखा होती है।** इसे निम्नांकित तालिका संख्या 13.2 तथा रेखाचित्र संख्या 13.4 द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

तालिका संख्या – 13.2

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कुल, औसत और सीमान्त आगम

उत्पादन की मात्रा (Q)	कीमत औसत आगम (AR = P)	कुल आगम (TR)	सीमान्त आगम (MR)
1	10	10	10
2	10	20	10
3	10	30	10
4	10	40	10
5	10	50	10

उपरोक्त दी गई तालिका से स्पष्ट है कि उत्पादन की एक इकाई की बिक्री करने पर औसत आगम 10 रूपए तथा सीमान्त आगम भी 10 रूपए है। यदि उत्पादन में वृद्धि की जाती है, तब भी औसत एवं सीमान्त आगम दोनों एक दूसरे के बराबर

हैं। फर्म चाहे कितनी भी मात्रा में वस्तु का उत्पादन / विक्रय करे, तो भी सीमान्त आगम एवं औसत आगम समान एवं बराबर ही रहेगा।

रेखाचित्र संख्या – 13.4

(अ) उद्योग **(ब) फर्म**

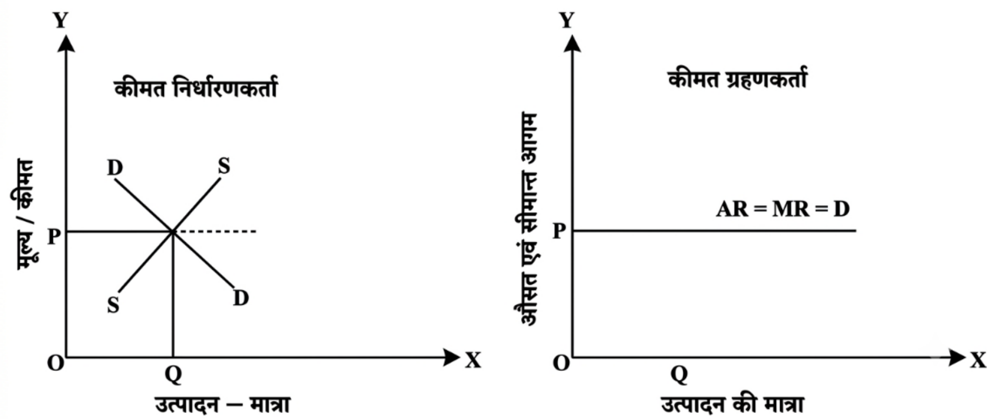

उपरोक्त रेखाचित्र संख्या 13.4 (अ) में वस्तु की कीमत का निर्धारण उद्योग में वस्तु की कुल माँग एवं उसकी कुल पूर्ति के द्वारा होता है। उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत पर पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म वस्तु का विक्रय करती है। रेखाचित्र में OX - अक्ष पर उत्पादन की मात्रा एवं OY - अक्ष पर वस्तु की कीमत को दर्शाया गया है। औसत आगम एवं सीमान्त आगम रेखा क्षैतिज पड़ी हुई रेखा है, जो OX - अक्ष के समानान्तर हैं। DD माँग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र है। इन दोनों वक्रों का संतुलन E बिन्दु पर होता है, जहाँ कीमत OP निर्धारित होती है। उद्योग द्वारा निर्धारित इस कीमत (OP) पर फर्म वस्तु का इच्छित मात्रा में विक्रय कर सकती है। रेखाचित्र 13.4(ब) भाग में औसत आगम एवं सीमान्त आगम - OX अक्ष के समानान्तर प्रदर्शित किये गये हैं, जो फर्म की कीमत है और यह उसे उद्योग से प्राप्त हुई है।

गतिविधि संख्या – 2 (Activity No. - 2) : पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मानते हुए निम्नलिखित तालिका में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए और अपने ज्ञान वृद्धि हेतु इसका विश्लेषण कीजिए।

तालिका संख्या -13.3

वस्तु की इकाइयाँ (Q)	कुल आगम (TR)	सीमान्त आगम (MR)	औसत आगम (AR)
1	5	5	5
2	……	……	……
3	……	……	……
4	……	……	……
5	25	……	……
6	……	……	……
7	35	……	……

13.8 एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्ध (Relationship Between Avergage Revenue and Marginal Revenue Under Monopoly and Imperfect Competition)

एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम एवं सीमान्त आगम **दोनों की प्रकृति घटती हुई होती है। औसत आगम की तुलना में सीमान्त आगम अधिक तेजी से गिरता है** क्योंकि एकाधिकारी और अपूर्ण प्रतिस्पर्धा के अन्तर्गत काम करने वाली फर्म वस्तु का मूल्य कम करके ही अपनी बिक्री को बढ़ा सकती है। इससे सीमान्त आगम भी कम हो जाता है तथा सीमान्त आगम औसत आगम की तुलना में तेज गति से गिरता है क्योंकि जब फर्म अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए कीमत में कमी करती है, तो यह कमी केवल अतिरिक्त इकाई पर ही नहीं, बल्कि पिछली सभी इकाइयों के लिए भी होती है। तालिका संख्या- 13.4 में दिए गये उदाहरण के द्वारा इसे समझा जा सकता है :

तालिका संख्या – 13.4

एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कुल, औसत एवं सीमान्त आगम

उत्पादन कीइकाइयाँ(Q)	**कीमत (P)/औसत आगम (AR)**	**कुल आगम (TR)**	**सीमान्त आगम (MR)**
1	10	10	10
2	8	16	6
3	7	21	5
4	6	24	3
5	5	25	1
6	4	24	-1

उपरोक्त तालिका का विश्लेषण करने पर यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि कुल आगम घटती हुई दर से बढ़ता हुआ है क्योंकि विक्रेता वस्तु की अतिरिक्त इकाइयाँ कीमत में कमी करके ही बेच सकता है। इसके परिणामस्वरूप औसत आगम (AR) तथा सीमान्त आगम (MR) दोनों ही न केवल गिरते हुए होते हैं, वरन् सीमान्त आगम के औसत आगम की तुलना में तेजी से गिरने के कारण सीमान्त आगम (MR) औसत आगम (AR) से सदैव कम रहता है। इस बात को रेखाचित्र संख्या - 13.5 द्वारा दर्शाया गया है।

चित्रानुसार एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता दोनों के अन्तर्गत AR तथा MR दोनों गिरते हुए हैं, और MR सदैव AR के नीचे रहता है। माँग की लोच में अन्तर के कारण दोनों बाजार दशाओं में AR रेखा का ढ़ाल अलग-अलग होता है। **एकाधिकार के अन्तर्गत माँग की लोच अपेक्षाकृत कम होने के कारण AR वक्र अपूर्ण प्रतियोगिता के AR वक्र से अधिक ढ़ालू है।**

रेखाचित्र संख्या 13.5

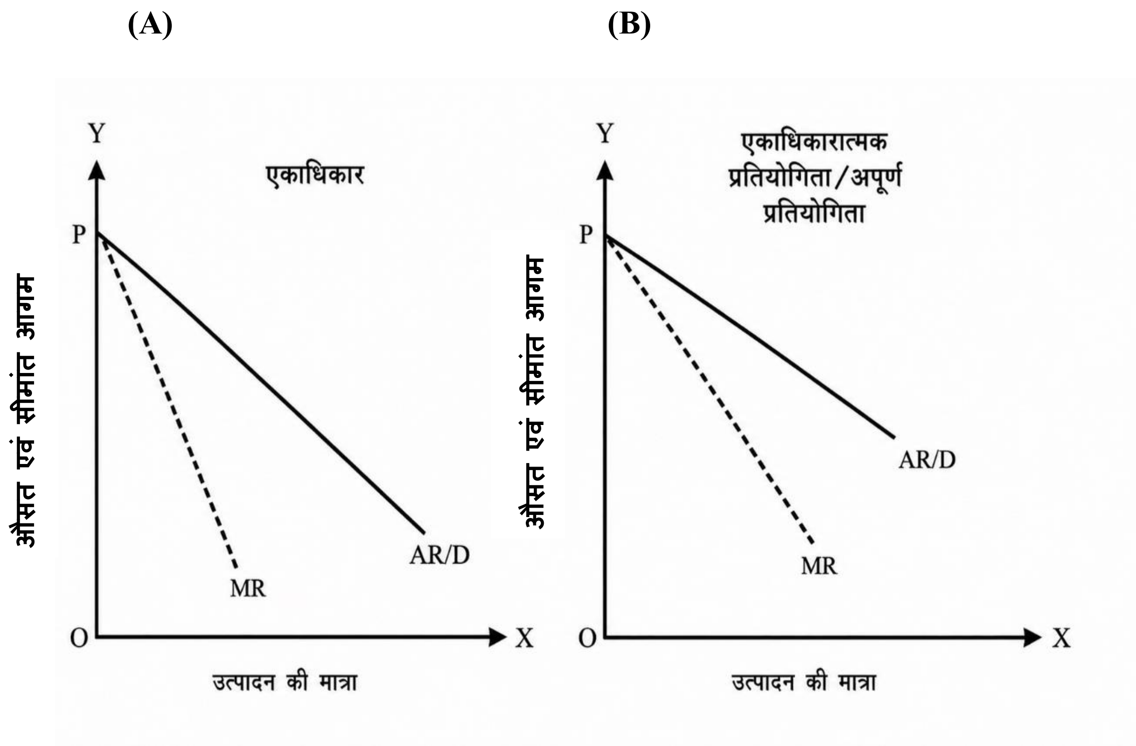

श्रीमती रोबिन्सन ने AR तथा MR वक्रों की अनेक विशेष संभावनाओं का उल्लेख किया है जिनमें से एक **त्वरायुक्त आगम वक्र** (Kinked revenue curve) है। यह अल्पाधिकार में पाया जाता है|

स्व-मूल्यांकन – द्वितीय

1. उत्पादक को किसी वस्तु की समस्त इकाइयों की बिक्री से जो राशि प्राप्त होती है , उसे क्या कहते है ?

(अ) सीमांत लागत (ब) अवसर लागत

(स) कुल आगम (द) औसत लागत

2. किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से कुल आगम में जो परिवर्तन होता है, कहलाता है।

(अ) सीमांत आगम (ब) अवसर लागत

(स) औसत आगम (द) कुल आगम

3. पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कार्यरत फर्म की वस्तु की मांग की लोच होती है : -

(अ) बेलोचदार (ब) लोचदार

(स) पूर्णतया लोचदार (द) पूर्णतया बेलोचदार

2. त्वारायुक्त आगम वक्र (Kinked Revenue Curve) पाया जाता है : -

(अ) पूर्ण प्रतियोगिता में (ब) एकाधिकार में

(स) अल्पाधिकार में (द) अपूर्ण प्रतियोगिता में

13.9 सारांश (Summary)

दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, इसलिए दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तनशील लागतें होती हैं। दीर्घकालीन औसत लागत को, फर्म की कुल लागत में उसके द्वारा उत्पादित की गयी कुल इकाइयों की संख्या का भाग देकर ज्ञात किया जाता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC-Curve) अंग्रेजी के अक्षर U आकार का होता है। यह विभिन्न अल्पकालीन औसत लागत वक्रों (SAC_s) से मिलकर बना होता है, जो विभिन्न उत्पादन-स्तरों (पैमाने) पर फर्म की न्यूनतम औसत लागत को प्रदर्शित करता है। इसे फर्म का नियोजन वक्र भी कहते हैं। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र विभिन्न उत्पादन मात्राओं की न्यूनतम औसत लागत को प्रदर्शित करता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर फर्म का आकार अनुकूलतम होता है और औसत उत्पादन लागत भी न्यूनतम होती है| फर्म औसत लागत वक्र के आधार पर अपने अनुकूलतम आकार का निर्धारण तथा संयंत्र निर्माण और विस्तार सम्बन्धी निर्णय करती है। वस्तु को बेचने से फर्म को जो राशि प्राप्त होती है, उसे आगम कहते हैं । यह तीन प्रकार का (कुल आगम, औसत आगम और सीमान्त आगम) होता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत और सीमान्त आगम समान होते हैं, किन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार के अन्तर्गत ये दोनों न केवल अलग-अलग होते हैं, वरन् गिरते हुए भी होते हैं। सीमान्त आगम औसत आगम से अधिक तेजी से गिरता है, इसलिए यह औसत आगम से कम रहता है। औसत आगम वस्तु की प्रति इकाई कीमत होती है, जिसे कुल आगम में बेचीं गई कुल इकाइयों कि संख्या का भाग देकर ज्ञात किया जाता है| सीमांत आगम वस्तु की अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम होता है| कुल आगम सीमांत आगम का जोड़ होता है|

13.10 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह समझने में सक्षम हो गए होंगे कि:

1. दीर्घकालीन लागतें क्या होती है? और ये कितने प्रकार की होती है?
2. दीर्घकालीन औसत लागत और दीर्घकालीन सीमांत लागत के मध्य क्या सम्बन्ध होता है और ये क्यों होता है?
3. दीर्घकालीन औसत लागत का व्यावसायिक निर्णयन में क्या उपयोग होता है ?
4. आगम क्या है? और यह कितने प्रकार का होता है?
5. बाज़ार की विभिन्न दशाओं के अंतर्गत औसत लागत और सीमांत आगम के मध्य क्या सम्बन्ध होता है और ये क्यों होता है?
6. दीर्घकालीन लागतों और आगम विश्लेषण का घ्यान आपको विभिन्न बाज़ार दशाओं के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण को समझने में सहायक होगा।

13.11 शब्दावली (Glossary)

- **परिवर्तनशील लागतें (Variable Costs) :** परिवर्तनशील लागतें वे लागतें होती हैं, जो उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन होने पर परिवर्तित होती रहती हैं।

- **औसत लागत (Average Cost) :** उत्पादन की प्रति इकाई लागत को औसत लागत कहते हैं। कुल लागत में उत्पादन की मात्रा का भाग देकर इसे प्राप्त किया जाता है।
- **सीमान्त लागत (Marginal Cost) :** किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने पर कुल लागत में जो परिवर्तन होता है, उसे सीमान्त लागत कहते हैं।
- **सीमान्त आगम (Marginal Revenue) :** किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का विक्रय करने पर कुल आगम में जो परिवर्तन होता है, उसे सीमान्त आगम कहते हैं।
- **औसत आगम (Average Revenue) :** औसत आगम वस्तु की प्रति इकाई कीमत को कहते हैं। यह कुल आगम में बेची गयी कुल इकाइयों की संख्या का भाग देकर ज्ञात किया जाता है।
- **कुल आगम (Total Revenue) :** एक उत्पादक/विक्रेता को किसी वस्तु की निश्चित इकाइयों की बिक्री से जो कुल राशि प्राप्त होती है, उसे कुल आगम कहते हैं।
- **दीर्घकाल (Long - Term) :** दीर्घकाल वह समय होता है जिसमें कोई भी उत्पादक अपने उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन कर सकता है।
- **पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition) :** पूर्ण प्रतियोगिता एक ऐसा बाजार है, जिसमें क्रेता एवं विक्रेता अधिक संख्या में होते हैं तथा जो समरूप वस्तु का विक्रय करते हैं। उन्हें बाजार का पूर्णज्ञान होता है तथा वस्तु की कीमत एक समान होती है।
- **एकाधिकार (Monopoly) :** एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें एक विशिष्ट वस्तु की पूर्ति पर किसी एक उत्पादक फर्म का पूर्ण नियंत्रण होता है अर्थात् सम्पूर्ण बाजार में एक ही उत्पादक/ विक्रेता होता है।
- **अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Competition) :** जब पूर्ण प्रतियोगिता की विभिन्न दशाओं में से किसी भी एक दशा का अभाव होता है, तब अपूर्ण प्रतियोगिता का जन्म होता है।
- **फर्म (Firm) :** वस्तु विशेष का उत्पादन करने वाली एक इकाई को फर्म कहते हैं।
- **उद्योग (Industry):** वस्तु विशेष का उत्पादन करने वाली सभी फर्मों के समूह को उद्योग कहते हैं|

13.12 स्व-परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघुरात्मक प्रश्न (Very - Short Answer Questions)

1. औसत आगम से आप क्या समझते हैं?
2. सीमान्त आगम क्या है?
3. कुल आगम से आपका क्या आशय है?
4. दीर्घकालीन औसत लागत से आपका क्या आशय है?
5. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का आकार कैसा होता है?
6. किस आगम वक्र को फर्म का माँग वक्र कहते हैं?
7. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम और सीमान्त आगम क्यों बराबर होते हैं?

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का अर्थ और उसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

3. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए और प्रबंधकों के लिए इसके उपयोग एवं महत्त्व की विवेचना कीजिए।
4. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्ध को उदाहरण एवं रेखाचित्र की सहायता से समझाइए।
5. अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्ध को उदाहरण एवं रेखाचित्र की सहायता से समझाइए।
6. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का अर्थ समझाइए। इसकी क्या विशेषताएँ होती हैं? दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के प्रबन्धकीय महत्त्व/प्रयोग की विवेचना कीजिए।
7. विभिन्न बाजार दशाओं के अन्तर्गत औसत आगम एवं सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्ध को उदाहरण एवं रेखाचित्रों की सहायता से समझाइए।

13.13 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची (References and Bibliography)

- Misra, S.K. & Puri, V.K.: Economics for Managers, Himalaya Publishing House, Bombay, 2006
- Mithani, D.M. : Managerial Economics, Himalaya Publishing House, Bombay, 2009
- Dwivedi, D.N. : Managerial Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., Delhi, 2005

13.14 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- सिन्हा, वी.सी.: व्यावसायिक अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा
- सिंह एवं त्यागी ' व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2009
- सिंह एवं अग्रवाल: आर्थिक विश्लेषण, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2009-10
- Agarwal, M.D. & Deo Som : Business Economics, Ramesh Book Depo, Jaipur, 2008

13.15 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Link)

- https://www.investopedia.com/terms/c/cost-benefitanalysis.asp
- https://gcekbpatna.ac.in/assets/documents/lecturenotes/MODULE_-3ec.pdf
- https://opentextbc.ca/principlesofeconomics/chapter/7-3-the-structure-of-costs-in-the-long-run/

इकाई -14

मूल्य निर्धारण का सामान्य सिद्धान्त
(General Theory of Value)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 मूल्य का उत्पादन लागत सिद्धान्त

14.3 मूल्य का उपयोगितावादी सिद्धान्त

14.4 मूल्य निर्धारण का सामान्य सिद्धान्त

14.4.1 माँग पक्ष

14.4.2 पूर्ति पक्ष

14.4.3 माँग एवं पूर्ति का साम्य अथवा साम्य मूल्य का निर्धारण

14.5 माँग और पूर्ति में परिवर्तन का साम्य मूल्य पर प्रभाव

14.5.1 माँग में परिवर्तन का साम्य मूल्य पर प्रभाव

14.5.2 पूर्ति में परिवर्तन का साम्य मूल्य पर प्रभाव

14.5.3 माँग और पूर्ति में संयुक्त परिवर्तनों का साम्य मूल्य पर प्रभाव

14.6 अधिगम परिणाम

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 स्व-परख प्रश्न

14.10 संदर्भ एवं ग्रंथ सूची

14.11 अन्य पठन सामग्री

14.12 वेब संसाधन/लिंक

14.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वस्तु के मूल्य निर्धारण के बारे में बता सकें;
- मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त का आधार बता सकें;
- मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त की पृष्ठभूमि (इतिहास एवं विकास) बता सकें;
- मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त के बारे में सुस्पष्ट हो सकें; तथा

- माँग और पूर्ति के परिवर्तनों का मूल्य पर पड़ने वाले प्रभाव से अवगत हो सकें।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक जीवन में वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य निर्धारण किये बिना उनका विनिमय संभव नहीं है और बिना विनिमय के वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन एवं उपभोग अत्यन्त कठिन है। वस्तु मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त के प्रतिपादन के पूर्व मूल्य का श्रम सिद्धान्त, उत्पादन लागत सिद्धान्त तथा उपयोगितावादी सिद्धान्त प्रचलित थे। इस इकाई में आप वस्तु मूल्य निर्धारण के उत्पादन लागत सिद्धान्त, उपयोगितावादी सिद्धान्त तथा सामान्य सिद्धान्त के बारे में अध्ययन करेंगे। अर्थशास्त्र का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अनुभव मूल्य निर्धारण के सिद्धान्त के ज्ञान के बिना अनुपयुक्त और अधूरा है। चूँकि मूल्य निर्धारण विनिमय से सम्बन्धित है और बिना विनिमय के वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन एवं उपभोग असंभव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त के विकास के पूर्व मुख्य रूप से मूल्य का उत्पादन लागत सिद्धान्त और मूल्य निर्धारण का उपयोगितावादी सिद्धान्त प्रचलित थे। मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त के पूर्व इन दोनों सिद्धान्तों के बारे में एक मोटी जानकारी कर लेना इसलिए आवश्यक है कि वास्तव में ये दोनों सिद्धान्त ही इसके आधार स्तम्भ हैं।

14.2 मूल्य का उत्पादन लागत सिद्धान्त (Cost of Production Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन **सीनियर, मिल, रिकार्डों आदि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों** ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार, **किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त सभी साधनों की लागत के द्वारा निर्धारित होता है।** दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन में लगे सभी साधनों पर होने वाले व्यय के बराबर होता है। उदाहरण के लिए , एक वस्तु के उत्पादन में लगे सभी साधनों पर उत्पादक का कुल व्यय 100 रू. के बराबर है, तो यही उस वस्तु की उत्पादन लागत और कीमत है। इस सिद्धान्त के अनुसार, वस्तु का बाजार मूल्य उसकी उत्पादन की लागत के इर्द-गिर्द ऊपर-नीचे घूमता रहता है तथा पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में ठीक उसकी उत्पादन लागत के बराबर होता है। वास्तव में, **यह सिद्धान्त वस्तु की उत्पादन लागत को उसके मूल्य का आधार मानता है और उसके पूर्ति पक्ष पर (Supply Side) प्रकाश डालता है।**

मूल्य निर्धारण के इस सिद्धान्त में **निम्नांकित कमियाँ हैं** जिनके कारण इसे मूल्य निर्धारण के उपयुक्त सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है :

1. इसके द्वारा संयुक्त उत्पादन वाली वस्तुओं की उत्पादन लागत और मूल्य ज्ञात नहीं किया जा सकता है, जैसे गेंहूँ एवं भूसा, कपास और बिनौला आदि।
2. इसके द्वारा उन वस्तुओं की उत्पादन लागत एवं मूल्य ज्ञात नहीं किया जा सकता जिनका दुबारा उत्पादन संभव नहीं है, जैसे प्राचीन सिक्के, चित्र, मूर्तियाँ, कलाकृतियाँ आदि।
3. यह सिद्धांत उन कारणों की व्याख्या नहीं करता है, जब वस्तु का मूल्य उसकी उत्पादन लागत में परिवर्तन हुए बिना ही परिवर्तित हो जाता है।

4. व्यवहार में अनेक वस्तुओं का मूल्य उनकी उत्पादन लागत की तुलना में कहीं अधिक होता है, जैसे हीरे जवाहरात, दुर्लभ कलाकृतियाँ आदि। यह सिद्धान्त इस बात पर भी प्रकाश नहीं डालता है कि ऐसा क्यों होता है?
5. यह सिद्धान्त वस्तु की उपयोगिता अर्थात् उसकी माँग पर ध्यान नहीं देता, जिसके कारण यह एक पक्षीय एवं अधूरा सिद्धान्त माना जाता है।

14.3 मूल्य का उपयोगितावादी सिद्धान्त (Utilitarian Theory of Value)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादन करने का श्रेय मुख्य रूप से **मैंजर** (Menger), **वालरस** (Walras) **तथा जेवन्स** (Jevons) **आदि उपयोगितावादी अर्थशास्त्रियों** को जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, **किसी वस्तु का मूल्य उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर करता है।** इस सिद्धान्त के समर्थक अर्थशास्त्रियों का मत था कि उपभोक्ता किसी वस्तु का मूल्य इसलिए चुकाता है क्योंकि उसमें तुष्टि गुण होता है अर्थात् उसमें किसी न किसी मानवीय आवश्यकता को संतुष्ट करने की शक्ति होती है, जिसे अर्थशास्त्र में उपयोगिता कहा जाता है। इसलिए यदि किसी वस्तु से उपभोक्ता को अधिक उपयोगिता मिलती है, तो वह अधिक तथा कम उपयोगिता मिलती है, तो कम मूल्य चुकाने को तैयार होगा, उसका वस्तु की उत्पादन लागत से कोई वास्ता नहीं होता है। वास्तव में देखा जाए, तो **मूल्य का उपयोगितावादी सिद्धान्त वस्तु की माँग पक्ष (Demand side) पर प्रकाश डालता है क्योंकि किसी वस्तु की माँग अन्ततः उसकी उपयोगिता पर निर्भर करती है।** इस सिद्धान्त में भी उत्पादन लागत सिद्धान्त की भाँति **अनेक कमियाँ** हैं, जो अग्रांकित हैं :

1. व्यवहार में उपयोगिता अनेक वस्तुओं का मूल्य निर्धारण नहीं करती, जैसे हवा, पानी। इनकी उपयोगिता बहुत अधिक होने के पश्चात् भी बाजार मूल्य शून्य अथवा नगण्य होता है। ठीक इसके विपरीत, हीरे-जवाहरात की उपयोगिता बहुत कम होने पर भी मूल्य काफी अधिक होता है।
2. यह सिद्धान्त वस्तु के मूल्य निर्धारण में उसकी उत्पादन लागत की पूर्णतया उपेक्षा करने के कारण एक पक्षीय एवं अधूरा है।
3. उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक और विषयगत विचार होने के कारण मापनीय नहीं है।
4. मूल्य स्वंय उपयोगिता से ही निर्धारित नहीं होता, बल्कि उसको अनेक अन्य तत्त्व भी प्रभावित करते हैं।

स्व मूल्यांकन – प्रथम

आप बाजार में एक पेन खरीदने के लिए कितनी कीमत दे सकते हैं और क्यों? समझने का प्रयास कीजिए।

14.4 मूल्य निर्धारण का सामान्य सिद्धान्त (General Theory of Value)

मूल्य निर्धारण के उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों के संक्षिप्त अध्ययन से यह बात स्पष्ट है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार मूल्य निर्धारण का आधार वस्तु की उत्पादन लागत है, इसलिए वे यह मानते रहे कि मूल्य केवल उसकी पूर्ति द्वारा ही निर्धारित होता है; जबकि उपयोगितावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार वस्तु का मूल्य निर्धारण का आधार उपयोगिता है। किन्तु दोनों ही सिद्धान्तों में एक पक्षीय होने का समान दोष था, इसलिए वे यह मानते रहे कि वस्तु का मूल्य केवल उसकी माँग अथवा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। इन दोनों सिद्धान्तों के समर्थक अर्थशास्त्रियों के बीच एक लम्बे समय तक

आपस में विवाद चलता रहा। इस विवाद को समाप्त करने का श्रेय प्रसिद्ध ब्रिटिश अर्थशास्त्री **अल्फेड मार्शल को जाता है, जिन्होनें उत्पादन लागत सिद्धान्त तथा उपयोगिता सिद्धान्त को मिलाकर मूल्य निर्धारण का माँग एवं पूर्ति सिद्धान्त** (Demand & Supply Theory of value) **का प्रतिपादन किया, जिसे मूल्य का सामान्य सिद्धान्त भी कहते हैं। मार्शल** का मत था कि वस्तु का मूल्य न तो केवल उसकी उपयोगिता (माँग) पर निर्भर करता है और न ही केवल उसकी उत्पादन लागत (पूर्ति) पर निर्भर करता है, वरन् उसका मूल्य संयुक्त रूप से उत्पादन लागत और उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है। मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु के मूल्य निर्धारण में माँग और पूर्ति की शक्तियों का समान महत्त्व होता है। **मार्शल** के ही शब्दों में "पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में किसी वस्तु का मूल्य न तो केवल वस्तु की उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है और न ही केवल उसकी सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है, बल्कि यह तो इन दोनों की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।"

मार्शल ने मूल्य निर्धारण की क्रिया को कैंची के दोनों फलकों (Blades) **से कागज काटने** की क्रिया से तुलना करते हुए लिखा है कि "हम यह विवाद कर सकते हैं कि यह कैंची का ऊपर का फलका है या नीचे का फलका जिसने कागज के टुकड़े को काटा है, बिल्कुल उसी प्रकार होगा जिस प्रकार इस बात पर विवाद करना कि मूल्य उपयोगिता द्वारा अथवा उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है। यह सच है कि जब एक फलके को स्थिर रखा जाता है और कागज काटने का काम दूसरे फलके से किया जाता है, तो हम लापरवाही से यह कह सकते हैं कि कागज काटने का काम दूसरे फलके ने किया है। किन्तु यह कथन पूरी तरह से सत्य नहीं है और तब तक दोषयुक्त है जब तक कि यह इस कार्य का केवल प्रचलित रूप से स्पष्टीकरण करने का दावा करता है, न कि वैज्ञानिक रूप से। मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में मार्शल का उपर्युक्त कथन एकदम सटीक एवं सही है कि जिस प्रकार कैंची के दोनों फलकों के सहयोग के बिना कागज को नहीं काटा जा सकता है, ठीक उसी प्रकार उत्पादन लागत (पूर्ति) और उपयोगिता (माँग) के बिना वस्तु का मूल्य निर्धारण नहीं किया जा सकता है। यह हो सकता है कि किसी एक समय में कैंची का एक फलका स्थिर हो, किन्तु इसका यह आशय नहीं है कि कागज के काटने में उसका कोई सहयोग नहीं है। **वास्तव में, स्थिर फलका आधार का काम करता है जिसके बिना दूसरे फलके का प्रयोग संभव नहीं है।** इसी प्रकार किसी समय विशेष में माँग एवं पूर्ति में से कोई एक पक्ष स्थिर रहे और दूसरा अधिक सक्रिय रहे, किन्तु इसका तात्पर्य कदापि यह नहीं है कि स्थिर पक्ष का मूल्य निर्धारण में कोई योगदान नहीं है। इसलिए मार्शल के अनुसार यह विवाद निरर्थक है कि मूल्य वस्तु की माँग द्वारा निर्धारित होता है या फिर पूर्ति द्वारा? माँग और पूर्ति में से कौन सी शक्ति अधिक सक्रिय एवं प्रभावी होगी, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि समय की दृष्टि से बाजार का स्वरूप कैसा है अर्थात् बाजार में माँग के अनुरूप पूर्ति में समायोजन करने में कितना समय लगता है? **समय की दृष्टि से बाजार जितना अधिक अल्पकालीन होता है, मूल्य निर्धारण में माँग का प्रभाव उतना ही अधिक होता है और समयावधि जितनी अधिक लम्बी होती है, मूल्य निर्धारण में पूर्ति का प्रभाव उतना ही अधिक होता है।**

मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होता है, जहाँ वस्तु की माँग और पूर्ति की शक्तियाँ ठीक एक दूसरे के समान (साम्य में) होती हैं। इस स्थिति में **वस्तु की माँग और पूर्ति की समानता द्वारा निर्धारित मूल्य को साम्य या संतुलन मूल्य** (Equilibrium price) **कहते हैं तथा**

इस मूल्य पर माँग एवं पूर्ति की मात्रा को साम्य या संतुलित मात्रा (Equilibrium amount or quantity) कहते हैं। मार्शल द्वारा प्रतिपादित मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त को समझने के लिए मूल्य निर्धारण के दोनों पक्षों (माँग एवं पूर्ति) को ठीक ढ़ग से समझना आवश्यक है।

14.4.1 माँग पक्ष (Demand Side) : माँग पक्ष के अन्तर्गत निम्नांकित बातों का अध्ययन किया जाता है:

अ) उपभोक्ता किसी वस्तु की माँग क्यों करता है या वह किसी वस्तु के लिय क्यों मूल्य देने तैयार हो जाता है ? तथा

(ब) उपभोक्ता किसी वस्तु का कितना अधिकतम संभव मूल्य दे सकता है?

प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है कि **उपभोक्ता किसी वस्तु की माँग उसमें निहित तुष्टि गुण (उपयोगिता)** के कारण करता है। दूसरे शब्दों में, वस्तु में मानवीय आवश्यकता को संतुष्ट करने का गुण होने के कारण उपभोक्ता उसकी माँग करता है। वस्तु में आवश्यकता को संतुष्ट करने की क्षमता (गुण) होने के कारण ही उपभोक्ता अपनी आवश्यकता को संतुष्ट करने के लिए वस्तु को प्राप्त करने के लिए कुछ-न-कुछ त्याग करने को तैयार हो जाता है, जिसे अर्थशास्त्रीय भाषा में मूल्य या कीमत कहते हैं।

द्वितीय प्रश्न का उत्तर यह है कि **उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिकतम कीमत उससे प्राप्त सीमान्त उपयोगिता के बराबर** (MU = P) दे सकता है। जिन वस्तुओं से उपभोक्ता को अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है, उनके लिए वह अधिक कीमत चुकाने को तैयार हो जाता है तथा इसके विपरीत, जिन वस्तुओं से उसे कम उपयोगिता प्राप्त होती है, उनके लिए वह कम कीमत चुकाने को तैयार होता है। इस प्रकार किसी वस्तु के लिए उपभोक्ता द्वारा चुकाये जा सकने वाले मूल्य की अधिकतम सीमा उसकी सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होती है। सरल शब्दों में किसी भी वस्तु का मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता से अधिक नहीं हो सकता है। इस **प्रकार माँग पक्ष किसी वस्तु के मूल्य की अधिकतम सीमा का निर्धारण उसकी सीमान्त उपयोगिता के आधार** पर करता है।

किसी वस्तु की माँग, **' माँग के नियम'** द्वारा निर्धारित होती है। माँग का नियम, अन्य बातों के समान रहने पर, हमें यह बताता है कि **किसी वस्तु के मूल्य और उसकी माँगी जाने वाली मात्रा के बीच ऋणात्मक (विपरीत) सम्बन्ध होता है** अर्थात् ऊँचे मूल्य पर वस्तु की कम माँग तथा नीचे मूल्य पर अधिक माँग होती है। जिस मूल्य पर उपभोक्ता वस्तु की एक निश्चित मात्रा खरीदने को तैयार हो जाता है, उसे **माँग मूल्य** (Demand Price) कहते हैं।

एक उपभोक्ता द्वारा वस्तु के विभिन्न मूल्यों पर जो भिन्न-भिन्न मात्राएँ क्रय की जाती हैं, उन्हें एक सूची के रूप में व्यक्त करने पर एक उपभोक्ता की **व्यक्तिगत माँग तालिका** प्राप्त हो जाती है। बाद में हम एक बाजार में समस्त उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत माँग तालिकाओं को जोड़कर बाजार **माँग तालिका** ज्ञात कर लेते हैं, जो हमें यह बताती है कि किसी वस्तु की बाजार विशेष में विभिन्न मूल्यों पर कितनी-कितनी माँग मात्राएँ माँगी जाती है। यदि हम बाजार माँग तालिका को एक रेखाचित्र के रूप में प्रदर्शित कर दें, तो हमें वस्तु विशेष की **बाजार माँग रेखा या वक्र** (Market Demand Curve) प्राप्त हो जाता है, जिसे **रेखाचित्र संख्या-14.1** द्वारा दिखाया गया है।

रेखाचित्र - 14.1

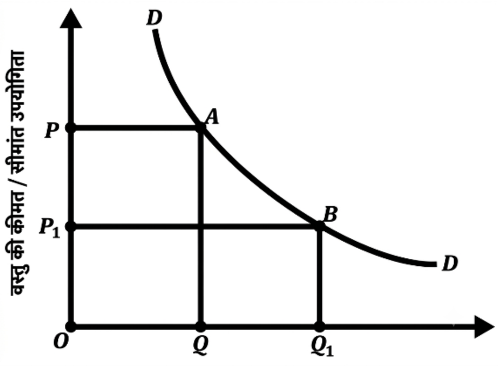

चित्र में DD बाजार माँग वक्र है। यह माँग वक्र निम्नांकित दो बातें स्पष्ट करता है :

(i) माँग वक्र का प्रत्येक बिन्दु एक निश्चित मूल्य पर वस्तु की क्रय की जाने वाली मात्रा को बताता है, जैसे DD माँग वक्र के A बिन्दु पर OP कीमत है, जिस पर OQ माँग मात्रा है, तथा

(ii) माँग वक्र का प्रत्येक बिन्दु वस्तु की एक निश्चित मात्रा से प्राप्त सीमांत उपयोगिता को बताता है, जैसे माँग वक्र के A बिन्दु पर OP कीमत पर OQ मात्रा माँगी जा रही है, जिस पर OP (QA) उपयोगिता प्राप्त हो रही है, जो वस्तु की कीमत के बराबर (MU = P) है| इससे यह स्पष्ट होता है कि वस्तु के मूल्य की अधिकतम सीमा का निर्धारण उसकी सीमान्त उपयोगिता द्वारा होता है। व्यवहार में हो सकता है कि उपभोक्ता वास्तव में वस्तु की सीमान्त उपयोगिता से कम मूल्य दे रहा हो।

14.4.2 पूर्ति पक्ष (Supply Side) : पूर्ति पक्ष के अन्तर्गत निम्नांकित दो बातों का अध्ययन किया जाता है :

(अ) किसी वस्तु की पूर्ति क्यों की जाती है अर्थात् वस्तु का मूल्य क्यों माँगा जाता है; तथा

(ब) वस्तु की पूर्ति के लिए उत्पादक द्वारा कम से कम कितना मूल्य लिया जाएगा ?

प्रथम प्रश्न का सीधा सा उत्तर यह है कि प्रकृति प्रदत्त नि:शुल्क वस्तुओं को छोड़कर शेष वस्तुओं के उत्पादन में कुछ-न-कुछ उत्पादन लागत अवश्य लगती है। इसलिए **उत्पादक अपनी उत्पादन लागत वसूल करने के लिए मूल्य माँगता है।** दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि **उत्पादक वस्तु का कम से कम मूल्य उसकी सीमान्त लागत (Marginal cost) के बराबर अवश्य लेगा।** पूर्ति पक्ष की ओर से वस्तु के मूल्य की न्यूनतम सीमा उसकी सीमान्त लागत द्वारा निर्धारित होती है। इसलिए एक उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए वस्तु का उत्पादन उस सीमा तक जारी रखेगा जब तक कि वस्तु का मूल्य उसकी उत्पादन लागत के बराबर न हो जाए। यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि दीर्घकाल में वस्तु का मूल्य न केवल उसकी सीमान्त लागत (MC) के बराबर होना चाहिए, बल्कि उसकी औसत लागत (AC) के बराबर भी होना चाहिए अन्यथा इसके अभाव में वह अपना उत्पादन बन्द कर देगा।

किसी वस्तु की पूर्ति, **'पूर्ति के नियम'** द्वारा निर्धारित होती है। अन्य बातों के समान रहने पर, पूर्ति का नियम हमें बताता है कि **किसी वस्तु के मूल्य और उसकी बेची जाने वाली मात्रा (पूर्ति-मात्रा) के बीच धनात्मक/प्रत्यक्ष सम्बन्ध**

होता है अर्थात् वस्तु के ऊँचे मूल्य पर अधिक पूर्ति-मात्रा और नीचे मूल्य पर कम पूर्ति-मात्रा होती है। जिस मूल्य पर एक उत्पादक (विक्रेता) किसी वस्तु की निश्चित मात्रा बेचने को तैयार होता है, उसे **'पूर्ति मूल्य'** (Supply price) कहते हैं। एक विक्रेता द्वारा वस्तु विशेष के विभिन्न मूल्यों पर जो भिन्न- भिन्न मात्राएँ बेची जाती हैं, उन्हें सूचीबद्ध करने पर हमें **'व्यक्तिगत पूर्ति अनुसूची'** प्राप्त हो जाती है। हम एक बाजार में वस्तु विशेष के विभिन्न विक्रेताओं की व्यक्तिगत पूर्ति अनुसूचियों को जोड़ कर **'बाजार पूर्ति अनुसूची'** (Market supply schedule) प्राप्त कर सकते हैं। यदि हम बाजार पूर्ति अनुसूची को एक रेखाचित्र के रूप में प्रदर्शित कर दें, तो हमें **बाजार पूर्ति रेखा/वक्र** (Market suppy curve) प्राप्त हो जायेगा। **रेखाचित्र संख्या-14.2** में SS बाजार पूर्ति वक्र है जो निम्नांकित दो बातें स्पष्ट करता है :

(I) पूर्ति वक्र का प्रत्येक बिन्दु एक निश्चित मूल्य पर वस्तु की विक्रय की जा सकने वाली पूर्ति-मात्रा को बताता है, जैसे A बिन्दु पर OP कीमत पर OQ पूर्ति-मात्रा है; तथा

(ii) पूर्ति वक्र का प्रत्येक बिन्दु वस्तु की एक निश्चित मात्रा की सीमान्त लागत बताता है, जैसे A बिन्दु पर उत्पादन की सीमान्त लागत OP अथवा QA है, जो वस्तु की कीमत के बराबर है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वस्तु के न्यूनतम मूल्य की सीमा उसके उत्पादन की सीमान्त लागत द्वारा निर्धारित होती है।

रेखाचित्र – 14.2

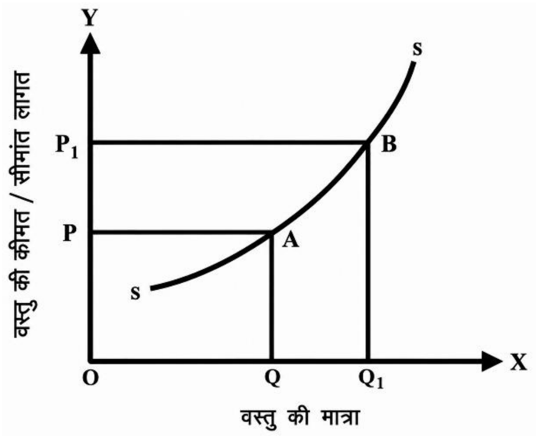

14.4.3 माँग एवं पूर्ति का साम्य अथवा साम्य मूल्य का निर्धारण (Equilibrium of Demand and Supply or Determination of Equilibrium Price) :

आपको अब तक माँग पक्ष और पूर्ति पक्ष के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गया है कि वस्तु के मूल्य की अधिकतम सीमा **वस्तु की सीमान्त उपयोगिता होती है, जबकि विक्रेताओं की ओर से मूल्य की निम्नतम सीमा वस्तु की सीमान्त लागत** होती है। इसलिए वस्तु का मूल्य निश्चित रूप से इन दोनों उच्चतम और निम्नतम सीमाओं के बीच कहीं न कहीं निर्धारित होगा। अब प्रश्न यह उठता है कि वस्तु का मूल्य वास्तव में कहाँ निर्धारित होगा? इस प्रश्न का उत्तर माँग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों में अन्तर्निहित है।

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में वस्तु का मूल्य उसकी माँग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में गहन प्रतिस्पर्धा होती है जिसके कारण क्रेता न्यूनतम मूल्य देना चाहते हैं और

विक्रेता अधिकतम मूल्य लेना चाहते हैं। क्रेता किसी भी स्थिति में वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता से अधिक मूल्य नहीं देना चाहेगा क्योंकि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता उसके द्वारा चुकाये जाने वाले मूल्य की अधिकतम सीमा है। दूसरी तरफ, विक्रेता किसी भी स्थिति में वस्तु की सीमान्त लागत से कम मूल्य लेना नहीं चाहेगा क्योंकि वस्तु की सीमान्त लागत उसके द्वारा लिए जाने वाले मूल्य की न्यूनतम सीमा है। इस प्रकार क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच वस्तु के मूल्य की न्यूनतम और अधिकतम सीमा के भीतर निरन्तर सौदेबाजी एवं कीमत संघर्ष चलता रहता है और अन्त में वस्तु का मूल्य इन दोनों सीमाओं के बीच उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ माँग और पूर्ति की परस्पर विरोधी एवं सापेक्षिक शक्तियाँ ठीक एक दूसरे के सन्तुलन में होती हैं अर्थात् जहाँ वस्तु की बाजार में माँगी गयी मात्रा उसकी बेची गयी मात्रा के बराबर हो। **जिस बिन्दु पर वस्तु की माँग और पूर्ति की शक्तियाँ एक दूसरे के बराबर होती हैं, उसे साम्य (संतुलन) कहते हैं और इस बिन्दु पर निर्धारित मूल्य को साम्य मूल्य कहते हैं। मार्शल के ही शब्दों में, "वस्तु का मूल्य सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त लागत के बीच माँग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा उस स्थान पर निर्धारित होता है जहाँ वस्तु की पूर्ति उसकी माँग के बराबर होती है।"**

साम्य मूल्य (Equilibrium Price) : बोल्डिंग के अनुसार, "किसी वस्तु के विक्रेता किसी मूल्य पर वस्तु की जितनी मात्रा बेचना चाहते हों, यदि उसी कीमत पर क्रेता उस वस्तु की उतनी ही मात्रा क्रय करना चाहते हों, तो उसे वस्तु का साम्य मूल्य कहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि साम्य मूल्य पर बाजार में न तो वस्तु की अपूरित माँग शेष रहती है और न ही अतिरिक्त पूर्ति होती है।" मजेदार बात तो यह है कि वस्तु के क्रेता और विक्रेता केवल साम्य मूल्य पर ही पूर्णतया सन्तुष्ट होते हैं। यदि वस्तु का बाजार मूल्य साम्य मूल्य से अधिक या कम होता है, तो फिर क्रेता एवं विक्रेता सन्तुष्ट नहीं होंगे। उदाहरण के लिए, वस्तु का प्रचलित बाजार मूल्य साम्य मूल्य से कम है, तो ऐसी स्थिति में क्रेता वस्तु की पूर्ति की तुलना में अधिक मात्रा खरीदना चाहेंगे और विक्रेता माँग की तुलना में कम बेचना चाहेंगे, जिसका नतीजा यह होगा कि बाजार मूल्य तब तक बढ़ता रहेगा जब तक कि यह पुनः साम्य मूल्य के बराबर नहीं हो जाता है। इसके विपरीत, प्रचलित बाजार मूल्य के साम्य मूल्य से अधिक होने पर क्रेता वस्तु की माँग उसकी पूर्ति की तुलना में कम करेंगे और विक्रेता बाजार माँग की तुलना में अधिक पूर्ति करना चाहेंगे, फलस्वरूप वस्तु का बाजार मूल्य तब तक गिरता रहेगा जब तक कि यह साम्य मूल्य के बराबर नहीं हो जाता है। इस प्रकार बाजार में प्रचलित मूल्य अधिक समय तक साम्य मूल्य से अधिक या कम नहीं रह सकता। साम्य मूल्य से कम या अधिक मूल्य पर क्रेताओं और विक्रेताओं की वस्तु को खरीदने और बेचने की इच्छा की तीव्रता में अन्तर होता है, जिसके कारण ही बाजार मूल्य साम्य मूल्य के समान होने की प्रवृत्ति रखता है।

उदाहरण द्वारा साम्य मूल्य का स्पष्टीकरण (Explanation of Equilibrium Price Through Illustration) :

तालिका –14.1

X - वस्तु की माँग एवं पूर्ति के साम्य द्वारा मूल्य निर्धारण

वस्तु का मूल्य (रू. में) (Px)	वस्तु की माँग (इकाइयों में) (Dx)	वस्तु की पूर्ति (इकाइयों में) (Sx)		मूल्य पर दबाव की दिशा (Direction of Pressure on Price)	विशेष विवरण (Special Remarks)
1	500	100		↓	माँग अधिक एवं पूर्ति कम होने से मूल्य बढ़ रहा है। (Dx > Sx)
2	400	200		↓	
3 (साम्य मूल्य)	300 (साम्य मात्रा)	300			माँग एवं पूर्ति बराबर होने से मूल्य स्थिरता है। (Dx = Sx)
4	200	400		↑	माँग कम एवं पूर्ति अधिक होने से मूल्य कम हो रहा है (Dx<Sx)
5	100	500		↑	

उपर्युक्त तालिका का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट है कि **साम्य मूल्य 3 रू. प्रति इकाई है क्योंकि इस पर वस्तु की माँग और पूर्ति दोनों ठीक एक दूसरे के बराबर (300 इकाइयाँ) हैं।** यही वह मूल्य है जिस पर वस्तु के सभी क्रेता और विक्रेता सन्तुष्ट होते हैं। यही कारण है कि साम्य मूल्य में परिवर्तन की प्रवृत्ति नही होती है। यदि किसी कारणवश **बाजार मूल्य** (जो बाजार में किसी समय विशेष पर प्रचलन में होता है) साम्य मूल्य से कम हो जाता है, तो इस मूल्य पर वस्तु की माँग उसकी पूर्ति से अधिक हो जायेगी (जैसा कि 1 तथा 2रू. मूल्य पर है), जिसके फलस्वरूप कीमत बढ़ने लगेगी और यह तब तक बढ़ती रहेगी जब तक कि माँग घटकर और पूर्ति बढ़ कर एक दूसरे के बराबर नहीं हो जाती है। इसी प्रकार यदि वस्तु का बाजार मूल्य साम्य मूल्य से अधिक हो जाता है, तो इस मूल्य पर वस्तु की माँग उसकी पूर्ति से कम हो जायेगी (जैसा कि 5 तथा 4 रू, मूल्य पर हैं), जिसके फलस्वरूप कीमत घटने लगेगी और यह तब तक घटती रहेगी जब तक कि मॉग बढ़ कर और पूर्ति घटकर एक दूसरे के बराबर नहीं हो जाती है। यहाँ यह ध्यान रहे कि माँग और पूर्ति के परिवर्तन भी मूल्य को प्रभावित करते हैं, केवल मूल्य ही माँग और पूर्ति को प्रभावित नहीं करता है। यहाँ इस बात को भी स्मरण रखना आवश्यक है कि **साम्य मूल्य दीर्घकालीन मूल्य होता है, जबकि बाजार मूल्य अल्पकालीन मूल्य होता है।** बाजार मूल्य में परिवर्तन की प्रवृत्ति होती है, लेकिन साम्य मूल्य में परिवर्तन की प्रवृत्ति नहीं होती है। बाजार मूल्य साम्य मूल्य के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है क्योंकि साम्य मूल्य स्वतंत्र बाजार की शक्तियों के क्रियाशील होने के कारण इसे एक सीमा के बाद घटने-बढ़ने नहीं देता है।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण : रेखाचित्र 14.3 में DD वस्तु का माँग वक्र है, जो वस्तु के मूल्य और उसकी माँगी गयी मात्रा के बीच विपरीत सम्बन्ध होने के कारण बायें से दायें नीचे की तरफ गिरता हुआ है। SS वस्तु का पूर्ति वक्र है जो वस्तु के मूल्य और उसकी बेची जाने वाली मात्रा के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण बायें से दायें ऊपर की तरफ

उठता हुआ है। माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं, जो साम्य बिन्दु है। इस पर वस्तु की माँग और पूर्ति बराबर (OQ) हैं तथा साम्य कीमत OP है। इस प्रकार OP साम्य कीमत तथा OQ साम्य मात्रा है।

रेखाचित्र - 14.3

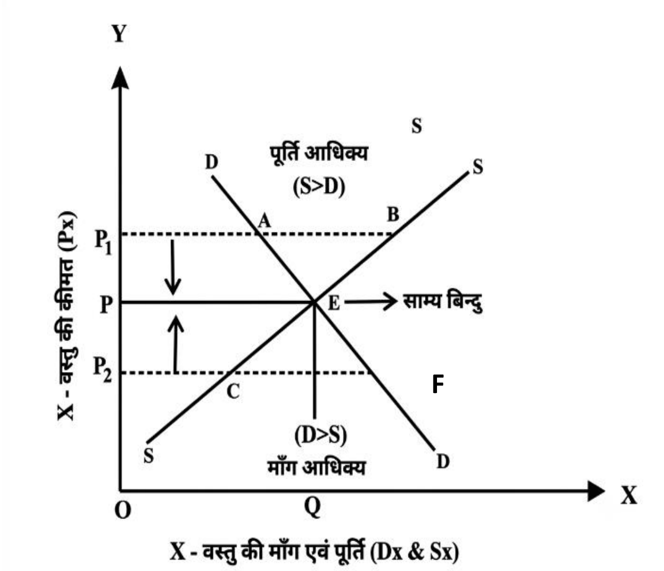

यदि हम यह मान लें कि वस्तु का मूल्य OP के स्थान पर OP1 है, तो इस पर वस्तु की माँग P1A तथा पूर्ति P1B होगी। इस प्रकार इस मूल्य पर AB के बराबर पूर्ति माँग से अधिक है। इस अतिरिक्त पूर्ति को बेचने के लिए विक्रेताओं में आपस में प्रतिस्पर्धा होगी, जिसके कारण मूल्य गिरने लगेगा और यह तब तक गिरता रहेगा जब तक कि यह OP नहीं हो जाता। अब हम यह मान लें कि वस्तु का मूल्य OP के स्थान पर OP2 है, तो इस पर वस्तु की माँग P2D तथा पूर्ति P2C है। इस मूल्य पर CF के बराबर माँग पूर्ति से अधिक है, जिसका आशय यह है कि सभी क्रेताओं को वस्तु की इच्छित मात्रा खरीदने को नहीं मिलेगी। इस अतिरिक्त माँग के कारण क्रेताओं में वस्तु को खरीदने की होड होगी, फलस्वरूप मूल्य बढ़ने लगेगा और यह तब तक बढ़ता रहेगा जब तक कि यह OP नहीं हो जाता।

इस प्रकार तालिका और रेखाचित्र का विश्लेषण हमें यह समझाता है कि कुछ समय के लिए बाजार में प्रचलित मूल्य साम्य मूल्य से कम या अधिक हो सकता है, किन्तु अन्ततः इसकी प्रवृत्ति साम्य मूल्य के समान होने की होती है। यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि साम्य मूल्य सदैव के लिए स्थिर नहीं होता है। इसमें दीर्घकालीन माँग और पूर्ति की शक्तियों में परिवर्तन होने पर परिवर्तन हो सकता है।

14.5 माँग और पूर्ति में परिवर्तन का साम्य मूल्य पर प्रभाव (Effects of Changes in Demand and Supply on Equilibrium Price)

चूँकि साम्य मूल्य का निर्धारण वस्तु की माँग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा होता है, इसलिए माँग तथा पूर्ति में से किसी में भी या फिर दोनों में एक साथ परिवर्तन होने पर साम्य मूल्य में परिवर्तन होना स्वाभाविक है, जिसका संक्षिप्त विवेचन निम्नानुसार है :

14.5.1 माँग में परिवर्तन का साम्य मूल्य पर प्रभाव (Effects of Changes in Demand on Equilibrium Price) : माँग में परिवर्तन या तो वृद्धि के रूप में अथवा कमी के रूप में हो सकता है। **पूर्ति की मात्रा स्थिर रहने पर, वस्तु की माँग में वृद्धि होने पर साम्य मूल्य बढ़ता है और माँग में कमी होने पर साम्य मूल्य घटता है।** दूसरे शब्दों में, वस्तु की माँग में होने वाले परिवर्तन और उसके मूल्य में होने वाले परिवर्तन समदिशाई होते हैं अर्थात् उनके बीच **धनात्मक सम्बन्ध** पाया जाता है, जो **रेखाचित्र 14.4** में दर्शाया गया है। चित्र में DD प्रारम्भिक माँग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र है। प्रारम्भिक साम्य E बिन्दु पर स्थापित होता है क्योंकि यहाँ पर वस्तु की माँग और पूर्ति दोनों एक दूसरे के बराबर (OQ) है और साम्य कीमत OP है। माँग में वृद्धि होने पर नई माँग रेखा D1D1 है और नया साम्य बिन्दु E1 है, जहाँ माँग और पूर्ति दोनों एक दूसरे के बराबर (OQ1) है और साम्य मूल्य OP1 है, जो OP से अधिक है। इसके विपरीत, माँग में कमी होने पर नया माँग वक्र D2D2 और नया साम्य बिन्दु E2 है क्योंकि यहाँ माँग और पूर्ति ठीक एक दूसरे के बराबर (OQ_2) है तथा नया साम्य मूल्य OP2 है, जो OP से कम है|

रेखाचित्र 14.4

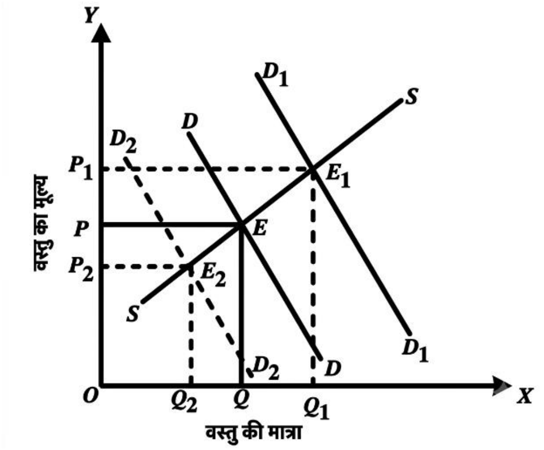

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात यह ध्यान रखनी है कि वस्तु की माँग में होने वाले परिवर्तनों का उसके मूल्य पर पड़ने वाला प्रभाव वस्तु की पूर्ति की लोच पर निर्भर करता है। वस्तु की पूर्ति कम लोचदार होने पर माँग में होने वाले परिवर्तनों का उसके मूल्य पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पड़ता है और इसके विपरीत वस्तु की पूर्ति अधिक लोचदार होने पर माँग में होने वाले परिवर्तनों का उसके मूल्य पर अपेक्षाकृत कम प्रभाव पड़ता है।

14.5.2 पूर्ति में परिवर्तन का साम्य मूल्य पर प्रभाव (Effects of Changes in Supply on Equilibrium Price) : माँग की मात्रा के स्थिर रहने पर, वस्तु की पूर्ति में वृद्धि होने पर उसका मूल्य घट जाता है और पूर्ति में कमी होने पर मूल्य बढ़ जाता है अर्थात् वस्तु की पूर्ति में होने वाले परिवर्तन और उसके मूल्य में होने वाले परिवर्तन के मध्य **विपरीत सम्बन्ध** पाया जाता है, जिसे रेखाचित्र 14.5 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र 14.5

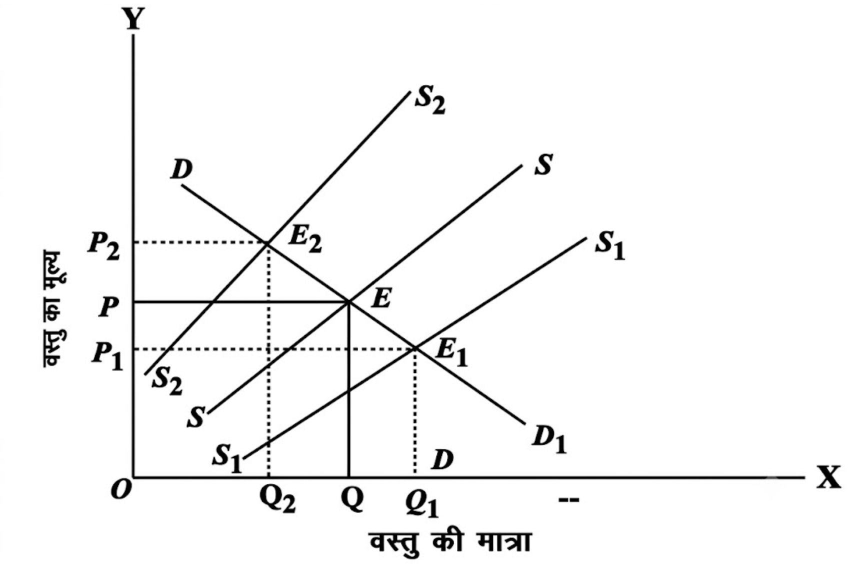

चित्र में DD प्रारम्भिक माँग रेखा है, जो SS प्रारम्भिक पूर्ति रेखा को E बिन्दु पर काटती है| इस बिन्दु पर साम्य मात्रा OQ है और प्रारम्भिक साम्य मूल्य OP है। पूर्ति में वृद्धि होने पर नई पूर्ति रेखा S1S1 और नया साम्य बिन्दु E1 है, जिस पर माँग और पूर्ति बराबर (OQ1) और नया साम्य मूल्य OP1 है, जो प्रारम्भिक साम्य मूल्य से कम है। पूर्ति में कमी को नई पूर्ति रेखा S2S2 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इस पर साम्य बिन्दु E2 और साम्य मात्रा OQ2 है। यहाँ नया साम्य मूल्य OP2 है, जो प्रारम्भिक साम्य मूल्य OP से अधिक है।

यहाँ समझने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वस्तु की पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों का उसके मूल्य पर पड़ने वाला प्रभाव वस्तु की माँग की लोच पर निर्भर करता है।

14.5.3 माँग और पूर्ति में संयुक्त परिवर्तनों का साम्य मूल्य पर प्रभाव (Effects of combined Changes in Demand and Supply on Equilibrium Price) :

वस्तु के मूल्य पर माँग और पूर्ति में एक साथ होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव माँग और पूर्ति के परिवर्तनों की तुलनात्मक/सापेक्षिक स्थिति पर निर्भर करता है। यदि वस्तु की माँग में परिवर्तन उसकी पूर्ति की तुलना में अधिक है, तो साम्य मूल्य पर माँग का प्रभाव अधिक होगा और इसके विपरीत, यदि पूर्ति में परिवर्तन माँग की अपेक्षा अधिक होता है, तो साम्य मूल्य पर पूर्ति का प्रभाव अधिक पड़ेगा।

रेखाचित्र 14.6 में DD तथा SS प्रारंभिक माँग और पूर्ति वक्र हैं, जो एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। इस पर साम्य मात्रा OQ तथा साम्य कीमत OP है। माँग और पूर्ति दोनों में एक साथ वृद्धि को नये माँग वक्र D1D1 तथा नये पूर्ति वक्र S1S1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है, जो एक दूसरे को E1 बिन्दु पर काटते हैं। इस नये साम्य बिन्दु पर साम्य मात्रा OQ1 तथा परिवर्तित साम्य कीमत OP1 है, जो प्रारंभिक कीमत से अधिक है। यहाँ नई कीमत अधिक होने का कारण यह है कि वस्तु की माँग में हुआ परिवर्तन पूर्ति में हुए परिवर्तन की तुलना में अधिक है। इसके विपरीत, यदि माँग में परिवर्तन की तुलना में पूर्ति में परिवर्तन अधिक होता है, तो फिर साम्य कीमत प्रारम्भिक साम्य कीमत से कम होगी। यदि माँग और पूर्ति दोनों में समानुपाती परिवर्तन होता है, तो वस्तु

का मूल्य अपरिवर्तित रहेगा। वस्तु की माँग और पूर्ति में परिवर्तन की अनेक स्थितियाँ हो सकती है, तदनुरूप वस्तु के मूल्य में परिवर्तन होगा।

रेखाचित्र 14.6

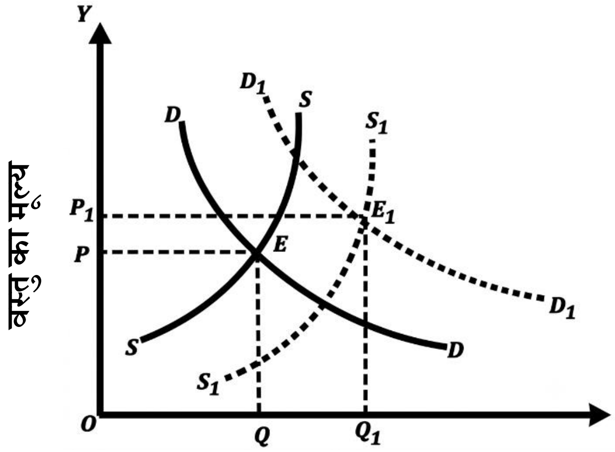

वस्तु की मात्रा

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

हम बाजार में देखते हैं कि अनेक वस्तुओं का मूल्य घटता-बढ़ता रहता है। समझने का प्रयास कीजिए कि ऐसा क्यों होता है?

14.6 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जानने में सक्षम हो गये होंगे कि:

- किसी वस्तु का मूल्य कैसे निर्धारित होता हैं?
- किसी वस्तु के मूल्य निर्धारण में मांग पक्ष (वस्तु की उपयोगिता) तथा पूर्ति पक्ष (उत्पादन लागत) की क्या भूमिका होती है?
- किसी वस्तु का मूल्य कहाँ निर्धारित होता है और उसमें कब और क्यों परिवर्तन होता है?
- मांग और पूर्ति में परिवर्तन का साम्य मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?
- साम्य मूल्य और बाज़ार मूल्य में क्या अंतर होता है और इसका समय से क्या सम्बन्ध होता है?

14.7 सारांश (Summary)

मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु के मूल्य का निर्धारण उसकी माँग और पूर्ति की संयुक्त और सापेक्षिक शक्तियों द्वारा उनके साम्य बिन्दु पर होता है। मार्शल द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त से पूर्व कुछ अर्थशास्त्रियों का यह मानना था कि मूल्य केवल वस्तु की उपयोगिता (माँग) द्वारा निर्धारित होता है, तो अन्य का यह मानना था कि यह केवल वस्तु की उत्पादन लागत (पूर्ति) द्वारा निर्धारित होता है।

14.8 शब्दावली (Glossary)

- **उत्पादन लागत (Cost of Production) :** किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा के उत्पादन पर मुद्रा में किया गया समस्त व्यय का योग उस वस्तु की उत्पादन लागत कहलाता है।
- **उपयोगिता (Utility) :** किसी वस्तु की मानवीय आवश्यकता को सन्तुष्ट करने की शक्ति को उपयोगिता कहते हैं। इसे वस्तु का तुष्टिगुण भी कहा जाता है।
- **मूल्य (Value) :** किसी वस्तु की विनिमय शक्ति (Exchange Value) को ही उसका मूल्य कहते हैं। दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु का मूल्य उसकी वह शक्ति है जो उसके बदले में दूसरी वस्तु के रुप में प्राप्त होता है। मूल्य को जब मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाता है, तो इसे कीमत (Price) कहते हैं।
- **साम्य मूल्य (Equilibrium Price) :** जिस मूल्य पर वस्तु की माँगी जाने वाली और बेची जाने वाली मात्रा बराबर होती है, उसे साम्य मूल्य कहते हैं। इसे संतुलन मूल्य अथवा सामान्य मूल्य के नाम से भी जाना जाता है। यह दीर्घकालीन मूल्य होता है।
- **माँग (Demand) :** किसी वस्तु की माँग वह मात्रा है जिसे क्रेता एक निश्चित कीमत पर समय विशेष में क्रय करने को तत्पर हैं। माँग सदैव वस्तु की निश्चित कीमत और निश्चित अवधि से सम्बन्धित होती है।
- **पूर्ति (Supply) :** किसी वस्तु की पूर्ति वह मात्रा है जो विक्रेता एक निश्चित कीमत पर एक निश्चित समयावधि में बेचने को तत्पर हैं। पूर्ति सदैव वस्तु की निश्चित कीमत और निश्चित अवधि से सम्बन्धित होती है।
- **साम्य बिन्दु (Equilibrium Point) :** जिस बिन्दु पर दो विपरीत शक्तियाँ (माँग एवं पूर्ति) ठीक एक दूसरे के बराबर होती हैं, उसे साम्य बिन्दु कहते हैं। इस बिन्दु पर जो मूल्य और मात्रा निर्धारित होती है, उन्हें क्रमश: साम्य मूल्य और साम्य मात्रा कहते हैं।
- **बाजार मूल्य (Market Price) :** जो मूल्य समय विशेष में बाजार में प्रचलित होता है, उसे बाजार मूल्य कहते हैं। यही वह मूल्य है जिस पर बाजार में क्रेता एवं विक्रेता अपने सौदे करते हैं। इसे **अल्पकालीन मूल्य** भी कहते हैं और इसमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इसकी मुख्य बात यह है कि यह साम्य मूल्य के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता रहता है।
- **बाजार (Market) :** यह वह सम्पूर्ण क्षेत्र होता है जिसमें किसी वस्तु के क्रेता और विक्रेता लेन-देन के लिए एक दूसरे के सम्पर्क में रहते हैं। अर्थशास्त्र में स्थान विशेष को ही बाजार नहीं कहा जाता है।
- **सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) :** किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई के उपभोग के कारण कुल उपयोगिता में होने वाले परिवर्तन को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं। यह वस्तु की अतिरिक्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता है।
- **सीमान्त लागत (Marginal Cost) :** यह वस्तु की अतिरिक्त इकाई के उत्पादन की लागत है। यह वस्तु की अतिरिक्त इकाई के कारण उसकी कुल उत्पादन लागत में होने वाले परिवर्तन का प्रतीक है

14.9 स्व-परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Very - Short Answer Questions)

1. सीमान्त लागत से आपका क्या आशय है?

2. सीमान्त उपयोगिता किसे कहते हैं?
3. उपयोगिता का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
4. साम्य मूल्य से आपका क्या आशय है?
5. मूल्य और कीमत में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
6. साम्य की अवधारणा से आप क्या समझते हैं?

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त का विवेधन कीजिए।
2. संतुलन मूल्य से आप क्या समझते हैं ? पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में यह कैसे निर्धारित होता है?
3. मूल्य निर्धारण के माँग एवं पूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
4. "पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में किसी वस्तु का मूल्य न तो वस्तु की उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है और न ही वस्तु की सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है, बल्कि यह तो इन दोनों की सापेक्षिक शक्तियों के द्वारा निर्धारित होता है।" समझाइए।
5. स्पष्ट कीजिए कि माँग और पूर्ति में परिवर्तन होने पर साम्य मूल्य किस प्रकार प्रभावित होता है?

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- Misra, S.K. & Puri, V.K. : Economics for Managers, Himalaya Publishing House, Bombay, 2006
- Mithani, D.M. : Managerial Economics, Himalaya Publishing House, Bombay, 2009
- Dwivedi, D.N. : Managerial Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. Delhi, 2005

14.11 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- सिंह, गोपाल एवं त्यागी, मंजुला: व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 2009
- सिंह एवं अग्रवाल : आर्थिक विश्लेषण, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2009-10
- Agrawal, M.D. & Deo Som : Buiness Economics, Ramesh Book Depo, Jaipur, 2008

14.12 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Links)

- https://www.britannica.com/topic/General-Theory-of-Value
- https://www.d.umn.edu/cla/faculty/jhamlin/4111/2111-home/value.htm

इकाई - 15

फर्म का सिद्धांत एवं उद्देश्य

(Theory of Firm and Objectives)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 फर्म का सिद्धान्त

15.3 फर्म के उद्देश्य

  15.3.1 लाभों का अधिकतमीकरण

    15.3.1.1 प्रवर्तन सिद्धांत

    15.3.1.2 जोखिम लेने का सिद्धांत

    15.3.1.3 एकाधिकार का सिद्धांत

    15.3.1.4 प्रबन्धकीय कुशलता सिद्धांत

  15.3.2 अधिकतम बिक्री का सिद्धांत

  15.3.3 अधिकतम विकास का सिद्धांत

  15.3.4 दीर्घकालीन जीवंतता का सिद्धांत

  15.3.5 प्रबन्धकीय उपयोगिता अधिकतमता का सिद्धांत

  15.3.6 संतुष्टि का सिद्धांत

  15.3.7 अन्य गैर-लाभकारी उद्देश्य

15.4 फर्म व्यवहार के आधारभूत सिद्धान्त

  15.4.1 अवसर लागत सिद्धांत

  15.4.2 बट्टा एवं सम्मिश्रण का सिद्धांत

  15.4.3 सीमांत एवं वृद्धिपरक सिद्धांत

  15.4.4 सम-सीमांतता का सिद्धांत

15.5 फर्म के अन्तर्गत निर्णयन प्रक्रिया

15.6 फर्म के उद्देश्यों की सीमाएँ

  15.6.1 साधनों की सीमाएँ

  15.6.2 नीतिगत सीमाएँ

15.7 सारांश

15.8 अधिगम परिणाम

15.9 शब्दावली

15.10 स्व-परख प्रश्न

15.11 संदर्भ व ग्रन्थ सूची

15.12 अन्य पठन सामग्री

15.13 वेब संसाधन/लिंक

15.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- फर्म के उद्देश्यों और उनकी सीमाओं को समझ सकेंगे;
- फर्म के विभिन्न आधारभूत सिद्धांतों के बारे में अपनी समझ विकसित कर सकेंगे; तथा
- फर्म की निर्णयन प्रक्रिया का ज्ञान अर्जित कर सकेंगे|

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

अर्थव्यवस्था में उत्पादन, विनिमय एवं उपभोग सम्बन्धी निर्णय के लिये **रेगनर फ्रिश** (Regnar Friseh) ने अर्थशास्त्र को दो मुख्य भागों में बांटा है- **व्यष्टि अर्थशास्त्र** (Micro economics) एवं **समष्टि अर्थशास्त्र** (Macro economics)। व्यष्टि अर्थशास्त्र में छोटे अथवा इकाई स्तर पर तथा समष्टि अर्थशास्त्र में बड़े अथवा समग्र स्तर पर निर्णय लिये जाते हैं। यद्यपि निर्णय लेने की समस्त प्रक्रियाओं में साधनों के आबंटन व प्रयोग ही मुख्य हैं जिनके द्वारा क्या उत्पादित किया जाये, कैसे उत्पादित किया जाये तथा क्या उपभोग किया जाये का निर्णय लिया जाता है। प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में ये सभी निर्णय एक व्यक्तिगत इकाई (फर्म अथवा व्यवसाय) के स्तर पर होते हैं। इसमे हम उत्पादन विनिमय, उपभोग, वितरण आदि बातों पर गहनता से विचार करते हैं। यह सुविदित है कि सीमित साधनो का आबंटन एवं प्रयोग करते हुए ही व्यावसायिक निर्णय लिये जाते हैं। प्रस्तुत इकाई में हम फर्म से सम्बन्धित सिद्धान्त, उसके उद्देश्यों, निर्णयन प्रक्रिया एवं उसकी सीमाओं पर विचार करेंगे।

15.2 फर्म का सिद्धांत (Theory of Firm)

फर्म एक ऐसा संगठन है जो उत्पादन के साधनों को विभिन्न संयोगों में रखकर उनसे एक निश्चित मात्रा में उत्पादन करती है, जिनका निरूपण विभिन्न सिद्धांतों पर आधारित होता है। हमारे पास उत्पादन के विभिन्न विकल्प हैं, इनके निर्माण में विभिन्न साधन हैं (इन साधनों के वैकल्पिक प्रयोग हैं) ये साधन हैं: श्रम (Labor) अथवा मानवीय साधन, पूँजी (Capital), भूमि (Land), तथा साहस (Entrepreneurship)। यह भी स्पष्ट होना चाहिये कि इन साधनों का प्रयोग एक निश्चित मात्रा व प्रक्रिया (Process) से ही संभव है, जिसके लिये फर्म को विभिन्न सिद्धांतों का सहारा लेना होता है। अतः **फर्म के सिद्धांत में तीन बातों का अत्यधिक महत्त्व होता है। ये हैं, फर्म, साधन एवं उत्पादन।** यद्यपि 'फर्म' शब्द में हम व्यावसायिक एवं गैर-व्यावसायिक इकाइयों को रखते हैं जिनके उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं, परन्तु यहाँ पर हम केवल व्यावसायिक इकाइयों का ही फर्म के रूप में अध्ययन करेंगे। उदाहरण के लिये, एक व्यावसायिक फर्म उत्पादन व कीमत का किस प्रकार निर्धारण करे कि उसके उद्देश्यों की प्राप्ति ठीक प्रकार से हो सके।

जैसा कि विदित है कि प्रत्येक व्यावसायिक इकाई (चाहे वह एकल फर्म हो या निगमित) सभी फर्म कहलाती हैं । मुक्त बाजार व्यवस्था में फर्म (उत्पादक) के संगठन व उपभोक्ताओं के मध्य परस्पर व्यवहार कीमत तंत्र (Price mechanism) के माध्यम से होता है, जिसमे किसी सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती है अर्थात् फर्म वह उत्पादित करती है,

जो उपभोक्ता चाहते हैं। प्रत्येक फर्म अपनी व्यावसायिक निर्णयन प्रक्रिया में कुछ सिद्धान्तों का पालन करती है। ये सभी सिद्धांत फर्म की निर्णयन प्रक्रिया को सरल व तार्किक बनाते हैं। इन सभी आधारभूत सिद्धांतों (Basic principals) का अध्ययन हम इसी इकाई के चतुर्थ भाग में करेंगे। लेकिन यहाँ उनका संदर्भ देना आवश्यक है ताकि आप उन मूलभूत सिद्धांतों के बारे में समझ सकें। ये सिद्धांत हैं उत्पादन के क्षेत्र में अवसर लागत का सिद्धांत, सीमांत उत्पादकता व लागत का सिद्धांत, परिवर्तनशील अनुपातों का नियम, पैमाने के प्रतिफल, सम-सीमांत उत्पादकता का सिद्धांत| विनिमय के क्षेत्र में कीमत निर्धारण का सिद्धांत, उपभोग के क्षेत्र में सीमांत उपयोगिता का सिद्धांत, उपभोक्ता संतुलन का सिद्धांत, माँग की लोच एवं पूर्वानुमान का सिद्धांत, वित्तीय निर्णयन क्षेत्र में कटौती व ब्याज वृद्धि (Discounting and compounding) का सिद्धांत, निवेश आंकलन का सिद्धांत, समय की अल्पकालीन व दीर्घकालीनता का सिद्धांत आदि-आदि। यही कारण है कि सम्पूर्ण प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में व्यष्टि अर्थशास्त्र में काम आने वाली सभी अवधारणाओं व सिद्धांतों का विश्लेषण निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहायता लेने के लिये करते हैं। फर्म का प्रत्येक सिद्धांत मूलतः इसी बात पर आधारित है कि निर्णय प्रक्रिया को किस प्रकार सर्वोत्तम बनाया जाये जिससे कि फर्म के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। इस प्रकार फर्म के सिद्धांत के अन्तर्गत वे **सभी आर्थिक नियम, सिद्धांत, तकनीक एवं उपकरणों (Tools) का अध्ययन ही फर्म का सिद्धांत है।** एक फर्म द्वारा यह निर्णय लेना कि क्या उत्पादन किया जाये, कितना उत्पादन किया जाये, किस प्रकार उत्पादन किया जाये, कितना व किसका उपभोग किया जाये, इन सबका व्यवस्थित अध्ययन करना ही मूलतः फर्म का सिद्धांत है।

15.3 फर्म के उद्देश्य (Objectives of Firm)

विभिन्न विद्वानों ने फर्म के उद्देश्य के लिये विभिन्न सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं। इनमें से कुछ प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन हम यहाँ करेंगे।

15.3.1 लाभों की अधिकतमीकरण (Maximization of Profit)

पारंपरिक रूप से फर्म का मुख्य उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना है। इससे पहले कि हम इस उद्देश्य पर विस्तार से चर्चा करें, यहाँ पर लाभ का अर्थ समझना अति-आवश्यक है। हम इकाई 12 अल्पकालीन लागत विश्लेषण में यह अध्ययन कर चुके है कि व्यापार में व अर्थशास्त्र में लाभ की संकल्पना में एक निश्चित अंतर है। इसे हम पूर्व में इकाई 12 में दिये गये लेखांकन लागत और आर्थिक लागत के उदाहरण से समझ सकते हैं। सामान्य रूप से हम लाभ की अवधारणा को लेखांकन अवधारणा से ही समझते हैं, जिसमें कुल प्राप्तियों एवं स्पष्ट लागतों (Explicit cost) के अंतर को लिया जाता है। जबकि आर्थिक लाभ तब मिलता है जब हम कुल प्राप्तियों में से स्पष्ट लागतों व आरोपित लागतों (Explicit and implicit cost) को घटाते हैं। मुक्त व्यापार प्रणाली में आर्थिक लाभ एक महत्त्वपूर्ण **निर्देशक शक्ति** (Guiding force) है। जब फर्म का जीवनकाल एक लम्बे समय के लिये होता है, उस परिस्थिति में अल्पकालीन लाभ पर निर्भर रहना अनुचित होगा। इसलिये अधिकतम लाभ के उद्देश्य में समय के अनुसार ही उसकी अधिकतमता पर ध्यान देना होगा अर्थात् लाभ की राशि की **समय मूल्यता** (Time value of profits) पर ध्यान देना होगा। इसलिये हमें लाभ के वित्तीय प्रवाहों को समय मूल्य की अवधारणों के रूप में देखना होगा। फर्म की लाभ कमाने की क्षमता को निम्नांकित विभिन्न सिद्धांतों से समझा जा सकता है :

15.3.1.1 नव - प्रवर्तन सिद्धांत (Innovation Theory)

फर्म व्यवसाय के दौरान नवीन उत्पाद, नवीन उत्पादन तकनीक, नवीन विपणन रणनीति, नवीन व्यावसायिक रणनीति, नवीन मूल्य श्रृंखला आदि के बारे में निरंतर नव प्रवर्तन करती रहती है। इन सभी नव प्रवर्तनों से फर्म को लाभ होते रहते हैं। अतः यह माना जाता है कि लाभ नव प्रवर्तन का प्रतिफल है। **प्रो. शुम्पीटर** ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है| उन्हीं के शब्दों में, "लाभ नव-प्रवर्तन का कारण और परिणाम दोनों हैं|" उनका यह भी अभिमत है कि नव-प्रवर्तन लाभ का सृजन और उनका अनुकरण लाभ का समापन करते हैं|

15.3.1.2 जोखिम लेने का सिद्धांत (Risk Bearing Theory)

जब फर्म एक बड़ी धनराशि का विनियोग अपनी व्यावसायिक क्रियाओं में करती है, तो उससे लाभ कमाने की अपेक्षा भी रखती है, किन्तु लाभ मिलना अनिश्चित होता है अर्थात लाभ मिल भी सकता है और हानि भी हो सकती है| अतः यह कहा जा सकता है कि लाभ जोखिम लिये जाने का प्रतिफल है।

15.3.1.3 एकाधिकार का सिद्धांत (Monopoly Theory)

कुछ फर्मों को अपनी नव प्रवर्तन शक्ति, बाजार शक्ति उत्पादन की विशिष्टता आदि का लाभ उस फर्म को एकाधिकारी बनाने के रूप में होता है। ऐसी परिस्थिति में उसके समक्ष प्रतिस्पर्धा की संभावना क्षीण हो जाती है और उसे इस एकाधिकारी स्थिति का प्रतिफल के रूप में अधिक लाभ मिलने लगता है।

15.3.1.4 प्रबन्धकीय कुशलता सिद्धांत (Managerial Efficiency Theory)

यह माना जाता है कि आर्थिक लाभ एक अच्छी प्रबन्धकीय कुशलता का परिणाम है। अधिक लाभ के लिये उच्च स्तर की प्रबन्धकीय कुशलता का होना आवश्यक है। यही कारण है कि जो फर्म सापेक्ष रूप से अधिक कुशल है, उनकी लागतें कम हैं और परिणामस्वरूप उनकी लाभदायकता भी अधिक है।

उपरोक्त चारों सिद्धांत विभिन्न वास्तविकताओं पर आधारित हैं, जो एक या अधिक परिस्थितियों में सत्य हो सकती हैं। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि फर्म किस प्रकार की वस्तु के उत्पादन के क्षेत्र में हैं, उसका उत्पादन का पैमाना क्या है, बाजार की बाह्य मितव्ययिताऐं व अन्य आंतरिक मितव्ययिताऐं उसको कितनी अधिक प्राप्त होती हैं? फर्म का मुख्य दर्शन **कार्यकुशलता अनुकूलीकरण** (Efficiency optimization) द्वारा लाभ को अधिकतम करना होता है|

15.3.2 अधिकतम बिक्री का सिद्धांत (Theory of Sales Maximization)

अधिकतम बिक्री करना और उससे विक्रय आगम (Sales revenue) में वृद्धि करना फर्म का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। **प्रसिद्ध अर्थशास्त्री बॉमल** (Boumol) का यह मत है कि प्रबन्धक इस बात से ज्यादा प्रेरित होते हैं कि वे अधिक से अधिक बिक्री बढ़ायें और उससे अधिक से अधिक विक्रय आगम (Revenue maximization) बढ़ाये न कि लाभ। यह इसलिये कि :

(a) प्रबन्धकों का वेतन आदि बिक्री व लाभ से निबद्ध होता है।

(b) अधिक विक्रय आगम अर्थात अधिक बिक्री से फर्म का विस्तार होता है और जब फर्म का विस्तार होता है, तो फर्म को व प्रबन्धन को अधिक अवसर प्राप्त होते हैं; तथा

(c) अधिक बिक्री फर्म को बड़े बाजार प्राप्त करने में सहायक होती है, तथा उसे अधिक व्यावसायिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

15.3.3 अधिकतम विकास का सिद्धांत (Growth Maximization Theory)

अर्थशास्त्री **एडिथ पेनरॉज व आर. मारिस** (Edith Penrose and R.Marris) ने फर्म को स्वामित्व व प्रबन्धकों के पृथक्कीकरण की भूमिका में देखा है। फर्म के स्वामी लाभ एवं बाजार से अधिक भाग की आकांक्षा रखते हैं तथा प्रबन्धक वर्ग अच्छे वेतन, कार्य सुरक्षा एवं विकास पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। परन्तु अधिकतम विकास के सिद्धांत की कुछ सीमाएँ हैं। प्रथम, उपलब्ध प्रबन्धकीय समूह एवं उनकी कुशलता, द्वितीय, वित्तीय सीमाएँ। इसके अन्तर्गत **मारिस ने फर्म के विकास मॉडल** (Growth model) की विवेचना दो मुख्य कारक सम्बन्धों पर की है, जो अग्रांकित हैं :

(i) आपूर्ति-विकास सम्बन्ध (Supply - Growth relationship)

g = f (p)

g = growth

f = प्रतिफलन (निर्भर करना)

p = profitability

(ii) माँग - विकास सम्बन्ध (Demand - growth relationship)

p = f (g)

15.3.4 दीर्घकालीन जीवंतता का सिद्धांत (Long Run Survival Theory)

के. डब्ल्यू. रोथ्सचाइल्ड (K.W. Rothschild) ने फर्म के एक अन्य उद्देश्य पर प्रकाश डाला है, और वह है, फर्म के दीर्घजीवी रहने का सिद्धांत। इस उद्देश्य में फर्म अपनी दीर्घ जीविता को अधिकतम संभावित करने के लिए कार्य करती है, ताकि फर्म अपने शेयरधारकों और प्रबन्धन के हितों को अधिक अच्छे रूप से साध सके और फर्म के स्वामी अपनी अगली पीढ़ी को भी ये सब हस्तांतरित कर सकें। इससे प्रबन्धक वर्ग भी खुश रहेगा क्योंकि उनके हित एक निरंतर अस्तित्व में बनी रहने वाली फर्म में अधिक सुरक्षित एवं प्रतिफलकारी होंगे। परन्तु यह उद्देश्य अन्य उद्देश्यों की तुलना में कठिनता से मापनीय है। **रोबर्टसन** के अनुसार,"फर्म को दीर्घकाल में जीवित रहने के लिए अल्पकाल में अपने अस्तित्व की रक्षा करनी चाहिए"|

15.3.5 प्रबन्धकीय उपयोगिता अधिकतमता का सिद्धांत (Managerial Utility Maximization Theory)

अर्थशास्त्री **ओ.ई.विलियम्सन** का यह मानना है कि निगमीय नियंत्रण (Corporate control) एवं सुशासन (Governance) मूलतः प्रबन्धकों के हाथ में है, जो हमेशा प्रबन्धकीय उपयोगिता को अधिकतम करने पर प्राप्त होते हैं।

इसका मुख्य लक्ष्य उनके व्यक्तिगत, व्यावसायिक एवं सामाजिक प्रतिष्ठा में वास्तविक रूप से संतोष प्राप्त करना है। **उनके मॉडल में :**

U = f (S, DI, M)

U = Managerial utility,

S = Expenditure on staff

DI = Discretionary investment

M = Managerial slack

15.3.6 संतुष्टि का सिद्धांत (Satisfying Principle)

हर्बर्ट साइमन (Herbert Simon), कोहेन तथा क्येर्ट ने एक और वैकल्पिक उद्देश्य की विवेचना की है। उनके अनुसार फर्म किसी भी उद्देश्य (लाभ, विक्रय की अधिकतमता आदि) पर इतना अधिक ध्यान नहीं देती है क्योंकि व्यवहार में कई प्रकार की अपूर्णताऐं (Imperfections) विद्यमान होती हैं, जैसे अलग-अलग हितधारकों के हितों की बेमेलताएँ (Incompatibility)। अतः फर्म लाभ व विक्रय के उद्देश्य पर ध्यान देने के बजाय वह अपने लिये अपनी उपलब्धियों के लिए उन न्यूनतम प्रमापों को निर्धारित करने में करेगी जिनकी वे **दीर्घकालीन व्यवहार्यता** (Long term viability) के लिये प्राप्त कर सकती है। यह तभी संभव है जब सभी हितधारकों, शेयरधारकों, प्रबन्ध, कर्मचारी, ग्राहक, आपूर्तिकर्ता एवं सरकार को संतुष्ट कर सके। साइमन कोहेन तथा क्येर्ट की मान्यता है कि फर्म किसी स्पष्ट उद्देश्य को अधिकतम करने का प्रयास नहीं करती है| इसके विपरीत, वह उपलब्धियों के न्यूनतम मानदंड निर्धारित करती है, जिसमें की उसे संतोषजनक लाभ का स्तर प्राप्त हो सके|

15.3.7 अन्य गैर-लाभकारी उद्देश्य (Other-Non- Profit Objectives)

अन्य गैर-लाभकारी उद्देश्यों में हम जिनको सम्मिलित करते हैं, वे हैं- **मात्रा की अधिकता, किस्म की श्रेष्ठता, प्रबन्धकीय उपयोगिता, साधनों की अधिकतम उत्पादकता एवं रोकड़ प्रवाह की अधिकता** आदि। इसके अतिरिक्त, हर्बर्ट साइमन का संतुष्टिकरण उद्देश्य रोथ्सचाइल्ड का दीर्घजीवी उद्देश्य इसी उद्देश्य के अंग माने जा सकते हैं। गैर-लाभकारी फर्म (Non-profit organizations) के लिये ये उद्देश्य अधिक महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक हैं जिनमें हम राजकीय उपक्रमों को रख सकते हैं। ये वे उपक्रम (अथवा फर्म) हैं जिनका कार्य आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करना, वितरण सम्बन्धी विषमताओं को दूर करना, सार्वजनिक उपयोगिता की वस्तुओं की आपूर्ति सुनिश्चित करना है। उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि फर्म का ऐसा कोई विशेष उद्देश्य (Unique objective) न होकर वह एक से अधिक उद्देश्य रख सकती है अथवा कोई फर्म किसी विशेष उद्देश्य से भी निर्मित हो सकती है। अस्पताल, स्कूल, नेशनल पार्क, राष्ट्रीय सुरक्षा, संकटकालीन उपायों के लिये बने संस्थान इसी श्रेणी में आते हैं। कल्याणकारी राज्य और मिश्रित अर्थव्यवस्था में लाभकारी एवं गैर-लाभकारी फर्मों का एक सहयोगात्मक व्यवहार होता है।

स्व मूल्यांकन – प्रथम

अभी तक आप यह समझ गये होंगे कि बाज़ार में काम करने वाली फर्मों को विभिन्न उद्देश्यों से प्रेरणा मिलती है। अत:
गतिविधि : यह समझाइये कि एक फर्म के कौन-कौनसे उद्देश्य हो सकते हैं?

15.4 फर्म व्यवहार के आधारभूत सिद्धांत (Basic Principles in Firm's Behaviour)

फर्म की किसी भी निर्णयन प्रक्रिया में हम कुछ आधारभूत सिद्धांतों का पालन करते हैं, जो प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का एक अति महत्त्वपूर्ण भाग है। इन सभी सिद्धांतों का पालन अथवा प्रयोग किये बिना फर्म के किसी भी उद्देश्य अथवा उद्देश्यों को प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। ये सभी सिद्धांत हम चाहे प्रत्यक्ष रूप से न देखते हों, परन्तु निर्णयन की प्रक्रिया में इनका अमूर्त योगदान रहता है। फर्म व्यवहार के कुछ सिद्धांत निम्नलिखित हैं :

15.4.1 अवसर लागत सिद्धांत (Opportunity Cost Principle)

जैसा कि हमने अल्पकालीन लागत विश्लेषण की इकाई 12 में देखा है कि अवसर लागत किसी विकल्प के त्याग की लागत है जिसके बदले में हमने कोई विकल्प चुना है। इसका अर्थ है कि किसी भी साधन का पारिश्रमिक उसकी अवसर लागत से अधिक नहीं होना चाहिये, क्योंकि अवसर लागत उस पारिश्रमिक का परित्याग है, जो उसको अगले सर्वश्रेष्ठ प्रयोग के लिये मिलता है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि इसमें **स्पष्ट और अस्पष्ट** (Explicit and implicit) लागतें दोनों ही सम्मिलित हैं। इस सिद्धांत का अधिक महत्त्व इसलिये है क्योंकि एक साधन के वैकल्पिक प्रयोग (Alternative uses) होते हैं। **साधनों की वैकल्पिक उपयोगिता ही अवसर लागत का आधार है।** कुछ पारम्परिक व्यवसाय इस प्रकार की लागत पर ध्यान नहीं देते हैं, परन्तु वर्तमान आर्थिक गणनाओं व विश्लेषण में इसका महत्त्व अत्यधिक है। उद्यमी द्वारा अपने स्वयं की मेहनत, अपनी पूँजी, अपने कार्य आदि की अवसर लागत की गणना आसानी से की जा सकती है। **हमारे व्यवसाय का कोई भी निर्णय अवसर लागत की पहचान के बिना संभव नहीं है।**

15.4.2 बट्टा एवं सम्मिश्रण का सिद्धांत (Discounting and Compounding Principle)

बट्टे व सम्मिश्रण की बात हम तब करते हैं, जब हम वित्तीय प्रवाहों (Cash flows) का मूल्यांकन एक समय के अन्तराल से करते हैं। उदाहरण के लिए, आज के 100 रूपये का मूल्य एक वर्ष के बाद मिलने वाले 100 रूपये के मूल्य से अधिक है क्योंकि एक वर्ष के अन्तराल में 100 रूपये की कीमत (मुद्रास्फीति आदि के कारण) कम ही जायेगी। इसको हम डिसकाउन्टिंग कहते हैं। अतः जब भी वित्तीय निर्णयों को हम समय की कसौटी पर रखते हैं, तो हम यह प्रयत्न करते हैं कि हमारी **वित्तीय प्राप्तियों का समय मूल्य** (Time value of money) **अधिकतम हो।** हम जब भी विनियोग करते हैं, तो उससे प्राप्त होने वाली आय का एक निश्चित दर से, जिसे हम कटौती दर (Discount rate) कहते हैं, उसकी कटौती (Discount) करते हैं। मान लीजिये हमें रूपये 5000 के निवेश पर 5 वर्ष तक प्रतिवर्ष रूपये 1000 प्राप्त होते हैं और हमारी Discount rate 10 प्रतिशत (r) है तो हमारी प्राप्ति होगी :

$$\frac{1000}{(1+r)}+\frac{1000}{(1+r)^2}+\frac{1000}{(1+r)^3}+\frac{1000}{(1+r)^4}+\frac{1000}{(1+r)^5}-5000$$

इसका मूल्य अंत में धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकता है। यदि हमें धनात्मक मूल्य मिलता है, तो हम ऐसा निवेश करना चाहेंगे और यदि ऋणात्मक मूल्य मिलता है, तो हम यह निवेश नहीं करेंगे। इसी प्रकार कम्पाउंडिंग में जिस दर से वृद्धि होती है, उसकी एक समय के बाद होने वाली प्राप्ति अधिक है, तो हम निवेश करेंगे। उदाहरण के लिये, यदि हम

रूपये 10000, 10% ब्याज पर बैंक में 5 वर्ष के लिये रखते हैं, तो इसका मूल्य होगा =10,000 $(1.10)^5$ = 16105 होगा| इसे हम कम्पांउडिंग कहते हैं। **अत: समय की अवधि के आधार पर प्राप्तियों अथवा व्ययों को समायोजित करना ही बट्टा एवं सम्मिश्रण (Discounting and Compounding) कहलाता है।**

गतिविधि (Activity) संख्या – 2 : बट्टा सिद्धांत को एक उदहारण लेकर समझने का प्रयास कीजिये|

15.4.3 सीमांत एवं वृद्धिपरक सिद्धांत (Marginal and Incremental Principle)

यह सिद्धांत बताता है कि लाभ के अधिकतमीकरण में हम अपने उद्देश्य में तब सफल होते हैं, जब हमारा लाभ उत्तरोत्तर बढ़ता है अथवा हमारी प्राप्तियाँ उत्तरोत्तर बढ़ती हैं। परन्तु यह हमेशा सापेक्ष होता है अर्थात् हमारा लाभ हमारी लागतों के संदर्भ में देखा जाता है। हमारी प्राप्तियाँ अथवा आगम (Revenue) का व्यवहार दो प्रकार से होगा :

(a) कुल आगम कुल लागतों की अपेक्षा अधिक बढ़ता है।

(b) कुल आगम कुल लागतों की अपेक्षा कम घटता है।

यदि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन की सीमान्त लागत (Marginal cost) इस अतिरिक्त इकाई के मूल्य से कम है, तो हमारे लाभ में वृद्धि होगी और इसके विपरीत, यदि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की सीमान्त लागत उस अतिरिक्त इकाई के मूल्य से अधिक है, तो हमें हानि होगी। इसीलिये हम मूल्य निर्धारण की सम्बन्धित इकाई में यह अध्ययन करेंगे कि एक फर्म तब तक अपने उत्पादन की मात्रा बढ़ाती जाती है, जब तक कि प्रत्येक अतिरिक्त उत्पादित इकाई की सीमान्त लागत उस इकाई के मूल्य से कम रहती है। इसी को हम **सीमांत विश्लेषण अथवा सीमांतवाद** (Marginal analysis/Marginalism) कहते हैं। उत्पादन की मात्रा, उत्पादन क्षमता का प्रयोग, माँग के अनुरूप बाजार की विभिन्न प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थिति में लिये जाने वाले निर्णय में सीमांत विश्लेषण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

15.4.4 सम-सीमांतता का सिद्धांत (Equi-marginal principle)

इसे हम सम-सीमांत उपयोगिता का सिद्धांत भी कहते हैं। इसका प्रयोग व्यावसायिक निर्णयन प्रक्रिया के अन्तर्गत उपभोक्ता संतुलन में किया जाता है। उपभोक्ता व्यवहार का उपयोगिता विश्लेषण इकाई -3 में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। वस्तुओं व सेवाओं के उपभोग में उपभोक्ता द्वारा वितरित किया गया व्यय का संतुलन इस प्रकार होता है:

$$\frac{MU_1}{P_1} = \frac{MU_2}{P_2} = \frac{MU_n}{P_n}$$

MU = Marginal Utility of commodity 1….2……..3

P = Price of Commodity 1….2……..3

इसी प्रकार उत्पादन में $$\frac{MRP_1}{MC_1} = \frac{MRP_2}{MC_2} = \frac{MRPn}{MCn}$$

MRP = Marginal revenue Product of Input 1....2....3

MC = Marginal Cost of Input 1......2......3

फर्म अपने उत्पादन एवं कीमत निर्धारण की प्रक्रिया में इन सिद्धांतों का पालन आवश्यक रूप से करती है।

15.5 फर्म की निर्णयन प्रक्रिया (Decision Process of the Firm)

हम यह जानते हैं कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र फर्म के स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया है, जो विभिन्न सिद्धांतों, उद्देश्यों को उपलब्ध सीमाओं के संदर्भ में रखकर किये जाते हैं। विभिन्न उपलब्ध परिस्थितियों में किये गये व्यवस्थित प्रयास ही इन निर्णयों तक हमें पहुँचाते हैं। इनके फलीभूत होने पर ही फर्म की सफलता व असफलता का ज्ञान होता है। **सामान्यत: फर्म के निर्णयन की प्रक्रिया में निम्नलिखित पायदानों का प्रयोग किया जाता है** :

1 उद्देश्यों की पहचान (Identification of objectives)
2 समस्या की पहचान (Identification of problem)
3 विकल्पों की पहचान (Identification of alternatives)
4 विद्यमान सीमाओं में विकल्पों का मूल्यांकन (Evaluation of alternatives under given constraints)
5 श्रेष्ठतम विकल्प का चुनाव (Selection of best alternative)
6 निर्णय का क्रियान्वयन (Implementation of decision)
7 निष्पादन का अनुवीक्षण (Monitoring of performance)
8 निष्पादन का मूल्यांकन (Evaluation of performance)
9 संबंधित संशोधन व परिवर्तन (Amendments and changes made accordingly)
10 समीक्षा (Review)

15.6 फर्म के उद्देश्यों की सीमाएँ (Constraints to Firm's Objectives)

फर्म के निर्णयन में कुछ सीमाऐं व प्रतिबंध होते हैं, जिनका वर्गीकरण हम आंतरिक एवं बाहरी सीमाओं के अन्तर्गत कर सकते हैं। आंतरिक सीमाऐं वे हैं, जो कि फर्म के अपने सांगठनिक स्तर पर होती हैं तथा बाहरी सीमाएँ वे हैं, जो फर्म के प्रबंधन क्षेत्र से बाहर हैं। इनको हम आर्थिक मितव्ययताओं व अमितव्ययताओं (Economies and diseconomies) के रूप में भी कह सकते हैं। संक्षिप्त रूप से हम इनका सीमाओं के रूप में अध्ययन कर सकते हैं। ये सीमाऐं हैं :

15.6.1 साधनों की सीमाएँ (Resource Constraints)

हम यह भलीभांति जानते हैं कि साधन सीमित हैं और आवश्यकताएँ असीमित। साथ ही हम यह भी जानते हैं कि साधनों का प्रयोग वैकल्पिक है। चूँकि साधन सीमित हैं, अतः चुनाव की समस्या की चुनौती है। इसलिए फर्म के उद्देश्यों की प्राप्ति में साधनों की सीमितता एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। फर्म अपने समस्त निर्णय इन साधनों की मात्रा, उपलब्धता एवं क्षमता के अनुसार ही करती है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में **साधन दुर्लभता दृश्य** (Resource scarcity scenario) होता है, यद्यपि प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था में यह अलग-अलग होता है। हमारे जैसे देश में यह दृश्य अत्यंत प्रभावी है। दुर्लभता दृश्य किसी भी रूप में हो सकता है - जैस पूँजी, कुशल श्रम, कुशल साहसी, कुशल तकनीक, कुशल बाजार आदि। वर्तमान युग में तकनीकी कुशलता के साथ-साथ सूचना की कुशलता एवं उसकी किस्म भी एक महत्त्वपूर्ण साधन हो गया है।

15.6.2 नीतिगत सीमाएँ (Policy Constraints)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था में फर्मों के कार्य करने के लिये सरकार द्वारा कई नीतिगत निर्णय लिये जाते हैं, जिन पर फर्मों का कोई अधिकार नहीं होता है। जैसी नीतियाँ उपलब्ध हैं, उन्हीं के अन्तर्गत व्यवसाय को कार्य करना एवं निर्णय लेना पड़ता है। जिन अर्थव्यवस्थाओं में नीतियाँ अधिक व्यवसायपरक, सरल व स्पष्ट होती हैं, वहाँ फर्म के लिये निर्णयन प्रक्रिया उतनी ही सुगम व विकासकारी होती है। इसके अतिरिक्त, जहाँ पर नीतियाँ अस्पष्ट व उलझी हुई होती हैं, वहाँ पर फर्म अधिक

सहजता से निर्णय नहीं ले पाती हैं। प्रत्येक फर्म को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये इन समस्त नीतिगत बातों का ध्यान रखना पड़ता है, जिसका उनकी उत्पादन प्रक्रिया, लागत फलन, साधनों का संयोजन आदि पर प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त सीमाओं के अतिरिक्त अन्य सीमाऐं भी है, जैसे विधि संबंधी (Legal issue), पर्यावरण सम्बन्धी (Environmental), तकनीकी सम्बन्धी (Technical), वैश्विक सम्बन्धी (Global), वित्तीय सम्बन्धी (Financial) आदि।

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

यह स्पष्ट होने के बाद कि विभिन्न बाज़ार फर्म विभिन्न उद्देश्यों से प्रेरित होती है। परन्तु व्यवहार में हम यह भी जानते हैं कि सभी फर्म इन सभी उद्देश्यों का पालन सीमित रुप से कर पाती है। अत: इनके पालन में कई प्रकार की सीमओं का सामना करना पड़ता है।

गतिविधि : वे कौनसी सीमाऐं अथवा प्रतिबंध है जो फर्म को आन्तरिक व बाहरी रुप से चुनौतियां प्रस्तुत करती हैं?

15.7 सारांश (Summary)

प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में फर्म की अत्यधिक भूमिका है। आधारभूत प्रश्नों, क्या उत्पादन करना है, कैसे उत्पादन करना है, कब उत्पादन करना है, क्या उपभोग करना है, साधनों का आवंटन कैसे करना है, आदि का उत्तर फर्मों के व्यवहार से ही मिलता है। फर्म के सिद्धांतों व उद्देश्यों में एक महत्त्वपूर्ण तालमेल आवश्यक है जिससे कि निर्णयन प्रक्रिया अधिक आसान हो सके। परन्तु हम यह भलीभांति जानते हैं कि सभी उद्देश्यों की अधिकतम प्राप्ति अत्यंत कठिन है, अतः फर्म अपने उद्देश्यों का एक मिश्रित परिदृश्य रखती है। इन सभी उद्देश्यों को सभी फर्में कम या अधिक रूप से ध्यान रखती हैं और दी हुई सीमाओं में उनको अनुकूलतम करने का प्रयास करती हैं। कोई भी फर्म किसी भी हितधारक के हितों की अनदेखी नहीं कर सकती है। वर्तमान युग में हम पर्यावरणीय, सामाजिक और सुशासन (Environmental , Social and Good Governance - ESG) का अत्यधिक ध्यान रखते हैं। पिछले कुछ वर्षों में नीति नियामकों ने भी इस ओर अधिक ध्यान दिया है, और आवश्यकता पड़ने पर देश के आर्थिक कानूनों (Economic legislations) में भी परिवर्तन किये हैं। कम्पनी कानून के प्रावधानों में किये गये संशोधन अति महत्त्वपूर्ण हैं, यथा, सामाजिक सरोकार, सुशासन, आदि। इसके अतिरिक्त, सरकारें भी व्यवसाय हित साधक के रूप में उभरी हैं, बजाय केवल नियामक के रूप में। अब हम व्यवसाय करने की सुगमता (Ease of doing business) की बात भी करने लगे हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी फर्म की आधारभूत कार्यप्रणाली उसके सिद्धांत व कार्य करने की सीमाऐं एक चुनौती अवश्य है।

15.8 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

- इस इकाई से विद्यार्थी फर्म के उद्देश्य व सिद्धांत को समझ सकेंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी फर्म के आधारभूत सिद्धांत के बारे में जान पाएंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी फर्म के उद्देश्यों की सीमाओं को जान पाएंगे।

15.9 शब्दावली (Glossary)

- **फर्म :** एक संगठन जो व्यावसायिक गतिविधियों के लिये साधनों का संयोजन करती है।
- **लाभ का अधिकतमीकरण :** विक्रय आगम एवं लागतों में अधिकतम अंतर रखना।
- **जोखिम :** फर्म साधनों में निवेश करके जोखिम लेती है और इस जोखिम का पारिश्रमिक ही लाभ है।
- **एकाधिकार :** जब एक फर्म ही किसी वस्तु के उत्पादन की मात्रा व उसकी कीमत पर अधिकार रखती है।

- **दीर्घकालीन जीवंतता :** सभी फर्म अपना जीवन दीर्घकाल के लिये सुरक्षित करना चाहती है।
- **हितधारक :** फर्म की प्रगति अथवा विकास में विभिन्न सहभागियों को हितधारक कहते हैं| जैसे, शेयर धारक, उपभोक्ता, समाज, सरकार आदि।
- **कटौती दर :** वह न्यूनतम दर जिस पर फर्म कार्य करना चाहती है। इसे पूँजी की लागत, न्यूनतम प्रत्याय दर एवं Hurdle rate भी कहा जाता है।

15.10 स्वपरख प्रश्न (Self Test Questions)

1. फर्म की अवधारणा क्या है ?
2. फर्म के व्यवहार के कौन-कौन से सिद्धांत हैं? विवेचना कीजिये।
3. फर्म की निर्णयन प्रक्रिया को बताइये।
4. फर्म द्वारा लिये गये निर्णयों की क्या सीमाएँ हैं?
5. सीमांतवाद की क्या परिकल्पना है? फर्म के व्यवहार में यह क्यों महत्त्वपूर्ण है?

15.11 सन्दर्भ व ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- Gupta, G.S. : Managerial Economics, 1999 Tata Mc Graw Hill Publishing Company
- Dean, Joel : Managerial Economics, Prentic Hall of India, 2018
- Petersen Lewis and Jain : Managerial Economics, Pearson, 2006

15.12 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- सिंह एवं त्यागी : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 2009.
- Mithani, D.M. : Managerial Economics, Himalaya Publishing House, 2009
- Diwedi, D.N. : Managerial Economics, Vikas Publishing House, 1st Edition

15.13 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Link)

- https://www.investopedia.com/terms/t/theory-firm.asp
- https://www.studysmarter.us/explanations/microeconomics/imperfect-competition/objectives-of-firms/

इकाई – 16

पूर्ण प्रतियोगिताः कीमत एवं उत्पादन निर्धारण (Perfect competition: Price and Output Determination)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं परिभाषा
16.3 पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएँ
16.4 फर्म एवं उद्योग का अर्थ
16.5 पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का साम्य निर्धारण
    16.5.1 कुल आगम तथा कुल लागत विधि
    16.5.2 सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि
16.6 अल्पकाल में फर्म का साम्य
16.7 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण एवं उद्योग का साम्य
16.8 पूर्ण प्रतियोगिता का वास्तविक जीवन में अस्तित्व
16.9 पूर्ण प्रतियोगिता के लाभ
16.10 सारांश
16.11 अधिगम परिणाम
16.12 शब्दावली
16.13 स्व-परख प्रश्न
16.14 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची
16.15 अन्य पठन सामग्री
16.16 वेब संसाधन/लिंक

16.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः

- पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे;
- फर्म के साम्य का अर्थ एवं उसके निर्धारण की विधियों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- अल्पकाल एवं दीर्घकाल में फर्म किस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साम्य (कीमत एवं उत्पादन) का निर्धारण करती है, के बारे में सुस्पष्ट हो सकेंगे; तथा
- अल्पकाल व दीर्घकाल में उद्योग के साम्य के बारे में अपनी समझ विकसित कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की एक आदर्श स्थिति है, जो व्यावहारिक आर्थिक जगत में नहीं पायी जाती है। फिर भी हम इसका अध्ययन वास्तविक आर्थिक जगत के कार्यकरण को आसानी से समझने के लिए करते हैं। अपने उत्पाद की कीमत तथा उत्पादन-मात्रा का निर्धारण करना फर्म की एक प्रमुख समस्या होती है। हम इस इकाई में इस बात का अध्ययन करेंगे कि पूर्ण प्रतिस्पर्धी बाजार में एक फर्म अपने उत्पाद की कीमत एवं उत्पादन-मात्रा का अल्पकाल और दीर्घकाल में कैसे निर्धारण करती है?

16.2 पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता बाज़ार की उस स्थिति को कहते हैं जब कि बाज़ार में क्रेता और विक्रेता बहुत बड़ी संख्या में होते हैं और जो किसी समय पर बाज़ार का पूर्ण ज्ञान रखते हुए, किसी भी प्रकार के बनावटी बन्धनों के बिना, किसी समरूप वस्तु के क्रय-विक्रय में लगे होते हैं। इसमें कोई भी क्रेता या विक्रेता व्यक्तिगत रूप से बाज़ार मूल्य को प्रभावित नही कर सकता है, वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है तथा वस्तु का मूल्य एक ही होता है।

श्रीमती राबिन्सन के शब्दों में, "पूर्ण प्रतियोगिता उस दशा में होती है जबकि प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन की माँग पूर्णतया लोचदार होती है। इसका अर्थ यह है कि प्रथम, विक्रेताओं की कुल संख्या बहुत अधिक होती है, जिसमें किसी एक विक्रेता का उत्पादन वस्तु के कुल उत्पादन का एक बहुत ही थोड़ा सा भाग होता है तथा दूसरे, सभी ग्राहक प्रतियोगी विक्रेताओं के बीच चुनाव करने की दृष्टि से समान होते हैं, जिससे बाज़ार पूर्ण हो जाता है" ।

प्रो. मार्शल के अनुसार,"बाज़ार जितना अधिक पूर्ण होगा उतना ही उसके सभी भागों में किसी एक वस्तु के लिए एक समय पर एक ही कीमत चुकाने की प्रवृत्ति पायी जाएगी" ।

प्रो. फर्ग्युसन एवं क्रेप के अनुसार,"एक उद्योग पूर्ण प्रतियोगिता वाला तब होता है जब समस्त बाजार की तुलना में प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता इतना छोटा होता है कि वह अपनी खरीद अथवा उत्पादन में परिवर्तन करके बाज़ार कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता है।"

अतः उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता बाज़ार की वह स्थिति होती है जिसमें क्रेता तथा विक्रेता बड़ी संख्या में वस्तु का विनिमय करते हैं एवं समस्त बाज़ार में वस्तु की कीमत एक समान होती है तथा वे उत्पादन का एक बहुत छोटा भाग क्रय अथवा विक्रय करते हैं।

16.3 पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएँ (Features of Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(1) **क्रेताओं और विक्रेताओं की अधिक संख्या (Large number of Buyers and Sellers):** पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता और विक्रेता बहुत बड़ी संख्या में होते हैं, जिससे कोई भी क्रेता या विक्रेता अकेला अपने क्रय-विक्रय द्वारा वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता है।

(2) **समरूप वस्तु (Homogeneous Product) :** इसमें सभी उत्पादकों या विक्रेताओं की वस्तुएँ पूर्णतया एक जैसी होती है अर्थात सभी वस्तुएँ आकार, रंग, रूप एवं गुण में एक समान होती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में कोई वस्तु विभेद नहीं पाया जाता है।

(3) **फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश एवं बहिगर्मन (Free Entry and Free Exit of Firms) :** पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग में प्रवेश करने अथवा पुरानी फर्मों का उद्योग छोड़कर बाहर चले जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। इससे (i) कोई भी फर्म या फर्में बाज़ार पर एकाधिकारात्मक नियन्त्रण की स्थिति में नहीं आ पाती हैं, तथा (ii) दीर्घकाल में उद्योग की प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।

(4) **बाज़ार का पूर्ण ज्ञान (Perfect Knowledge of the Market) :** पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं और विक्रेताओं में निकट सम्पर्क होता है। प्रत्येक क्रेता को प्रत्येक विक्रेता द्वारा मांगी जाने वाली तथा प्रत्येक विक्रेता को प्रत्येक क्रेता द्वारा दी जाने वाली कीमत की पूर्ण जानकारी रहती है। इससे बाज़ार में एक समान कीमत रहती है।

(5) **उत्पादन साधनों की पूर्ण गतिशीलता (Perfect Mobility of Factors of Production) :** पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पत्ति का प्रत्येक साधन एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में पूर्णतया गतिशील होता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक साधन को व्यापारिक दृष्टि से अधिक लाभदायक उपयोग में प्रविष्ट होने की स्वतन्त्रता रहती है। इसमें कोई सरकारी या अन्य कोई बाह्य प्रतिबन्ध बाधक नहीं होता। ऐसा होने से उद्योग में उत्पादन के साधनों का प्रतिफल उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होता है।

(6) **परिवहन लागतों का न होना (Absence of Transprot cost):** पूर्ण प्रतियोगिता में यह मान लिया जाता है कि वस्तु के लाने व ले जाने में कोई परिवहन लागत नहीं आयेगी क्योंकि समस्त उत्पादक फर्में एक दूसरे के निकट स्थित होती हैं। इसलिये बाज़ार में वस्तु की कीमत एक समान ही होगी।

(7) **स्वतन्त्र निर्णय प्रक्रिया (Free Decision Making):** पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक क्रेता और विक्रेता स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेता है। उनके बीच कोई गुटबन्दी, समझौता या गुप्त सन्धि नहीं होती।

(8) **क्रेताओं और विक्रेताओं में पूर्ण गतिशीलता (Perfect Mobility amongst Buyers and Sellers):** पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता और विक्रेता पूर्ण गतिशील होते हैं। उनके बीच आपसी लगाव नहीं होता। ऐसी स्थिति में एक और विक्रेताओं की मनोवृत्ति सबसे अधिक मूल्य पर क्रय करने वाले क्रेता को बेचने की होगी, तो दूसरी ओर क्रेताओं की मनोवृत्ति सबसे कम कीमत पर बेचने वाले विक्रेता से क्रय करने की रहेगी। इससे पूर्ण प्रतियोगिता बाज़ार में वस्तु की कीमत सदैव एक समान ही रहेगी।

(9) **प्रतिबन्धों का अभाव (Lack of Restrictions) :** पूर्ण प्रतियोगिता में किसी भी प्रकार के संस्थागत प्रतिबन्ध या हस्तक्षेप (जैसे सरकार द्वारा मूल्य निर्धारण में हस्तक्षेप) नहीं होते।

(10) **क्षैतिज औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्र (Horizontal Average Revenue and Marginal Revenue Curve) :** पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक फर्म का औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्र X-अक्ष के समानान्तर होता है, जो पूर्णतया लोचदार माँग को बताता है। रेखाचित्र संख्या – 16.1 से इसे स्पष्ट किया गया है। इसका अर्थ यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता बाज़ार में प्रत्येक **फर्म कीमत ग्रहण करने वाली** (Price-taker) **होती है, न कि कीमत निर्धारण करने वाली**(Price-maker)।

रेखाचित्र संख्या – 16.1

फर्म का माँग वक्र

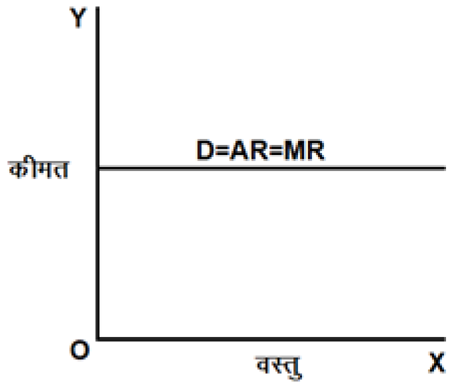

स्व मूल्यांकन – प्रथम

1. निम्न में से पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएँ हैं –

(अ) क्रेताओं और विक्रेताओं की अत्यधिक संख्या

(ब) समरूप वस्तु

(स) बाज़ार का पूर्ण ज्ञान

(द) उपर्युक्त सभी

2. पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का मांग वक्र होता हैं –

(अ) पूर्णत: बेलोचदार (ब) पूर्णत: लोचदार

(स) इकाई के बराबर (द) इकाई से कम

3. पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में फर्म को लाभ होता हैं –

(अ) असामान्य लाभ (ब) सामान्य लाभ

(स) असामान्य हानि (द) उपर्युक्त सभी

4. दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत लाभ प्राप्त होता हैं –

(अ) असामान्य लाभ (ब) सामान्य लाभ

(स) असामान्य हानि (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर : 1 (द) 2 (ब) 3 (द) 4 (ब)

16.4 फर्म एवं उद्योग का अर्थ (Meaning of Firm and Industry)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण के अध्ययन से पूर्व हमें फर्म एवं उद्योग का अर्थ समझ लेना चाहिए। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में फर्म का तात्पर्य किसी एक व्यक्तिगत उत्पादक इकाई (Single unit) से होता है। इसमें एक फर्म प्रचलित मूल्य पर जितनी मात्रा चाहे, उतनी मात्रा में माल बेच सकती है, परन्तु वह अपनी क्रियाओं द्वारा बाजार मूल्य में वृद्धि अथवा कमी करके माल नहीं बेच सकती है। उद्योग किसी वस्तु विशेष के उत्पादन में संलग्न सभी

फर्मों के समूह को कहते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य का निर्धारण उद्योग द्वारा उसकी माँग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा किया जाता है और उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य पर सभी फर्मों को अपना उत्पादन बेचना पड़ता है| रेखाचित्र-16.2 से यह स्वतः ही स्पष्ट है।

पूर्ण प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म का माँग वक्र एक क्षितिजीय वक्र (Horizontal Curve) होता है। फर्म का औसत आगम वक्र (AR) एवं सीमान्त आगम वक्र (MR) दोनों एक ही होते हैं, क्योंकि फर्म समान मूल्य पर वस्तु की चाहे जितनी इकाइयाँ बेच सकती है, अर्थात् उसे अधिक इकाइयाँ बेचने के लिए मूल्य कम नहीं करना पड़ता है।

रेखाचित्र संख्या-16.2

(अ) उद्योग कीमत निर्धारणकर्ता (ब) फर्म कीमत ग्रहणकर्ता

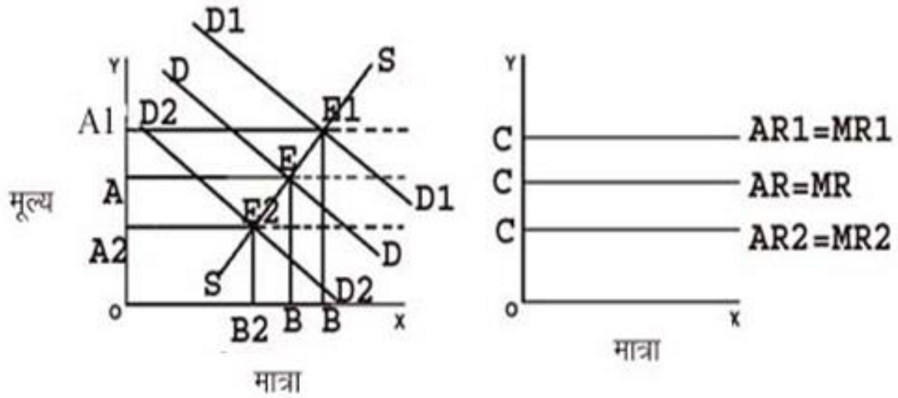

रेखाचित्र-16.2 (अ) में वस्तु का आधारभूत माँग वक्र DD है| वस्तु का पूर्ति वक्र SS है। वस्तु की माँग एवं पूर्ति का साम्य E बिन्दु पर होता है, जहाँ वस्तु का OA मूल्य निर्धारित होता है। यह OA मूल्य फर्म के लिए दिया हुआ होता है, अतः फर्म का माँग वक्र औसत आगम वक्र एवं सीमान्त आगम वक्र OA के स्तर पर X- अक्ष के समानान्तर वक्र AR = MR होगा। अब यदि वस्तु की माँग बढ़कर $D_1 D_1$ हो जाती है, तो $D_1 D_1$ माँग व SS पूर्ति वक्र के साम्य द्वारा OA_1 मूल्य के स्तर पर OX के समानान्तर वक्र $AR_1 = MR_1$ होगा। इसी प्रकार यदि माँग घटकर $D_2 D_2$ हो जाती है, तो इस माँग वक्र तथा SS पूर्तिवक्र के साम्य द्वारा OA_2 मूल्य निर्धारित होगा, जिस पर फर्म का माँग वक्र OX के समान्तर वक्र $AR_2 = MR_2$ होगा।

16.5 पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का साम्य निर्धारण (Determination of Equilibrium of Firm Under Perfect Competition)

फर्म के साम्य का अर्थ (Meaning of Equilibrium of a Firm) : एक फर्म उस समय साम्य की स्थिति में होती है जब (i) उसे उत्पादन में परिवर्तन करने के लिए कोई प्रेरणा नहीं होती है, तथा (ii) फर्म को उत्पादन की उस मात्रा पर अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो। किसी फर्म के साम्य को ज्ञात करने की मुख्यतः दो विधियाँ हैं- (i) कुल आगम तथा कुल लागत विधि (ii) सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत विधि। इन दोनों विधियों द्वारा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के साम्य का निर्धारण होता है।

16.5.1 कुल आगम तथा कुल लागत विधि (Total Revenue and Total Cost Method)

कुल आगम तथा कुल लागत विधि के अनुसार एक फर्म उस समय साम्य की स्थिति में होती है जब निम्नलिखित दो शर्तें पूरी हों :

(अ) साम्य उत्पादन स्तर पर कुल आगम तथा कुल लागत के मध्य दूरी अधिकतम हो। ऐसा तब होता है जब कुल आगम तथा कुल लागत में परिवर्तन की दर समान हो; तथा

(ब) साम्य उत्पादन स्तर पर कुल आगम कुल लागत से अधिक हो अथवा बराबर हो।

कुल आगम तथा कुल लागत विधि से फर्म के साम्य को रेखाचित्र-16.3 से स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र-16.3

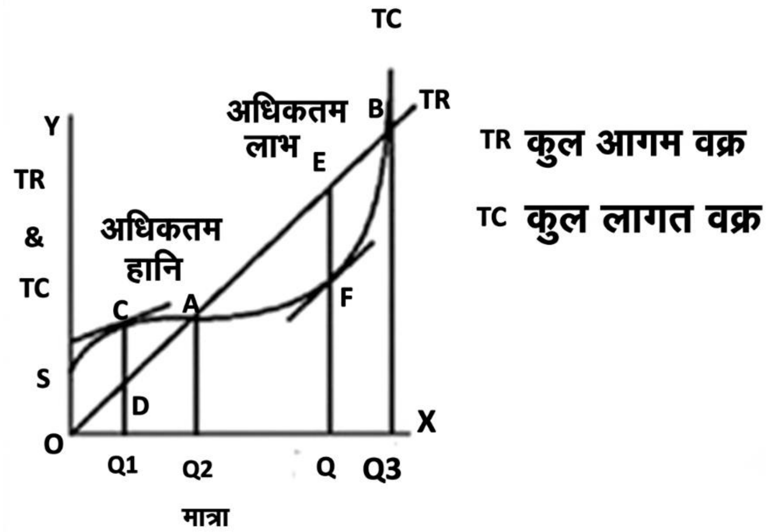

रेखाचित्र में TR फर्म का कुल आगम वक्र है, जो उत्पादन के साथ-साथ समान मात्रा से बढ़ता जा रहा है। TC कुल लागत वक्र है। यह शून्य उत्पादन पर भी OS है, क्योंकि शून्य उत्पादन पर भी फर्म को कुल स्थायी लागत (TFC) का भुगतान करना पड़ता है। जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे कुल लागत (TC) बढ़ती गयी है। कुल लागत में वृद्धि उत्पादन नियमों के अनुसार होती है। यह प्रारम्भ में उत्पादन वृद्धि नियम की क्रियाशीलता के कारण धीमी गति से बढ़ती है तथा उत्पादन के अनुकूलतम आकार लेने के पश्चात उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण तेजी से बढ़ने लगती है। रेखाचित्र को देखने से ज्ञात होता है कि फर्म को OQ_2 से कम तथा OQ_3 से अधिक उत्पादन करने पर हानि होती है, क्योंकि OQ_2 उत्पादन से पूर्व तथा OQ_3 उत्पादन के बाद में फर्म का कुल आगम फर्म की कुल लागत से कम होता है। उत्पादन की OQ_2 मात्रा तथा OQ_3 मात्रा पर फर्म सम विच्छेद बिन्दुओं की स्थिति में है। यह न लाभ और न हानि (सामान्य लाभ) की स्थिति है| फर्म का साम्य OQ उत्पादन स्तर पर होगा क्योंकि इस उत्पादन स्तर पर कुल आगम कुल लागत से EF के बराबर अधिक है और यहाँ इन दोनों के बीच दूरी अधिकतम है।

16.5.2 सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि (Marginal Revenue and Marginal Cost Method)

इस विधि के अन्तर्गत फर्म का साम्य उत्पादन की उस मात्रा पर होता है, जहाँ :

(i) फर्म का सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत दोनों एक-दूसरे के बराबर (MR=MC) हो; तथा

(ii) फर्म का सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को नीचे की ओर से काटता हुए ऊपर की ओर उठता हुआ हो।

रेखाचित्र संख्या-16.4

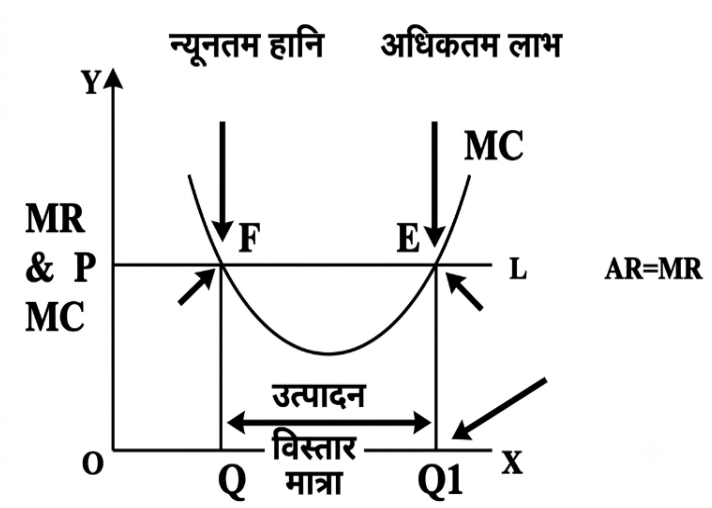

फर्म के साम्य को सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत वक्रों की विधि से रेखाचित्र 16.4 द्वारा स्पष्ट किया गया है। इस रेखाचित्र में PL वक्र फर्म का औसत आगम (AR) एवं सीमान्त आगम (MR) वक्र है। MC वक्र फर्म का सीमान्त लागत वक्र है। रेखाचित्र में फर्म का सीमान्त लागत वक्र (MC) इसके सीमान्त आगम वक्र को F तथा E दो बिन्दुओं पर काटता है, अर्थात् फर्म का सीमान्त आगम (MR) तथा फर्म की सीमान्त लागत (MC) F तथा E बिन्दुओं पर एक दूसरे के बराबर हैं। F बिन्दु पर सीमान्त लागत एवं सीमान्त आगम एक-दूसरे के बराबर तो हैं, परन्तु यहाँ सीमान्त लागत वक्र (MC) सीमान्त आगम वक्र (MR) को ऊपर से काटता है। अतः उत्पादन बढ़ाने पर सीमान्त लागत घटेगी, जिससे फर्म को लाभ होगा। फर्म अपना उत्पादन E बिन्दु तक बढ़ायेगी, जहाँ साम्य की स्थिति में होगी। इस बिन्दु पर फर्म का सीमान्त लागत वक्र (MC) उसके सीमान्त आगम वक्र (MR) को नीचे से काटता है। इस बिन्दु पर फर्म को अधिकतम लाभ होता है। इसके बाद भी यदि फर्म उत्पादन बढ़ाती है, तो इसकी सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक होगी, अतः फर्म को हानि होगी। अतः E फर्म का साम्य बिन्दु है, जिस पर फर्म OQ_1 मात्रा में वस्तु का उत्पादन करेगी एवं अधिकतम लाभ की स्थिति में होगी। E बिन्दु पर फर्म के साम्य की उपर्युक्त दोनों शर्तें पूरी होती हैं।

16.6 अल्पकाल में फर्म का साम्य (Equilibrium of the Firm in Short Period)

अल्पकाल समय की वह अवधि होती है जिसमें वस्तु की माँग में वृद्धि होने पर एक फर्म उसकी पूर्ति में वृद्धि उत्पादन के केवल परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में वृद्धि करके ही कर सकती है। अल्पकाल में उत्पादन के कुछ साधनों में परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता है, जैसे मशीनरी, भूमि, कारखाना भवन, प्रबन्ध की सेवाएँ आदि। अल्पकाल में जिन साधनों की मात्रा को परिवर्तित नहीं किया जा सकता है, उन्हें स्थिर साधन कहा जाता है। अल्पकाल में स्थिर साधनों की मात्रा में परिवर्तन की सम्भावना न होने के कारण उद्योग में न तो नई फर्में प्रवेश कर सकती हैं और न ही पुरानी फर्में उद्योग छोड़ सकती है।

अल्पकाल में वस्तु की कीमत उद्योग की कुल माँग व पूर्ति के द्वारा निर्धारित होती है। वह कीमत फर्मों के लिए दी हुई होती है। फर्में अपनी उत्पादन लागतों के अनुसार उत्पादन को समायोजित करती है। अल्पकाल में साम्य

की स्थिति में कुछ फर्मों को असामान्य लाभ हो सकता है, कुछ फर्मों को हानि हो सकती है एवं कुछ फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो सकता है। इन तीनों प्रकार की स्थितियों को रेखाचित्रों की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

(i) असामान्य लाभ की स्थिति (Abnormal profit) : अल्पकाल में फर्म उस समय असामान्य लाभ कमाती हुई होती है जब साम्य बिन्दु पर फर्म का औसत आगम उसकी औसत लागत से अधिक हो। इस स्थिति को रेखाचित्र-16.5 से देखा जा सकता है। रेखाचित्र में AR =MR फर्म का औसत एवं सीमान्त आगम वक्र है। फर्म का अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र MC है, जो फर्म के सीमान्त आगम वक्र MR को A बिन्दु पर काटता है। यह सन्तुलन बिन्दु है जिस पर फर्म OQ मात्रा का उत्पादन करेगी। इस पर औसत लागत QB है, जबकि औसत आगम QA है, अतः फर्म को AB के बराबर औसत लाभ होता है। साम्य उत्पादन पर फर्म PSAB के बराबर कुल असामान्य लाभ कमा रही है। असामान्य लाभ की स्थिति में फर्म की सीमान्त लागत, सीमान्त आगम तथा औसत आगम बराबर होते हैं तथा उसकी औसत लागत से अधिक होते हैं। **सूत्र रूप में:**

$$MC = MR = AR > AC$$

$$\mathbf{QA = QA = QA > QB}$$

रेखाचित्र संख्या-16.5

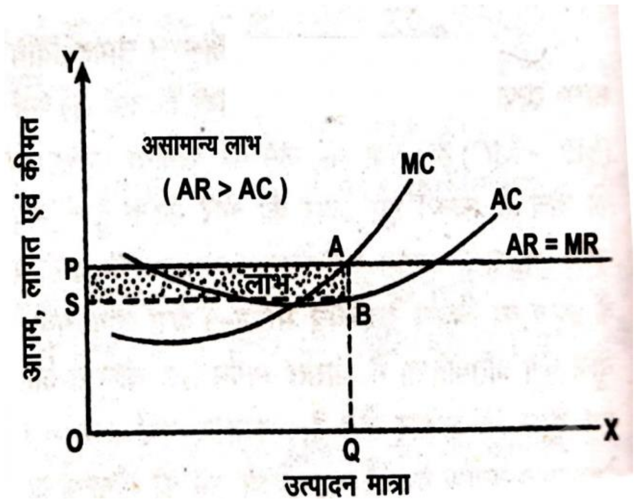

(ii) सामान्य लाभ स्थिति(Normal profit) : अल्पकाल में फर्म न लाभ न हानि की स्थिति में भी हो सकती है। जब सन्तुलन बिन्दु पर फर्म का औसत आगम तथा औसत लागत वक्र दोनों बराबर होते हैं, तो फर्म न लाभ न हानि की स्थिति में होती है। रेखाचित्र-16.6 के अनुसार E फर्म का साम्य बिन्दु है जहाँ पर फर्म की MC इसके MR को नीचे से काटती हुई ऊपर जा रही है। इस साम्य बिन्दु पर फर्म OQ उत्पादन करेगी जहाँ उसे सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है क्योंकि साम्य बिन्दु पर AR तथा AC एक दूसरे के बराबर हैं। सामान्य लाभ की स्थिति में फर्म के साम्य बिन्दु परः

$$MC = MR = AR = AC$$

$$QE=QE=QE=QE$$

$$(AR=AC)$$

रेखाचित्र-16.6

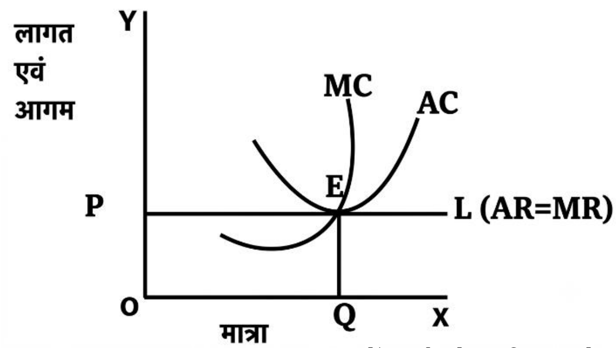

(iii) हानि की स्थिति (Situation of Loss) : अल्पकाल में फर्म को हानि भी हो सकती है, परन्तु फर्म अल्पकाल में अधिकतम हानि केवल स्थायी लागतों के बराबर उठा सकती है क्योंकि अल्पकाल में उत्पादन बन्द करने पर भी फर्म को स्थायी लागतों का भुगतान करना पड़ता है। यदि साम्य बिन्दु पर फर्म की औसत लागत औसत आगम से अधिक है, तो फर्म को हानि होती है। अल्पकाल में हानि की स्थिति रेखाचित्र 16.7 में दिखाई गई है। फर्म का सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को E_1 बिन्दु पर काटता है, अतः E_1 फर्म का साम्य बिन्दु है। इस साम्य बिन्दु पर फर्म OM_1 मात्रा में वस्तु का उत्पादन करेगी। इस उत्पादन की औसत लागत M_1B_1 (OC_1) है, जबकि औसत आगम M_1E_1 (OP_1) है। अतः फर्म को E_1B_1 (P_1C_1) के बराबर औसत हानि हो रही है। साम्य उत्पादन पर फर्म की कुल हानि $C_1B_1E_1P_1$ के बराबर है। हानि की स्थिति में फर्म की सीमान्त लागत, सीमान्त आगम, एवं औसत आगम उसकी औसत लागत से कम होते हैं। **सूत्र रूप में:**

$$SMC = MR = AR(P) < SAC$$

$$M1E1 = M1E1 = M1E1 < M1B1$$

रेखाचित्र-16.7

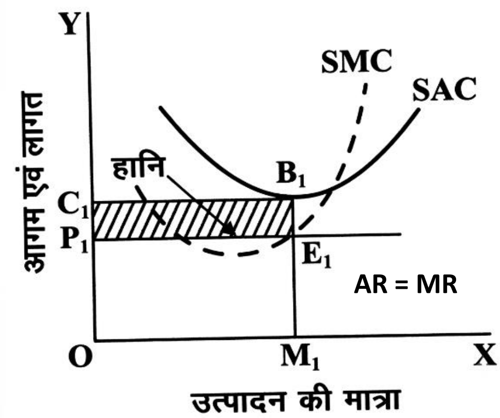

फर्म का निरस्ती बिन्दु (Sbut-down Point of the Firm) : पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म परिवर्तनशील लागतों के बराबर भुगतान प्राप्त होने पर भी अल्पकाल में उत्पादन जारी रख सकती है। परन्तु जब वस्तु का मूल्य घटकर इतना कम हो जाता है कि फर्म को परिवर्तनशील लागतें भी प्राप्त नहीं होती है, तब फर्म को उत्पादन बन्द करने का निर्णय लेना पड़ता है। अतः फर्म के उत्पादन का वह बिन्दु, जहाँ वस्तु का मूल्य तथा परिवर्तनशील लागत एक समान (P = AR =

AVC) होती है, निरस्ती बिन्दु कहलाता है। इस बिन्दु के बाद जैसे ही मूल्य में तनिक-सी कमी होती है, फर्म को उत्पादन बन्द करना पड़ता है। फर्म की हानि उठाने की अधिकतम सीमा उसकी स्थिर लागतों के समकक्ष होती है।

16.7 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण एवं उद्योग का साम्य (Price Determination Under Perfect Competition and Equilifrium of Industry)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु का मूल्य समूचे उद्योग की कुल माँग और कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। किसी एक अकेले क्रेता या विक्रेता के क्रय-विक्रय का वस्तु के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चूँकि इस प्रकार के बाजार में बहुत से क्रेता और विक्रेता होते हैं, अतः उद्योग की प्रत्येक फर्म इस मूल्य को दिया हुआ मानकर अपने उत्पादन की मात्रा इस प्रकार समायोजित करती है कि उसकी सीमान्त लागत और सीमान्त आगम बराबर हो जायें। अतः स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य का सम्बन्ध किसी फर्म विशेष से नहीं होता, वरन् सम्पूर्ण उद्योग से होता है तथा वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जिस पर उद्योग की वस्तु की कुल माँग और कुल पूर्ति बराबर होती है।

उद्योग माँग (Industry Demand) : वस्तु की माँग उपभोक्ता या क्रेता द्वारा की जाती है। प्रत्येक क्रेता की एक "माँग अनुसूची" होती है, जो कि विभिन्न मूल्यों पर उसके द्वारा क्रय की जाने वाली वस्तु की मात्राओं को बतलाती है। बाजार में समस्त क्रेताओं की व्यक्तिगत माँग अनुसूचियों को जोड़ देने से "बाजार या उद्योग की माँग अनुसूची" प्राप्त हो जाती है, जो कि यह बतलाती है कि विभिन्न मूल्यों पर बाजार में वस्तु की कितनी-कितनी मात्रायें मांगी जाती हैं। उद्योग की माँग अनुसूची से उद्योग के माँग वक्र की रचना की जाती है तथा यह बायें से दायीं ओर नीचे गिरता हुआ होता है। इसका आशय यह होता है कि जैसे-जैसे कीमत गिरती है, बाजार में वस्तु की माँग बढ़ती जाती है।

उद्योग पूर्ति (Industry Supply) : वस्तु की पूर्ति उद्योग के अन्तर्गत फर्मों द्वारा की जाती है। प्रत्येक विक्रेता फर्म की एक "पूर्ति अनुसूची" होती है, जो विभिन्न मूल्यों पर उसके द्वारा बेचे जाने वाली वस्तु की मात्राओं को बतलाती है। बाजार में समस्त फर्मों की व्यक्तिगत पूर्ति अनुसूचियों को जोड़ देने से "बाजार या उद्योग की पूर्ति अनुसूची" प्राप्त हो जाती है, जो कि विभिन्न मूल्यों पर उद्योग (समस्त फर्मों) द्वारा बाजार में विक्रय के लिये प्रस्तुत वस्तुओं की मात्राओं को बतलाती है। उद्योग की पूर्ति अनुसूची से उद्योग के पूर्ति वक्र की रचना की जाती है। यह वक्र बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ता हुआ होता है।

अल्पकाल में मूल्य निर्धारण एवं उद्योग का साम्य (Price determination and equiliblium of industry in short - term) : अल्पकाल में समयाभाव के कारण वस्तु की पूर्ति विद्यमान परिवर्तनशील साधनों की क्षमता द्वारा सीमित रहती है। इसीलिये अल्पकाल में मूल्य पर वस्तु की पूर्ति की अपेक्षा माँग का अधिक प्रभाव रहता है। चूँकि प्रत्येक फर्म का पूर्ति वक्र उसकी सीमान्त लागत की प्रकृति के अनुसार बायें से दायीं ओर ऊपर जाता है। इसका आशय यह है कि जैसे-जैसे कीमत बढ़ती जाती है, उद्योग की विभिन्न फर्मों द्वारा वस्तु की पूर्ति में वृद्धि की जाती है। इसलिये उद्योग की कुल माँग और कुल पूर्ति के साम्य के आधार पर निर्धारित वस्तु के मूल्य और उद्योग की फर्मों की औसत लागत में अन्तर आ जाता है जिसके कारण अल्पकाल में एक फर्म को अधि-सामान्य लाभ, सामान्य लाभ या हानि प्राप्त हो सकती है।

रेखाचित्र-16.8

(अ) उद्योग **(ब) प्रतिनिधि फर्म**

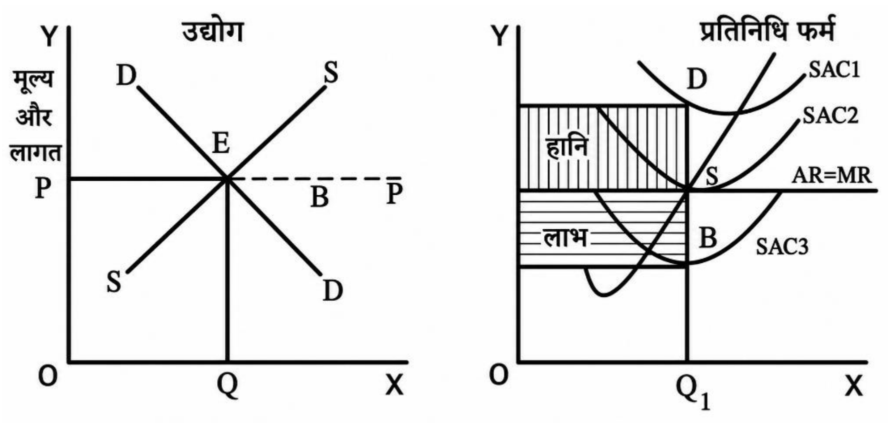

उत्पादन-मात्रा **उत्पादन-मात्रा**

जैसा कि उपरोक्त रेखाचित्र संख्या-16.8 से स्पष्ट है कि अल्पकाल में किसी समय पर उद्योग की कुल माँग और कुल पूर्ति का सन्तुलन E बिन्दु पर होता है। अतः वस्तु का सन्तुलन मूल्य OP तथा साम्य उत्पादन मात्रा OQ है। उद्योग की प्रत्येक फर्म इस OP मूल्य को एक दिया हुआ मूल्य मानकर (अपने लाभों को अधिकतम या हानि को न्यूनतम करने के लिये) उतना उत्पादन करेगी जिस पर उसकी सीमान्त लागत और सीमान्त आगम बराबर हों। रेखाचित्र संख्या-16.8 में फर्म का यह सन्तुलन S बिन्दु पर होता है। अतः फर्म की साम्य उत्पादन मात्रा OQ_1 होगी। फर्म के लाभ-हानि की स्थिति ज्ञात करने के लिये उसके औसत आगम और औसत लागत का अन्तर देखा जाता है। रेखाचित्र संख्या-16.(ब) में यदि फर्म के अल्पकालीन औसत लागत वक्र की स्थिति SAC_1 है, तो साम्यावस्था में फर्म को OQ_1 मात्रा पर SD प्रति इकाई की हानि होगी। यदि फर्म के अल्पकालीन औसत लागत वक्र की स्थिति SAC_2 है, तो साम्यावस्था में फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होगा क्योंकि साम्य उत्पादन OQ_1 पर वस्तु की औसत लागत और औसत आगम (AR=AC) एक समान है। इसी तरह यदि फर्म के लागत वक्र की स्थिति SAC_3 है, तो साम्यावस्था में फर्म को SB प्रति इकाई का अधि-सामान्य लाभ प्राप्त होगा। अल्पकाल में उद्योग तभी साम्य में होगा जब उसके अन्तर्गत कार्यरत सभी फर्में साम्य में होंगी और इस अवधि में कुछ फर्में असामान्य लाभ, कुछ फर्में सामान्य लाभ तथा कुछ फर्में हानि की स्थिति में साम्य में होती हैं।

दीर्घकाल में मूल्य निर्धारण (Price determination in Long-term) : दीर्घकाल में इतना समय रहता है कि वस्तु की पूर्ति को पूर्णतया परिवर्तित करके माँग के अनुरूप् किया जा सकता है। अतः दीर्घकाल में वस्तु के मूल्य निर्धारण में माँग की अपेक्षा पूर्ति अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इस काल में वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होता है, जिस पर उद्योग की समस्त फर्मों की दीर्घकालीन औसत लागतें उनके औसत आगमों के समान हों। यह एक उद्योग के पूर्ण साम्य स्थिति होती है। इस स्थिति में प्रत्येक फर्म की औसत लागत और औसत आगम (AR=AC) के समान होने के कारण उन्हें केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दीर्घकाल में उद्योग के साम्य की स्थिति में सभी फर्में सामान्य लाभ पर कार्य करती हैं।

रेखाचित्र-16.9 में उद्योग की दीर्घकालीन कुल माँग और कुल पूर्ति के साम्य द्वारा निर्धारित मूल्य QP है। उद्योग की सभी फर्में इस मूल्य को दिया हुआ मानकर अपने उत्पादन का समायेजन करेंगी। चित्र में प्रतिनिधि फर्म का यह समायोजन R बिन्दु पर होता है। इस बिन्दु पर साम्य उत्पादन मात्रा

रेखाचित्र संख्या – 16.9

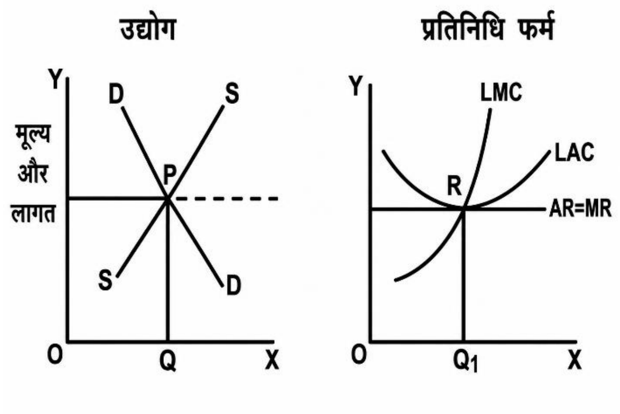

OQ_1 के लिये फर्म की दीर्घकालीन सीमान्त लागत (LAC) और सीमान्त आगम(MR) एक समान हैं। इतना ही नहीं फर्म के साम्य बिन्दु पर फर्म का औसत आगम और दीर्घकालीन औसत लागत बराबर (AR = LAC) है। इस स्थिति में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा जिसके परिणामस्वरूप उद्योग में न तो किसी नयी फर्म का प्रवेश ही होगा और न बहिर्गमन। यह उद्योग के पूर्ण साम्य की स्थिति होती है।

दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, इसलिए इस काल में स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों का भेद समाप्त हो जाता है। मूल्य निर्धारण की दृष्टि से औसत लागत (AC) ही महत्त्वपूर्ण होती है। दीर्घकाल में फर्म का साम्य उस उत्पादन की मात्रा पर होता है, जहाँ निम्नांकित दो शर्तें पूरी होती हों :

(i) फर्म की दीर्घकालीन सीमान्त लागत उसके सीमान्त आगम तथा औसत आगम के बराबर (LMC = MR = AR) होना चाहिए; तथा

(ii) फर्म का औसत आगम (कीमत) उसकी दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर (AR(P) = LAC) होना चाहिए।

ज्ञातव्य है कि दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्मों के स्वतंत्र प्रवेश एवं बहिर्गमन के कारण सभी फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। **दीर्घकाल में फर्म के संतुलन की शर्त का सूत्र है:**

दीर्घकालीन सीमान्त लागत = सीमान्त आगम =औसत आगम = दीर्घकालीन औसत लागत

$$LMC = MR = AR(P) = LAC$$

फर्म के दीर्घकालीन साम्य को रेखाचित्र संख्या-16.10 द्वारा समझा जा सकता है। इसके अनुसार फर्म का संतुलन बिन्दु A है जिस पर साम्य उत्पादन OQ है तथा प्रति इकाई कीमत OP है। संतुलन बिन्दु पर फर्म का आकार अनुकूलतम है और औसत उत्पादन लागत न्यूनतम है| संतुलन बिन्दु पर फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है क्योंकि यहाँ (AR = LAC) है।

फर्म के संतुलन बिन्दु पर:

LMC = MR = AR(P) = LAC = SAC = SMC

QA = QA =QA =QA = QA = QA

रेखाचित्र संख्या-16.10

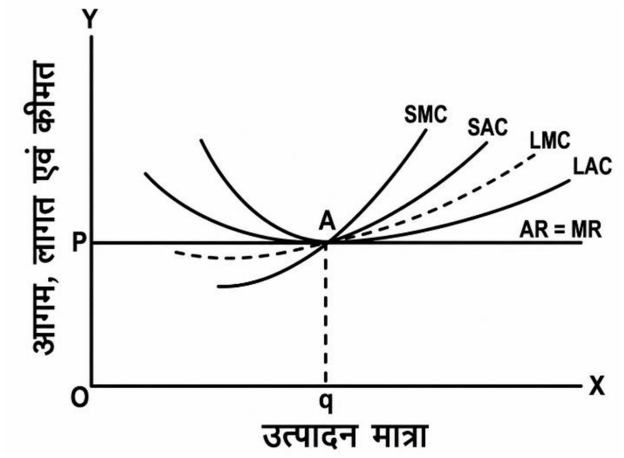

16.8 पूर्ण प्रतियोगिता का वास्तविक जीवन में अस्तित्व (Existence of Perfect Competition in Real Life)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने पूर्ण प्रतियोगिता को एक व्यावहारिक तथ्य माना था और उसके आधार पर उन्होंने मूल्य निर्धारण की समस्या का हल निकाला। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि पूर्ण प्रतियोगिता एक कोरी कल्पना है। यह वास्तविक जीवन में नहीं पायी जाती क्योंकि इसके लिये जिन दशाओं की आवश्यकता होती है, वे वास्तविक जीवन में नहीं पायी जाती हैं। निम्नांकित व्यावहारिक तथ्यों/बिन्दुओं से यह स्व-स्पष्ट हैः

(1) सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या अधिक नहीं होती। बहुत सी वस्तुओं के केवल कुछ ही उत्पादक या विक्रेता होते हैं और वे वस्तु के मूल्य को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार बहुत सी वस्तुओं के क्रेता बहुत बड़े और प्रभावशाली होते हैं जो अपने क्रय द्वारा मूल्य को प्रभावित करते हैं।

(2) वस्तु के विक्रय मूल्य के सम्बन्ध में विक्रेताओं में समझौते हो जाते हैं|

(3) वास्तविक जीवन में विभिन्न विक्रेताओं की वस्तुएँ मिलती-जुलती तो होती हैं, किन्तु समरूप नहीं होती।

(4) उद्योग में फर्मों के प्रवेश व बहिगर्मन पर बहुत सी प्रभावशाली बाधाएँ रहती हैं।

(5) सामान्यतया सभी क्रेताओं और विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है।

(6) वास्तविक जीवन में क्रेताओं और उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता देखने को नहीं मिलती है।

(7) बहुत सी वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में सरकार हस्तक्षेप भी करती है।

उक्त तथ्यात्मक आधारों पर यह कहा जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता एक भ्रम है। किन्तु यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि ऐसा होने पर भी इसका अध्ययन क्यों किया जाता है? वास्तव में, इसका अध्ययन निम्न कारणों से उचित तथा आवश्यक है-

(1) **वास्तविकता के ज्ञान की क्रमिक सीढ़ी** : यद्यपि वास्तविक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है, किन्तु वास्तविक स्थिति को समझना एक अत्यन्त जटिल कार्य होता है। अतः हम वास्तविकता से कुछ दूर हटकर सरल स्थितियों से (पूर्ण प्रतियोगिता से) प्रारम्भ करते हैं तथा धीर-धीरे नये-नये तत्त्वों तथा जटिल स्थितियों का समावेश करते जाते हैं। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन अर्थव्यवस्था की जटिलताओं को समझने के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

(2) **आदर्श अर्थव्यवस्था का दिशा-बोध** : पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन हमें एक ऐसी आदर्श अर्थव्यवस्था का ज्ञान कराता है जो कि सम्पूर्ण समाज के लिये अधिकतम लाभप्रद हो।

(3) **व्यवसायियों का पूर्ण प्रतियोगिता से दूर हटने के कारण का स्पष्टीकरण** : चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादकों या विक्रेताओं को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है, अतः ये लोग पूर्ण प्रतियोगिता से हटते या बचते हैं। ऐसा करके ही वे अतिरिक्त लाभ अर्जित करने का प्रयास कर पाते हैं।

(4) **अपूर्ण प्रतियोगिता का विश्लेषणात्मक अध्ययन सम्भव होना** : वास्तविक जीवन में अपूर्ण या एकाधिकारी प्रतियोगिता पायी जाती है, जो कि पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार का मिश्रण होती है। अतः स्पष्ट है कि इस वास्तविक स्थिति को समझने के लिये पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त, अपूर्ण प्रतियोगिता में लगभग उन्हीं आधारभूत विश्लेषणात्मक यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है, जिनका प्रयोग पूर्ण प्रतियोगिता में किया जाता है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता से प्राप्त अन्तदृष्टियों (Insights) का प्रयोग वास्तविक जगत की स्थितियों को समझने हेतु आवश्यक है।

(5) **अपूर्णता का ज्ञान** : पूर्ण प्रतियोगिता की वास्तविक जगत की स्थितियों से तुलना करके हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि इनमें कितनी अपूर्णता है। इस प्रकार वास्तविक बाजारों की अपूर्णता के अध्ययन के लिये यह एक माप का कार्य करती है।

16.9 पूर्ण प्रतियोगिता के लाभ (Gains from Perfect Competition)

प्रत्येक बाजार की स्थिति का अर्थव्यवस्था पर अपना प्रभाव होता है और इसी प्रभाव की दृष्टि से बाजार की अन्य स्थितियों के साथ उसकी तुलना करते हुए मूल्यांकन किया जाता है। जहाँ तक पूर्ण प्रतियोगिता का सम्बन्ध है, **लेफ्टविच** (Leftwich) ने इसके तीन दीर्घकालीन आर्थिक प्रभावों का उल्लेख किया है। ये हैं-

(1) कीमतें एवं औसत लागत (Prices and Average Costs) : पूर्ण प्रतियोगिता से युक्त बाजार की स्थिति में उपभोक्ताओं को वस्तुएँ जिस कीमत पर प्राप्त होती है, यह उनकी औसत उत्पादन लागत के बराबर होती है। यहाँ उद्योगों को प्रवेश की पूरी सुविधा प्राप्त होती है। यदि वस्तु की कीमतें उसकी औसत उत्पादन लागत से अधिक हुई, तो विशुद्व लाभ प्राप्त होगा और इससे आकर्षित होकर नई फर्में उद्योग में प्रवेश पाने के लिए प्रोत्साहित होंगी। नई फर्मों के प्रवेश के प्रभाव से औसत लागत एवं कीमतें परस्पर नजदीक आ जाती हैं। यह भी कहा जाता है कि वस्तु की कीमतें तथा औसत उत्पादन लागत समान ही रहना चाहिए। ऐसा होने पर ही उपभोक्ता को सन्तोष प्राप्त होता है।

आर्थिक क्रिया का लक्ष्य उपभोक्ता को अधिकतम सन्तोष प्रदान करना होता है। पूर्ण प्रतियोगिता में वह इसे प्राप्त कर लेता है क्योंकि उसे नीची कीमतों पर अधिक मात्रा में वस्तुएँ आसानी से प्राप्त होने लगती है।

(2) आर्थिक कार्यकुशलता (Economic Efficiency) : पूर्ण प्रतियोगिता वाले उद्योगों की कार्यकुशलता का स्तर पर्याप्त ऊँचा होता है। यह बाजार पर्याप्त बड़ा होता है तथा इसमें अनेक व्यक्तिगत फर्में कार्य करती हैं। इनमें से कोई भी एक फर्म वस्तु की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती। यहाँ वस्तु की प्रत्येक इकाई को यथासम्भव न्यूनतम लागत पर उत्पादित किया जाता है। प्रत्येक फर्म को बाध्य होकर संयन्त्र के अनुकूलतम पैमाने को उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर संचालित करना होता है। फलतः अधिकतम कार्यकुशलता प्राप्त होती है।

(3) विक्रय - संवर्द्धन (Sales Promotion) : पूर्ण प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म का वस्तु की कीमत पर प्रभाव नहीं रहता। उद्योग की सभी फर्मों द्वारा जिन वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, वे एक ही होती हैं। अतः उनकी बिक्री को बढ़ाने के लिए किए गए प्रयास निरर्थक ही रहते हैं। कोई भी व्यक्तिगत फर्म पूर्ण प्रतियोगितायुक्त बाजार में अपना माल बेचते समय बिक्री को प्रोत्साहित करने हेतु आक्रमणकारी विपणन व्यूह रचना अपनाना अनावश्यक मानती है। यहाँ खरीददारों के सामने वस्तु को प्राप्त करने के लिए अनेक विकल्प होते हैं। अतः यदि किसी विक्रेता द्वारा कीमत में वृद्धि की गई, तो उसकी बिक्री घटकर शून्य बिन्दु पर आ जाएगी।

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

1. पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ बताइए।
2. पूर्ण प्रतियोगिता का क्या आशय है?
3. पूर्ण प्रतियोगिता की दो विशेषताएँ लिखिए।
4. फर्म एवं उद्योग का अर्थ लिखिए।
5. पूर्ण प्रतियोगिता के दो लाभ बताइए।

16.10 सारांश (Summary)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की उस दशा को कहते हैं जिसमें एक वस्तु के अत्यधिक क्रेता और विक्रेता होते हैं, सभी फर्मों द्वारा समरूप वस्तु का उत्पादन किया जाता है, उद्योग में फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश और बहिर्गमन होता है, क्रेताओं एवं विक्रेताओं का बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है, उत्पादन साधनों में पूर्ण गतिशीलता पायी जाती है, तथा परिवहन लागतों की अनुपस्थिति होती है। पूर्ण प्रतियोगिता की उक्त विशेषताओं के कारण बाजार में वस्तु का प्रचलित मूल्य एक समान होता है। इस प्रतियोगिता में उद्योग कीमत निर्धारणकर्ता होता है और फर्म कीमत ग्रहणकर्ता होती है। फर्म का औसत आगम वक्र (माँग वक्र) और सीमान्त आगम वक्र आधार अक्ष के समानान्तर एक सरल रेखा होती है, जिसका आशय यह है कि फर्म अपनी वस्तु की मनचाही मात्रा कीमत में कमी किये बिना ही बेच सकती है। फर्म के साम्य निर्धारण की दो विधियाँ हैः (i) कुल आगम एवं कुल लागत विधि; तथा (ii) सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि। फर्म के साम्य निर्धारण हेतु प्रायः दूसरी विधि का ही प्रयोग किया जाता है। इस विधि के अनुसार फर्म का साम्य उत्पादन की उस मात्रा पर होता है, जहाँ: (i) MR =MC हो; तथा (ii) MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता हुआ ऊपर की तरफ उठता हुआ हो। साम्य उत्पादन मात्रा पर लाभ-हानि की स्थिति ज्ञात करने के लिए औसत आगम (AR) तथा औसत लागत (AC) का अन्तर निकाला जाता है। अल्पकाल में फर्म असामान्य लाभ, हानि तथा सामान्य लाभ की तीनों स्थितियों में से किसी भी स्थिति में हो सकती है, किन्तु दीर्घकाल में सभी फर्में सामान्य लाभ पर ही काम करती हैं। व्यवहार में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पायी जाती है।

16.11 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

- इस इकाई से विद्यार्थी पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं परिभाषा जान सके होंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएँ के बारे में जान सके होंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी फर्म एवं उद्योग का अर्थ जान सके होंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत मूल्य निर्धारण एवं उद्योग के लाभ के बारे में जान सके होंगे।

16.12 शब्दावली (Glossary)

- **पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition) :** पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है जिसमें क्रेता और विक्रेता बड़ी संख्या में समरूप वस्तु का विनिमय करते हैं; उनको बाजार की अवस्था का पूर्ण ज्ञान होता है तथा कीमत की प्रवृत्ति समस्त बाजार में एक समान होने की होती है।
- **उद्योग द्वारा कीमत निर्धारण (Price Determination by Industry) :** पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत का निर्धारण उद्योग की कुल माँग और कुल पूर्ति द्वारा होता है और फर्में केवल कीमत स्वीकार करने वाली (Price Acceptor) होती हैं।
- **फर्म (Firm) :** फर्म वस्तु विशेष का उत्पादन करने वाली व्यक्तिगत इकाई है। इसका उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है।
- **उद्योग (Industry) :** वस्तु विशेष का उत्पादन करने वाली सभी फर्मों के समूह को उद्योग कहा जाता है।
- **फर्म का सन्तुलन (Firm's Equilibrium) :** एक फर्म उस समय सन्तुलन में होगी जब उत्पादन में कमी करना या वृद्धि करना उसके लिए लाभकारी नहीं होता और जहाँ उसका लाभ अधिकतम होता है।
- **सन्तुलन की अवस्था (Conditions of Equilibrium) :** जब (i) MR = MC तथा; (ii) MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है।
- **सम विच्छेद बिन्दु (Break Even Point) :** वह बिन्दु होता है जहाँ फर्म का कुल आगम उसकी कुल लागत के बराबर (TR = TC) हो। इसे सामान्य लाभ का बिन्दु अथवा न लाभ और न हानि का बिन्दु (AR = AC) कहा जाता है।
- **उत्पादन निरस्ती बिंदु (Shut down point of production) :** यह वह बिन्दु होता है जहाँ फर्म का कुल आगम उसकी कुल परिवर्तनशील लागत के बराबर (TR = TVC) हो अथवा जहाँ औसत आगम और औसत परिवर्तनशील लागत बराबर (AR = AVC) हो।
- **सामान्य लाभ (Normal Profit) :** साम्य उत्पादन मात्रा पर जब फर्म का औसत आगम और औसत लागत एक दूसरे के बराबर (AR = AC) हो, तो फर्म सामान्य लाभ की स्थिति में होती है।
- **हानि (Loss) :** साम्य उत्पादन मात्रा पर जब फर्म का औसत आगम उसकी औसत लागत से कम (AR < AC) होता है, तो फर्म को हानि होती है।
- **असामान्य लाभ (Supernormal Profit) :** साम्य उत्पादन मात्रा पर जब फर्म का औसत आगम उसकी औसत लागत से अधिक (AR > AC) होता है, तो फर्म को असामान्य लाभ प्राप्त होता है।

16.13 स्व-परख प्रश्न (Self- Test Questions)

अति लघुरात्मक प्रश्न (Very-Short Answer Questions)

1 पूर्ण प्रतियोगिता से आपका क्या आशय है?

2 पूर्ण प्रतियोगिता की किन्हीं दो महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

3 उत्पादन निरस्ती बिन्दु को समझाइए।

4 सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि के अनुसार फर्म के संतुलन की शर्तों को स्पष्ट करें।

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

6. पूर्ण प्रतियोगिता किसे कहते हैं? इसके अंतर्गत अल्पकाल में उत्पादन की मात्रा एवं मूल्य का निर्धारण कैसे होता है?
7. पूर्ण प्रतियोगिता की परिभाषा दीजिए। इसकी विशेषताएँ क्या हैं। उदाहरण देकर समझाइये।
8. पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में उद्योग का साम्य स्पष्ट कीजिए।
9. ‘‘पूर्ण प्रतियोगिता एक भ्रम है’’? इस कथन की विवेचना कीजिए।

16.14 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- सिन्हा वी. सी. एवं सिन्हा पुष्पा : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, एड. 2005
- अग्रवाल पी.सी. एवं अग्रवाल एम.डी. : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, रमेश बुक डिपो, जयपुर
- Chhabra, Kapoor, Sharma : Managerial Economics, sun India publications, New Delhi, ed. 2012

16.15 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Dwivedi D.N. : Managerial Economics, vikas publications, Delhi, 2017
- Mithani D.M. : Principles of Economics, Himalaya publishing House, Mumbai, Edition 2017
- Prasad M.M. : Managerial Economies, Top publications, Delhi
- Pradeep kumar K.N. : Managerial Economics, R.N & Co. Publishers, Meerut
- डा.जे.सी. पन्त, डा. जे.पी.मिश्रा : अर्थशास्त्रः व्यष्टि एवं समष्टि, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, जनवरी 2020

16.16 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Link)

- https://www.economicsonline.co.uk
- https://www.link.springer.com
- https://en.m.wikipedia.org

इकाई - 17

एकाधिकारः कीमत एवं उत्पादन निर्धारण
(Monopoly: Price and Output Determination)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 एकाधिकार का अर्थ एवं परिभाषा

17.3 एकाधिकार की विशेषताएँ

17.4 एकाधिकार का वर्गीकरण

17.5 एकाधिकार का उद्देश्य एवं उत्पन्न होने के कारण

17.6 फर्म का साम्य

17.6.1 कुल आगम तथा कुल लागत विधि

17.6.2 सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत विधि

17.7 एकाधिकार के अंतर्गत अल्पकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

17.8 एकाधिकार के अंतर्गत दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

17.9 विभेदात्मक एकाधिकार/कीमत विभेद का अर्थ

17.10 कीमत विभेद के प्रकार

17.11 कीमत विभेद की आवश्यक शर्तें

17.12 विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

17.13 कीमत-विभेद का औचित्य

17.14 पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार में अन्तर

17.15 सारांश

17.16 अधिगम परिणाम

17.17 शब्दावली

17.18 स्व परख प्रश्न

17.19 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची

17.20 अन्य पठन सामग्री

17.21 वेब संसाधन / लिंक

17.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के पठन के पश्चात आप समझने में सक्षम होंगे :

- एकाधिकारी का अर्थ, प्रकार एवं विशेषताओं के बारे में;
- एकाधिकारी द्वारा अल्पकाल और दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण के बारे में;
- कीमत विभेद का अर्थ, प्रकार और इसकी आवश्यक शर्तों के बारे में;
- कीमत विभेद के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण के बारे में; तथा
- पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में अन्तर के बारे में।

17.1 प्रस्तावना (Introduction)

एकाधिकारी बाजार की वह स्थिति/ दशा है जिसमें प्रतिस्पर्धा का अभाव होता है। पूर्ण प्रतिस्पर्धा की भाँति यह भी बाजार की एक दूसरी चरम स्थिति है। इसके अलावा एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत विभेद की नीति अपनाई जा सकती है, जो अन्य किसी भी प्रकार के बाजार में संभव नहीं है। इस इकाई के अन्तर्गत हम अल्पकाल और दीर्घकाल में वस्तु की कीमत और उसकी उत्पादन – मात्रा के निर्धारण (अर्थात फर्म के साम्य) के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे तथा यह भी जानने का प्रयत्न करेंगे कि कीमत विभेद का क्या औचित्य है? अन्त में, पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में अन्तर को समझेंगे।

17.2 एकाधिकार का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Monopoly)

एकाधिकार बाजार की वह स्थिति होती है, जिसमें वस्तु का बाजार में एक ही विक्रेता होता है एवं उस वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध नहीं होती है। यह अंग्रेजी शब्द 'Monopoly' के दो शब्दों 'Mono' और 'Poly' से मिलकर बना है। **'Mono' का अर्थ है अकेला और 'Poly' का अर्थ है विक्रेता** अर्थात Monopoly का शाब्दिक अर्थ है- अकेला विक्रेता। अतः स्पष्ट है कि एकाधिकार से हमारा आशय बाजार की उस स्थिति से है जिसमें एक विशिष्ट वस्तु की पूर्ति पर किसी एक उत्पादक अथवा फर्म का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। बाजार में केवल एक ही उत्पादक अथवा विक्रेता होता है, इसलिए एकाधिकार की स्थिति में फर्म एवं उद्योग एक दूसरे के पर्यायवाची होते हैं। इस प्रकार एकाधिकार वाला उद्योग अनिवार्यतः एक फर्म वाला उद्योग होता है।

एकाधिकार की विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं में से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं:

प्रो. वाटसन के अनुसार, "एकाधिकारी एक वस्तु का अकेला उत्पादक होता है जिसकी कोई निकट स्थानानापन्न वस्तु नहीं है|" **लर्नर** (Lerner) के अनुसार, "एकाधिकारी का अभिप्राय उस विक्रेता से है जिसकी वस्तु का माँग वक्र गिरता हुआ होता है।" **सुमनर** (Sumner) के अनुसार, ''विशुद्ध एकाधिकारी से आशय माँग की लोच शून्य होने से है,जबकि शुद्ध प्रतियोगिता में माँग की लोच असीमित होती है।" **प्रो. बेन्हम** (Benham) के अनुसार, "एकाधिकारी अक्षरशः एक विक्रेता होता है और एकाधिकार शक्ति पूर्ति के सम्पूर्णत: नियन्त्रण पर आधारित होती है।"

संक्षेप में, हम विशुद्ध अथवा पूर्ण एकाधिकारी की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं-"एकाधिकारी से आशय उस एकाकी फर्म उद्योग से है, जहाँ पर फर्म की वस्तु एवं बाजार में बेची जाने वाली वस्तुओं के बीच में माँग की तिरछी लोच (Cross Elasticity of Demand) शून्य होती है।"

17.3 एकाधिकार की विशेषताएँ (Features of Monopoly)

एकाधिकारी की प्रमुख विशेषताएँ अग्रांकित हैं :

(1) **अकेला उत्पादक अथवा विक्रेता** (Single Producer or Seller) : एकाधिकारी अपनी वस्तु का अकेला उत्पादक अथवा विक्रेता होता है।

(2) **फर्म एवं उद्योग एक-दूसरे के पर्यायवाची** (Firm and Industry are Synonymous) : एकाधिकारी एक फर्म वाला उद्योग होता है, अतः फर्म एवं उद्योग दोनों एक-दूसरे के पर्यायवाची होते हैं !

(3) **प्रभावपूर्ण निकट प्रतिस्थानापन्न वस्तुओं का अभाव** (Absesnce of near Effective Substitutes) : एकाधिकारी ऐसी वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करता है जिसकी प्रभावपूर्ण निकट प्रतिस्थानापन्न वस्तुएँ बाजार में उपलब्ध नहीं होती हैं।

(4) **नई फर्मों के प्रवेश पर प्रभावपूर्ण रोक** (Effective Control on Entry of New Firms) : एकाधिकार की स्थिति में न केवल अल्पकाल में, बल्कि दीर्घकाल में भी नई फर्मों के प्रवेश पर प्रभावी रोक लगी होती है। एकाधिकार तभी तक बना रहता है, जब तक नई फर्में उद्योग में प्रवेश न कर सकें।

(5) **औसत आगम और सीमान्त आगम वक्र** (Average Revenue and Marginal Revenue) : एकाधिकारी फर्म का औसत आगम वक्र (AR) बायें से दायें नीचे की ओर ढ़ालू होता है, जो यह बताता है कि कम कीमत पर अधिक वस्तु बेची जा सकती है । सीमान्त आगम वक्र (MR) औसत आगम वक्र (AR) की तरह नीचे की ओर ढ़ालू होता है तथा औसत आगम वक्र से नीचे होता है। एकाधिकारी के औसत आगम व सीमान्त आगम वक्रों को रेखाचित्र 17.1 में दिखाया गया है।

रेखाचित्र संख्या – 17.1

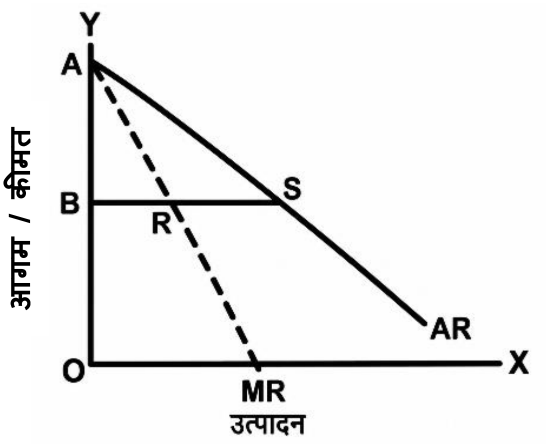

(6) **स्वतन्त्र कीमत नीति** (Independent Price Policy) : एकाधिकारी फर्म स्वतन्त्र कीमत नीति अपना सकती है अर्थात् वह अपनी इच्छानुसार कीमत में कमी या वृद्धि कर सकती है। औसत आगम वक्र का नीचे की ओर ढ़ालू होना ही यह प्रकट करता है कि फर्म कीमत निर्धारक (Price-maker) होती है ।

(7) **कीमत-विभेद सम्भव** (Price Discrimination Possible) : एकाधिकारी बाजार में कीमत-विभेद सम्भव है अर्थात् उत्पादक अपनी वस्तु को अलग-अलग क्रेताओं अथवा अलग-अलग स्थानों पर भिन्न - भिन्न कीमतों पर बेच सकता है।

(8) **बेलोचदार माँग** (Inelastic Demand) : एकाधिकारी को अपनी वस्तु की अपेक्षाकृत बेलोचदार माँग का सामना करना पड़ता है| इस कारण से इसका माँग वक्र अपेक्षाकृत अधिक ढ़ालू होता है|

(9) **वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण** (Full Control on Supply of Goods) : एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है अर्थात् वह अपनी वस्तु की पूर्ति को इच्छानुसार कम अथवा अधिक कर सकता है।

(10) **दीर्घकाल में असामान्य लाभ** (Abnormanl Profits in Long Period) : एकाधिकारी दीर्घकाल में असामान्य लाभ अर्जित करता है। कभी – कभी एकाधिकारी को अल्पकाल में हानि का भी सामना करना पड़ सकता है|

17.4 एकाधिकार का वर्गीकरण (Classification of Monopoly)

(अ) व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक एकाधिकार (Private and Public Monopoly) : व्यक्तिगत एकाधिकार वह होता है जिसमें फर्म का स्वामित्व व्यक्तिगत साहसी या संगठन के पास होता है| इसका प्रथम उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। इसके विपरीत, सार्वजनिक एकाधिकार वह है जिसमें स्वामित्व सरकार या सार्वजनिक संस्थाओं का होता है। इस प्रकार के एकाधिकारों का उद्देश्य सामाजिक कल्याण में वृद्धि करना होता है।

(ब) साधारण व विभेदात्मक एकाधिकार (Simple and Discriminating Monopoly): साधारण एकाधिकार उसे कहते हैं जब एकाधिकारी अपनी वस्तु के लिए विभिन्न उपभोक्ताओं से एक ही कीमत वसूल करता है| किन्तु विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत एकाधिकारी एक ही वस्तु के लिए विभिन्न उपभोक्ताओं से भिन्न-भिन्न कीमत वसूल करता है।

17. 5 एकाधिकार का उद्देश्य एवं उत्पन्न होने के कारण (objectives of Monopoly and Causes of Emergance)

एकाधिकारी अपनी वस्तु का क्रेताओं से अधिक मूल्य वसूल करता है तथा आवश्यकतानुसार मूल्य-विभेद की नीति भी अपनाता है। उसका प्रमुख उद्देश्य अपने लाभों को अधिकतम करना होता है। यहाँ अधिकतम लाभ से आशय प्रति इकाई अधिकतम लाभ से न होकर **अधिकतम कुल लाभ** से है। एकाधिकार उत्पन्न होने कारण निम्नलिखित हैं :

(i) **कच्चे माल का केन्द्रीयकरण :** जब किसी वस्तु के निर्माण के लिये आवश्यक कच्चा माल किसी एक फर्म के एकाधिकार में आ जाता है, तो एकाधिकार का जन्म हो जाता है।

(ii) **कानूनी एकाधिकार :** सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिये कुछ क्षेत्रों में कानून द्वारा एकाधिकार स्थापित किया जा सकता है, जैसे किसी शहर में पानी अथवा बिजली की पूर्ति व्यवस्था के लिये किसी एक फर्म को एकाधिकार दे देना ।

(iii) **विशेष कानूनी अधिकारों की प्राप्ति :** विशेष कानूनी अधिकार, जैसे पेटेन्ट, कॉपीराइट अथवा ट्रेडमार्क की प्राप्ति से एकाधिकार उत्पन्न होता है।

(iv) **अत्यधिक पूँजी अथवा संसाधनों की आवश्यकता :** कुछ उद्योगों, जैसे लोहा और इस्पात, जहाज उद्योग आदि में बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, जिससे नयी फर्म उस उद्योग में प्रवेश नहीं कर पाती है।

(v) **उत्पादन की गुप्त विधि अथवा दुर्लभ यन्त्रों का प्रयोग :** यदि किसी वस्तु के उत्पादन के लिये किसी विशेष विधि या तकनीक का प्रयोग किया जाता है जिसका ज्ञान अन्य उत्पादकों को नहीं होता, तो एकाधिकार उत्पन्न हो जाता है। इसी तरह यदि किसी वस्तु के उत्पादन के लिये आवश्यक यन्त्र दुर्लभ हैं, तो भी एकाधिकार स्थापित हो जाता है।

(vi) **व्यक्तिगत गुण :** जैसे एक डॉक्टर, वकील, अभिनेता आदि अपने व्यक्तिगत गुणों के कारण अपने-अपने क्षेत्रों में एकाधिकार की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं।

(vii) **व्यापारिक नाम :** जब किसी वस्तु उत्पादन के लिये किसी उत्पादक को बहुत यश या ख्याति प्राप्त हो जाती है, तो नये उत्पादक उस उद्योग में प्रवेश करने से डरने लगते हैं।

(viii) **फर्म की मूल्य नीति :** एक फर्म अपनी मूल्य नीति इस प्रकार निर्धारित कर सकती है जिससे कि नवीन फर्मों के उस क्षेत्र में प्रवेश के लिये आकर्षण ही न रहे।

(ix) **वस्तु विशेष का सीमित बाजार :** कुछ वस्तुओं का बाजार अत्यधिक सीमित होने के कारण भी नयी फर्मों के लिये उस उद्योग में प्रवेश के लिये आकर्षण नहीं रहता।

(x) **आयात-निर्यात नीति :** सरकार की आयात-निर्यात नीति भी किसी फर्म को एकाधिकार की स्थिति में ला सकती है। जैसे, सरकार यदि किसी वस्तु के आयात का अधिकार किसी फर्म को दे देती है, तो वह फर्म उस क्षेत्र में एकाधिकारी बन जायेगी।

(xi) **गलाकाट प्रतियोगिता :** कभी-कभी गलाकाट प्रतियोगिता से बचने के लिये विभिन्न फर्मों का एक संघ बन जाता है, जो कि उस उद्योग की उत्पादन और मूल्य नीति निर्धारित करता है।

(xii) **क्रेताओं का अज्ञान और आलस्य :** कुछ दशाओं में क्रेताओं में स्थानापन्न वस्तु की उपलब्धि के सम्बन्ध में ज्ञान न होने अथवा आलस्य के कारण उनके दूसरे विक्रेताओं के पास ना जाने के कारण भी किसी फर्म को एकाधिकार जैसी स्थिति प्राप्त हो सकती है।

स्व मूल्यांकन – प्रथम

1. निम्न में से एकाधिकार की विशेषताएँ नहीं हैं –

(अ) अकेला उत्पादक अथवा विक्रेता

(ब) स्वतंत्र कीमत नीति

(स) बेलोचदार मांग

(द) समरूप वस्तुएँ

2. निम्न में से एकाधिकार का वर्गीकरण कितने चरणों/भागों में किय गया हैं –

(अ) तीन चरण/भाग (ब) दो चरण/भाग

(स) पांच चरण/भाग (द) छ: चरण/भाग

3. निम्न में से एकाधिकार शब्द की उत्पत्ति हुई हैं –

(अ) Monopoly (ब) Monopolisation

(स) Monopolite (द) Monopolo

4. निम्न में से एकाधिकार का उद्देश्य है –

(अ) कच्चे माल का केन्द्रीकरण

(ब) कानूनी अधिकार

(स) व्यक्तिगत गुण

(द) उपर्युक्त सभी

उत्तर : 1 (द) 2 (ब) 3 (अ) 4 (द)

17.6 फर्म का साम्य (Equibrium of Firm)

एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म के साम्य को निर्धारण निम्न दो विधियों द्वारा किया जाता हैः

17.6.1 कुल आगम तथा कुल लागत विधि (Total Revenue and Total Cost Method) : पूर्ण प्रतियोगिता में कुल आगम रेखा उद्गम बिन्दु से शुरु होकर सीधी बढ़ती हुई होती है, जबकि एकाधिकार में यह रेखा उपर उठती हुई होती है क्योंकि एकाधिकारी का आगम पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में तीव्र गति से बढ़ता है। एकाधिकारी साम्य की स्थिति वहाँ होगी जहाँ उसे अधिकतम लाभ की प्राप्ति हो रही हो, अर्थात कुल आगम एवं कुल लागत की दूरी अधिकतम हो। अधिकतम दूरी ज्ञात करने के लिए एकाधिकारी उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर फर्म का कुल आगम एवं कुल लागत वक्र का अंतर ज्ञात करेगा। एक स्तर पर एकाधिकारी न लाभ न हानि की स्थिति में होगा जहाँ TR = TC हो तथा जहाँ कुल लागत, कुल आगम से अधिक होगी, वहाँ एकाधिकारी हानि की स्थिति में होगा| जिस बिन्दु पर कुल आगम, कुल लागत से अधिक होगी उस बिन्दु पर एकाधिकारी को लाभ की प्राप्ति होगी। सभी स्थितियों को रेखाचित्र -17.2 द्वारा स्पष्ट किया गया है|

रेखाचित्र संख्या – 17.2

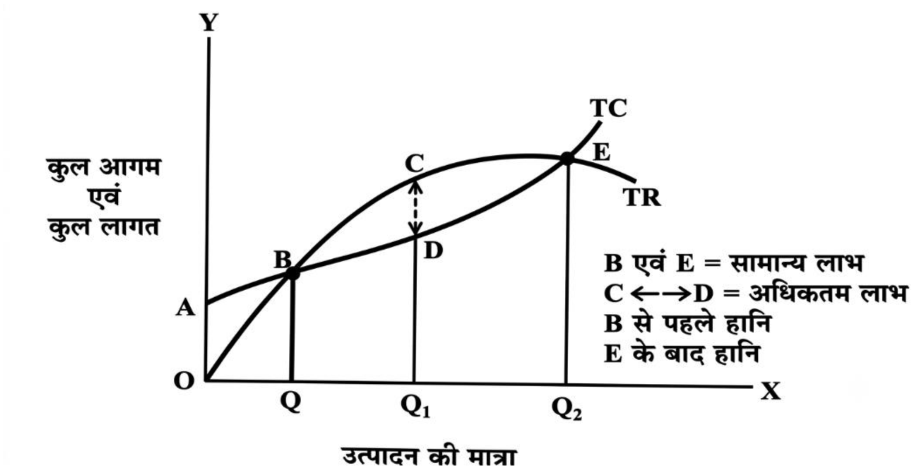

रेखाचित्र में TC कुल लागत रेखा तथा TR कुल आगम रेखा है। एकाधिकारी को सामान्य लाभ (न लाभ न हानि) बिन्दु B और E पर प्राप्त होता है क्योंकि इन दोनों बिन्दुओं पर कुल आगम एवं कुल लागत बराबर है। बिन्दु E के बाद हानि होगी तथा B बिन्दु से पहले भी हानि की स्थिति है। बिन्दु B तथा E के बीच में एकाधिकारी को लाभ की प्राप्ति हो रही है। सबसे अधिक लाभ OQ1 उत्पादन पर है। यहाँ पर TR न केवल TC से अधिक है, वरन इन दोनों का अंतर भी सर्वाधिक है| एकाधिकारी को OQ उत्पादन की मात्रा तक हानि, OQ_1 पर अधिकतम लाभ तथा उत्पादन की OQ_2 मात्रा पर न लाभ न हानि प्राप्त हो रही है। अगर एकाधिकारी OQ_2 से अधिक उत्पादन करेगा, तो भी हानि होगी। एकाधिकारी उत्पादन की OQ_1 मात्रा का निर्धारण करेगा, जहाँ उसे अधिकतम लाभ की प्राप्ति हो रही है।

17.6.2 सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि (Marginal Revenue and Marginal Cost Method) : इस विधि के अंतर्गत उत्पादन की जिस मात्रा पर एकाधिकारी का सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत बराबर होगी, वहीं एकाधिकारी साम्य की स्थिति में होगा। अल्पकाल में इस साम्य बिन्दु पर एकाधिकारी हानि, सामान्य लाभ एवं असामान्य लाभ की स्थिति में हो सकता है, परन्तु दीर्घकाल में अधिकतम लाभ कमाता हुआ ही होगा। एकाधिकारी को अधिकतम लाभ की प्राप्ति तब होगी, जब उसकी सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत बराबर होगी। एकाधिकारी की साम्यावस्था को रेखाचित्र 17.3 द्वारा स्पष्ट किया गया है|

रेखाचित्र संख्या - 17.3

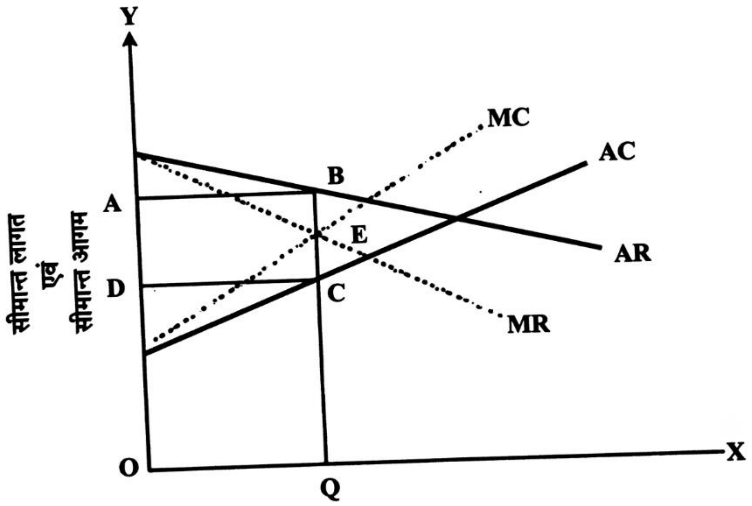

चित्रानुसार सीमान्त लागत (MC) तथा औसत लागत (AC) दोनों वक्र ऊपर की ओर चढ़ते हुए हैं। सीमान्त आगम (MR) तथा औसत आगम (AR) दोनों ही दायीं ओर झुके हुए हैं। जिस बिन्दु पर MR एवं MC दोनों बराबर होंगे, वहीं साम्य बिन्दु होगा। बिन्दु E पर MR एवं MC वक्र दोनों एक दूसरे को काट रहे हैं अर्थात् बराबर हैं। इस कारण बिन्दु E एकाधिकार का साम्य बिन्दु है। एकाधिकारी OQ मात्रा का उत्पादन करेगा क्योंकि उसे यहाँ ABCD लाभ की प्राप्ति हो रही है। उत्पादन की OQ मात्रा पर एकाधिकारी का औसत आगम OA (QB) है तथा औसत लागत OD (QC) है।

17.7 एकाधिकार के अंतर्गत अल्पकाल में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण (Price and Output Determination in Short Run Under Monopoly)

अल्पकाल में एकाधिकारी की जो उत्पादन क्षमता होती है, उसी पर वह उत्पादन करता है। वह उत्पादन के आकार में परिवर्तन नहीं कर सकता। इस कारण अल्प समय में एकाधिकारी माँग के अनुरुप पूर्ति में परिवर्तन नहीं कर सकता। इसलिए वस्तु के मूल्य निर्धारण में माँग का ही अधिक प्रभाव पड़ता है। एकाधिकारी अपने मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण वहाँ करता है, जहाँ उसकी सीमान्त लागत (MC) एवं सीमान्त आगम (MR) दोनों बराबर होती हैं। एकाधिकारी को हमेशा ही लाभ की प्राप्ति होती है, यह आवश्यक नहीं है| सीमान्त लागत व सीमान्त आगम के बराबर होने पर भी एकाधिकारी लाभ, हानि तथा न लाभ न हानि की स्थिति में हो सकता है। अल्पकाल में माँग का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि अल्पकाल में माँग के अनुरुप पूर्ति नहीं बदली जा सकती। इस कारण माँग कम होने पर कम कीमत निर्धारित की जाती है, कम कीमत के कारण एकाधिकारी को सामान्य लाभ ही मिल पाता है। जब माँग अधिक होती है, तो एकाधिकारी अधिक मूल्य का निर्धारण कर लेता है| इस कारण उसे अधिक लाभ की प्राप्ति हो जाती है। जब वस्तु की

माँग बहुत ही कम हो, तो हानि की स्थिति हो सकती है| माँग बेलोचदार होने के कारण एकाधिकारी को सामान्य लाभ एवं हानि की सम्भावनाएँ कम होती हैं, अधिकतर लाभ ही प्राप्त होता है। अल्पकाल की तीनों स्थितियों को निम्न चित्रों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **असामान्य लाभ (Abnormal Profit) :** जब एकाधिकारी का औसत आगम उसकी औसत लागत से अधिक होता है, तो वह असामान्य लाभ प्राप्त करता हुआ होता है। एकाधिकारी को अल्पकाल में प्राय: सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त होता है। इसे रेखाचित्र 17.4 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र संख्या - 17.4

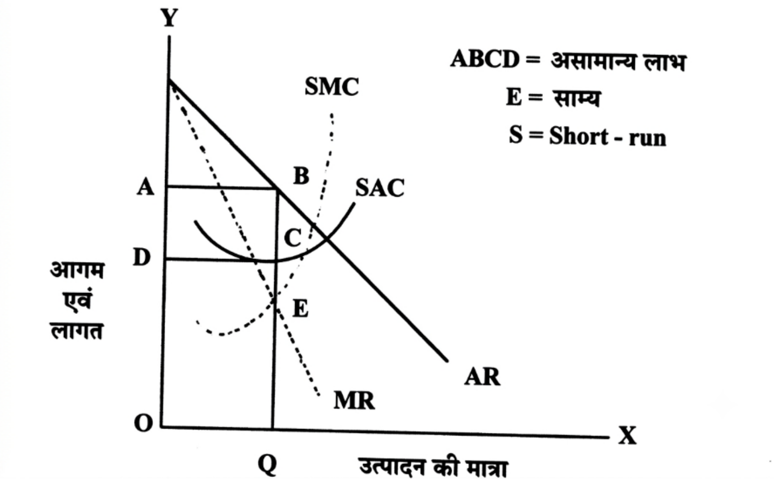

एकाधिकारी बिन्दु E पर साम्यावस्था में है जहां MC एवं MR दोनों बराबर हैं। एकाधिकारी की औसत लागत OD (QC) है, परन्तु उसका औसत आगम OA (QB) है। इस कारण एकाधिकारी को प्रति इकाई लाभ AD (BC) तथा कुल असामान्य लाभ ABCD प्राप्त हो रहा है।

2. **सामान्य लाभ (Normal Profit) :** अल्पकाल में जब एकाधिकारी का औसत आगम एवं औसत लागत दोनों साम्य बिन्दु पर बराबर होते हैं, तो वह सामान्य लाभ की स्थिति में होता है। इसे रेखाचित्र 17.5 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र संख्या - 17.5

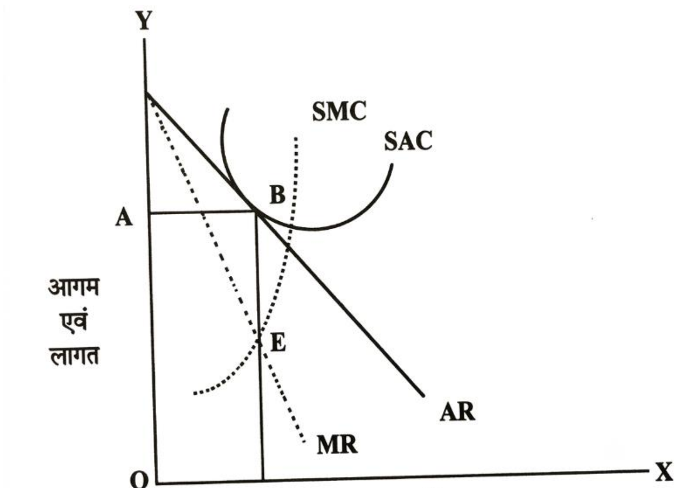

चित्रानुसार साम्य बिन्दु E है| इस पर MR और MC दोनों बराबर (QE) है तथा यहाँ औसत आगम और औसत लागत दोनों बराबर (QB) हैं| इसलिए फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है|

3. **हानि की स्थिति (Loss) :** माँग कम होने पर एकाधिकारी हानि की स्थिति में होता है। वस्तु की माँग कम होने पर उसे कम कीमत पर वस्तु को बेचना पड़ता है। इस कारण औसत लागत की तुलना में औसत आगम कम होता है। यह स्थिति प्राय: एकाधिकार में नहीं पाई जाती। रेखाचित्र 17.6 द्वारा हानि की स्थिति को स्पष्ट किया गया है|

रेखाचित्र संख्या – 17.6

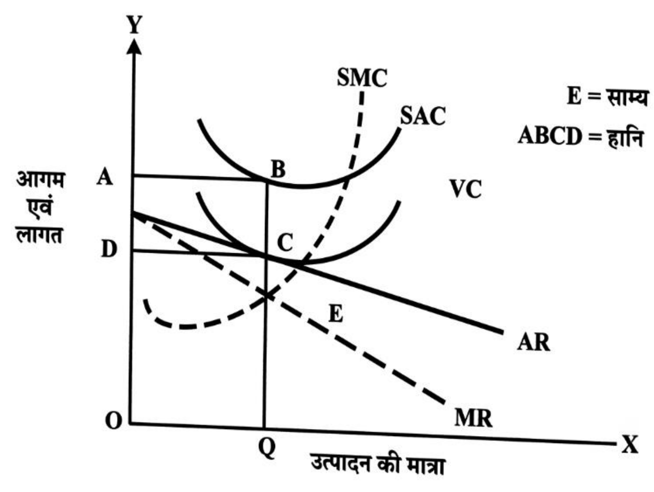

बिन्दु E पर MR एवं MC दोनों ही बराबर (QE) हैं। साम्य उत्पादन की OQ मात्रा पर एकाधिकारी का औसत आगम QC है तथा औसत लागत QB है| इस कारण फर्म को CB के बराबर प्रति इकाई हानि तथा ABCD के बराबर कुल हानि हो रही है|

17.8 एकाधिकार के अंतर्गत दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण (Price and Output Determination in Long-Run)

एकाधिकारी के पास दीर्घकाल में इतना अधिक समय होता है जिसमें वह न केवल परिवर्तनशील साधन, बल्कि स्थिर साधनों में भी परिवर्तन कर सकता है। माँग अधिक होने पर एकाधिकारी बड़े आकार का संयंत्र लगाकर उत्पादन बढ़ा लेता है। जब वस्तु की माँग कम हो जाती है, तो छोटे स्तर पर उत्पादन का निर्धारण करता है। अतः पूर्ति को अपनी माँग के अनुरुप बनाए रखने में सफल हो जाता है, इस कारण उसे लाभ की प्राप्ति होती है। जब एकाधिकारी लाभ की स्थिति में होता है, तो नई फर्में प्रवेश नहीं कर सकती, इस कारण उसे **दीर्घकाल में असामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।** दीर्घकाल में भी एकाधिकारी उस बिन्दु पर सन्तुलन में होता है, जहाँ उसकी दीर्घकालीन सीमान्त लागत तथा सीमान्त आगम एक दूसरे के बराबर (LMC = MR) होते हैं। साम्य बिन्दु पर इस स्थिति को रेखाचित्र संख्या 17.7 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र संख्या - 17.7

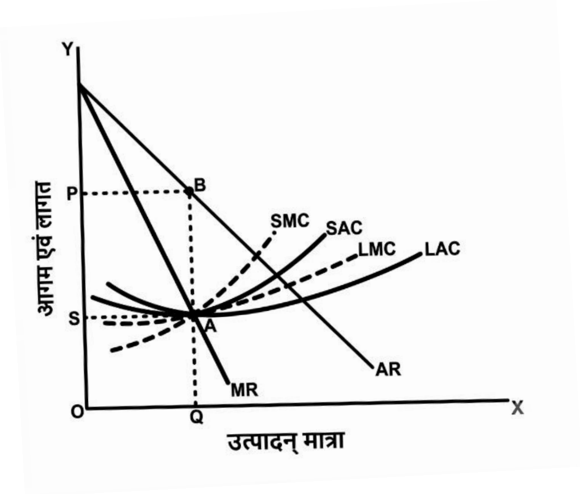

रेखाचित्रानुसार फर्म का साम्य बिंदु A है क्योंकि यहाँ पर MR = LMC (AQ = AQ) हैं तथा साम्य उत्पादन मात्रा OQ है| यहाँ पर एकाधिकारी को प्रति इकाई लाभ BA(PS) तथा कुल लाभ PSAB प्राप्त हो रहा है, जो अधिकतम है| OQ उत्पादन मात्रा पर एकाधिकारी फर्म का आकार अनुकूलतम है क्योंकि संतुलन बिंदु पर MR वक्र LAC वक्र को उसके न्यूनतम बिंदु A पर काटता है| दीर्घकाल में एकाधिकारी के संतुलन की स्थिति में केवल सीमान्त आगम, दीर्घकालीन सीमान्त लागत तथा दीर्घकालीन औसत लागत ही बराबर (MR = LMC = LAC) नहीं होते, वरन अल्पकालीन सीमान्त लागत और अल्पकालीन औसत लागत भी बराबर होते हैं| दीर्घकाल में संतुलन की स्थिति में **सूत्र रूप में :**

$$AR > MR = LMC = LAC = SMC = SAC$$

$$QB > QA = QA = QA = QA = QA$$

क्या एकाधिकारी कीमत सदैव स्पर्धात्मक कीमत से अधिक होती है? (Is monopoly price always higher than the competitive price?)

एकाधिकारी बाजार की विशेषताओं के कारण यह बात सच है कि **प्राय: एकाधिकारी कीमत प्रतिस्पर्धात्मक कीमत से ऊँची होती है, किन्तु सदैव ऐसा होना आवश्यक नहीं है| किन्तु निम्नांकित विशेष दशाओं में (विशेषकर अल्पकाल में) एकाधिकारी कीमत प्रतिस्पर्धात्मक कीमत से कम भी हो सकती है** :

1. यदि एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु कि माँग लोचदार हो तथा उसका उत्पादन उत्पत्ति वृद्धि नियम (लागत ह्रास नियम) के अन्तर्गत हो रहा हो ;
2. यदि एकाधिकारी उत्पत्ति के ऐसे बड़े पैमाने पर उत्पादन कर रहा हो, जिसके कारण (आंतरिक एवं बाह्य बचतों के कारण) प्रति इकाई औसत उत्पादन कम आती हो ;
3. अनेक बार एकाधिकारी शक्ति को नियन्त्रित करने वाले तत्त्वों कि क्रियाशीलता के कारण एकाधिकारी जान-बूझकर अपनी वस्तु की कीमत नीची रखता हो,जैसे

(i) सरकारी नियंत्रण एवं नियमन का डर,

(ii) स्थानापन्न वस्तुओं के आ जाने का डर,

(iii) उपभोक्ताओं के द्वारा प्रबल विरोध किये जाने पर

(iv) नई फर्मों के प्रवेश की आशंका|

4. **अन्य कारण :** (i) राशिपातन की नीति को सफल बनाना; तथा (ii) जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर वस्तु की नीची कीमत रखना|

17.9 विभेदात्मक एकाधिकार/कीमत विभेद का अर्थ (Meaning of Price Discrimination)

विभेदात्मक एकाधिकार का आशय एक विक्रेता द्वारा समान प्रकार की वस्तु या सेवा के लिये विभिन्न क्रेताओं या विभिन्न बाजारों से अलग-अलग मूल्य वसूल करने से होता है। **श्रीमती जॉन राबिन्सन** के अनुसार, ''एक ही नियन्त्रण के अन्तर्गत उत्पादित एक ही वस्तु को विभिन्न क्रेताओं को विभिन्न कीमतों पर बेचने का कार्य कीमत-विभेद कहलाता है।'' **प्रो.जे.एस. बेन** के शब्दों में, "कीमत-विभेद विशेषतया विक्रेताओं की उस क्रिया की ओर संकेत करता है जिसके द्वारा वह समान वस्तु का एक साथ ही विभिन्न क्रेताओं से भिन्न-भिन्न मूल्य वसूल करता है।'' **मिल्टन एच. स्पेन्सर** के शब्दों में, ''किसी विक्रेता द्वारा एक ही वस्तु के लिये उसी अथवा विभिन्न क्रेताओं से भिन्न-भिन्न कीमतें, तदनुसार लागतों में अन्तर के बिना, लेने की परिपाटी को कीमत विभेद कहा जा सकता है।'' इस प्रकार कीमत-विभेद के अन्तर्गत विभिन्न क्रेताओं से एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न मूल्य लिये जाते हैं। **प्रो. स्टिगलर** कीमत विभेद को विस्तृत अर्थ में परिभाषित करते हैं| उनके अनुसार, "कीमत विभेद का अर्थ है कि तकनीकी दृष्टि से मिलते – जुलते उत्पादों को इतनी भिन्न – भिन्न कीमतों पर बेचना, जो उनकी सीमान्त लागतों में अनुपात में नहीं होती अर्थात सीमान्त लागतों के अनुपात से अधिक होती है।"

17.10 कीमत-विभेद के प्रकार (Types of Price Discrimination)

कीमत-विभेद निम्न प्रकार के हो सकते हैं :

(1) **व्यक्तिगत मूल्य-विभेद :** इसके अन्तर्गत अलग-अलग ग्राहकों से अलग-अलग मूल्य लिये जाते हैं। जैसे एक कम्पनी अपने अंशधारियों व कर्मचारियों को रियायती दर पर माल बेच सकती है।

(2) **भौगोलिक मूल्य-विभेद :** जब भिन्न-भिन्न स्थानों पर वस्तु की भिन्न - भिन्न कीमतें रखी जाती हैं, तो इसे भौगोलिक मूल्य-विभेद कहते हैं। जब विक्रेता सम्पूर्ण देश को कई क्षेत्रों में बाँट देता है और प्रत्येक क्षेत्र के लिये अलग-अलग मूल्य निर्धारित करता है, तो उसे क्षेत्रीय मूल्य विभेद कहते हैं।

(3) **प्रयोगानुसार मूल्य-विभेद :** उदाहरण के लिये, विद्युत पूर्ति कम्पनी घरेलू प्रयोग और औद्योगिक प्रयोग के लिये भिन्न-भिन्न बिजली की दरें वसूल करती है।

(4) **वर्गानुसार मूल्य-विभेद :** कई बार विक्रेता धनी वर्ग से अधिक मूल्य वसूल करता है तथा गरीब वर्ग से कम। इसके औचित्य को सिद्ध करने के लिये वह अमीर वर्ग के प्रयोग की वस्तु पर पृथक् लेबल का भी प्रयोग कर सकता है।

(5) **समयानुसार मूल्य-विभेद :** उदाहरण के लिये, पहले मोबाइल फोन से दिन की अपेक्षा रात में टेलीफोन की दरें कम रखी जाती थीं। इसे Clock Time मूल्य-विभेद कहते हैं। इसी तरह सर्दी में बिजली के पंखों के मूल्य कम हो जाते हैं। इसे Calendar Time मूल्य-विभेद कहते हैं।

(6) **छूट देकर मूल्य-विभेद :** यह चार प्रकार की होती है : वितरक छूट, नकद छूट, मात्रा छूट, और गैर-मौसमी छूट। इसका प्रयोग बिक्री बढ़ाने के लिए किया जाता है।

17.11 कीमत-विभेद की आवश्यक शर्तें (Necessary Conditions for Price Discrimination)

कीमत विभेद निम्नांकित शर्तें पूरी होने पर ही सफल हो सकता है :

(1) **एकाधिकारी स्थिति (Monopoly) :** पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य-विभेद सम्भव नहीं है। इसके लिये विक्रेता फर्म का एकाधिकारी स्थिति में होना आवश्यक है। यदि उद्योग की समस्त फर्मों के बीच मूल्य-विभेद के लिये स्पष्ट समझौता हो गया है, तो भी मूल्य-विभेद सम्भव है।

(2) **पृथक बाजार (Separate Markets) :** मूल्य विभेद के लिये यह आवश्यक है कि वस्तु के दो या अधिक पृथक बाजार हों। वे एक दूसरे से पर्याप्त दूर होने चाहिये जिससे सस्ते बाजार से वस्तु महँगे बाजार में आसानी से नहीं पहुँच सके। विभिन्न बाजारों को पृथक रखने रखने वाले तथ्य निम्नलिखित हैं :

(अ) **क्रेताओं को विशेषतायें (Characteristics of buyers) :**

(i) **क्रेताओं की अज्ञानता :** यदि क्रेताओं को पृथक्-पृथक् मूल्य लिये जाने का ज्ञान न हो, तो मूल्य-विभेद संभव है।

(ii) **क्रेताओं की अविवेकपूर्ण धारणा :** यदि क्रेता अधिक मूल्य को वस्तु की अच्छी किस्म का प्रतीक मानते हैं, तो मूल्य-विभेद संभव है।

(iii) **बहुत थोड़ा मूल्यान्तर :** बहुत से क्रेता मूल्यों में थोड़े अन्तर की ओर ध्यान नहीं देते।

(ब) **वस्तु या सेवा की प्रकृति :** यदि वस्तु एक प्रत्यक्ष सेवा है, जैसे डाक्टर या वकील की सेवा, तो मूल्य-विभेद सफलतापूर्वक चल सकता है।

(स) **क्रय शक्ति में विभिन्नता :** बहुत से विक्रेता, जैसे डाक्टर, वकील आदि अपनी वस्तु या सेवा के क्रेताओं से उनकी हैसियत के अनुसार मूल्य वसूल करते हैं।

(द) **भौगोलिक दूरी और प्रशुल्क बन्धन :** दो बाजारों के बीच दूरी अधिक होने पर परिवहन लागतों के कारण उनमें समान वस्तु भिन्न - भिन्न मूल्यों पर बेची जा सकती है। इसी तरह दो देशों के बीच सीमा-शुल्कों के कारण भी एक वस्तु के भिन्न - भिन्न मूल्य पाये जा सकते हैं।

(य) **सरकारी नियम :** कुछ दशाओं में सरकार नियम बनाकर मूल्य-विभेद को सम्भव बनाती है। उदाहरण के लिये, एक बिजली कम्पनी औद्योगिक व घरेलू प्रयोग के लिये बिजली की दरों में अन्तर रख सकती है।

(र) **आदेश पर विक्रय :** यदि माल ग्राहक के आदेश पर तैयार किया जाता है, तो प्रायः उसे यह पता नहीं हो पाता है कि समान प्रकार की वस्तु के लिये पहले क्रेताओं ने कितना मूल्य दिया।

(3) **माँग की लोच में अन्तर (Difference in Elasticity of Demand) :** मूल्य-विभेद के लिये विभिन्न बाजारों में वस्तु की माँग की लोच में अन्तर होना चाहिये, ताकि जिस बाजार में वस्तु की माँग बेलोचदार या कम लोचदार है, वहाँ वस्तु का ऊँचा मूल्य निर्धारित किया जा सकता है तथा जिस बाजार में वस्तु की माँग अधिक लोचदार है, वहाँ वस्तु का नीचा मूल्य निर्धारित किया जा सकता है। ऐसा करने पर ही एक एकाधिकारी अपने लाभों को अधिकतम कर सकता है।

17.12 विभेदात्मक एकाधिकार के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण (Price and Output Determination under Price Discrimination)

सामान्य एकाधिकारी की भाँति विभेदात्मक एकाधिकारी का उद्देश्य भी अपने लाभों को अधिकतम करना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह सामान्य एकाधिकारी की तरह उतना उत्पादन करता है, जिस पर उसके कुल उत्पादन का सीमान्त आगम और सीमान्त लागत बराबर (MR=MC) होते हैं। मान लीजिये कि एक भेदपूर्ण एकाधिकारी अपनी वस्तु केवल 'अ' और 'ब' दो बाजारों में ही बेचता है तथा 'अ' बाजार का सीमान्त आगम MR_{1}, 'ब' बाजार का सीमान्त

आगम MR_2 तथा फर्म के कुल उत्पादन की सीमान्त लागत, MC है, तो साम्य की स्थिति में MR_1=MR_2=MC होता है। यदि ’अ’ बाजार का सीमान्त आगम ’ब’ बाजार के सीमान्त आगम से कम है, तो भेदपूर्ण एकाधिकारी अपने लाभों को अधिकतम करने के लिए ’अ’ बाजार से कुछ वस्तुयें हटाकर ’ब’ बाजार में ले जायेगा तथा यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि दोनों बाजारों का सीमान्त आगम बराबर न हो जाय। इसी तरह यदि किसी बाजार में सीमान्त आगम फर्म की सीमान्त लागत से कम है, तो एकाधिकारी फर्म इस बाजार में बिक्री को कम करके अपने लाभ में वृद्दि करेगी। इसके विपरीत, यदि किसी बाजार में सीमान्त आगम फर्म की सीमान्त लागत से अधिक है, तो एकाधिकारी फर्म इस बाजार में बिक्री बढ़ाकर अपने लाभ में वृद्दि करेगी। इस प्रकार विभिन्न बाजारों में बिक्री की मात्रा घटा-बढा़कर फर्म प्रत्येक बाजार के सीमान्त आगम को सीमान्त लागत के बराबर करती है।

विभेदात्मक एकाधिकारी के मूल्य निर्धारण को **रेखाचित्र 17.8** द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र में ‘अ’ बाजार के सीमान्त आगम MR_1 और ’ब’ बाजार के सीमान्त आगम MR_2 को जोड़कर कुल बाजार की सीमान्त आगम रेखा MR प्राप्त की गयी है। फर्म का सन्तुलन उस बिन्दु पर होता है, जहां पर कि फर्म की कुल सीमान्त आगम और सीमान्त लागत बराबर (MR=MC) हों। चित्र के तीसरे भाग में E बिन्दु पर कुल सीमान्त आगम(MR) और सीमान्त लागत (MC) बराबर है, इसलिये वस्तु की OQ मात्रा फर्म के सन्तुलन की मात्रा होगी। अब विभेदात्मक एकाधिकारी इस कुल उत्पादन को अपने दोनों बाजारों ’अ’ और ’ब’ में इस प्रकार वितरित करेगा कि दोनों बाजारों में सीमान्त आगम आपस में बराबर हो तथा प्रत्येक बाजार का सीमान्त आगम फर्म की सीमान्त लागत के बराबर हो। इसको ज्ञात करने के लिये कुल बाजार के साम्य बिन्दु P से E क्षैतिजिक रेखा खींची गई है जो कि 'अ' बाजार की सीमान्त आगम रेखा MR_1 को F बिन्दु पर, तथा 'ब' बाजार की सीमान्त आगम रेखा MR_2 को C बिन्दु पर काटती है। 'अ' और 'ब' बाजारों के साम्य बिन्दुओं F और C से X-अक्ष पर लम्ब गिरा देने पर इन दोनों बाजारों में वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा ज्ञात हो जायेगी। चित्र में विभेदकारी एकाधिकारी अपने कुल उत्पादन OQ की OQ_1 मात्रा को 'अ' बाजार में तथा OQ_2 मात्रा को 'ब' बाजार में बेचेगा। इस स्थिति में दोनों बाजारों के सीमान्त आगम आपस में बराबर हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विभेदात्मक एकाधिकारी की संतुलन स्थिति में :

$$MR_1 = MR_2 = AMR = MC$$
$$Q_1F = Q_2C = QE = QE$$

रेखाचित्र संख्या - 17.8

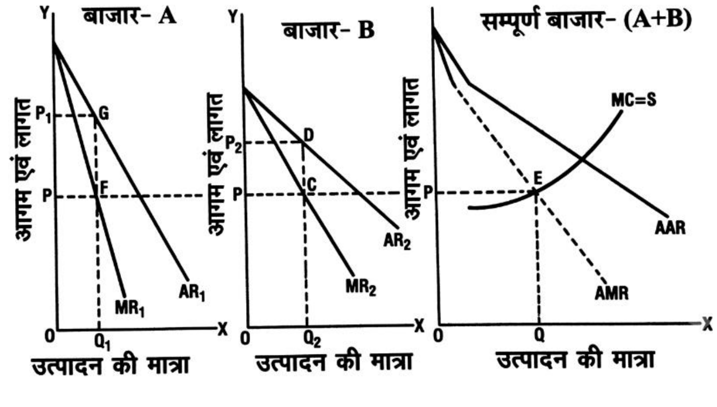

'अ' बाजार में माँग की लोच कम तथा 'ब' बाजार में माँग की लोच अधिक होने के कारण 'अ' बाजार में मूल्य Q_1G 'ब' बाजार में मूल्य Q_2Dसे अधिक है। कीमत-विभेद की नीति अपनाकर एक विभेदात्मक एकाधिकारी अपने कुल लाभ को बढ़ाने में सफल हो जाता है।

17.13 कीमत-विभेद की वांछनीयता/औचित्य (Justification of Price Discrimination)

सामान्यतया कीमत -विभेद को बुरा माना जाता है क्योंकि प्रथम, तो उपभोक्ताओं के बीच किसी भी प्रकार का भेदभाव सामाजिक न्याय की दृष्टि से उचित नहीं होता तथा दूसरा, कीमत-विभेद करने वाला एकाधिकारी होता है, जिसका मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है। अतः यह समझा जाता है कि वह मूल्य-विभेद की नीति अपनाकर उपभोक्ताओं का शोषण करता है। किन्तु वास्तव में, कीमत विभेद उपभोक्ताओं व समाज के लिये कहां तक लाभदायक है और कहाँ तक हानिकारक, यह इस बात पर निर्भर करता है कि यह किन परिस्थितियों व किस उद्देश्य से किया जाता है? निम्नलिखित परिस्थितियों में कीमत-विभेद वांछनीय माना जायेगाः

(1) **सार्वजनिक सेवाओं में :** रेल, डाक, तार आदि सार्वजनिक सेवाओं में मूल्य-विभेद उचित माना जाता है । उदाहरण के लिये, डाक, विभाग मनीआर्डर, रजिस्ट्री, पार्सल आदि की दरें ऊँची रखकर सामान्य जनता को सस्ती दर पर पोस्टकार्ड प्रदान करता है, तो यह उचित ही है क्योंकि इससे आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है।

(2) **अतिरिक्त उत्पादन को खपाना :** यदि कोई उत्पादक अपने अतिरिक्त उत्पादन को विदेशी बाजार में बेचने के लिये मूल्य - विभेद करता है, तो इसे उचित कहा जायेगा क्योंकि इससे उसके उपयोग का विस्तार होता है, बड़े पैमाने के उत्पादन की मितव्ययतायें प्राप्त होती हैं, देश के साधनों का अधिक गहनता से प्रयोग सम्भव होता है तथा समाज को अधिक रोजगार और आय की प्राप्ति होती है। यह मूल्य विभेद तब और भी अधिक लाभदायक सिद्ध होता है, जब उद्योग में घटती लागतों का नियम लागू हो रहा हो।

(3) **वस्तु या सेवा का उत्पादन सम्भव बनाना:** कुछ परिस्थितियों में वस्तु या सेवा के उत्पादन को सम्भव बनाने के लिये मूल्य - विभेद किया जाता है, जैसे देश के रेगिस्तानी भागों में **ऊंचा किराया लेकर बस या रेल सेवा प्रदान** की जाती है, तो इसे उचित माना जायेगा क्योंकि ऐसा न करने पर देश का वह भाग इस सेवा से वंचित रह जायेगा।

(4) **आर्थिक असमानता कम करना :** यदि कीमत विभेद द्वारा धनवानों से अधिक और निर्धनों से कम मूल्य लिया जाता है, तो यह समाज के लिये हितकर होगा क्योंकि इससे आय असमानता को कम करने में सहायता मिलती है।

(5) **कुल उत्पादन में वृद्धि :** यदि मूल्य-विभेद द्वारा उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग होता है, तो यह सामाजिक दृष्टि से उचित ही होगा।

17.4 एकाधिकार एवं पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना (Comparison Between Monopoly and Perfect Competition)

एकाधिकारी अकेला उत्पादक होता है, जबकि पूर्ण प्रतियोगिता में बहुत अधिक उत्पादक होते हैं। एकाधिकार शक्ति को नियन्त्रित करने की आवश्यकता है, जबकि पूर्ण प्रतियोगिता को नहीं। इन दोनों की तुलना करने के लिए इनके अन्तर का अध्ययन करना आवश्यक है। एकाधिकार एवं पूर्ण प्रतियोगिता में अन्तर निम्नानुसार है :

क्रम सं.	अन्तर का आधार	एकाधिकार	पूर्ण प्रतियोगिता
1	विक्रेता	इसमें केवल एक ही विक्रेता होता है।	इसमें बहुत अधिक विक्रेता पाये जाते हैं।
2	फर्मो का प्रवेश	एकाधिकार में फर्म एवं उद्योग एक हीहोता है। फर्मो के प्रवेश का प्रश्न ही नहीं उठता।	फर्मो का प्रवेश उद्योग में स्वतन्त्र रूप से होता है।
3	माँग	बेलोचदार होती है।	इसमें माँग पूर्णतया लोचदार होती है।
4	स्थानापन्न वस्तु	स्थानापन्न वस्तु नहीं होती।	पूर्ण स्थानापन्न वस्तुएँ होती हैं।
5	बाजार का ज्ञान	इसमें क्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान नहीं होता।	इसमें क्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है।
6	मूल्य	वस्तुओं का मूल्य अधिक होता है।	इसमें वस्तुओं का मूल्य एकाधिकार की तुलना में कम होता है।
7	प्रभाव	एकाधिकारी अपनी क्रियाओं से वस्तु के मूल्य को प्रभावित कर सकता है।	इसमें कोई एक विक्रेता वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता।
8	दीर्घकाल में लाभ	एकाधिकारी दीर्धकाल में असामान्य लाभ कमाता है।	पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्धकाल में सामान्य लाभ की स्थिति होती है।
9	आगम वक्र	बाएँ से दायें नीचे की और गिरते हुए होते हैं|	आधार अक्ष के समानान्तर रेखा के रूप में होते हैं।
10	कीमत पर नियंत्रण	उत्पादक का वस्तु की कीमत पर नियन्त्रण होता है।	उत्पादक का वस्तु की कीमत पर नियन्त्रण नहीं होता हैं।

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

1. एकाधिकार का अर्थ बताइए।
2. एकाधिकार को परिभाषित कीजिये।
3. एकाधिकार की दो विशेषताएँ लिखिए।
4. कीमत विभेद के कितने प्रकार होते हैं?
5. एकाधिकार के दो उद्देश्य लिखिए।

17.15 सारांश (Summary)

एकाधिकार में किसी फर्म की उत्पादित वस्तु की कोई निकट प्रतिस्थापन वस्तु नहीं होती, जिसके कारण उस वस्तु की कीमत में परिवर्तन का अन्य वस्तुओं की कीमत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता और ना ही उस वस्तु की कीमत पर अन्य वस्तुओं के कीमत परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है। एकाधिकार में नई फर्मो के प्रवेश पर प्रभावी रोक लगी होती है एवं इसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है। एकाधिकार में फर्म की साम्यवस्था में फर्म को प्रायः अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म को असामान्य लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि हो सकती है एवं दीर्धकाल में फर्म आवश्यकतानुसार उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में परिवर्तन कर सकती है तथा अपने संयन्त्र के आकार को आवश्यकतानुसार छोटा-बड़ा कर सकती है। एकाधिकारी होने के कारण वह दीर्धकाल में इस प्रकार से व्यवस्था करेगा कि उसे असामान्य लाभ प्राप्त हो। जब एक एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत सभी बाजारो में एक सी ही रखे तो, ऐसी

स्थिति को सरल एकाधिकार की स्थिति कहा जाता है, किन्तु जब वह अलग-अलग क्रेताओं से अलग-अलग कीमत प्राप्त करता है, तो इसे कीमत विभेद अथवा विभेदात्मक एकाधिकार कहा जाता है। डॉक्टर, वकील तथा व्यवसाय सलाहकार कभी-कभी अपने ग्राहक से उनकी आय के अनुसार अपनी सेवाओं की फीस वसूल करते हैं। निर्माता प्रायः अपने माल को घरेलु बाजार की अपेक्षा विदेशी बाजार में कम कीमत पर बेचते हैं। अतः कीमत विभेद की स्थिति तब होगी, जब एक उत्पादक वस्तु को विभिन्न ग्राहकों को विभिन्न कीमतों पर बेचता है। एकाधिकारी में भी साम्य निर्धारण पूर्ण प्रतिस्पर्धा की भांति दो विधियों (कुल आगम एवं लागत विधि तथा सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि) द्वारा किया जाता है|

17.16 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

- इस इकाई से विद्यार्थी एकाधिकार का अर्थ एवं परिभाषा जान सके होंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी एकाधिकार की विशेषताएँ के बारे में जान सके होंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी एकाधिकार का का उद्देश्य एवं उत्पन्न होने के कारणके बारे में जान सके होंगे।

17.17 शब्दावली (Glossary)

- **एकाधिकार :** एकाधिकार से आशय बाजार की उस परिस्थिति से है जिसमें एक विशिष्ट वस्तु की पूर्ति पर किसी एक उत्पादक अथवा फर्म का पूर्ण नियन्त्रण होता है।
- **कीमत विभेद :** कीमत विभेद उस क्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा एकाधिकारी अपने द्वारा उत्पादित समान वस्तु की विभिन्न क्रेताओं से विभिन्न कीमतें वसूल करता है।

17.18 स्व-परख प्रश्न(Self-evaluation Test)

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Questions)

1 एकाधिकारी से आपका क्या आशय है?

2 कीमत विभेद को आप कैसे परिभाषित करेंगे|

3 एकाधिकारी की सर्वाधिक दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ बताइए|

4 सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि के अनुसार एकाधिकारी के संतुलन की शर्तें बताइए|

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. एकाधिकार किसे कहते हैं? इसके अंतर्गत अल्पकाल में उत्पादन की मात्रा एवं मूल्य का निर्धारण कैसे होता है?
2. एकाधिकार की परिभाषा दीजिए। इसकी विशेषताएँ क्या हैं? उदाहरण देकर समझाइए।
3. विभेदात्मक एकाधिकार अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन का निर्धारण कैसे किया जाता है? समझाइए|

17.19 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- सिन्हा वी.सी. एवं सिन्हा पुष्पा : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स,2005
- अग्रवाल पी.सी. एवं अग्रवाल एम.डी. : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, रमेश बुक डिपो, जयपुर
- Chhabra, Kapoor, Sharma : Managerial economics, Sun India publications, New Delhi, ed. 2012
- सिंह एवं त्यागी : व्यावसायिक अर्थशास्त्र, हिमालय पब्लिकेशन, मुंबई, 2009.

17.20 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Dwivedi D.N. : Managerial Economics, Vikas Publications, Delhi, 2017
- Mithani D.M. : Principles of Economics, Himalaya publishing House, Mumbai, Edition 2017
- Prasad M.M. : Managerial Economics, Top publications, Delhi.
- Pradeep kumar K.N. : Managerial Economics, R.N& Co. Publishers, meerut

17.21 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Link)

- https://www.economicsonline.co.uk
- https://www.link.springer.com
- https://en.m.wikipedia.org

इकाई - 18

अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता : मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण (Imperfect Competition or Monopolistic Competition: Price and Output Determination)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का अर्थ एवं परिभाषा

18.3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की विशेषताएँ

18.4 अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण

18.5 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण या फर्म का साम्य

18.5.1 कुल आगम तथा कुल लागत वक्र विधि

18.5.2 सीमांत आगम व सीमांत लागत वक्र विधि

18.6 समूह संतुलन

18.6.1. अल्पकालीन अस्थिर साम्य

18.6.2. दीर्घकालीन स्थिर साम्य

18.7 पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता का तुलनात्मक अध्ययन

18.8 एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का तुलनात्मक अध्ययन

18.9 सारांश

18.10 अधिगम परिणाम

18.11 शब्दावली

18.12 स्व परख प्रश्न

18.13 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची

18.14 अन्य पठन सामग्री

18.15 वेब संसाधन/लिंक

18.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- अपूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का अर्थ समझ सकेंगे।
- एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की विशेषताओं से विज्ञ हो सकेंगे।
- एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन के निर्धारण के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

- पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के मध्य विद्यमान अंतर को ठीक से समझ सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

वास्तव में, पूर्ण प्रतियोगिता और शुद्ध एकाधिकार दोनों ही बाजार की काल्पनिक दशाएँ हैं। व्यावहारिक जीवन में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पाई जाती है, जो पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार की चरम के बीच की स्थिति है, जिसकी अमरीकी अर्थशास्त्री **प्रो. चैम्बरलेन** ने 'एकाधिकृत प्रतियोगिता' के रूप में व्याख्या की है; जबकि **श्रीमती जान रॉबिन्सन** ने इसे 'अपूर्ण प्रतियोगिता' कहा है। यद्यपि दोनों की विचारधाराओं में थोड़ा सा अन्तर है, लेकिन व्यवहार में हम अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता को एक समान ही मानकर चलते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता लगभग एक काल्पनिक स्थिति है। व्यावहारिक जीवन में इसका कुछ भी महत्त्व नहीं होता। इसके विपरीत, अपूर्ण प्रतियोगिता एक वास्तविक स्थिति है और व्यावहारिक जीवन में इसका बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत द्वयाधिकार (Duopoly), अल्पाधिकार (Oligopoly) तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Monopolistic competition) तीनों ही बाजार स्थितियां आती हैं, किन्तु व्यवहार में अधिकांश वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत ही होता है, इसलिए अपूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता को समानार्थी अर्थ के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इस इकाई में हम एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

18.2 अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Imperfect Competition or Monopolistic Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता से आशय बाजार की ऐसी स्थिति से है जिसमें पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार दोनों की मिली जुली विशेषताएँ मौजूद होती हैं। ऐसी स्थिति में बाजार में अनेक फर्में होती हैं, जो ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करती हैं, जो एक दूसरे की निकट स्थानापन्न होती हैं। इसी कारण फर्मों को एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा भी करनी पड़ती है। यदि भारतीय बाजार का उदाहरण लें, तो टूथपेस्ट, नहाने का साबुन आदि ऐसे उत्पाद हैं, जिनके उत्पादकों को अपना उत्पाद ट्रेडमार्क या 'ब्रांड नेम' के आधार पर बेचना पड़ता है। ये उत्पाद गुण, रूप, रंग, आकार, वजन, स्वाद आदि में यद्यपि एक दूसरे के स्थानापन्न होते हैं, लेकिन पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते। आर्थिक सिद्धांत में इसे समूह संतुलन (Group equilibrium) भी कहा जाता है।

प्रो-लर्नर के अनुसार : ''अपूर्ण प्रतियोगिता उस समय होती है जब एक विक्रेता को उसके उत्पाद के गिरते हुए माँग वक्र का सामना करना पड़ता है''।

प्रो. लेफ्टविच के अनुसार : 'एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा के बाजार में एक विशेष किस्म की वस्तु के अनेक विक्रेता होते हैं और एक विक्रेता की वस्तु किसी न किसी रूप में दूसरे विक्रेता की वस्तु से भिन्न होती है। जब विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि एक विक्रेता के कार्यों का दूसरे विक्रेता पर कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं पड़े, तो उद्योग एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा का उद्योग बन जाता है।

18.3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की विशेषताएँ (Characteristics of Monopolistic Competition)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ हैं:

1. **विक्रेताओं की अधिक संख्या (Large number of sellers) :** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में उत्पाद से सम्बन्धित विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है, लेकिन कोई भी विक्रेता कुल उत्पादन का इतना अधिक हिस्सा उत्पादित नहीं करता कि बाजार पर नियंत्रण कर सके। प्रत्येक फर्म को अपनी वस्तु विभेद की सीमा तक एकाधिकार प्राप्त होता है जिससे वह अपने उत्पाद की कीमत को आंशिक रूप से प्रभावित कर सकता है|
2. **विभेदी उत्पाद (Differentiated product) :** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में प्रत्येक विक्रेता का उत्पाद दूसरे विक्रेता से भिन्न होता है। यद्यपि ये वस्तुएँ एक दूसरे की निकट स्थानापन्न होती हैं, तथापि वे पूर्ण स्थानापत्र नहीं होती हैं। **वस्तु विभेद एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता** होती है| वस्तु विभेद वास्तविक अथवा मनोवैज्ञानिक भी हो सकता है| वस्तु विभेद वस्तु की भौतिक विशेषताओं में अंतर, विक्रय करने के ढंग में अंतर तथा विक्रय विस्तार एवं विज्ञापन करने के तरीके में अन्तर के कारण हो सकता है|
3. **फर्मों के प्रवेश एवं बहिर्गमन की सुगमता (Easy entry and exit of the firms) :** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में सरल उत्पादन तकनीक, छोटे आकार की फर्म, तथा कम पूँजी की आवश्यता के कारण फर्मों के प्रवेश एवं बहिर्गमन में कठिनाई नहीं आती है। किन्तु व्यवहार में वस्तु विभेद, तकनीकी अनुभव तथा वित्तीय कठिनाइयों के कारण फर्मों का प्रवेश एवं बहिर्गमन पूर्ण प्रतियोगिता की भांति सरल नहीं होता है|
4. **फर्मों की परस्पर निर्भरता का अभाव (Absence of firms interdependence):** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म की अपनी मूल्य नीति, उत्पादन नीति, माँग पूर्वानुमान तथा लागत तालिका होती है। अल्पाधिकार की अपेक्षा इस स्थिति में प्रत्येक फर्म स्वतन्त्र होती है। फर्मों के बीच आपस में कोई गठबंधन या समझौता नहीं होता है|
5. **आगम वक्रों की प्रकृति (Nature of revenue curves) :** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में कोई भी फर्म ऐसी स्थिति में नहीं होती है कि वह बाजार पर नियंत्रण कर सके। प्रत्येक फर्म कुल उत्पादन का केवल कुछ अंश ही उत्पादित करती है। अतः एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म का औसत आगम वक्र (AR) न तो पूर्णतया लोचदार होता है और न ही कठोर एवं बेलोचदार। औसत आगम वक्र दोनों के बीच की स्थिति में होता है। यह अपेक्षाकृत लोचदार होता है| सीमान्त आगम वक्र (MR) औसत आगम वक्र की भांति दायीं और नीचे की तरफ गिरता हुआ होता है, और उसके नीचे रहता है, जैसा कि रेखाचित्र 18.1 में दर्शाया गया है:

रेखाचित्र 18.1

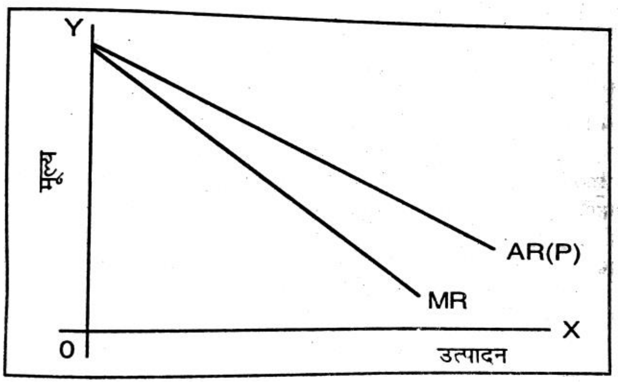

6. **गैर-मूल्य प्रतियोगिता (Non-price competition) :** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु के मूल्य को लेकर विक्रेताओं में प्रतियोगिता नहीं होती, बल्कि उनके द्वारा अपनी वस्तु के 'ब्रान्ड नाम' व 'ट्रेडमार्क' पर ज्यादा जोर दिया जाता है। गैर-कीमत प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी विक्रेता गहन विज्ञापन अभियान के द्वारा उपभोक्ताओं को यह बताने का प्रयास करते हैं कि उनकी उत्पादित वस्तु ही ज्यादा श्रेष्ठ है।
7. **विक्रयोपरान्त सेवाएँ (After sale-services) :** विक्रेताओं के द्वारा अपने ग्राहकों को विक्रयोपरान्त सेवाएँ प्रदान की जाती है। वे अपने-अपने उत्पाद की कई-कई सालों की गांरटी तथा वारंटी की 'स्कीम' देते हैं। 'जीरो परसेन्ट फाइनेंस' की सुविधा उपलब्ध करवाते हैं, किराया क्रय पद्धति पर माल खरीदने की छूट देते हैं, घर बैठे अपने माल की सुपुर्दगी देते हैं तथा यदि बेची गई वस्तु टिकाऊ प्रकृति की है (जैसे टीवी, फ्रिज, वाशिंग मशीन, कार, मोटरसाइकिल, स्कूटर आदि), तो उसकी मरम्मत, जीर्णोद्धार, नवीनीकरण आदि हेतु 'फ्री कैम्प' का आयोजन भी किया जाता है।
8. **अधिक लोचदार माँग वक्र (Highly elastic demand curve) :** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति में प्रत्येक फर्म का बाजार के थोड़े से भाग पर नियंत्रण होता है। सभी फर्में सामान्यतया एक दूसरे की निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। अतः एक फर्म अपनी वस्तु की कीमत को थोड़ा घटाकर उसकी ज्यादा मात्रा बेच सकती है। इसलिए फर्म का माँग वक्र अधिक लोचदार होता है|

18.4 अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण (Causes of Imperfect Competition)

(i) **वस्तु के गुणों में अन्तर (Differences in the quality of goods) :** पहला महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि विभिन्न विक्रेता एक ही प्रकार अथवा गुण की वस्तु नहीं बेचते। प्रत्येक विक्रेता अपनी वस्तु को दूसरे विक्रेताओं की वस्तुओं से भिन्न बनाने का प्रयास करता है। वह भिन्न प्रकार की पैकिंग करके अथवा भिन्न प्रकार का नाम देकर ग्राहकों के मन में यह धारणा दृढ़ कर देता है कि उसकी वस्तु अन्य विक्रेताओं की वस्तुओं से भिन्न और अच्छी है। इस प्रकार वह ग्राहकों से अन्य विक्रेताओं की अपेक्षा ऊंची कीमत वसूल करने में सफल हो जाता है। कभी-कभी ग्राहक उसकी वस्तु के उपभोग के इतने आदी हो जाते हैं कि उसके द्वारा मूल्य बढ़ा दिए जाने पर भी उसी वस्तु का उपभोग जारी रखते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि उसकी वस्तु दूसरे विक्रेताओं की वस्तुओं से श्रेष्ठ है। इस प्रकार उत्पादक की वस्तु का बाजार एक 'स्वतंत्र' बाजार बन जाता है और वह एक एकाधिकारी की भांति उसका मूल्य निर्धारित कर सकता है।

(ii) **शिष्टता और सुविधाएँ (Courtesy and facilities) :** यदि कोई विक्रेता अपने ग्राहकों से नम्रतापूर्ण व्यवहार करता है तथा साख सुविधाएँ प्रदान करता है, तो अधिकतर लोग उसी विक्रेता से वस्तु खरीदना पसन्द करेंगे, चाहे उन्हें अधिक कीमत क्यों न देनी पड़े। विशेषकर साख सम्बन्धी सुविधाओं का अधिकतर ग्राहकों लिए बहुत आकर्षण होता है।

(iii) **प्रसिद्धि प्राप्त स्थान: (Famous location) :** कभी-कभी किसी विशेष स्थान की प्रसिद्धि के कारण भी बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता उत्पन्न हो सकती है। आजकल की युवा पीढ़ी फैशनेबल बाजार से ही अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदना पसन्द करती है। ऐसी अवस्था में वहाँ के विक्रेताओं को वस्तुओं के ऊंचे मूल्य वसूल करने का अवसर मिल जाता है।

(iv) **ग्राहकों की अज्ञानता (Ignorance of customers) :** यदि ग्राहकों को इस बात की जानकारी नहीं है कि विभिन्न विक्रेताओं द्वारा वस्तु विशेष की क्या-क्या कीमतें वसूल की जा रही हैं, तो वे वस्तु को उस विक्रेता से नहीं खरीद सकेंगे जो उसे सबसे कम कीमत पर बेच रहा है। यह भी सम्भव है कि ग्राहकों को विभिन्न विक्रेताओं द्वारा वसूल की जाने वाली कीमतों की पूर्ण जानकारी है, लेकिन फिर भी लापरवाही के कारण वे वस्तु को उस

विक्रेता से नहीं खरीदते जो उसे सबसे कम कीमत पर बेच रहा है। ऐसी दशा में बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता ही पायी जायेगी।

(v) ऊँचा परिवहन व्यय (High transport charges) : यदि किसी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर बेचने में पहिवहन-व्यय अधिक पड़ता है, तो प्रत्येक उत्पादक के आस-पास का क्षेत्र उसकी वस्तु का बाजार बन जायेगा। इस क्षेत्र में रहने वाले ग्राहक इसी उत्पादक से वस्तु खरीदना पसन्द करेंगे हालांकि वह अन्य उत्पादकों की तुलना में अधिक ऊँचा मूल्य वसूल करता है। इसका कारण यह है कि यदि इस क्षेत्र के ग्राहक दूरस्थ उत्पादकों से वस्तु खरीदते हैं, तो निश्चय ही वस्तु तो उन्हें सस्ते दामों पर उपलब्ध होगी लेकिन उस पर ढुलाई-खर्च इतना पड़ जायगा कि अन्त में वह उन्हें महँगी ही पड़ेगी। अतः वे अपने पास के क्षेत्र के उत्पादक से ही वस्तु खरीदना पसन्द करेंगे। इस प्रकार ऊंचा ढुलाई-व्यय बाज़ार में अपूर्ण प्रतियोगिता का कारण बनता है।

18.5 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन का निर्धारण या फर्म का साम्य (Price and Output Determination Under Monopolistic Competition or Equilibrium of a Firm)

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण की दो विधियां प्रयोग में लायी जा सकती हैं:

(1) कुल आगम तथा कुल लागत वक्र विधि; तथा

(2) सीमान्त आगम व सीमांत लागत वक्र विधि

18.5.1 कुल आगम तथा कुल लागत वक्र विधि (Total Revenue and Total Cost curve method) : इस विधि को मार्शल की **'भूल एवं सुधार विधि' (Trial and Error Method)** भी कहते हैं। इस विधि के अन्तर्गत एकाधिकृत प्रतियोगी फर्म उत्पादन की मात्रा उस बिंदु पर निर्धारित करेगी, जहां कुल आगम (TR) तथा कुल लागत (TC) से अधिक हो तथा इन दोनों के बीच अधिकतम अन्तर हो। कुल आगम तथा कुल लागत की तुलना करने पर तीन परिणाम सामने आ सकते हैं:

(i) TR = TC (न लाभ न हानि की स्थिति) अथवा सामान्य लाभ की स्थिति

(ii) TR> TC (लाभ की स्थिति)

(iii) TR <TC (हानि की स्थिति)

इन स्थितियों को रेखाचित्र 18.2 में दर्शाया गया है:

रेखाचित्र 18.2

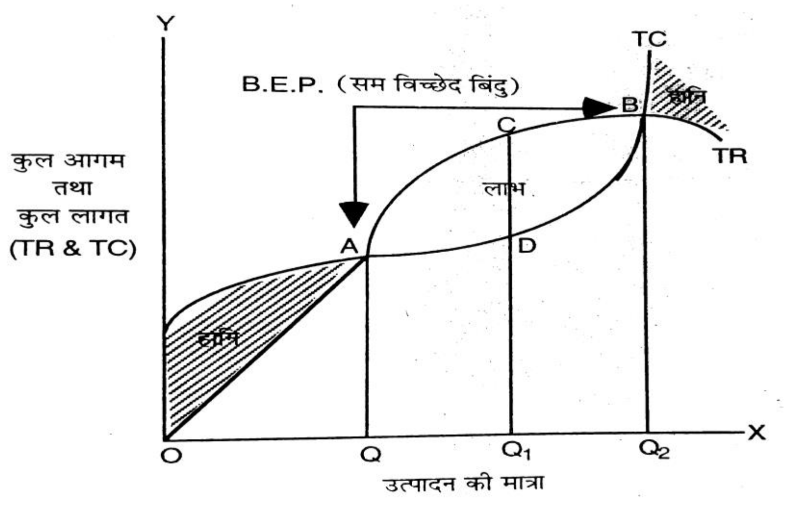

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि यदि एकाधिकारात्मक प्रतियोगी फर्म OQ या OQ2 मात्रा का उत्पादन करे, तो उसे कोई लाभ या हानि नहीं होगी क्योंकि इस स्थिति में TR=TC है, जो A तथा B बिन्दुओं द्वारा प्रदर्शित है। अतः ये दोनों बिन्दु सम विच्छेद बिंदु (Break Even Point- BEP) कहलायेंगे। यदि फर्म OQ से कम या OQ2 से अधिक उत्पादन करेगी, तो उसे हानि उठानी पड़ेगी क्योंकि इस दशा में TR<TC है। यदि फर्म OQ से OQ^2 के बीच उत्पादन करे, तो उसे लाभ होगा क्योंकि इस स्थिति में TR>TC हैं। चूंकि फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है, अत: वह इतनी मात्रा में उत्पादन करेगी जहां कुल आगम कुल लागत से न केवल अधिक हो, वरन इन दोनों में अन्तर अधिकतम हो। रेखाचित्र में OQ^1 उत्पादन पर TR न केवल TC से अधिक है, वरन TR तथा TC वक्रों के बीच की दूरी अधिकतम है। यही फर्म का साम्य बिंदु है। रेखाचित्र में इसे C तथा D बिंदुओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

लेकिन कुल आगम व कुल लागत विधि में कुछ दोष व्याप्त हैं। इसमें प्रति इकाई कीमत ज्ञात नहीं की जा सकती। प्रति इकाई लाभ भी कुल लाभ में कुल उत्पादन की मात्रा का भाग देने से ही ज्ञात हो सकता है।

18.5.2 सीमान्त आगम व सीमान्त लागत वक्र विधि (Marginal Revenue and Marginal Cost Curve Method) : एकाधिकार की भांति एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति में भी एक फर्म तब साम्यावस्था में होगी जब सीमांत आगम (MR) तथा सीमांत लागत (MC) एक दूसरे के बराबर (MR=MC) हो तथा सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को नीचे से काटता हुआ दायीं ओर ऊपर की तरफ उठता हुआ हो|

(अ) फर्म का अल्पकालीन संतुलन या अल्पकाल में कीमत व उत्पादन का निर्धारण (Short Period Equilibrium of Firm or Price and Output Determination in Short Run)

प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए मूल्य एवं उत्पादन स्तर निर्धारित करती है। अल्पकाल में संतुलन मूल्य एवं उत्पादन स्तर उस बिन्दु पर निर्धारित किया जाता है, जहाँ सीमान्त लागत सीमान्त आगम के बराबर (MR=MC) होती है तथा सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को नीचे से काटता हुआ ऊपर की और उठता हुआ हो|अल्पकाल में, फर्म साम्य की निम्नांकित तीन स्थितियों में से किसी भी एक स्थिति में हो सकती है| फर्म सामान्य लाभ, अति सामान्य लाभ या हानि की स्थिति में हो सकती है अर्थात्

(a) AR>AC (अति सामान्य लाभ)

(b) AR=AC (सामान्य लाभ)

(c) AR<AC (हानि)

इस स्थिति का विश्लेषण निम्नलिखित रेखाचित्र 18.3 द्वारा किया जा सकता है।

रेखाचित्र 18.3

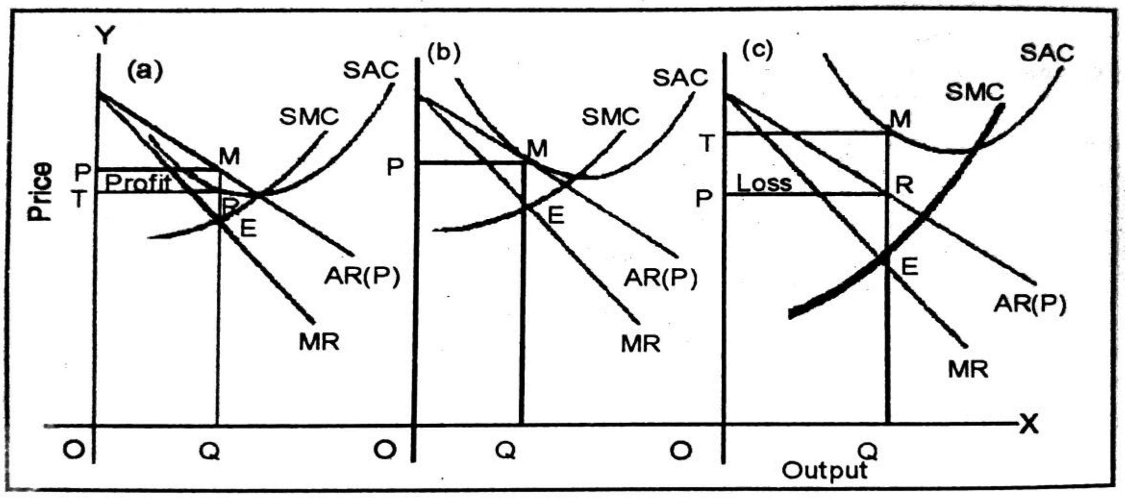

रेखाचित्र 18.3 (a) 18.3 (b) और 18.3 (c) क्रमश: अतिसामान्य लाभ, सामान्य लाभ और हानि की स्थिति, अल्पकाल में दिखाता है। AR और MR फर्म के औसत आगम और सीमान्त आगम वक्र है तथा SMC और SAC अल्पकाल में सीमान्त लागत और औसत लागत वक्र हैं| रेखाचित्र 18.3 (a) अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र एवं सीमान्त आगम वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। यहाँ पर ही फर्म का संतुलन स्थापित होता है। यहाँ कुल उत्पादन OQ है तथा प्रति इकाई मूल्य OP(QM) है। प्रति इकाई लागत OT या (QR) है। अतः मूल्य और लागत का अन्तर (OP-OT=PT) के बराबर है। फर्म का प्रति इकाई लाभ PT(MR) के बराबर है, और संतुलन बिन्दु E पर कुल लाभ :

PT X OQ = PTMR है। इस प्रकार फर्म अल्पकाल में अति सामान्य लाभ कमाती है जो कि PTMR के बराबर है।

इसी प्रकार 18.3 (c) एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अल्पकाल में सामान्य लाभ की स्थिति दर्शाता है। यहाँ पर भी संतुलन बिन्दु E है। इस संतुलन बिन्दु पर OP(QM) प्रति इकाई मूल्य है, और QM(OP) प्रति इकाई लागत है। यहाँ पर मूल्य और लागत दोनों बराबर हैं। इस प्रकार फर्म इस स्थिति में सामान्य लाभ ही कमा रही है।

रेखाचित्र 18.3 (C) उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ फर्म को हानि हो रही है। इस स्थिति में साम्य बिन्दु E पर है जहाँ अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र (SMC) सीमान्त आगम (MR) बराबर हैं। इस स्थिति में QM या (OT) प्रति इकाई लागत है, जो औसत आगम (AR) से अधिक है। यहाँ प्रति इकाई कीमत QR(OP) है| इन दोनों का अन्तर OP-OT=PT हानि को बताता है। उत्पादन की मात्रा OQ है तथा कुल हानि PT X OQ = PTMR के बराबर है। इस आशा में कि शायद दीर्घकाल में उत्पादन लागत कम हो जाए, अल्पकाल में फर्म हानि उठाकर उत्पादन जारी रख सकती है।

इस प्रकार एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अल्पकाल में एक फर्म संतुलन में हो सकती है, किन्तु फर्मों का समूह साम्य बिन्दु पर नहीं होता है। क्योंकि ऐसी बाजार संरचना में फर्मों की संख्या निरन्तर बदलती रहती है अर्थात् अल्पकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फमों का समूह या उद्योग कभी भी संतुलन में नहीं पाया जाता है।

स्व मूल्यांकन – प्रथम

आप एक ऐसी फर्म का संचालन करते हैं जो बाजार की वर्तमान दशाओं के अनुसार एकाधिकृत प्रतियोगिता की श्रेणी में आती है। आपके उत्पाद का एक 'ब्रांड नाम' है और आप अपनी फर्म का लाभ बढ़ाना चाहते हैं। बताइये कि ऐसा करने के लिए आप क्या-क्या कदम उठाना चाहेंगे?

(ब) एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण/फर्म का दीर्घकालीन संतुलन (Price and Output Determination under Monopolistic Competition in Long Run/Long Period Equilibrium of Firm)

दीर्घकाल में किसी भी फर्म की उत्पादन एवं मूल्य नीति इस सामान्य सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होती है, जहाँ सीमान्त आगम और सीमान्त लागत एक दूसरे के बराबर होते हैं। फर्म अपने शुद्ध लाभ को उस बिन्दु पर अधिकतम कर सकती है, जहाँ दीर्घकालीन सीमान्त लागत दीर्घकालीन सीमान्त आगम के बराबर हो। दीर्घकाल में फर्म एवं समूह दोनों ही स्थिर संतुलन में हो सकते हैं, दीर्घकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्मों को उद्योग में प्रवेश एवं बहिर्गमन की स्वतंत्रता होती है इसलिए प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ पर कार्य करती है| यदि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में उपस्थित फर्में अति सामान्य लाभ कमा रही हैं, तो नई फर्में बाजार की ओर आकर्षित होंगी। जब नई फर्में समूह में प्रवेश करेंगी, तो लाभ

की मात्रा स्वतः ही कम होने लगेगी और अन्ततः सामान्य लाभ की स्थिति प्रचलित हो जाएगी। नई फर्म के प्रवेश से प्रचलित बाजार में विक्रेताओं की संख्या अधिक हो जाएगी और प्रत्येक विक्रेता पहले से कम मात्रा में अपने उत्पाद का विक्रय कर पाएगा, फलस्वरूप माँग वक्र नीचे की ओर खिसक जाएगा। साथ ही नई फर्मों के प्रवेश के साथ ही उत्पादन के साधनों की माँग बढ़ने के कारण फर्म की व्यक्तिगत लागत बढ़ जाएगी, जिससे लागत वक्र ऊपर की ओर उठने लगेगा| आगम वक्र के झुकने और लागत वक्र के ऊपर की ओर उठने के दोहरे व्यवहार के कारण अति सामान्य लाभ की स्थिति समाप्त हो जाएगी। अतः दीर्घकाल में फर्में केवल सामान्य लाभ ही कमा पाती है।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्में हानि भी नहीं उठाती हैं क्योंकि जैसे ही हानि की स्थिति उत्पन्न होती है, वे बाजार को छोड़ देती हैं। जिससे वस्तु की पूर्ति घट जाती है और मूल्य बढ़ जाता है। उत्पादन के साधनों की माँग कम होने के कारण उनका आधिक्य हो जाता है और वे सस्ते हो जाते हैं। फलत: लागत और कम हो जाती है।

रेखाचित्र 18.4

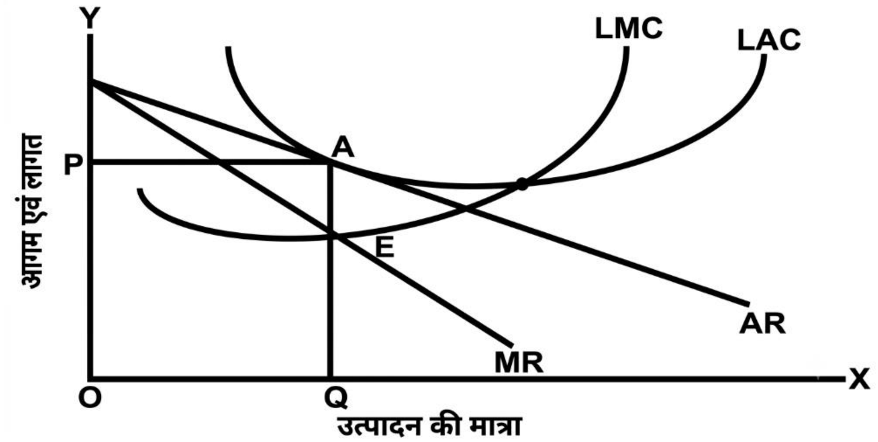

रेखाचित्र 18.4 में LAC फर्म का दीर्घकालीन औसत लागत वक्र तथा LMC दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र है। LMC वक्र MR वक्र को E बिन्दु पर काटता है जहाँ MR=MC हैं। अत: E बिन्दु साम्य बिन्दु कहलायेगा। इस बिन्दु पर फर्म OQ मात्रा का उत्पादन करती है तथा QA(OP) प्रति इकाई कीमत वसूल करती है। इस बिंदु पर फर्म की औसत लागत भी QA(OP) है। अतः फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

आपकी फर्म बाजार में बहुत अच्छी स्थिति में है तथा अति सामान्य लाभ (Super Normal Profit) अर्जित कर रही है। आपके ग्राहक भी आपके उत्पाद की गुणवत्ता को लेकर संतुष्ट हैं। आपकी फर्म भी बाजार व्यवहार को देखते हुए संतुष्ट है। लेकिन क्या आप सोच रहे हैं कि भविष्य में आपकी फर्म के समक्ष कोई बड़ी चुनौति प्रस्तुत हो सकती है? यदि हाँ, तो क्या और क्यों ?

18.6 समूह संतुलन (Group Equilibrium)

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'समूह-संतुलन' (group equilibrium) की व्याख्या करने से पूर्व 'समूह' तथा 'उद्योग' शब्दों का अर्थ-समझ लेना लाभप्रद होगा। **प्रो. चैम्बरलिन** के मतानुसार, **'समूह' उन अनेक फर्मों, जिनके बाजार प्रगाढ़ रूप में परस्पर जुड़े होते हैं, को कहा जाता है।** यद्यपि कुछ अर्थों में एक समूह एक उद्योग से मिलता-

जुलता हो सकता है, सामान्य अर्थों में उद्योग शब्द से अभिप्राय निकट प्रतियोगी फर्मों के दो या अधिक समूहों से लिया जाता है। अतः 'उद्योग' का अर्थ 'समूह' से अधिक व्यापक होता है। एक ही वस्तु के उद्योग में अनेक 'समूह' हो सकते हैं, जो वस्तु की विभिन्न किस्मों का उत्पादन करते हैं। एक ही समूह में कड़ी प्रतियोगिता चलती रहती है, यद्यपि विभिन्न समूहों में इतनी कड़ी प्रतियोगिता नहीं होती|

एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत उन सभी फर्मों को एक 'समूह' के रूप में जाना जाता है जो एक दूसरे की बहुत निकटतम स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। प्रो. चैम्बरलिन के अनुसार इन फर्मों के लिए 'उद्योग' (Industry) शब्द का उपयोग उचित नहीं है, बल्कि 'फर्मों का समूह (Group of Firms) शब्द का इस्तेमाल किया जाना चाहिये।

समूह संतुलन की स्थिति तब कही जाती है, जब फर्में केवल सामान्य लाभ कमा रही हों तथा फर्मों की संख्या में परिवर्तन न हो। चूंकि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश तथा बहिर्गमन होता है, अतः यदि अल्पकाल में 'समूह' की कुछ फर्मों को लाभ हो रहा है, तो उस लाभ से आकर्षित होकर नई फर्में 'समूह' में प्रवेश करेंगी। इससे उत्पादन बढेगा, कीमत घटेगी तथा दीर्घकाल में सभी फर्में केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर पायेंगी। इसी प्रकार अल्पकाल में हानि की स्थिति होने पर कुछ फर्में बाजार से बहिर्गमन कर जायेंगी तथा दीर्घकाल में उत्पादन घटने व कीमत बढ़ने के कारण शेष फर्में सामान्य लाभ अर्जित करने लगेंगी। इस प्रकार दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा जिसे फर्मों का दीर्घकालीन साम्य या समूह-संतुलन कहा जाता है। **समूह संतुलन के लिए निम्नांकित तीन शर्तें एक साथ पूरी होनी चाहिए** :

(i) कीमत औसत लागत के बराबर (AR=AC) या (P=AC) होनी चाहिए;

(ii) समूह में फर्मों की संख्या में परिवर्तन नहीं होना चाहिए; तथा

(iii) समूह की प्रत्येक फर्म सामान्य लाभ की स्थिति में होनी चाहिए|

'समूह संतुलन की विवेचना दो उप शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है :

18.6.1 अल्पकालीन अस्थिर साम्य (Short Run Unstable Equilibrium): एकाधिकृत प्रतियोगिता के अंतर्गत अल्पकालीन समूह साम्य पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य से मिलता-जुलता है। प्रत्येक फर्म का अपना अलग माँग वक्र या औसत आगम (AR) वक्र होता है जिसकी ऊंचाई समूह की समग्र माँग तथा समग्र-पूर्ति के संतुलन द्वारा निर्धारित बाजार मूल्य द्वारा निश्चित होती है। इस दिए हुए मूल्य-स्तर के अनुसार प्रत्येक फर्म अपने मूल्य तथा उत्पादन मात्रा को इस प्रकार समायोजित करती है कि उसका सीमान्त आगम (MR) उसकी सीमान्त लागत (MC) के बराबर हो । विभिन्न फर्मों के सीमान्त आगम (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) की समानता व्यक्त करने वाले बिन्दुओं पर उनकी उत्पादन मात्राओं का योग समूह की कुल पूर्ति को बताता है। जब प्रचलित बाजार मूल्य पर उपभोक्ताओं की कुल माँग वस्तु की कुल पूर्ति के बराबर होती है, तो समूह को अल्पकालीन अस्थिर साम्यावस्था में कहा जाता है। जिस प्रकार एक फर्म द्वारा अपने उत्पादन का समायोजन समूह की समग्र माँग एवं पूर्ति से निर्धारित मूल्य के आधार पर किया जाता है, उसी प्रकार समूह की समग्र माँग एवं पूर्ति के मध्य भी विभिन्न फर्मों के साम्य में परिवर्तनों के कारण समानता स्थापित होती है। अल्पकाल में कुछ फर्में असामान्य लाभ, कुछ केवल सामान्य लाभ अर्जित करती हैं तथा कुछ हानि वहन करती हैं। जब तक ऐसा होता रहता है, अल्पकालीन समूह साम्य जारी रहता है। अतः इसे अस्थिर माना जाता है ।

18.6.2 दीर्घकालीन स्थिर साम्य (Long Run Stable Equilibrium) : अल्पकालीन अस्थिर साम्यावस्था में समूह की विभिन्न फर्मों को होने वाले सामान्य से अधिक लाभों से आकृष्ट होकर नई फर्में प्रवेश करती हैं अथवा सामान्य लाभ से कम अथवा हानि के कारण अनेक फर्में क्षेत्र से बहिर्गमन करती हैं। इसके फलस्वरूप दीर्घकाल में समूह की कुल माँग तथा कुल पूर्ति में समानता एवं साम्य स्थापित हो जाता है। एक 'समूह' की स्थिर साम्यावस्था वह स्थिति होती है, जब उसमें फर्मों द्वारा न तो असामान्य लाभ अर्जित किए जा रहे हों, न ही हानि वहन की जा रही हो। अन्य शब्दों में, 'समूह' की स्थिर साम्यावस्था तब होती है, जब उसमें फर्मों की संख्या स्थिर रहे। ऐसा तभी होता है जबकि फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है, अर्थात् मूल्य (AR) औसत लागत (AC) के बराबर हो जाता है।

18.7 पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study of Perfect Competition and Imperfect Competition)

क्र.सं.	अन्तर का आधार	पूर्ण प्रतियोगिता	अपूर्ण प्रतियोगिता
1	विक्रेताओं की संख्या	बाजार में विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है।	विक्रेताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम किन्तु अधिक होती है
2	बाजार का ज्ञान	समस्त क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है।	समस्त क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार की समस्त दशाओं का ज्ञान नहीं होता।
3	वस्तु विभेद	सभी विक्रेताओं के द्वारा बेची जाने वाली वस्तु समरूप होती है अर्थात् वस्तु विभेद नहीं होता है।	इसके अन्तर्गत वस्तु विभेद होता है।
4	माँग वक्र	प्रत्येक फर्म का माँग वक्र पूर्णतया लोचदार होता है अर्थात माँग वक्र OX अक्ष के समानान्तर होता है।	प्रत्येक फर्म का माँग वक्र ऋणात्मक ढाल वाला अर्थात नीचे गिरता हुआ होता है।
5	मूल्य तथा उत्पादन की मात्रा	पूर्ण प्रतियोगिता में अपूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में मूल्य नीचा तथा उत्पादन अधिक होता है।	इसमें पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में मूल्य ऊंचा तथा उत्पादन कम होता है।
6	कीमत नियंत्रण	फर्मों का कीमत पर नियंत्रण नहीं होता है।	आंशिक कीमत नियंत्रण होने से कीमत का निर्धारण

7	औसत आगम एवं सीमांत आगम	औसत आगम एवं सीमान्त आगम बराबर (AR=MR) होते हैं|	फर्म की नीति के अनुसार होता है। औसत आगम सीमांत आगम से अधिक होता है (AR>MR)
8	साधनों की गतिशीलता	उत्पादन के साधनों में पूर्ण गतिशीलता पाई जाती है।	उत्पादन के साधनों में पूर्ण गतिशीलता नहीं होती है।
9	प्रति इकाई मूल्य	समरूप वस्तुओं का समस्त बाजार में एक ही मूल्य प्रचलित रहता है।	इसके अनतर्गत लगभग समरूप वस्तुओं के मूल्य भी अलग-अलग प्रचलित होते हैं|
10	परिवहन लागतें	परिवहन लागतें अनुपस्थित रहती हैं।	इसके अन्तर्गत परिवहन लागतें मौजूद रहती हैं ।

18.8 एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study of Monopoly and Monopolistic Competition)

क्र.सं.	अन्तर का आधार	एकाधिकार	एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता
1	विक्रेताओं की संख्या	वस्तु का केवल एक ही विक्रेता/उत्पादक होता है|	वस्तु के विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है।
2	फर्म एवं उद्योग	फर्म व उद्योग एक दूसरे के पर्यायवाची होते हैं।	अनेक फर्में होती हैं| फर्मों को संयुक्त रूप से फर्मों का समूह कहा जाता है।
3	मूल्य विभेद	इसमें विक्रेता मूल्य विभेद की नीति अपना सकता है।	प्रतियोगिता के कारण इसमें मूल्य विभेद संभव नहीं है।
4	फर्मों का प्रवेश	फर्मों के प्रवेश पर प्रभावपूर्ण रुकावटें होती हैं।	नई फर्मों के प्रवेश पर रूकावटें नहीं होती।
5	दीर्घकाल में लाभ की स्थिति	असामान्य लाभ प्राप्त होता है।	केवल सामान्य साम्य ही प्राप्त होता है।
6	स्थानापन्न वस्तु	बाजार में कोई स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध नहीं होती है।	स्थानापन्न वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं।
7	विज्ञापन लागतें	विज्ञापन लागतें नहीं होती हैं।	प्रतियोगिता के कारण विज्ञापन लागतें होती हैं ।
8	कीमत तथा उत्पादन की मात्रा	अपेक्षाकृत वस्तु का मूल्य ऊंचा तथा उत्पादन की मात्रा कम होती है।	वस्तु का मूल्य अपेक्षाकृत कम तथा उत्पादन की मात्रा अधिक होती है।

18.9 सारांश (Summary)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता या अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार के दो छोर एकाधिकार और पूर्ण प्रतियोगिता के मध्य की स्थिति है। इस स्थिति में अल्पाधिकार की तुलना में विक्रेताओं की संख्या ज्यादा तथा पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में बहुत कम होती है। ये विक्रेता निकट स्थानापन्न वस्तु का उत्पादन करते हैं तथा प्रत्येक विक्रेता अधिक मात्रा में विक्रय करने के लिए दूसरे विक्रेता से प्रतियोगिता करता है। चूंकि प्रत्येक विक्रेता प्रमापित वस्तु बेचता है, अत: धीरे-२ वह एक ब्रांड का रूप ले लेता है तथा एकाधिकार की स्थिति जैसा ही व्यवहार करता है और आपस में प्रतिस्पर्द्धा भी करते हैं, अत: इसे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता कहा जाता है। दैनिक जीवन में उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुएँ यथा टूथपेस्ट, टूथ ब्रश, साबुन, डिटरजेंट, एल्कोहल, सिग्रेट, टेल्कम पाउडर, सौन्दर्य प्रसाधन उत्पाद आदि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के उदाहरण कहे जा सकते हैं। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत अल्पकाल में एक फर्म असामान्य लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि की स्थिति में से किसी भी एक स्थिति में हो सकती है, किन्तु दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ पर ही कार्यरत रहती है|

18.10 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई की पूर्ण अध्ययन सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात् विद्यार्थी यह जान गये होंगे कि अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अर्थ में कोई विशेष भिन्नता नहीं होती। बाजार की इस दशा में उत्पादन व मूल्य निर्धारण की दो विधियों तथा तत्पश्चात अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन साम्य की विस्तार से चर्चा की गई है। इकाई की इस सामग्री के मध्य में विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास के उद्देश्य से दो जगह दी गई स्व-मूल्यांकन संवादमूलक गतिविधि भी आपने अच्छी तरह से पढ़कर उसके अनुरूप उत्तर देने का अवश्य प्रयास किया होगा, ऐसी हम आशा करते हैं।

18.11 शब्दावली (Glossary)

- **औसत लागत (AC) :** कुल उत्पादन लागत को कुल उत्पादित मात्रा से विभाजित करने पर प्राप्त होने वाला भागफल औसत लागत कहलाती है।
- **औसत आगम (AR) :** वस्तु की प्रति इकाई कीमत को औसत आगम कहते हैं |
- **सीमांत लागत (MC) :** वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने पर कुल लागत में होने वाली वृद्धि सीमान्त लागत कहलाती है|
- **सीमांत आगम (MR) :** एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से कुल आगम (TR) में होने वाली वृद्धि सीमान्त आगम कहलाती है।
- **कुल आगम (TR) :** बेची गई कुल उत्पादन मात्रा को प्रति इकाई कीमत से गुणा करने पर प्राप्त होने वाला गुणनफल अर्थात (Q X AR = TR) कुल आगम कहलाता है|
- **कुल लागत (TC):** कुल परिवर्तनशील लागतों तथा कुल स्थिर लागतों का योग (TC=TVC+TFC) कुल लागत कहलाता है|
- **सम विच्छेद बिंदु (BEP) :** उत्पादन की मात्रा का ऐसा बिंदु जिस (TR=TC) हो| इसे न लाभ न ही हानि बिंदु भी कहा जाता है अर्थात कुल आगम का कुल लागत एक दूसरे के बराबर होते है|

- **साम्य (Equilibrium) :** फर्म की उत्पादन की वह मात्रा जिस पर उसका सीमांत आगम और सीमांत लागत एक दूसरे के बराबर (MR=MC) होते हैं |

18.12 स्व परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Very - Short Answer Questions)

1. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता क्या है?
2. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की क्या विशेषताएँ हैं?
3. 'समूह' संतुलन का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
4. पूर्ण प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता में दो प्रमुख अन्तर बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता क्या है? एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल में उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण कैसे होता है?
2. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं? दीर्घकाल में समूह संतुलन का विवेचन कीजिये|
3. एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

18.13 सन्दर्भ व ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- बढ़ाना, मेहरा, अग्रवाल : 'व्यावसायिक अर्थशास्त्र', नाकोड़ा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर
- माथुर, गुप्ता : 'व्यष्टि अर्थशास्त्र', शिवम् बुक हाउस, जयपुर
- Agarwal, Goyal : 'Business Economics'; RBD, Jaipur
- Atmanand : 'Managerial Economics', Excel Books, New Delhi.

18.14 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Ferguson, C.E. : 'Micro Economic Theory'.
- Mote Vasant, and Paul Samuel : 'Managerial Economics' - Analysis and Cases, Vakils, Feffer & Simon's Pvt. Ltd.
- Chamberlin, E.H. : 'The Theory of Monopolistic Competition'.
- Stonier, A.H., Hague, D.C. : 'A Text-book of Economic Theory'.
- Leftwich, R.H. : 'The Price System and Resource Allocation'.
- John Robinson: 'The Economics of Imperfect Competition'.

18.15 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Links)

- http://en.m.wikipedia.org.>
- http://www.economicshelp.com >
- http://www.khanacademy.org>

इकाई -19

अल्पाधिकार : कीमत एवं उत्पादन निर्धारण
(Oligopoly: Price and Output Determination)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 अल्पाधिकार का अर्थ एवं परिभाषा

19.3 अल्पाधिकार की विशेषताएँ

19.4 अल्पाधिकार का वर्गीकरण

19.5 अल्पाधिकार के अन्तर्गत उत्पादन एवं कीमत निर्धारण

19.5.1 स्वतंत्र कीमत निर्धारण नीति

19.5.2 गठबंधन के अन्तर्गत कीमत निर्धारण

19.5.3 मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत कीमत निर्धारण

19.6 सारांश

19.7 अधिगम परिणाम

19.8 शब्दावली

19.9 स्व परख प्रश्न

19.10 संदर्भ व ग्रन्थसूची

19.11 अन्य पठन सामग्री

19.12 वेब संसाधन/लिंक

19.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के पठन के पश्चात आप यह समझने में सक्षम होंगें :

- अल्पाधिकार का अर्थ और विशेषताएँ क्या हैं?
- अल्पाधिकार के कितने रूप हो सकते हैं?
- अल्पाधिकार की विभिन्न स्थितियों के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण कैसे होता है?

19.1 प्रस्तावना (Introduction)

बाजार में कुछ विक्रेताओं के मध्य स्पर्धा की व्याख्या सीमित स्पर्धा, अपूर्ण एकाधिकार, बहु एकाधिकार, एकाधिकार स्पर्द्धा आदि विभिन्न नामों से की जाती है। परन्तु इनमें सबसे अधिक उपयुक्त शब्द, जो अब सर्वमान्य हो गया है, अल्पाधिकार ('Oligopoly) है। **Oligopoly शब्द यूनानी भाषा के 'Oligoi' जिसका अर्थ 'थोड़े' (A few) तथा Pollein, जिसका अर्थ 'बेचना' (to sell) है,** दो शब्दों को मिला कर बना है। इस प्रकार अल्पाधिकार का अर्थ बाजार में कुछ विक्रेताओं के मध्य स्पर्धा से है। अल्पाधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता की वह स्थिति होती है, जिसमें किसी वस्तु के कुछ उत्पादक होते हैं। उत्पादक फर्मों द्वारा प्राय: समान प्रकार की वस्तुओं का या निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। चूंकि कुल उत्पादन में व्यक्तिगत फर्म का हिस्सा ज्यादा होता है, अत: वह अन्य उत्पादकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्यों को प्रभावित करने की स्थिति में होती है। इस प्रकार एक फर्म की क्रियाओं का प्रभाव दूसरी फर्मों पर भी दिखाई देता है। अल्पाधिकार के अन्तर्गत एक फर्म का ध्यान न केवल अपने वस्तु के उत्पादन की मात्रा व मूल्य पर रहता है, बल्कि अपने प्रतियोगियों पर भी केन्द्रित रहता है कि वे क्या निर्णय लेते हैं? इस इकाई के अंतर्गत हम यह अध्ययन करेंगे कि अल्पाधिकार के अंतर्गत उत्पादन एवं कीमत का निर्धारण कैसे होता है?

19.2 अल्पाधिकार का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Oligopoly)

अल्पाधिकार बाजार संरचना में उस स्थिति को कहते हैं जिसमें किसी वस्तु के कुछ उत्पादक होते हैं। **यह भी अपूर्ण प्रतियोगिता की एक स्थिति है**। इनमें से प्रत्येक उत्पादक सामान्यतया कुल उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा/अंश उत्पादित करता है, जिससे एक विक्रेता के उत्पादन का अन्य विक्रेताओं की कीमत पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। ये सभी उत्पादक **समरूप या विभेदी वस्तुओं का उत्पादन** करते हैं। जब सभी फर्में समरूप वस्तुओं का उत्पादन करती हैं, तो उस स्थिति को **शुद्ध अल्पाधिकार** तथा जब सभी फर्में भिन्न-2 वस्तुओं का उत्पादन करती हैं, तो उसे **विभेदात्मक अल्पाधिकार** कहते हैं। **स्टिगलर** के अनुसार, "'अल्पाधिकार वह स्थिति होती है जिसके अन्तर्गत एक फर्म अपनी विपणन नीति को निकट प्रतियोगियों के अपेक्षित व्यवहार पर आधारित करती है।"

प्रो. लेफ्टविच के अनुसार, "वे बाजार दशाएँ अल्पाधिकार कहलाती हैं, जिनमें विक्रेताओं की संख्या अत्यल्प और इतनी होती है कि एक विक्रेता की क्रियाएँ आवश्यक रूप से दूसरे विक्रेताओं के लिए महत्त्वपूर्ण होती है|" इस प्रकार अल्पाधिकार बाजार संरचना का ऐसा रूप है जिसमें किसी उत्पाद के थोड़े से विक्रेता होते हैं तथा प्रत्येक विक्रेता के द्वारा की जाने वाली क्रियाओं की प्रतिक्रिया भी होती है, जिसका महत्त्व बढ़ जाता है।

19.3 अल्पाधिकार की विशेताएँ (Characteristics of Oligopoly)

(1) विक्रेताओं की कम संख्या (A Few Sellers) : अल्पाधिकार बाजार संरचना वह है, जिसमें एक उत्पाद के कुछ ही विक्रेता होते हैं, अत: उनके मध्य प्रतियोगिता होती है और साथ ही इसका प्रभाव बाजार पर काफी

पड़ता है। इस स्थिति में कोई भी विक्रेता पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं होता तथा उसे दूसरे विक्रेता की कार्य प्रणाली को भी ध्यान में रखना पड़ता है।

(2) **समरूप या विभेदी उत्पाद (Homogeneous or Heterogeneous Products):** एकाधिकार में विभिन्न विक्रेताओं के उत्पाद की प्रकृति समरूप भी हो सकती है या विभेदी भी। यदि उत्पाद समरूप हैं, तो उसे शुद्ध अल्पाधिकार कहते हैं और जब उत्पाद समरूप नहीं होते अर्थात् वे आकार, किस्म प्रभाव आदि से भिन्न-भिन्न होते हैं, तो इसे विभेदात्मक अल्पाधिकार कहते हैं।

(3) **परस्पर निर्भरता (Mutual Interdependance) :** अल्पाधिकार के अन्तर्गत फर्में अपने आप में स्वतन्त्र नहीं होती हैं, बल्कि वे परस्पर निर्भर होती हैं अर्थात् वे एक दूसरे के कार्यप्रणाली से प्रभावित होती हैं क्योंकि सभी के उत्पाद एक दूसरे के निकट स्थानापन्न होते हैं। इन **उत्पादों की माँग की तिरछी लोच लोचदार** होती है तथा एक फर्म की उत्पादन एवं मूल्य नीति दूसरी फर्मों को भी प्रभावित करती है।

(4) **माँग वक्र की अनिश्चितता (Indeterminate Demand Curve) :** अल्पाधिकार में माँग वक्र अनिश्चित होता है क्योंकि फर्मों की परस्पर निर्भरता से अनिश्चितता का वातावरण उपस्थित होता है। इस अनिश्चितता के कारण कोई भी फर्म बाजार में उत्पादन एवं मूल्य का अंदाजा नहीं लगा सकती है।

(5) **फर्मों की द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति (Conflicting Attitude of Firms) :** अल्पाधिकार की स्थिति में बाजार में कुछ फर्में होती हैं, लेकिन प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करना चाहती है। अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए वे गठबन्धन बना लेती हैं, किन्तु यह सम्भव है कि लाभ के वितरण एवं बाजार में निश्चित हिस्से की उपलब्धता के लिए वे आपस में टकरा जायें।

(6) **गलाकाट प्रतिस्पर्धा (Cut-Throat Competition) :** अल्पाधिकार में प्रतिद्वन्द्वी फर्मों के बीच गलाकाट प्रतिस्पर्धा होती है। प्रत्येक फर्म दूसरे फर्म की मूल्य नीति पर प्रतिक्रिया करके ही अपनी मूल्य नीति निर्धारित करती है।

(7) **मूल्य कठोरता एवं मूल्य युद्ध (Price Rigidity and Price War) :** यह अल्पाधिकार की एक मुख्य विशेषता है। चूंकि ऐसी स्थिति में वस्तु विभेद के कारण यह सम्भावना होती है कि एक फर्म मूल्य कठोरता की नीति अपनाए। साथ ही यदि कोई फर्म अपनी बिक्री को बढ़ाने के लिए मूल्य को कम करती है, तो अन्य फर्में भी प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर अपने उत्पाद का मूल्य कम कर देती हैं।

(8) **विज्ञापन (Advertisement) :** अल्पाधिकार की बाजार संरचना में उपस्थित सभी फर्में उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विज्ञापन पर अत्यधिक धनराशि खर्च करती हैं, ताकि ज्यादा से ज्यादा उपभोक्ताओं को आकर्षित कर सकें। इससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है और स्वाभाविक तौर पर मूल्य भी बढ़ जाते हैं, जिसका खामियाजा उपभोक्ताओं को भुगतना पड़ता है। जो फर्म विज्ञापन नहीं कर पाती है, उनके ग्राहक दूसरे विक्रेता के पास जाने लगते हैं। जो फर्में विक्रय संवर्द्धन हेतु ज्यादा खर्च करती हैं, उनका कुल बिक्री में

बाजार अंश भी ज्यादा होता है। **प्रो. बोमोल** के अनुसार, "अल्पाधिकार में विज्ञापन व्यय फर्म के जीवन – मरण का प्रश्न होता है क्योंकि जो फर्म अपने प्रतिद्वंदियों के विज्ञापन बराबर नहीं कर पाती, वह अपने ग्राहक खोने लगती है|"

(9) फर्मों का कठिन प्रवेश व बहिर्गमन (Difficult Entry and Exit of Firms) : अल्पाधिकार में नई फर्मों का बाजार में प्रवेश करना अत्यंत कठिन होता है। कुछ फर्मों के पास पेटेन्ट और ट्रेड मार्क का अधिकार हो सकता है। अत: नई फर्मों के लिए उसी प्रकार का उत्पाद बेचना मुश्किल हो जाता है। पहले से कार्यरत फर्मों का कच्चे माल की आपूर्ति पर एकाधिकार जैसी स्थिति भी हो सकती है। इसी प्रकार पहले से कार्यरत फर्मों द्वारा बाजार से बहिर्गमन करना भी आसान नहीं होता क्योंकि उनका भारी मात्रा में पूँजी विनियोजन होता है, जिसे छोड़ना या निकालना मुश्किल होता है।

स्व-मूल्यांकन - प्रथम

अल्पाधिकार से सम्बन्धित कोई दो-दो उदाहरण आप निम्न स्तर पर पता कीजिये :

1. आपके स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर पर
2. राष्ट्रीय स्तर पर
3. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर

19.4 अल्पाधिकार का वर्गीकरण (Classification of Oligopoly)

अल्पाधिकार स्थितियों का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण किया जा सकता है। विभेदात्मक उत्पादन तथा विशिष्टीकरण के आधार पर अल्पाधिकार को **शुद्ध अल्पाधिकार** (pure oligopoly) तथा **विभेदात्मक अल्पाधिकार** (Differentiated oligopoly) में विभाजित किया जा सकता है। शुद्ध अल्पाधिकार के अन्तर्गत स्पर्धात्मक फर्मों के द्वारा उत्पादित वस्तु समरूप होती है और विशिष्ट अल्पाधिकार के अन्तर्गत स्पर्धात्मक फर्म स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती है। उद्योग में प्रवेश की सम्भावनाओं के आधार पर अल्पाधिकार को **खुला अल्पाधिकार** (open oligopoly) तथा **बन्द अल्पाधिकार** (closed oligopoly) में विभाजित किया जा सकता है। खुले अल्पाधिकार में नई फर्में उद्योग में प्रवेश कर सकती हैं, जबकि बन्द अल्पाधिकार के अन्तर्गत उद्योग पर कुछ फर्मों का नियंत्रण होता है और उद्योग में नये प्रतिद्वन्दियों का प्रवेश प्रायः वर्जित होता है| **कीमत नेतृत्व** (price leadership) के आधार पर अल्पाधिकार का वर्गीकरण **आंशिक अल्पाधिकार** तथा **पूर्ण अल्पाधिकार** में किया जा सकता है। अपूर्ण अल्पाधिकार के अन्तर्गत उद्योग पर एक अथवा कुछ बहुत बड़ी फर्मों का अधिकार होता है और छोटी फर्में बड़ी फर्मों का अनुसरण करती हैं, जबकि पूर्ण अल्पाधिकार में इस प्रकार की परिस्थिति नहीं होती है। विक्रेताओं के मध्य समझौते के आधार पर, अल्पाधिकार का वर्गीकरण **संधियुक्त अल्पाधिकार** (collusive oligopoly) तथा **सन्धि-विहीन अल्पाधिकार** (non-collusive oligopoly) में किया जा सकता है। इसी प्रकार जब सिंडीकेट के द्वारा बिक्री का कार्य संकेंद्रित हो जाता है, तो इस दशा को **संघ अल्पाधिकार** की दशा कहते हैं। जब विभिन्न विक्रेताओं में कीमत, उत्पादन अभ्यंश (Quota), बाजार विभाजन सम्बन्धी समझौता होता है, तो यह **संगठित अल्पाधिकार** का रूप बन जाता है। अल्पाधिकार के वर्गीकरण को निम्नांकित चार्ट के रूप में प्रदर्शित किया गया है :

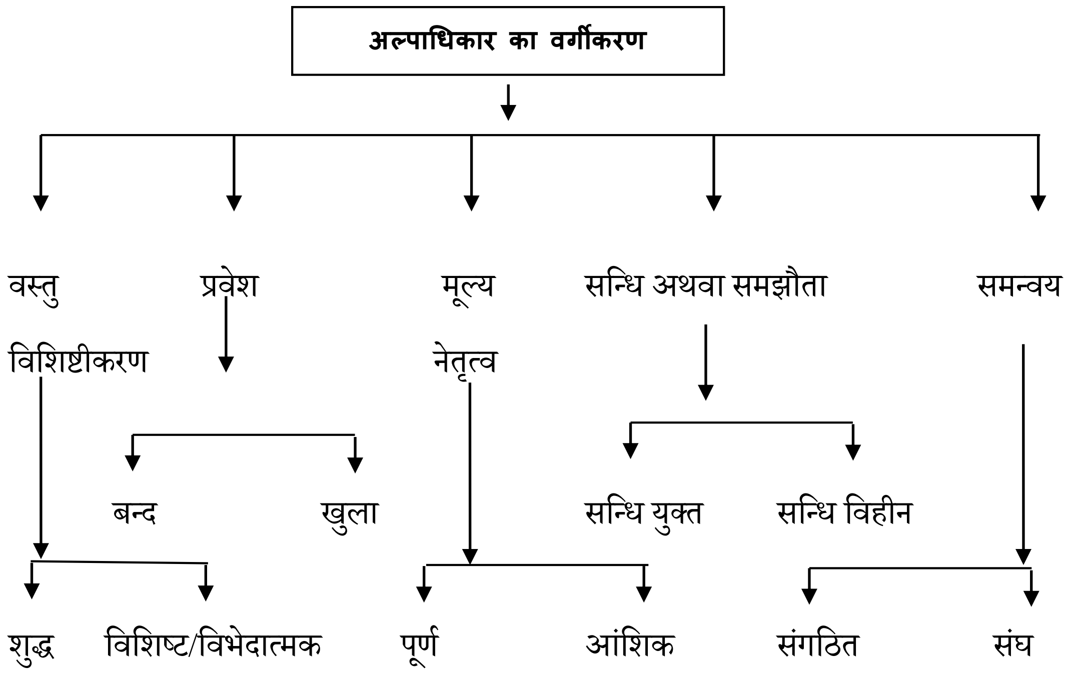

19.5 अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण(Price and Output Determination under Oligopoly)

सामान्यतया एक फर्म तब संतुलन में होती है जब उसकी सीमान्त लागत सीमान्त आगम के बराबर (MR=MC) होती है| कीमत को औसत आगम वक्र (माँग वक्र) के द्वारा दिखाया जाता है। लेकिन अल्पाधिकार में फर्मों की परस्पर निर्भरता के कारण तथा माँग वक्र की अनिश्चितता के कारण ऐसा सम्भव नहीं होता है। साथ ही विशिष्ट वस्तु के उत्पादन में सामान्य लागत को वितरित करने में आने वाली कठिनाई के कारण कोई एक निश्चित लागत वक्र नहीं होता है। अल्पाधिकार में उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण निम्नलिखित तीन स्थितियों में हो सकता है :

1. स्वतन्त्र कीमत निर्धारण
2. गठबन्धन या गुटबंदी के अन्तर्गत कीमत निर्धारण
3. मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत कीमत निधार्रण

19.5.1 स्वतन्त्र कीमत निर्धारण नीति (Independent Price Determination Policy) :

अल्पाधिकार बाजार संरचना में प्रत्येक फर्म स्वतन्त्र मूल्य एवं उत्पादन नीति अपनाने का प्रयास करती है। प्रत्येक फर्म द्वारा निर्धारित मूल्य, एकाधिकारिक मूल्य से कम या अधिक हो सकता है क्योंकि प्रत्येक फर्म का उत्पादन विभेदी होता है, ऐसी स्थिति के आधार पर प्रतियोगितात्मक मूल्य निर्धारित करने के लिए फर्मों के मध्य मूल्य युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। अतः मुख्य रूप से दो सीमाओं के बीच मूल्य तय होता है- इसकी ऊपरी सीमा है एकाधिकारी मूल्य और न्यूनतम सीमा उस वास्तविक मूल्य द्वारा निर्धारित होती है, जो अल्पाधिकारिक स्थितियों के अन्तर्गत निर्धारित होती है। ऐसा कोई भी सरल एवं सामान्य सिद्धान्त नहीं है जो इस तथ्य का वर्णन करे कि वास्तविक मूल्य इस सीमा के अन्तर्गत कहाँ निर्धारित होगा, जो कि पुन: बाजार में प्रचलित स्थितियों पर निर्भर करेगा।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि स्वतन्त्र मूल्य नीति जैसी स्थिति वास्तविक रूप में नहीं पाई जाती है। इसका मुख्य कारण है कुछ गलत या भ्रांतिपूर्ण मान्यताएँ, जैसे समरूप उत्पाद, समान-लागत, समान एवं आनुपातिक रूप से बाँटा गया बाजार इत्यादि। अतः अल्पाधिकार में मूल्य स्थिर नहीं रहता है। इस प्रकार बाजार की अनिश्चितता, असुरक्षा आदि के आधार पर हम यह सकते हैं कि स्वतन्त्र मूल्य नीति के अन्तर्गत अल्पाधिकारिक बाजार संरचना में मूल्य निर्धारण सम्भव नहीं है क्योंकि यह मूल्य-युद्ध एवं मूल्य-कठोरता का वातावरण बनाता है। अल्पाधिकार में स्वतन्त्र रूप से निर्धारित किया मूल्य अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकता क्योंकि इसमें विरोध, अनिश्चितता तथा असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। इन कठिनाइयों पर विजय पाने के लिये अल्पाधिकारी फर्मों में स्पष्ट तथा अस्पष्ट रूप से सहमत होने की प्रवृत्ति विद्यमान हो जाती है। साथ ही सभी फर्में अपनी उत्पादन मात्रा में वृद्धि तथा उत्पादन लागत में कमी करके अधिकांश बाजार क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास करती हैं। बड़ी फर्म नेतृत्व प्राप्त होने के कारण अनिश्चितता को दूर कर सकती है अथवा मूल्य वृद्धि के द्वारा छोटी व्यावसायिक इकाइयों को कमजोर बना सकती है। इस प्रकार स्वतन्त्र मूल्य निर्धारण की प्रवृत्ति असुरक्षा तथा अनिश्चितता बढ़ाकर कीमत नेतृत्व अथवा अल्पाधिकारी फर्मों में समझौता करने के मार्ग को अधिक सरल बना देती है।

मूल्य युद्ध (Price War) : मूल्य युद्ध का प्रारम्भ तब होता है, जब एक फर्म अपने विक्रय को बढ़ाकर अधिकतम आगम प्राप्त करने के लिए, अपने उत्पाद का मूल्य कम कर देती है। प्रत्युत्तर में अन्य फर्में भी अपने मूल्य को कम कर देती हैं और यह प्रयत्न करती हैं कि उनके द्वारा तय किया गया मूल्य अन्य फर्मों की तुलना में कम हो। इन्हीं परिस्थितियों में मूल्य युद्ध का जन्म होता है।

मूल्य कठोरता (Price Rigidity) : विकुंचित माँग वक्र (kinked Demand Curve) को **पॉल. एम. स्वीजी मॉडल** (Paul M. Sweezy Model) भी कहते हैं। अल्पाधिकारिक मूल्य जो कि कुछ समय तक स्थिर रहता है, मूल्य कठोरता के रूप में माना जाता है। यह वह स्थिति है जिसमें उत्पादन की लागत एवं माँग की स्थितियों में परिवर्तन आने पर भी फर्म की ओर से मूल्य एवं सेवाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है। टिकाऊ वस्तुओं (Durable goods) का मूल्य प्रायः पूरे वर्ष भर में नहीं बदलता।

मूल्य कठोरता के कारण (Reasons for Price Rigidity)

(i) अल्पाधिकार बाजार संरचना में मूल्य कठोरता विकुंचित माँग वक्र (Kinked Demand Curve) के पक्ष में कार्य करता है।

(ii) जब अल्पाधिकारी अपने वर्तमान चालू मूल्य से पूर्ण रूप से संतुष्ट हो, ताकि बाजार की अनिश्चितता से बचा जा सके।

(iii) यदि मूल्य निर्धारण किसी गठबन्धन या समझौता के अन्तर्गत किया गया है, तो मूल्य युद्ध से बचने के लिए कोई भी फर्म उसमें परिवर्तन नहीं करेगी।

(iv) नई फर्मों के प्रवेश को हतोत्साहित करने के लिए भी अल्पाधिकारी मूल्य कठोरता को अपनाता है।

(v) जब अल्पाधिकारी को इस आधारभूत तथ्य का ज्ञान हो गया हो कि मूल्य युद्ध व्यर्थ होता है क्योंकि यह किसी भी फर्म के हित में नहीं है।

(vi) चूंकि अत्यधिक बिक्री लागत सम्बद्ध है, इसलिए कोई भी फर्म मूल्य में परिवर्तन नहीं करना चाहती।

(vii) ऐसा सम्भव है कि फर्म अपनी बिक्री को बढ़ाकर लाभ को अधिकतम बना ले। अत: मूल्य कम करने की अपेक्षा मूल्य कठोरता की नीति अपनाई जाती है।

विकुंचित माँग वक्र की मान्यताएँ (Assumptions of Kinked Demand Curve) :

(i) अल्पाधिकारिक बाजार में एक स्थापित मूल्य प्रचलित होता है।

(ii) प्रत्येक विक्रेता या फर्म का व्यवहार उसके प्रतिद्वन्दियों के व्यवहार पर निर्भर होता है।

(iii) यदि एक फर्म अपने उत्पाद का मूल्य कम या अधिक करती है, तो उसके प्रतिद्वन्द्वी भी उसका अनुसरण करते हैं।

(iv) अल्पाधिकार में सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र के बिन्दु (विखंडित) वाले क्षेत्र से गुजरता है, जो इस तथ्य की व्याख्या करता है कि अल्पाधिकारिक बाजार संरचना में सीमान्त लागत में परिवर्तन का उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(v) फर्में प्रतियोगी मूल्य (Competitive price) नीति का अनुसरण करती हैं।

मूल्य कठोरता की स्थिति का वर्णन विकुंचित माँग वक्र (Kinked Demand curve) की सहायता से रेखाचित्र 19.1 द्वारा भली - भांति समझा जा सकता है।

रेखाचित्र 19.1

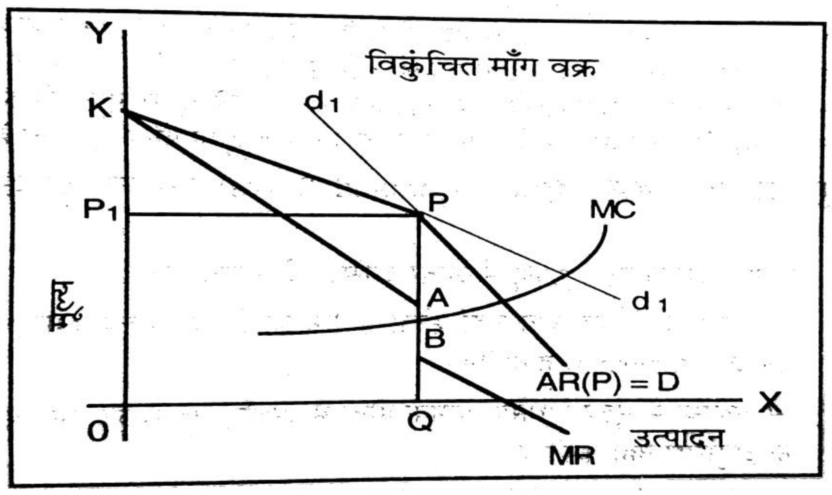

रेखाचित्र 19.1 के अनुसार फर्म का मूल्य OP_1 के बराबर है। KPD विकुंचित माँग वक्र (Kinked demand curve) है। P बिन्दु है जो KPD माँग वक्र पर स्थित है। अतः अल्पाधिकारिक बाजार संरचना में OP_1(QP) बाजार में प्रचलित मूल्य है, जहाँ उत्पादन मात्रा OQ स्तर पर है| MR सीमान्त आगम वक्र है, जिसका AB अंश निरन्तरता का अभाव दर्शाता है| MC अल्पाधिकारी का सीमान्त लागत वक्र है। इस स्थिति में जबकि प्रचलित मूल्य OP_1 हैं, कोई भी वृद्धि फर्म के विक्रय को कम कर देगी और लाभ सीमित हो जाएगा। माँग वक्र के KP अंश के लोचदार होने के कारण यदि फर्म अपनी वस्तु की कीमत में वृद्धि करती है, तो अन्य फर्में उसका अनुसरण नहीं करती हैं (तत्सम्बन्धी अंश KA सीमान्त

आगम वक्र का धनात्मक हिस्सा है)| इस प्रकार मूल्य में की गयी कोई भी वृद्धि बिक्री को कम कर देगी और साथ ही आगम और लाभ भी घट जाएगा।

इसके विपरीत, यदि फर्म या विक्रेता मूल्य घटाकर OP_1 से नीचे ले जाता है, तो उसके प्रतिद्वन्द्वी भी अपने उत्पाद का मूल्य कम कर देंगे, जिसके फलस्वरूप बिक्री तो बढ़ जाएगी लेकिन लाभ पहले से कम हो जाएगा। इसका कारण स्पष्टतः यह है कि माँग वक्र पर PD अंश कम लोचदार है तथा B बिन्दु से नीचे का अंश सीमान्त आगम वक्र ऋणात्मक है अर्थात् मूल्य में कमी या वृद्धि दोनों ही स्थितियों में विक्रेता को हानि ही होगी। अतः अल्पाधिकारी प्रचलित बाजार मूल्य OP_1 पर ही अपने उत्पाद का विक्रय करेगा, जो कि कठोर (rigid) होता है। इस प्रकार **मूल्य कठोरता विकुंचन बिन्दु** (Kinky point) जो कि विकुंचित माँग वक्र पर है, मूल्य कठोरता का नियमन होता है। इस विकुंचन बिन्दु के बाईं ओर माँग वक्र अधिक लोचदार होता है तथा दाई और बेलोचदार होता है।

स्व-मूल्यांकन – द्वितीय

'अमूल' दुग्ध उत्पादों का एक बड़ा संस्थान है जिसने हाल ही में अपनें समस्त दुग्ध उत्पादों के मूल्यों में बढोतरी की है। इसके पश्चात् 'सरस' ने भी अपने समस्त उत्पादों के मूल्यों में वृद्धि की घोषणा कर दी है। आप इसी प्रकार के एक दुग्ध उत्पादन संस्थान के शीर्ष पद पर विराजमान हैं और आप पर भी प्रतिस्पर्द्धा की दशा में मूल्य वृद्धि का दवाब है। आप क्या निर्णय लेना पंसद करेंगे और क्यों? समझाने का प्रयत्न कीजिये|

19.5.2 गठबंधन या गुटबंदी के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price Determination under Collusion)

गठबन्धन या कारटेल (Cartel) विभिन्न फर्मों का संयोग है, जिसका उद्देश्य बाजार में प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों के प्रभाव को कम करना होता है। प्रत्येक फर्म व्यक्तिगत रूप से जो एक निश्चित उद्योग में होते हैं, एक केन्द्रीय शक्ति के समक्ष आत्मसमर्पण करते हैं कि उनके पक्ष में वह मूल्य एवं उत्पादन स्तर का निर्धारण करें। अर्थात् कारटेल या गठबन्धन में अल्पाधिकारी एक एकाधिकारी शक्ति को मान लेते हैं, जो उनके समान उत्साह से मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण कर सकें। इस बाबत किसी न किसी प्रकार का औपचारिक या अनौपचारिक समझौता हो जाता है। कुछ गुटबन्दियाँ समझौतों पर आधारित होती हैं। बहुत से समझौते मौखिक तथा लिखित दोनों प्रकार के हो सकते हैं। मौखिक समझौते में किसी प्रकार की लिखा-पढ़ी नहीं होती है; जबकि लिखित समझौते में समझौते की सम्पूर्ण बातें लिखित रूप में होती हैं। इसके अन्तर्गत प्रतिद्वन्द्वी विक्रेता आपस में मूल्य तथा उत्पादन मात्रा सम्बन्धी समस्याओं पर सहमत होते हैं। इन समझौतों के बहुत से भेद होते हैं। एक ओर तो सभी फर्में अपने सम्पूर्ण अधिकार एक केन्द्रीय संस्था को दे देती हैं और वही संस्था मूल्य तथा उत्पादन मात्रा को निर्धारित करती है और लाभ का विभाजन करती है। दूसरी ओर कारटेल होते हैं, जो सदस्य फर्मों के उत्पादन का मूल्य निर्धारित करते हैं, परन्तु व्यक्तिगत अल्पाधिकार फर्मों को बिक्री तथा विज्ञापन की छूट दे देते हैं। गठबन्धन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:

(i) पूर्ण गठबन्धन या पूर्ण गुटबंदी (Perfect Collusion) : केन्द्रीयकृत या पूर्ण कारटेल, पूर्ण गठबन्धन का एक असीम रुप है। यह वह व्यवस्था होती है, जिसमें विभिन्न फर्मे अपने प्रबन्ध सम्बन्धी कुछ निर्णय एवं कार्य एक गठबन्धन को अपने लाभ की स्थिति में सुधार के उद्देश्य से हस्तांतरित कर देती हैं। इसका उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता

है। इसकी प्राप्ति के लिए केन्द्रीय संगठन द्वारा वस्तु का मूल्य, उत्पादन की मात्रा तथा व्यक्तिगत फर्मों के उत्पादन का कोटा निर्धारित किया जाता है। जब पूर्ण गठबन्धन के अन्तर्गत केन्द्रीय कारटेल की स्थापना हो जाती है, तब अल्पाधिकार एकाधिकार में बदल जाता है। परिणामस्वरूप उद्योग को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक फर्म को लाभ में कोटा/अंश बराबर ही प्राप्त हो। यह फर्मों के आपसी समझौते तथा उनके सापेक्षिक मोल-तोल की शक्ति पर निर्भर करता है।

परन्तु क्या पूर्ण गुटबंदी वाले कारटेल का कोई अस्तित्व हो सकता है और यदि हो सकता है, तो क्या यह बहुत दिनों तक जीवित रह सकता है? पूर्ण कारटेल का यह अर्थ होता है कि अल्पाधिकार उद्योग में सभी फर्में कारटेल प्रशासन की सदस्य हैं। परन्तु वास्तविकता यह कि कुछ फर्में इस संगठन में प्रवेश करना चाहती हैं और कुछ नहीं। दूसरे, यह भी माना जाता है कि केन्द्रीय कारटेल प्रशासन को उद्योग में किसी नये प्रतियोगी के प्रवेश का भय नहीं होता है। परन्तु ऐसा सोचना भी अवास्तविक है क्योंकि प्रवेश की सम्भावना सदैव बनी रहती है। कारटेल की सदस्यता को अस्वीकार करने वाली नई फर्मों के प्रवेश ने बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय कारटेलों को समाप्त कर दिया है।

(ii) बाजार सहभागी कारटेल (Market Sharing Cartel) : इसके अन्तर्गत बिक्री के लिए कुल बाजार को उपस्थित फर्मों के मध्य बराबर-बराबर बाँट दिया जाता है। विभेदात्मक अल्पाधिकार में उद्योग में उपस्थित सभी फर्में समान मूल्य वसूल करने के लिए गठबन्धन करती हैं, जो सभी फर्मों को मान्य होता है। वे परस्पर समझौते के अनुसार बाजार को आपस में विभाजित कर लेते हैं और अपनी बिक्री के अनुसार लाभ प्राप्त करते हैं। इन सभी फर्मों का माँग वक्र उद्योग के माँग वक्र का एक हिस्सा होता है, जैसा कि रेखाचित्र 19.2 में दर्शाया गया है।

रेखाचित्र 19.2

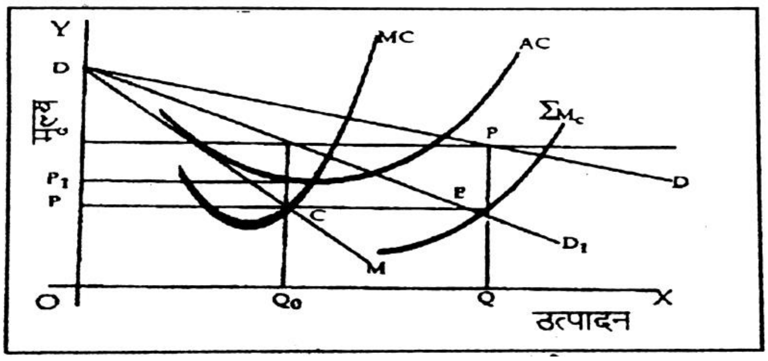

जब बाजार को बराबर हिस्सेदारी के आधार पर विभाजित किया जाता है, तो DD उद्योग का माँग वक्र है और MR तत्सम्बन्धी सीमान्त आगम वक्र है जो चित्र में DD_1 के द्वारा दिखाया गया है। ΣMC उद्योग के सीमान्त लागत का सकल योग दर्शाता है। MR वक्र (DD_1) ΣMC को E बिन्दु पर काटता है। फलत: OP मूल्य और OQ उत्पादन मात्रा निर्धारित होती है। ऐसी स्थिति में उद्योग का कुल उत्पादन OQ फर्मों के बीच बराबर बाँटा जाता है। फर्म के MC वक्र को MR वक्र C बिन्दु पर काटता है जो उद्योग के कुल उत्पादन का आधा है और OQo के द्वारा दर्शाया गया है। इस प्रकार फर्में कुल उत्पादन (OQo+QoQ=OQ) के समान मात्रा की हिस्सेदारी करती है।

अपूर्ण गुटबन्दी, जिसमें प्रतिद्वन्द्वी फर्मों के मध्य कीमत तथा बाजार विभाजन के सम्बन्ध में समझौता हो जाता है, में हम यह मान लेते हैं कि प्रत्येक विक्रेता का माँग वक्र सम्पूर्ण उद्योग के माँग वक्र का एक भाग होता है। इसका तात्पर्य यह कि प्रत्येक फर्म प्रत्येक सम्भव कीमत पर उद्योग की पूर्ण बिक्री के कुछ भाग को बेचती है। इसी माँग वक्र के आधार पर प्रत्येक फर्म का सीमान्त आगम वक्र ज्ञात करना पड़ेगा। अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये प्रत्येक विक्रेता उस कीमत को पसन्द करेगा, जहाँ विक्रेता की सीमान्त लागत (MC) उसकी सीमान्त आगम (MR) के समान होती है।

इस प्रकार प्रत्येक फर्म अपनी कीमत निर्धारित करेगी और इस प्रकार की कीमत प्रतिद्वन्द्वी फर्मों की कीमत के तब तक बराबर नहीं हो सकती है, जब तक प्रत्येक फर्म का उत्पादन लागत वक्र समान नहीं है और यह साधारणतया सम्भव भी नहीं है। लेकिन कीमत स्पर्धा को रोकने के लिए प्रतिद्वन्द्वी फर्में समझौता करने को तैयार हो जाती हैं और एक कीमत निश्चित कर लेती हैं। इस प्रकार सबके लिए निर्धारित समान कीमत तथा केन्द्रीय कारटेल प्रशासन द्वारा निर्धारित कीमत में यह अन्तर होता है कि पहली कीमत दूसरी कीमत से कम हो सकती है तथा पहली अवस्था में लागत को न्यूनतम करने की प्रवृत्ति नहीं होती है और इन दोनों कारणों के फलस्वरूत अपूर्ण गुटबन्दी वाले अल्पाधिकार का लाभ पूर्ण गुटबन्दी वाले अल्पाधिकार के लाभ से कम होता है। पूर्ण गुटबन्दी के समान अपूर्ण गुटबन्दी में भी नई फर्मों के प्रवेश पर रोक लगाने के लिये कीमत को कम करना पड़ेगा।

19.5.3 मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price Determination under Price Leadership) : मूल्य नेतृत्व अपूर्ण गठबन्धन का एक रूप है। इसके अन्तर्गत उद्योग में उपस्थित एक बड़ी फर्म जो अन्य फर्मों पर अपना प्रभाव डालने में सक्षम रहती है, अन्य फर्मों को अपने नेतृत्व में चलने के लिए प्रभावित कर लेती है। कभी-कभी सभी फर्में एकत्रित होकर एक प्रभावी फर्म से निश्चित समझौता करती हैं कि वे नेतृत्व करने वाली फर्म द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही उत्पाद बेचेंगी। फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु समरूप भी हो सकती और विभेदी भी। उदाहरण के लिए, मूल्य नेतृत्व वाले उद्योग हैं- सीमेंट, सिगरेट, खाद, पेट्रोलियम, इस्पात आदि।

प्रभावी फर्म के नेतृत्व शक्ति का परीक्षण तो इसी आधार पर होता है कि उसके नेतृत्व को अन्य फर्म कितना स्वीकार करती हैं या मान्यता देती हैं। जैसे ही फर्में प्रभावी फर्म को मान्यता देना समाप्त करती हैं, प्रभावी फर्म द्वारा बनाया गया मूल्य नेतृत्व मॉडल अपनी महत्ता खो देता है। इसके अतिरिक्त अल्पाधिकार में प्रत्येक फर्म का अपना भिन्न लागत वक्र होता है और यदि अल्पकालीन लाभ समान मूल्य से प्राप्त नहीं हो, तो ऐसी स्थिति में भी मूल्य नेतृत्व समाप्त हो सकता है।

रेखाचित्र 19.3

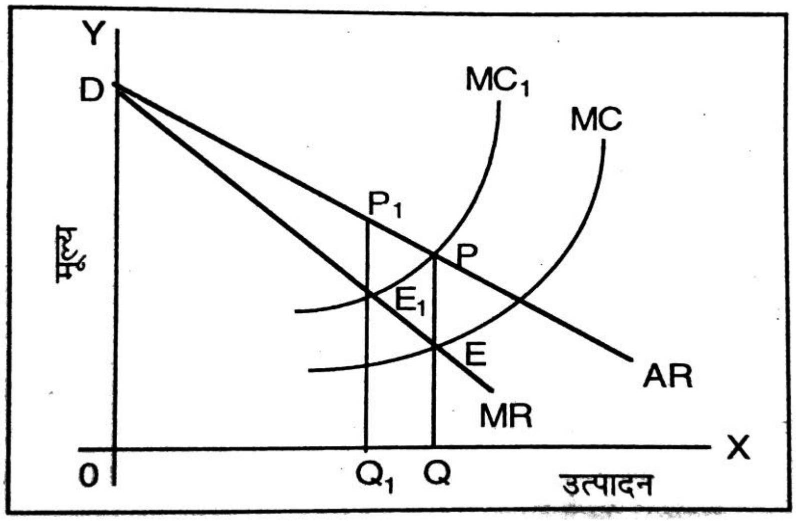

रेखाचित्र 19.3 में दो फर्में A एवं B हैं। MC और MC_1 क्रमश: इनके सीमान्त लागत वक्र हैं तथा AR और MR इनके औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्र हैं। A फर्म का सीमान्त लागत वक्र (MC) और सीमान्त आगम वक्र (MR) एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं, जो कि संतुलन बिंदु है। यहाँ पर उत्पादन स्तर OQ है तथा QP मूल्य है। इसी प्रकार फर्म B के लिए संतुलन बिन्दु E_1 है जहाँ उसकी सीमान्त लागत MC_1 और सीमान्त आगम एक दूसरे के बराबर हैं। उत्पादन स्तर OQ_1 तथा मूल्य Q_1P_1 है। यदि हम दोनों की तुलना करें, तो फर्म A का मूल्य फर्म B के मूल्य से कम है, लेकिन उत्पादन मात्रा फर्म A की अधिक है। अत: फर्म A मूल्य नेतृत्व करेगी और मूल्य तथा उत्पादन नीतियों का निर्धारण करेगी तथा अल्पाधिकार में मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत उपस्थित अन्य फर्में उसका अनुसरण करेंगी।

मूल्य नेतृत्व के प्रकार (Types of Price Leadership) : मूल्य नेतृत्व विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं :

(i) ऐसा संभव है कि प्रभावी फर्म अपने लाभ को अधिकतम बनाने के लिए मूल्य का निर्धारण करे तथा अन्य फर्मों को उसे मानने के लिए बाध्य करे। इसे **आक्रामक मूल्य नेतृत्व (aggressive price leadership)** कहते हैं। कभी-2 प्रभावी फर्म इतना कम मूल्य भी निर्धारित कर सकती है कि कुछ फर्में उद्योग छोड़कर जाने को विवश हो जाएँ|

(ii) जब मूल्य प्रभावी फर्म द्वारा घोषित किया जाता है, तब इस स्थिति को हम **प्रभावकारी मूल्य नेतृत्व (Effective Price Leadership)** कहते हैं। इसे आंशिक एकाधिकारात्मक मूल्य नेतृत्व भी कहा जाता है।

(iii) जब प्रभावी फर्म द्वारा मूल्य नीति ऐसी बनाई जाती है कि वह अल्पाधिकारिक फर्मों के बीच प्रतियोगिता को दबाए या कम करे, तो इसे भी **प्रभावकारी मूल्य नेतृत्व** (Effective Price Leadership) कहते हैं।

(iv) व्यवहार में इस स्थिति में कोई प्रभावी फर्म नहीं होती है। केवल एक **दाबमापी मूल्य** (Barometer price) होता है जिसका निर्धारण कुशलतम फर्म द्वारा माँग, लागत आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है तथा अन्य सभी फर्में उस मूल्य का अनुसरण करती हैं।

कीमत नेतृत्व की सीमाएँ (Limitations of Price Leadership)

(i) कीमत नेता की नेतृत्व सफलता फर्म के प्रतिद्वन्द्वियों की प्रतिक्रियाओं के ऊपर और उसकी प्रतिक्रियाओं का सही अनुमान लगाने की योग्यता पर निर्भर होती है। यदि वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों की प्रतिक्रियाओं का गलत अनुमान लगायेगा, तो उसकी कीमत नीति केवल असफल ही नहीं होगी, वरन् उसका नेतृत्व भी समाप्त हो सकता है।

(ii) कीमत-नेता अपने अनुयायियों के साथ लगभग एकाधिकार स्तर पर कीमत निर्धारित करता है, परन्तु उसके लिए उस कुल उत्पादन का अनुमान लगाना, जिससे उसे अधिकतम शुद्ध आय प्राप्त हो सके, कठिन है। इसी प्रकार उसके लिये प्रत्येक समय माँग और कीमत का सम्बन्ध भी जानना कठिन होता है।

(iii) अनुयायियों की सच्चाई सीमित हो सकती है। उदाहरण के लिये, कीमत-नेता इतनी अधिक कीमत निर्धारित करने के अयोग्य हो सकता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वी उससे कम कीमत पर अपनी वस्तु बेच सकते हैं अथवा प्रतिद्वन्द्वी उद्योग में प्रवेश कर सकते हैं।

(iv) कीमत नेतृत्व वाली फर्म का बाजार में धीरे-धीरे हिस्सा कम हो जाता है। यह कभी-कभी तो प्रतिद्वन्द्वियों के द्वारा कम कीमत पर वस्तु बेचने से होता है क्योंकि इससे प्रतिद्वन्द्वियों के बाजार का हिस्सा अधिक हो जाता है। कभी-कभी उद्योग के विकास की दशा में छोटी फर्में अपनी उत्पादन मात्रा बढ़ा लेती हैं, और कभी-कभी नये प्रतिद्वन्द्वी कुछ बाजार माँग पर अपना अधिकार स्थापित कर लेते हैं।

(v) कीमत नेता की शक्ति विभिन्न फर्मों की उत्पादन लागतों में अन्तर द्वारा सीमित हो जाती है। यदि कीमत-नेता की उत्पादन लागत अधिक है, तो दूसरी फर्में उससे कम कीमत पर वस्तु बेचने लगेंगी और यदि उसकी उत्पादन लागत कम है, तो वस्तु की कम कीमत निर्धारित करके उसे अपने विरोधियों के विरोध का सामना करना पड़ सकता है।

(vi) एक सम्भावना यह भी हो सकती है कि छोटी फर्में आपस में मिलकर अपनी उत्पादन क्षमता को बढ़ा लें और कीमत नेता से प्रत्यक्ष स्पर्धा करने लगे। सम्भावना यह भी हो सकती है कि कीमत-नेता अपने प्रतिद्वन्द्वियों को समझौते द्वारा अपने वश में कर ले और इस प्रकार एक कारटेल का निर्माण कर ले।

19.6 सारांश (Summary)

अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति होती है जिसमें (i) वस्तु के उत्पादक थोड़े होते हैं, (ii) कुल पूर्ति में उनका हिस्सा बहुत अधिक होता है तथा (iii) वे अपनी क्रियाओं से दूसरे उत्पादकों की क्रियाओं व कीमत को प्रभावित करने की स्थिति में होते हैं। नई फर्मों के बाजार में प्रवेश से हतोत्साहित करने के लिए मूल्य कठोरता की नीति को अपनाया जाता है। मूल्य युद्ध से बचने के लिए कोई भी फर्म मूल्य में परिवर्तन नहीं करना चाहती। विकुंचित माँग वक्र इस स्थिति को स्पष्ट करता है| पूर्ण गठबंधन की अवस्था में अल्पाधिकार प्राय: एकाधिकार मे परिवर्तित हो जाता है। केन्द्रीय कार्टेल की स्थिति में उस अवस्था में लाभों को अधिकतम किया जा सकता है जब उद्योग का सामूहिक सीमांत आगम तथा सामूहिक सीमांत लागत दोनों एक दूसरे के बराबर हो। अल्पाधिकार की बाजार संरचना में प्राय: निम्न लागत वाली फर्म मूल्य नेतृत्व करती है। अन्य फर्मे उसे स्वीकार कर लेती हैं। इस स्थिति में हम यह मानकर चलते हैं कि फर्मों द्वारा समरूप वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, लेकिन स्वतंत्र मूल्य निर्धारण के अन्तर्गत विभिन्न फर्मों के मध्य गठबंधन नहीं होता है। अल्पाधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता की एक बाजार दशा होती है जिसके अंतर्गत एक वस्तु के कुछ ही उत्पादक होते हैं| वस्तु समरूप अथवा भिन्न हो सकती हैं| अल्पाधिकार विक्रेता की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं : (i) अल्प विक्रेता; (ii) समरूप अथवा विभेदी उत्पाद; (iii) फर्मों की परस्पर निर्भरता; (iv) माँग वक्र की अनिश्चितता (v) अत्यधिक

विज्ञापन लागतें; (vi) मूल्य दृढ़ता एवं मूल्य युद्ध; (vii) फर्मों के प्रवेश एवं बहिर्गमन में कठिनाई; इत्यादि| अल्पाधिकार के अंतर्गत विकुंचित माँग वक्र हो सकता है तथा मूल्य नेतृत्व की स्थिति भी पाई जाती है, फर्में पूर्ण अथवा आंशिक गठबंधन भी कर सकती हैं। अन्य बाजारों की भांति फर्म अपने उत्पादन एवं कीमत का निर्धारण उस बिंदु पर करती है जहाँ इसका सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत एक दूसरे के बराबर हो। अल्पाधिकार बाजार के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण की कोई एक स्थिति नहीं होती है।

19.7 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

इस इकाई की सम्पूर्ण पाठ्य सामग्री का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी अल्पाधिकार के अर्थ, उसकी विशेषताएं तथा वर्गीकरण से भलीभांति परिचित हो गए होंगे। अल्पाधिकार बाजार की एक ऐसी स्थिति है जिसके अंतर्गत किसी वस्तु विशेष के थोड़े से उत्पादक होते हैं तथा बाजार के कुल उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा उत्पादित करते हैं। आशा है कि विद्यार्थीगण यह समझने में समर्थ हुए होंगे कि स्वतंत्र कीमत निर्धारण, गठबंधन तथा मूल्य नेतृत्व के अंतर्गत वस्तु का मूल्य निर्धारण कैसे होता है?मूल्य-युद्ध तथा मूल्य कठोरता अल्पाधिकार के महत्वपूर्ण बिंदु है, जिनका होना अनिवार्य है। विंकुचित मांग वक्र की भी जानकारी महत्वपूर्ण है। हम आशा करते है कि आप सब इस अध्ययन सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात उक्त सभी तथ्यों के बारे में अच्छी तरह से जान गए होंगे।

19.8 शब्दावली (Glossary)

- **अल्पाधिकार (Oligopoly)**: इस शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द oligoi + pollein से हुई। Oligoi का अर्थ है कुछ (a few) और Pollein का अर्थ है बेचना (to sell) अर्थात अल्प विक्रेताधिकार।
- **मूल्य युद्ध (Price war):** जब कोई फर्म अपने उत्पाद की बिक्री बढ़ाने के लिए मूल्य को कम करती है, तो अन्य फर्में भी अपने मूल्य कम करने लगती हैं। फिर यह सिलसिला चलता रहता है।
- **मूल्य कठोरता (Price Rigidity):** उचित एवं संतोषजनक लाभ स्तर पर पहुंचने के बाद कीमत में स्थिरता आ जाती है और फिर इसमें परिवर्तन की संभावना नहीं रहती, जब तक कि उसे बदलना नितांत आवश्यक न हो जाये।
- **स्वतंत्र मूल्य (Free Price):** अल्पाधिकारी बाजार की वह अवस्था जिसमें विभिन्न फर्में स्वयं अपने उत्पादन की कीमत तय करती हैं|
- **विकुंचित माँग वक्र (Kinked Demand Curve)** : इसे स्वीजी मॉडल कहते हैं। अल्पाधिकार के अन्तर्गत मूल्य की कठोरता का विश्लेषण करने के लिए मोड़युक्त माँग वक्र का सहारा लिया जाता है। यह माँग वक्र सरल रेखा न होकर मोड़युक्त होता है|
- **गठबंधन (Collusion) :** विभिन्न फर्मों का संयोग जिसका उद्देश्य बाजार में प्रतिस्पर्द्धी ताकतों के प्रभाव को कम करना होता है।
- **पूर्ण गठबंधन (Perfect Collusion) :** विभिन्न फर्में एक केन्द्रीय संगठन (केन्द्रीय कार्टेल) का निर्माण करती हैं जिसका उद्देश्य संयुक्त लाभ को अधिकतम करना होता है।

- **मूल्य नेतृत्व (Price Leadership) :** बाजार की एक बड़ी फर्म द्वारा अन्य फर्मों का मूल्य के सम्बन्ध में नेतृत्व किया जाता है।

19.9 स्वपरख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Questions)

1. अल्पाधिकार की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख कीजिए|
2. मूल्य दृढ़ता क्या है?
3. अल्पाधिकार के अन्तर्गत पॉल स्वीजी मॉडल क्या है?
4. मूल्य नेतृत्व क्या होता है?

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. अल्पाधिकार में किन परिस्थितियों में माँग वक्र विकुंचित हो जाता है? विकुंचित माँग वक्र का सामना करने वाली फर्म का संतुलन समझाइये। उचित रेखाचित्र द्वारा निरूपण करें।
2. अल्पाधिकार की विशेषताएँ क्या हैं? अल्पाधिकार में प्रभावी फर्म के मूल्य नेतृत्व का वर्णन कीजिए।
3. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें:

   (अ) अल्पाधिकार में पूर्ण गठबन्धन के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण।

   (ब) बाजार विभाजन कारटेल के अन्तर्गत अल्पाधिकार में मूल्य निर्धारण|
4. अल्पाधिकार क्या है? क्या विकुंचित माँग वक्र समाधान अल्पाधिकार के मूल्य उत्पादन निर्णयों की संतोषजनक व्याख्या करता है?

19.10 सन्दर्भ व ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- सिंह एवं त्यागी : 'व्यावसायिक अर्थशास्त्र', हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई
- माधुर, गुप्ता : व्यष्टि अर्थशास्त्र", शिवम् बुक हाउस, जयपुर
- Agarwal, Goyal : 'Business Economics', RBD, Jaipur
- Atmanand :' Managerial Economics', Excel Books, New Delhi.

19.11 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Allen, C.L. : "The Framework of Price Theory"

- Haynes, William Warren, Vasant Mote, and Samuel Paul : 'Managerial Economics - Analysis and Cases', Vakils, Feffer & Simon's Pvt. Ltd.
- Fritz Machlup: 'The Economics of Sellers' Competition'

19.12 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Links)

- https://www.wallstreetmojo.com
- https://en.m.wikipedia.org
- https://www.economicshelp.org.

इकाई - 20

लाभ: लाभ निर्धारण के सिद्धांत और लाभ नीति (Profit: Theories of Profit Determination and Profit Policy)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 लाभ का अर्थ तथा परिभाषाएँ
20.3 लाभ की विशेषताएँ
20.4 कुल लाभ और शुद्ध लाभ
20.5 लेखा लाभ एवं आर्थिक लाभ
20.6 सामान्य लाभ और अति सामान्य लाभ
20.7 लाभ निर्धारण के सिद्धांत
20.7.1 लाभ का जोखिम वहन सिद्धांत
20.7.2 अनिश्चितता वहन सिद्धांत
20.7.3 लाभ का प्रावैगिक सिद्धांत
20.7.4 लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धांत
20.7.5 लाभ का सीमांत उत्पादकता सिद्धांत
20.7.6 लाभ का लगान सिद्धांत
20.7.7 लाभ का मजदूरी सिद्धांत
20.7.8 लाभ का समाजवादी सिद्धांत
20.7.9 लाभ का माँग एवं पूर्ति सिद्धांत / लाभ का आधुनिक सिद्धांत
20.8 लाभ नीति
20.8.1 अधिकतम लाभ नीति
20.8.2 संतोषप्रद लाभ नीति
20.9 सारांश
20.10 अधिगम परिणाम
20.11 शब्दावली
20.12 स्व परख प्रश्न
20.13 संदर्भ व ग्रन्थ सूची
20.14 अन्य पठन सामग्री
20.15 वेब संसाधन/लिंक

20.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- लाभ का अर्थ एवं इसकी विशेषताओं के बारे में अपनी समझ विकसित कर सकेंगे।
- लाभ के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे।
- लाभ निर्धारण के विभिन्न सिद्धांतों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- लाभ नीति के बारे में अपना दृष्टिकोण सुस्पष्ट कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना (Introduction)

जिस प्रकार उत्पाद के विभिन्न साधनों यथा भूमिपति को लगान, श्रम को मजदूरी तथा पूँजी पर ब्याज प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार उद्यमी को अपने उद्यम के बदले लाभ प्राप्त होता है। कुछ अर्थशास्त्री लाभ को जोखिम वहन करने का पुरस्कार मानते हैं, तो कुछ इसे अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार करार देते हैं। अनेक ऐसे भी हैं जो नव प्रवर्तन अपनाने के कारण लाभ उत्पन्न होना मानते हैं। अनेक अर्थशास्त्री इनसे भी भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। लेकिन निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि लाभ कुल लागत के ऊपर कुल आय का अतिरेक है। यह ऐसा पारितोषिक है जो उद्यमी को जोखिम उठाने, अनिश्चितता वहन करने, नव प्रवर्तन अपनाने तथा बाजार की अपूर्णताओं के कारण दिया जाता है। इस इकाई में हम लाभ का अर्थ, प्रकार तथा लाभ के विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे।

20.2 लाभ का अर्थ तथा परिभाषा (Meaning and Definition of Profit)

लाभ आंशिक रूप से जोखिम उठाने का पुरस्कार है। लाभ वह पारितोषिक या शुद्ध प्रतिफल, या आय है जो उद्यमी को कुल लागत को कुल आगम से कम रखने के लिए दिया जाता है। लाभ एक दी गई स्थिति में ही उत्पन्न होता है, यह अवशेष (Residual) प्रकृति का है क्योंकि यह उद्यमी की उस आय का प्रतिनिधित्व करता है जो कुल आय में से अन्य सभी व्यावसायिक व्ययों जैसे स्पष्ट लागत, अस्पष्ट लागत, आदि को घटाने के बाद शेष रह जाता है अर्थात् लाभ उद्यमिता के लिए दिया गया पुरस्कार है, जो फर्म के साहसी को दिया जाता है।

शुम्पीटर के अनुसार, "लाभ साहसी के नव-प्रवर्तन का पुरस्कार है।"

जे.के. मेहता के अनुसार, "गतिशील विश्व में अनिश्चितता का तत्त्व एक चौथे वर्ग के त्याग का, मनुष्य के उत्पादकीय कार्यों में, परिचय करवाता है। यह वर्ग जो जोखिम उठाने वाला या अनिश्चितता वहन करने वाला होता है, उसे लाभ का पारितोषिक दिया जाता है।"

वॉन थुनेन के अनुसार, "लाभ वह अवशेष है जो ब्याज, जोखिम के लिए बीमा और प्रबन्धन के लिए मजदूरी घटाने के बाद बच जाता है।"

इस प्रकार आर्थिक दृष्टिकोण से लाभ आय का वह अवशेष है जो व्यवसाय की सभी आर्थिक लागतों (स्पष्ट तथा अस्पष्ट) को घटाने पर प्राप्त होता है। यह उद्यमी को जोखिम उठाने के लिए दिया जाता है। लाभ गतिशील है क्योंकि इसकी मात्रा में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। लाभ की आशा में नए व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की स्थापना होती है तथा लाभ की कमी के कारण कार्यरत व्यावसायिक प्रतिष्ठान बन्द हो जाते हैं। **नाइट और शुम्पीटर** लाभ को व्यापक दृष्टिकोण से देखते हैं और उनके अनुसार यह वह आय है जो उद्यमी को जोखिम उठाने के लिए, अनिश्चितता एवं नव प्रवर्तन के

कारण दी जाती है जबकि **मार्शल और रॉबर्टसन** संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाते हैं। उनके अनुसार कुल आगम में से कुल लागत/व्यय घटाने के पश्चात जो अवशेष बचता है, लाभ है।

20.3 लाभ की विशेषताएँ (Characteristics of Profit)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर लाभ की निम्नलिखित विशेषताएँ बतलाई जा सकती हैं :

(i) लाभ एक अवशिष्ट आय है।

(ii) लाभ अनिश्चित आय है| इसमें भारी उच्चावचन हो सकते हैं।

(iii) लाभ का साधन की सीमान्त उत्पादकता से सीधा सम्बन्ध नहीं होता है।

(iv) यह धनात्मक, ऋणात्मक अथवा शून्य हो सकता है।

(v) सामान्य लाभ एक साधन लागत है क्योंकि लाभ उत्पत्ति के साधन साहस का पुरस्कार है।

(vi) लाभ एक गैर – अनुबंधात्मक आय (Non-contractual income) है।

20.4 कुल लाभ और शुद्ध लाभ (Gross Profit and Net Profit)

1. **कुल या सकल लाभ (Gross Profit) :** कुल लाभ साहसी को प्राप्त कुल आय का वह अवशेष है जो कुल स्पष्ट लागत को, कुल आगम (कुल बिक्री से प्राप्त आय) में से घटाने के बाद बच जाता है। स्पष्ट लागतों से तात्पर्य कच्चे माल की लागत, बिजली का खर्च, उत्पादन के साधनों को दिया गया पारितोषिक, घिसाई प्रभार, बीमा राशि आदि के व्यय से है, किन्तु वित्तीय लेखांकन के आधार पर यह भिन्न होता है। प्रत्यक्ष या स्पष्ट लागतों को कुल आगम में से घटाने के बाद जो शेष रह जाता है, उसे कुल लाभ कहते हैं। इस प्रकार कुल लाभ में निम्नांकित तत्त्व शामिल होते हैं :

   सकल लाभ = शुद्ध लाभ + स्पष्ट लागतें + अस्पष्ट लागतें + एकाधिकारी लाभ + अप्रत्याशित (वातावरणीय) लाभ

   सकल लाभ = कुल आगम – कुल लागतें

2. **शुद्ध लाभ या आर्थिक लाभ (Net Profit or Economic Profit) :** शुद्ध लाभ वह पारितोषिक है जो उद्यमी को उत्पादन की प्रक्रिया में जोखिम उठाने, अनिश्चितता का सामना करने तथा नव प्रवर्तन के लिए दिया जाता है। हम कह सकते हैं कि शुद्ध लाभ या आर्थिक लाभ वह अवशेष है जो साहसी को स्पष्ट एवं अस्पष्ट लागतों को कुल आगम से घटाने के बाद प्राप्त होता है। **सूत्र रूप में :**

   शुद्ध लाभ = कुल आगम – स्पष्ट लागतें – अस्पष्ट लागतें

   Net Profit = Total Revenue – (Explicit costs + Implicit costs)

   अथवा (Or)

   शुद्ध लाभ = सकल लाभ – कुल अव्यक्त लागतें

   Net Profit = Gross profit – Total implicit costs

20.5 लेखा लाभ एवं आर्थिक लाभ (Accounting Profit and Economic Profit)

लेखा लाभ (Accounting Profit): इसे व्यावसायिक लाभ (Business Profit) भी कहते हैं। यह वह लाभ है जिसकी गणना लेखाशास्त्री लेखा पुस्तकों की सहायता से करते हैं।

सूत्र रूप में :

लेखा लाभ = कुल आगम – (अनुबंधित भुगतान + पुस्तकीय लागतें + ह्रास + स्टॉक)

Accounting profit = Total Revenue – (Contractual Payments + Book Costs + Depriciation + Stock)

कुल आगम में से प्रत्यक्ष लागतें घटा देने के पश्चात जो शेष राशि रहती है, उसे लेखाविद **लेखा लाभ अथवा सकल लाभ** कहते हैं | इस लाभ में से फर्म के संचालन सम्बन्धी शेष सभी व्यय घटा देने के पश्चात जो राशि शेष रहती है, उसे लेखा शास्त्रीय दृष्टि से शुद्ध लाभ कहते हैं |

आर्थिक लाभ (Economic Profit) : यह वह लाभ है जिसे अर्थशास्त्री आर्थिक लागतों के आधार पर गणना करते हैं| यह साहसी की सेवाओं के बदले मिलने वाला प्रतिफल है| इसे कुल आगम में से उत्पादन की समस्त स्पष्ट एवं अस्पष्ट लागतें घटाकर ज्ञात किया जाता है| **सूत्र रूप में :**

आर्थिक लाभ = कुल आगम - (कुल स्पष्ट लागतें + कुल अस्पष्ट लागतें)

Economic Profit = Total Revenue - (Total explicit costs + Total implicit costs)

अथवा (Or)

आर्थिक लाभ = कुल लेखा लाभ – कुल अव्यक्त लागतें

Economic Profit = Total accounting profit – Total implicit costs

20.6 सामान्य लाभ और अति सामान्य लाभ (Normal Profit and Super Normal Profit)

सामान्य लाभ की अवधारणा **मार्शल** के द्वारा प्रतिपादित की गई थी। मार्शल इसे प्रतिनिधि फर्म का पारितोषिक मानते हैं। सामान्य लाभ में प्रतिनिधि फर्म की उत्पादन लागत सम्मिलित होती है। यह साहसी की न्यूनतम पूर्ति कीमत है और यही साहसी की हस्तांतरण आय (अवसर लागत) है| **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** के अनुसार, "सामान्य लाभ वह होता है जो कि न तो इतना अधिक होता है कि नई-नई फर्में उद्योग की ओर आकर्षित हों और न इतना कम होता है कि वर्तमान फर्में उद्योग छोड़ने लग जाये।" जब उत्पादन की कुल लागत और फर्म का कुल आगम बराबर (TR=TC) होते हैं, तो सामान्य लाभ प्राप्त होता है|

अति सामान्य लाभ (Super Normal Profit) : जब भी उद्यमी को सामान्य लाभ के अतिरिक्त पारितोषिक या आय प्राप्त होती है, उसे अति सामान्य लाभ कहते हैं। अति सामान्य लाभ धनात्मक या ऋणात्मक दोनों ही हो सकते हैं। किसी उद्यमी को अति सामान्य लाभ उसकी विशिष्टताओं एवं कुशल कार्यप्रणाली तथा बाजार की अपूर्णताओं के कारण प्राप्त होते हैं। केवल अल्पकाल में ही कोई फर्म अति सामान्य लाभ कमा सकती है, किन्तु दीर्घकाल में एकाधिकारी को छोड़कर फर्म केवल सामान्य लाभ ही कमा सकती है।

स्व-मूल्यांकन – प्रथम

एक लघु उद्यमी ने ई-बाइक की मरम्मत हेतु एक छोटी वर्कशॉप अपनी पूँजी से अपने निवास स्थान के एक हिस्से में तैयार करके कार्य प्रारंभ किया। उसने मदद के लिए एक सहायक को भी काम पर रख लिया। वर्ष के अंत में उसे कुल आगम रू. 6,00,000 का प्राप्त हुआ। इसमें में से रू. 2,00,000 उसने सहायक को वेतन के चुका दिये। शेष रू. 4,00,000

उसके पास बचे। हम कह सकते हैं कि यह राशि उसका लाभ है। लेकिन मान लीजिये अपने निवास स्थान की बजाय वह कहीं अन्य किराये की जगह लेता और उसे रू. 1,20,000 चुकाने पड़ते। यदि वह स्वयं कहीं काम करता, तो संभवत: उसे रू. 2,40,000 वेतन के मिल जाते। उसने मरम्मत का काम शुरू करने के लिए यदि पूँजी उधार ली होती, तो बदले में रू. 40,000 ब्याज के चुकाने पड़ते। मरम्मत के काम में आने वाले औजार व उपकरणों की कुछ टूट - फूट (ह्रास) भी होती है जो कि रू. 20,000 की मान लेते हैं। आप गणना करके बताइये कि इस नये उद्यमी को कितना और कैसा सकल एवं शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ और इसको कैसे दर्शाया जायेगा।

20.7 लाभ निर्धारण के सिद्धान्त (Theories of Profit Determination)

यद्यपि लाभ साहसी को उसकी विशिष्ट योग्यताओं के कारण दिया जाता है, किन्तु सामान्यतया इसे जोखिम उठाने के लिए दिए गए प्रतिफल के रूप में देखा जाता है। लाभ के प्रमुख सिद्धान्त निम्नांकित हैं :

20.7.1 लाभ का जोखिम वहन सिद्धान्त (Risk Bearing Theory of Profit)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिकी अर्थशास्त्री **हॉले ने 1907** में किया था। उनके अनुसार लाभ किसी भी जोखिमपूर्ण उत्तरदायित्व को उठाने का पुरस्कार है। यदि कोई साहसी जोखिम उठाने को तैयार है, तो उसे लाभ प्राप्त होगा । अत: यह कहा जा सकता है कि उद्यमी जितनी अधिक जोखिम उठाएगा, उसे लाभ भी उतना ही अधिक प्राप्त होने की संभावना रहती है और यदि वह कम जोखिम उठाने को तैयार होगा, तो उसे लाभ भी कम प्राप्त होने की संभावना रहती है|

सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Theory) :

(i) **लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार नहीं है :** हॉले के सिद्धान्त के अनुसार लाभ जोखिम उठाने के लिए दिया जाता है, किन्तु आलोचकों के अनुसार जोखिम उठाने और लाभ में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है।

(ii) **उद्यमी स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर होते हैं :** किसी भी व्यवसाय में उद्यमी केवल जोखिम उठाकर लाभ कमाने के उद्देश्य से ही नहीं जाते, बल्कि स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर होने पर भी, मनौवैज्ञानिक कारणों से भी वे जो जोखिम उठाते हैं।

(iii) **लाभ जोखिम को कम करने की योग्यता का पुरस्कार है :** लाभ साहसी को जोखिम उठाने के लिए नहीं दिया जाता है, बल्कि वह अपनी उद्यमीय योग्यता से उन जोखिमों से व्यवसाय को बचाता है| इसलिए उसे लाभ प्राप्त होता है।

(iv) **सभी प्रकार के जोखिमों से लाभ उत्पन्न नहीं होता : हॉले** के अनुसार, लाभ हर प्रकार की जोखिम उठाने पर प्राप्त होता है, किन्तु **नाइट** ने हॉले की आलोचना करते हुए कहा कि लाभ हर प्रकार की जोखिम से उत्पन्न नहीं होता है। यह केवल आकस्मिक जोखिमों एवं अनिश्तिताओं के कारण ही उत्पन्न होता है क्योंकि जिन जोखिमों की सम्भावना होती है, उनका पहले से ही बीमा करवाया जा सकता है।

20.7.2 अनिश्चितता वहन सिद्धान्त (Uncertainty Bearing Theory of Profit)

लाभ का अनिश्चितता वहन सिद्धान्त सर्वप्रथम **एफ.एच. नाइट ने 1927** में प्रतिपादित किया और कहा कि लाभ अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार है। **नाइट के शब्दों में,** लाभ अबीमा योग्य जोखिमों अर्थात् अनिश्चितता को वहन करने का पुरस्कार है और लाभ की मात्रा अनिश्चितता उठाने की मात्रा पर निर्भर करती है। नाइट ने जाखिमों को दो भागों

में बांटा है :

(i) सम्भावित जोखिम या बीमा योग्य जोखिमें (Foreseen Risks or Insurable Risks)

(ii) अनदेखी जोखिमें या अबीमा योग्य जोखिमें (Unforeseen Risks or Non-Insurable Risks)

सम्भावित जोखिमें वे होती हैं, जिनके उपस्थित होने का अनुमान पहले से ही लगाया जा सकता है। अनुमान लगाने के कारण उनका बीमा करवाया जा सकता है, जैसे आग लगने की जोखिम सम्भावित जोखिम है तथा साहसी इसके लिए पहले ही बीमा करवा सकता है। जबकि आकस्मिक जोखिम का अनुमान साहसी नहीं लगा सकता। इस कारण उसका बीमा भी नहीं करवा सकता है। नाइट के अनुसार लाभ सम्भावित जोखिमों के कारण उत्पन्न नहीं होता है, बल्कि आकस्मिक जोखिमों के कारण उत्पन्न होता है, जैसे प्रतियोगिता जोखिम, तकनीकी जोखिम, सरकारी नीति या व्यवधान के कारण जोखिम, व्यापार चक्र जोखिम आदि।

उद्योग में जब नई फर्में प्रवेश करती हैं तो बाजार में प्रतियोगिता का वातारण उत्पन्न होता है। जब बाजार में प्रतियोगिता बढ़ती है, तो कीमतें गिरने की जोखिम रहती है। जब उद्योग में उपस्थित फर्म आधुनिक तकनीक के उपयुक्त उपयोग के अभाव के कारण बाजार का सामना नहीं कर पाती है, तो नई तकनीकों के विकास तथा उपयोग के कारण लाभ कम हो जाते हैं। सरकारी हस्तक्षेप के कारण भी जोखिम उत्पन्न होती है। कभी कभी सरकारी नीतियों एवं अन्य सरकारी हस्तक्षेप के कारण उत्पाद का मूल्य निर्धारित किया जाता है, जो अन्तत: फर्म के लाभ में कमी लाता है। इसी प्रकार व्यापार चक्र के कारण भी उत्पन्न जोखिम भी लाभों को प्रभावित करती है। व्यापार चक्र के विभिन्न पहलूओं जैसे मुद्रास्फीति, अवस्फीति आदि के कारण लोगों की क्रयशक्ति में कमी आ जाती है, फलस्वरूप सकल माँग में कमी आ जाती है, परिणामत: लाभ राशि में भी कमी आ जाती है।

सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Theory) :

(i) **नाइट** के अनुसार अनिश्चितता वहन उत्पादन के साधन का एक स्वतन्त्र कारक है, किन्तु आलोचक इसे उत्पादन का पृथक साधन नहीं मानते हैं। लाभ व्यावसायिक क्रियाओं की योग्यता पर निर्भर करता है, न कि अनिश्चितता के वहन के कारण।

(ii) अनिश्चितता वहन के कारण यह सिद्धान्त किसी व्यवसाय में लाभ की होने वाली मात्रा का मापन नहीं कर पाता है।

(iii) आलोचकों के अनुसार लाभ केवल अनिश्चितता के वहन का ही पुरस्कार नहीं है, बल्कि अन्य कारकों का भी पारितोषिक है, जैसे उद्यमी की नियोजन, समन्वय, प्रबन्धन और निर्णय लेने की शक्ति आदि।

(iv) यह सिद्धान्त अपूर्ण तथा अपर्याप्त है क्योंकि यह सिद्धान्त भी अन्य सिद्धान्तों की तरह लाभ में अन्तर्निहित व्यापकता के तत्त्व की व्याख्या नहीं करता। यह केवल आकस्मिक लाभ का ही वर्णन करता है।

(v) यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार में उत्पन्न होने वाले लाभ का वर्णन नहीं करता| नाइट का अनिश्चितता वहन का सिद्धान्त इस तथ्य की व्याख्या करने में असमर्थ है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, एकाधिकार या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की तुलना में लाभ कम क्यों होता है?

(vi) आलोचकों के अनुसार लाभ केवल अनिश्चितता वहन के लिए ही प्रदान नहीं किया जाता है, बल्कि इसके अन्य कारण जैसे पूँजी की कमी, अवसरों के सम्बन्ध में अज्ञानता उत्पादन के साधनों में गतिशीलता का अभाव आदि भी हैं।

20.7.3 लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त (Dynamic Theory of Profit)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन **जे.बी. क्लार्क** ने किया। इसके अनुसार केवल प्रावैगिक समाज में ही लाभ उत्पन्न होता है क्योंकि लाभ वस्तुओं के मूल्य एवं उनकी लागत में उपस्थित अन्तर के कारण उत्पन्न होता है।क्लार्क के अनुसार, स्थैतिक अर्थव्यवस्था में लाभ उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वहां किसी भी प्रकार की अनिश्चितता नहीं होती है। साहसी पिछले वर्ष की ही सभी व्यावसायिक क्रियाओं की पुनरावृति करके उसी मूल्य एवं लागत पर उत्पादन करेगा, फलत: लाभ की कोई मात्रा उपस्थित नहीं होगी। किन्तु वास्तविक जीवन में हम पाते है कि व्यावसायिक जगत में प्रतिदिन परिवर्तन होते रहते हैं। प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के कारण लाभ उत्पन्न होता है क्योंकि इन परिवर्तनों के कारण किसी वस्तु की माँग एवं पूर्ति प्रभावित होती है। **क्लार्क** के अनुसार लाभ प्रावैगिक अर्थशास्त्र का विषय है, न कि स्थैतिक अर्थव्यवस्था का।

सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Theory) :

(i) लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त आर्थिक प्रावैगिक न होकर तुलनात्मक रूप से स्थैतिक है क्योंकि आर्थिक प्रावैगिक से तात्पर्य अर्थव्यवस्था में लगातार परिवर्तन से है अर्थात् परिवर्तनों में निरन्तरता बनी रहती है, जबकि वास्तविकता में प्रावैगिक परिवर्तन का शीघ्र ही अन्त हो जाता है। अत: यह केवल अर्द्धसत्य है कि लाभ समाज में होने वाले प्रावैगिक परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पन्न होता है।

(ii) आलोचकों के अनुसार प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में होने वाला प्रत्येक परिवर्तन लाभ का सृजन नहीं करता, जैसा कि प्रो. नाइट ने कहा है कि केवल वही परिवर्तन जिनका अनुमान नहीं लगाया जा सकता या जो बीमा योग्य नहीं होते, वे ही लाभ का सृजन करते हैं।

(iii) **प्रो. टॉजिग** ने बताया कि यह सिद्धान्त लाभ तथा मजदूरी में कृत्रिम भेद करता है। इसके अनुसार स्थिर अर्थव्यवस्था में तो प्रबन्धकों को मजदूरी मिलती है, जबकि प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में उसे लाभ प्राप्त होता है। किन्तु ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि स्थिर अर्थव्यवस्था में भी कुछ जोखिमें अवश्य रहती हैं, जिसके लिए साहसी को लाभ के रूप में पुरस्कार मिलना चाहिए।

(iv) आलोचक यह भी कहते हैं कि जे.बी. क्लार्क ने लाभ के जोखिम सिद्धान्त को इस आधार पर अस्वीकृत किया था कि जोखिम पूँजीपतियों द्वारा उठाई जाती है न कि साहसी द्वारा| यदि जोखिम पूँजीपतियों द्वारा उठायी जाती है और साहसी स्वयं पूँजीपति नहीं होता, तो यह अपने आप में विरोधाभासी व्याख्या है।

20.7.4 लाभ का नव - प्रवर्तन सिद्धान्त (Innovation Theory of Profit)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन **जे.ए. शुम्पीटर** ने किया था। यह अनेक अर्थों में क्लार्क के सिद्धान्त के समान है क्योंकि शुम्पीटर ने भी लाभ को प्रावैगिक परिवर्तनों के कारण ही उत्पन्न हुआ माना है। परन्तु यह क्लार्क के प्रावैगिक सिद्धान्त से अधिक व्यापक है। शुम्पीटर के अनुसार नव - प्रवर्तनों से तात्पर्य पुरानी उत्पादन तकनीक एवं मशीनों के स्थान पर नवीन उत्पादन तकनीक एवं मशीनों का उपयोग करना, कच्चे माल के नव स्त्रोतों की खोज, उत्पाद के विक्रय के लिए नए बाजारों की खोज, वितरण की नई विधियों की खोज, उद्योग का पुनर्संगठन करना आदि से है। इन सभी तथ्यों के कारण उत्पादन लागत में कमी आती है। परिणामत: उत्पादक को लाभ प्राप्त होता है। फर्म को यह लाभ तब तक प्राप्त होता रहेगा, जब तक कि नव - प्रवर्तन को अपना कर दूसरे प्रतियोगी उद्योग में प्रवेश नहीं कर जाते हैं। फर्म को सस्ते कच्चे माल तथा नए बाजार की खोज के कारण प्राप्त लाभ की मात्रा अस्थिर होती है क्योंकि जैसे ही अन्य फर्में नव प्रवर्तन को अपनाती हैं, लाभ घट जाता है। इस प्रकार शुम्पीटर के अनुसार नव - प्रवर्तनों के कारण लाभ उत्पन्न होता है

तथा अनुकरण द्वारा समाप्त होता है। नव - प्रवर्तन का कार्य सदैव चलता रहता है और इस कारण उस समय तक लाभ उत्पन्न होता है, जब तक कोई उद्यमी इसे गुप्त रखता है। **शुम्पीटर** शब्दों में, "नव – प्रवर्तन लाभ का सृजन और उनका अनुकरण लाभ का समापन करते है|" शुम्पीटर के अनुसार नव – प्रवर्तन लाभ का कारण और परिणाम दोनों हैं |

सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Theory)

(i) यह सिद्धान्त साहसी के कार्यों के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। लाभ केवल नव प्रवर्तन के कारण ही उत्पन्न नहीं होता, बल्कि साहसी द्वारा प्रतिपादित संगठनात्मक कार्यों द्वारा भी होता है।

(ii) यह सिद्धान्त नव प्रवर्तन को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करता है तथा लाभ पर प्रभाव डालने वाले अन्य कारकों पर ध्यान नहीं देता है।

(iii) यह सिद्धान्त लाभ को जोखिम वहन करने का पुरस्कार नहीं मानता। शुम्पीटर के अनुसार केवल पूँजीपति ही जोखिम वहन करता है, साहसी नहीं। वास्तव में, साहसी ही विनियोग द्वारा जोखिम उठाता है। साहसी का प्रधान कार्य अनिश्चितता एवं जोखिम वहन करना है, न कि नव – प्रवर्तन करना|

(iv) लाभ का नव प्रवर्तन सिद्धान्त लाभ की निश्चित मात्रा एवं आकार नहीं बताता है।

(v) साहसी नव-प्रवर्तन नहीं करते, बल्कि शोध विशेषज्ञ करते हैं|

20.7.5 लाभ का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Profit)

वितरण के इस सिद्धान्त के अनुसार साहसी की योग्यता के लिए लाभ का निर्धारण भी उसी प्रकार होता है, जैसे उत्पादन के अन्य साधनों का मूल्य निर्धारित होता है। जिस तरह से किसी उत्पादन के साधन का सीमान्त उत्पादकता वक्र उस साधन का माँग वक्र होता है, ठीक उसी तरह एक साहसी का सीमान्त उत्पादकता वक्र भी साहसी का माँग वक्र होता है। साहसी की सीमान्त उत्पादकता, साहसी की एक इकाई बढ़ाने या घटाने से उत्पादन में जो वृद्धि या कमी होती है, से जानी जाती है। इस तथ्य को रेखाचित्र 20.1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

रेखाचित्र 20.1

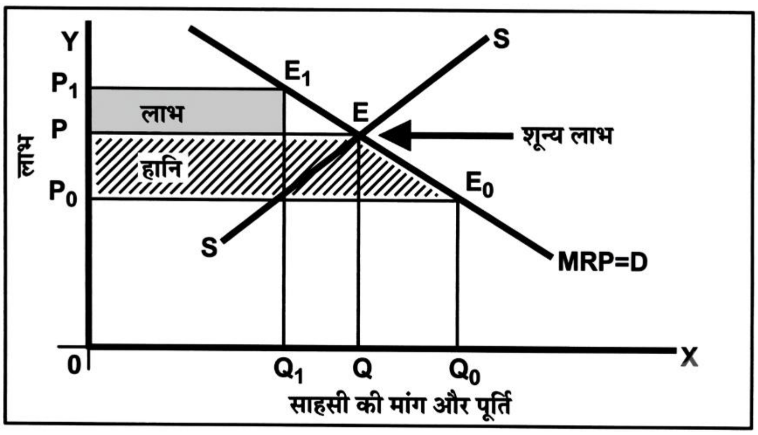

साहसी की पूर्ति उसकी हस्तानान्तरण आय या अवसर लागत पर निर्भर करती है। यह हस्तानान्तरण आय उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। साहसी की सीमान्त उत्पादकता वक्र के निर्धारण में प्रमुख रूप से कठिनाई आती है। साहसी के अतिरिक्त उत्पादन के किसी भी अन्य साधन की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करनी हो, तो उस साधन की एक

और इकाई को लगाकर सीमान्त भौतिक एवं सीमान्त आगम उत्पादकता को ज्ञात किया जाता है। परन्तु किसी फर्म में एक ही साहसी होता है, अत: ऐसी स्थिति में सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता। साहसी की संख्या न तो बढ़ाई जा सकती है और न ही कम की जा सकती है। किसी फर्म विशेष में साहस की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करना कठिन होता है, किन्तु एक उद्योग के लिए साहसी की सीमान्त उत्पादकता के आधार पर हम एक साहसी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात कर सकते हैं, जिसमें साहसी की **विशिष्टता** (Specificity) को मुख्य रूप से आधार बनाया जाता है।

रेखाचित्र 20.1 के अनुसार MRP उद्योग में साहसी की सीमान्त आगम उत्पादकता का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके घटने तथा बढ़ने से लाभ राशि में भी कमी तथा वृद्धि होती है। SS किसी उद्योग में साहसी का पूर्ति वक्र है, जो इस मान्यता पर आधारित है कि सभी साहसी समान रूप से प्रवीण है और सभी को उद्योग में लाभ भी समान रूप से ही प्राप्त होता है। MRP तथा SS वक्र एक दूसरे को E बिंदु पर काटते हैं। इस बिन्दु पर OP लाभ की मात्रा है, जो उद्योग में दीर्घकाल में प्राप्त होगी, जबकि अल्पकाल में साहसी को अति सामान्य लाभ, सामान्य लाभ या हानि भी हो सकती है| रेखाचित्र में बिन्दु E_1 पर OP_1 लाभ मात्रा है जो सामान्य लाभ OP से अधिक है अर्थात् फर्म अति सामान्य लाभ कमा रही है। दूसरी ओर जब साहसी Eo बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है, तो केवल OPo लाभ स्तर ही प्राप्त करता है जो कि सामान्य लाभ OP से कम है, अत: हानि हो रही है।

सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Theory) :

(i) सभी उद्यमियों की समान योग्यता नहीं होती, जबकि यह सिद्धांत सभी उद्यमियों को सम रूप मानकर चलता है|

(ii) साहसी की सीमान्त उत्पादकता का निर्धारण करना कठिन है क्योंकि एक फर्म में केवल एक ही साहसी होता है।

(iii) लाभ की सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त एक तरफा है। यह माँग पक्ष को अधिक महत्त्व देता है और पूर्ति पक्ष की अवहेलना करता है।

(iv) यह लाभ की अल्पकालीन व्याख्या करने में असमर्थ है । यह सिद्धान्त केवल दीर्घकाल में ही लागू होता है।

(v) यह एकाधिकारी लाभ तथा आकस्मिक लाभ की व्याख्या नहीं करता है और न ही यह उद्यमी की योग्यता तथा प्रवीणता पर ध्यान देता है।

(vi) यह भ्रामक तथा अव्यावहारिक मान्यताओं पर आधारित है।

20.7.6 लाभ का लगान सिद्धान्त (Rent Theory of Profit)

सर्वप्रथम इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमरीकी अर्थशास्त्री **फ्रांसिस डब्ल्यू. वाकर** ने किया था जो कि शुद्ध लाभ की अवधारणा पर आधारित है। इनके अनुसार लाभ योग्यता का लगान है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि भूमि के उपयोग के पारितोषिक के रूप में लगान दिया जाता है। जिस प्रकार भूमि की उर्वरता में अन्तर होता है, उसी प्रकार साहसी की योग्यता में भी भिन्नता होती है।लाभ का निर्धारण भी सीमान्त साहसी तथा अति सीमान्त साहसी की योग्यता में अन्तर द्वारा होता है।

सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Theory) :

(i) **लगान और लाभ में कोई समानता नहीं होती :** लगान और लाभ पूर्णतया समान नहीं हैं। लगान सामान्यत: धनात्मक होता है और साथ ही कभी-कभी शून्य भी होता है, किन्तु लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है।

(ii) **लाभ योग्यता का लगान नहीं है :** योग्यता का लगान श्रमिकों के मजदूरी में भिन्नता की मान्यता पर आधारित है। यह व्यावसायिक योग्यता का पारितोषिक नहीं है। अक्सर यह अन्य कारणों से भी उत्पन्न होता है जैसे-एकाधिकारिक शक्तियों के उत्पन्न लाभ।

(iii) **लाभ गतिशीलता का परिणाम है :** लाभ किसी भी प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में ही उत्पन्न होता है न कि स्थैतिक अर्थव्यवस्था में। लाभ अनिश्चित एवं अस्थिरता के कारण प्राप्त होता है, जिसका स्थैतिक अर्थव्यवस्था में अभाव होता है।

(iv) **यह सिद्धांत अंशधारियों के लाभ की व्याख्या करने में असमर्थ :** संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल के अंशधारियों को प्राप्त होने वाले लाभ का सम्बन्ध उन अंशधारियों की योग्यता से बिल्कुल नहीं होता है|

(v) **लाभ वस्तु के मूल्य में शामिल नहीं होता :** यह कहना कि लाभ अल्पकाल के अतिरिक्त, वस्तु के मूल्य में शामिल नहीं होता है, गलत है। दीर्घकाल में लाभ वस्तु के मूल्य में अवश्य ही शामिल होता है। यदि ऐसा नहीं हो तो उद्यमी को कार्य के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं रहेगा और वह व्यवसाय बन्द कर देगा।

(vi) **सीमान्त उद्यमी जैसा कोई अस्तित्व नहीं होता :** सीमान्त उद्यमी जैसा कोई अस्तित्व नहीं पाया जाता है क्योंकि यदि उद्यमी को हानि होगी, तो वह अपना व्यवसाय बन्द कर देगा और दीर्घकाल में किसी अन्य उद्योग में चला जाएगा।

20.7.7 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त (Wage Theory of Profit)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमरीकी अर्थशास्त्री **टॉजिग** ने किया था| इनके अनुसार लाभ भी एक प्रकार की मजदूरी है, जिसे उद्यमी को व्यवसाय में अपनी सेवाएँ, प्रदान करने के लिए दिया जाता है। टॉजिग के अनुसार –''लाभ साहसी की वह मजदूरी है जो उसे अपनी विशिष्ट योग्यता के कारण प्राप्त होती है''। जिस प्रकार श्रमिक को उसकी सेवाओं के लिए मजदूरी दी जाती है, उसी प्रकार साहसी को भी पारितोषिक प्रदान किया जाता है – और वह है लाभ, जो व्यवसाय में उसके कार्यों या मानसिक श्रम के लिए प्रदान किया जाता है।

सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Theory) :

(i) मजदूरी सदा धनात्मक होती है, किन्तु लाभ शून्य या ऋणात्मक भी हो सकता है।

(ii) अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में श्रमिक की मजदूरी घटती है, किन्तु साहसी के लाभ की मात्रा बढ़ती जाती है। मजदूरी एवं साहसी को प्राप्त पारितोषिक के इस व्यवहार का यह सिद्धान्त कोई वर्णन नहीं करता है।

(iii) टॉजिग ने श्रम एवं साहसी के बीच उपस्थित आधारभूत अन्तर की अवहेलना की है क्योंकि श्रमिक किसी भी प्रकार की जोखिम वहन नहीं करता है। एक साहसी जोखिम को अपनी योग्यतानुसार वहन करता है।

(iv) अंशधारियों को प्राप्त होने वाले लाभ की कोई व्याख्या नहीं की गई है| अंशधारियों को लाभ बिना कोई कार्य किए ही प्राप्त होता है।

20.7.8 लाभ का समाजवादी सिद्धान्त (The Socialist Theory of Profit)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन **कार्ल मार्क्स** ने किया था। मार्क्स के अनुसार किसी उत्पाद का मूल्य उत्पादन में संलग्न श्रमिकों की इकाई पर निर्भर करता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन का अधिकांश हिस्सा पूँजीपतियों द्वारा ही हथिया लिया जाता है और केवल कुछ अंश ही मजूदरों के बीच में वितरित किया जाता है। मार्क्स ने पूँजीपतियों द्वारा रखे गए इस बड़े हिस्से को **'आधिक्य मूल्य'** (Surplus value) कहा है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरों के शोषण द्वारा लाभ कमाया जाता है क्योंकि मेहनत तो मजदूर करते हैं, किन्तु उत्पादन का अधिकांश भाग पूँजीपतियों द्वारा रख लिया जाता है। मार्क्स ने इसे **कानूनी डकैती** (Legal robbery) की संज्ञा दी है। मार्क्स का मत है कि लाभ की मात्रा घटेगी क्योंकि यह मजदूरों का शोषण करके अर्थव्यवस्था को दो भागों में (हजूर और मजूर) बांट देता है। मार्क्स के अनुसार पहला वर्ग दूसरे वर्ग के कारण ऐशो आराम की जिन्दगी बसर करता है और दूसरे वर्ग को अपने मूल अधिकारों की भी प्राप्ति नहीं होती। उनके इन अधिकारों के हनन द्वारा ही अधिक लाभ कमाया जाता है। मजदूर वर्ग के शोषण के कारण अर्थव्यवस्था में वर्गगत संघर्ष उत्पन्न होते हैं। मजदूरों द्वारा अधिक पारिश्रमिक एवं जीवन की मूलभूत सुविधाओं तथा काम पर बेहतर परिस्थितियों एवं सुविधाओं की माँग की जाती है। फलत: दीर्घकाल में लाभ की मात्रा में कमी आती है।

सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Theory) :

(i) उत्पादन के विभिन्न साधन (भूमि, श्रम, पूँजी एवं साहसी) सब आपस में मिलकर उत्पादन का कार्य करते हैं। श्रम ही केवल साधन नहीं है जो उत्पादन में अपनी आवश्यक भूमिका निभाता है। अत: लाभ मजदूरों के प्रत्यक्ष शोषण का परिणाम नहीं है|

(ii) लाभ जोखिम उठाने एवं अनिश्चिततओं के वहन करने तथा साहसी की योग्यता के कारण भी प्राप्त होता है। अत: यह कथन कि लाभ श्रमिक-वर्ग के शोषण के द्वारा कमाया जाता है, गलत है।

20.7.9 लाभ का माँग एवं पूर्ति सिद्धान्त / लाभ का आधुनिक सिद्धान्त (Demand and Supply Theory / Modern Theory of Profit)

लाभ के माँग एवं पूर्ति सिद्धान्त को लाभ का आधुनिक सिद्धान्त भी कहते हैं। जिस प्रकार उत्पादन के अन्य साधनों के सम्बन्ध में मूल्य निर्धारण क्रमश: उनकी माँग एवं पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है,उसी प्रकार लाभ भी दोनों पक्षों साहसी की माँग एवं पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। वह बिन्दु जहां साहसी का माँग वक्र साहसी की पूर्ति वक्र को काटता है, वहीं साहसी का मूल्य निर्धारित होता है, जिसे लाभ कहते हैं। यह सामान्य लाभ की स्थिति होती है। **सामान्य लाभ साहसी की अवसर लागत भी होती है।**

साहसी की माँग (Demand for Entrepreneur) : साहसी की माँग उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता(MRP) पर निर्भर करती है। यदि सीमान्त आगम उत्पादकता अधिक है, तो साहसी की माँग भी अधिक होगी और लाभ की मात्रा भी अधिक होगी। इसके विपरीत, यदि साहसी की सीमान्त आगम उत्पादकता कम या नीची है, तो साहसी की माँग तथा लाभ की मात्रा भी कम ही होगी, किन्तु इस सम्बन्ध में सबसे कठिन कार्य है साहसी की सीमान्त आगम उत्पादकता की माप करना। यदि एकल फर्म है या एक ही साहसी फर्म में नियुक्त है, तो सीमान्त आगम उत्पादकता ज्ञात नहीं की जा सकती, परन्तु एक उद्योग के सम्बन्ध में सीमान्त आगम उत्पादकता निर्धारित की जा सकती है| जैसे-जैसे किसी उद्योग में साहसी की संख्या बढ़ती है, उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता घटती जाती है। इसके विपरीत, यदि साहसी की संख्या कम होती है तो उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता बढ़ती जाती है। रेखाचित्र 20.2 के अनुसार साहसी का MRP वक्र ऊपर से नीचे की ओर गिरता हुआ है, जिसका अर्थ है कि साहसी की संख्या तथा सीमान्त आगम उत्पादकता के मध्य ऋणात्मक सम्बन्ध है।

रेखाचित्र 20.2

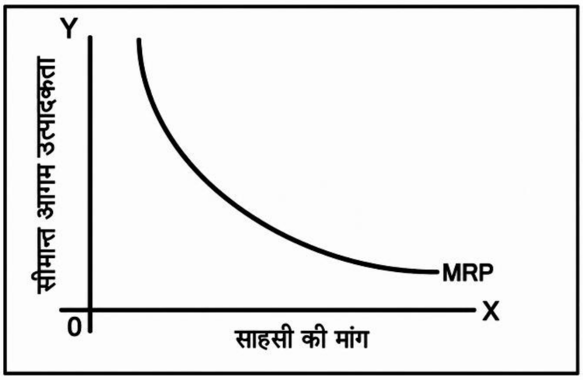

साहसी की पूर्ति (Supply of Entrepreneur) : साहसी की पूर्ति लाभ की दर पर निर्भर करती है और लाभ की मात्रा तथा साहसी की पूर्ति में धनात्मक सम्बन्ध है। यदि लाभ की मात्रा अधिक है, तो साहसी की पूर्ति बढ़ने की प्रवृत्ति होगी और जब लाभ कम होगा, तो साहसी की पूर्ति घट जाएगी। रेखाचित्र 20.3 के अनुसार जैसे-जैसे लाभ की मात्रा बढ़ती जाती है, साहसी की पूर्ति भी बढ़ती जाती है और लाभ घटने पर साहसी की पूर्ति भी घट जाती है। इस

प्रकार लाभ की मात्रा तथा साहसी की पूर्ति के मध्य प्रत्यक्ष/धनात्मक सम्बन्ध है। किसी उद्योग में साहसी की पूर्ति अन्य कारकों, जैसे देश की सामाजिक अवस्था, साहसी की कुल उपलब्ध मात्रा, आय का वितरण, व्यवसाय से सम्बन्धित जोखिम एवं अनिश्चिताएँ तथा सरकारी नीतियां आदि पर भी निर्भर करती है।

रेखाचित्र 20.3

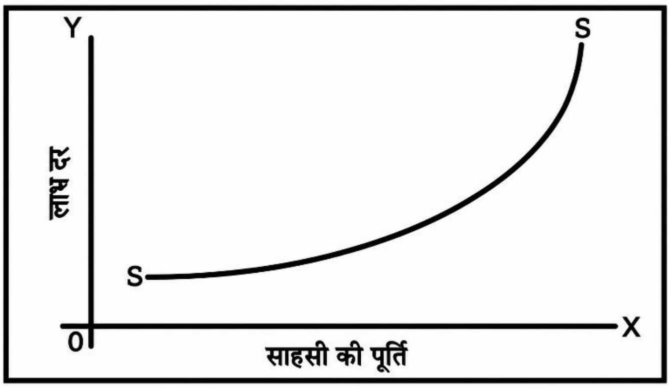

साम्य बिन्दु का निर्धारण (Determination of Equilibrium Point) : सामान्य लाभ की स्थिति में संतुलन बिन्दु या साम्यावस्था निम्नलिखित दो बाजारों में स्थापित की जा सकती है :

(i) पूर्ण प्रतियोगी बाजार के अन्तर्गत (Under Perfectly Competitive Market) : पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत साहसी का माँग वक्र और साहसी का पूर्ति वक्र जिस बिन्दु पर एक दूसरे को काटते हैं, वहीं साम्य बिन्दु स्थापित होता है। रेखाचित्र 20.4 में यह बिन्दु E द्वारा दर्शाया गया है। रेखाचित्र मे SS साहसी का पूर्ति वक्र तथा DD साहसी का माँग वक्र है। दोनों वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। इस बिन्दु पर लाभ की मात्रा OP है, जो सामान्य लाभ है। इसे PP रेखा द्वारा प्रदर्शित किया गया है। PP फर्म की कीमत रेखा या औसत आगम वक्र भी है।

रेखाचित्र 20.4

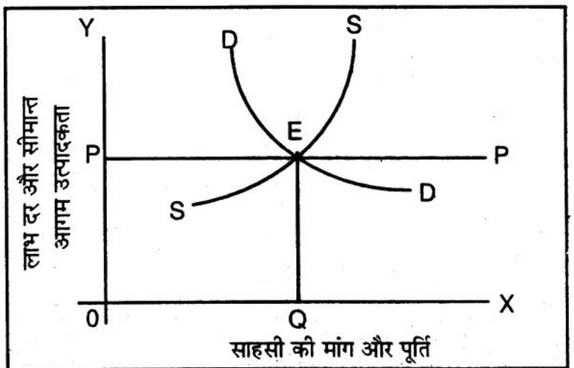

(ii) अपूर्ण बाजार संरचना के अन्तर्गत (Under Imperfect Market Structure) : अपूर्ण प्रतियोगिता वाली बाजार संरचना में फर्म अल्पकाल में अति सामान्य लाभ कमाने के साथ-साथ दीर्घकाल में भी अति सामान्य लाभ कमा सकती है अर्थात् फर्म अपनी औसत लागत से अधिक मूल्य पर अपना उत्पाद बेचती है। अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में एकाधिकारिक तत्त्व पाए जाते हैं, जिससे साहसी लाभान्वित होता है और वह हमेशा सामान्य लाभ से अधिक लाभ कमाने के लिए प्रयासरत होता है।

रेखाचित्र 20.5

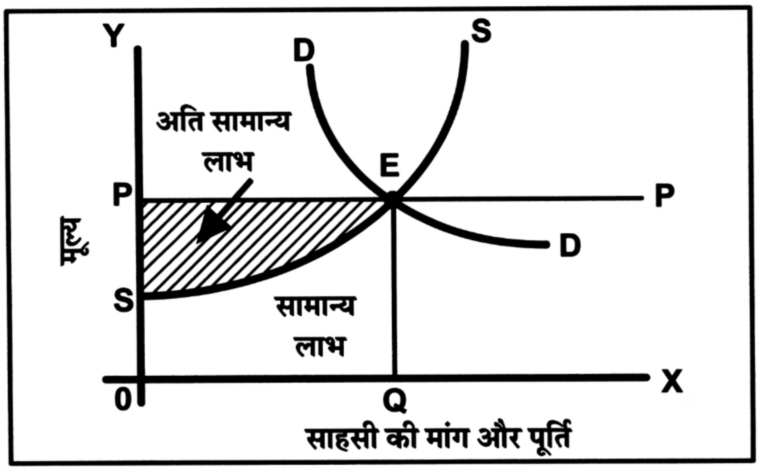

रेखाचित्र 20.5 में DD और SS क्रमश: साहसी का माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र हैं, जो एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। E वह साम्य बिन्दु है, जहां अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में साहसी सामान्य लाभ भी कमा सकता है और अति सामान्य लाभ भी। रेखाचित्र दर्शाता है कि OQ साहसी की माँग तथा पूर्ति है तथा OP साहसी का प्रति इकाई प्राप्त लाभ है तथा कुल लाभ OPEQ के बराबर है। जिसमें OQES तो सामान्य लाभ है और PSE अति सामान्य लाभ है। इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में साहसी सामान्य लाभ के साथ-साथ अति सामान्य लाभ भी कमाता है। इसके अलावा उसे अल्पकाल में हानि भी वहन करनी पड़ सकती है|

20.8 लाभ नीति (Profit Policy)

लाभ व्यावसायिक उपक्रमों को जीवन प्रदाता रूधिर है। प्रत्येक फर्म का अन्तिम लक्ष्य अधिकतम लाभ कमाना होता है। किसी भी फर्म की कार्यकुशलता का अनुमान उसके द्वारा अर्जित लाभ के द्वारा आसानी से लगाया जा सकता है। जिस फर्म का लाभ जितना अधिक होगा, उसकी कार्यकुशलता एवं दक्षता भी उतनी ही अधिक होगी। किन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा इस तथ्य का खंडन किया गया है कि किसी फर्म का अन्तिम लक्ष्य लाभ कमाना ही होता है। कुछ निश्चित परिस्थितियों में फर्म केवल सामान्य लाभ की कमाती है और यह सामान्य लाभ ही उसे आदर्श फर्म बनाती है। अत: लाभ नीति क्या हो? इसके लिए प्रस्तुत विभिन्न विचारधाराओं का अध्ययन आवश्यक है।

20.8.1 अधिकतम लाभ नीति (Profit Maximisation Policy) : परंपरागत अर्थशास्त्र एवं इसके विभिन्न सिद्धान्तों के अनुसार फर्मो का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है। जो फर्म अपने लाभ को अधिकतम बना सकती है, वही आदर्शतम फर्म कहलाती है। अपने अधिकतम लाभ बिन्दु पर फर्म संतुलनावस्था में होती है। एक बार जब फर्म इस स्थिति में पहुंच जाती है, तो वह उस उत्पादन स्तर में कोई भी परिवर्तन करना नहीं चाहती है। साथ ही इससे फर्म की कार्यकुशलता का भी पता चलता है। परिणामस्वरूप उस फर्म में आन्तरिक तथा बाह्य दोनों स्त्रोतों से वित्त प्राप्त करने की सम्भावना भी अधिक होती है क्योंकि लोग अंश पूँजी में विनियोग करना पसन्द करेंगे या उनको विनियोजन में प्राथमिकता देंगे। वित्त प्रदान करने वालों को समय पर ब्याज प्राप्त होता है और इस कारण फर्म को समय-समय पर ऋण भी उपलब्ध होता रहता है।

अधिकतम लाभ नीति की आलोचनाएँ (Criticisms of Maximum Profit Policy) : अधिकतम लाभ नीति की निम्न आधारों पर आलोचना की गई है :

(i) अस्पष्ट नीति (Vague Policy) : अधिकतम लाभ की नीति स्पष्ट नहीं है कि कोई फर्म किस प्रकार अपना लाभ अधिकतम कर सकती है। लाभ को अधिकतम अल्पकाल में करना है या दीर्घकाल में। साथ ही फर्म को ही

यह भी निर्धारित करना होता है कि कुल लाभ को अधिकतम करना है या शुद्ध लाभ को या लाभ को ब्याज देने के पहले अधिकतम करना है या ब्याज के भुगतान के बाद। इस प्रकार लाभ को अधिकतम करने की अवधारणा अस्पष्ट है। सबसे बड़ी कठिनाई यह निश्चित करने में है कि प्राप्त लाभ अधिकतम है या नहीं?

(ii) यह जोखिमों और अनिश्चितताओं की अवहेलना करती है (It Ignores Risks and Uncertainties): इस नीति की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह जोखिमों एवं अनिश्चितताओं की अवहेलना करती है। यदि कोई भी फर्म अपने लाभ को अधिकतम करना चाहती है, तो उसे जोखिम एवं अनिश्चितताओं के लिए प्रावधान करना आवश्यक है। अधिक लाभ कमाने के लिए अधिक जोखिम तथा अनिश्चितता को वहन करना आवश्यक होता है, अत: लाभ को अधिकतम करने के लिए जोखिम एवं अनिश्चितताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

(iii) यह मुद्रा के समय तत्त्व की अवहेलना करती है (It Ignores Time Value of Money) : यह नीति इस तथ्य को स्पष्ट नहीं करती कि कितने समय में लाभ की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। मुद्रा के सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा की एक इकाई का वर्तमान मूल्य उसकी एक इकाई के भविष्य मूल्य से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार समय या अवधि के आधार पर मुद्रा का मूल्य तथा उपादेयता स्थिर नहीं रहती है।

20.8.2 संतोषजनक या संतोषप्रद लाभ नीति (Satisfactory Profit Policy)

आजकल व्यावसायिक फर्मों द्वारा संतोषप्रद तथा तर्कसंगत लाभ नीति का अनुसरण किया जा रहा है, जो फर्म को व्यवसाय में अधिक समय तक बने रहने के लिए प्रेरित करता है। ऐसी फर्म व्यवसाय में हमेशा अपनी संतुलनावस्था में रहती है और साथ ही प्रतियोगिता में बने रहकर अपने दायित्वों का कार्यकुशलता के साथ समय पर भुगतान करती रहती है। फर्म निम्नलिखित कारणों से संतोषप्रद लाभ नीति अपनाती है :

(i) यह फर्म की ख्याति को बनाए रखती है (It Maintains the Goodwill of the Firm) : संतोषप्रद लाभ नीति फर्म को लम्बे समय तक व्यवसाय में बनाए रखती है। ऐसी फर्मों से, जो अपने उत्पाद का मूल्य नहीं बदलती है, उपभोक्ता भी खुश रहते हैं। साथ ही कुछ फर्में अपनी लागत में वृद्धि होने पर भी मूल्य नहीं बढ़ाती हैं, ऐसी स्थिति में उन फर्मों की ख्याति भी बढती है और साथ ही वे अधिक समय तक व्यवसाय में बनी भी रहती हैं।

(ii) सम्भावित प्रतियोगिता से बचना (To Aviod Potential Competition) : कुछ फर्में अधिकतम लाभ की नीति का अनुसरण करते हुए अपने उत्पाद पर अति सामान्य लाभ कमाती हैं, जो अन्य फर्मों को बाजार में प्रवेश करने के लिए आकर्षित करता है। फलत: फर्मो का लाभ सामान्य हो जाता है क्योंकि अन्य फर्मों के आने के कारण पूर्ति बढ़ जाती है। इस प्रकार की स्थिति बाजार में प्रतियोगिता को बढ़ाती है। यही कारण है कि फर्में संतोषप्रद लाभ नीति को अपनाना अधिक पसन्द करती हैं।

(iv) सरकारी हस्तक्षेप से बचना (To Avoid Government Intervention) : संतोषप्रद लाभ नीति अपनाने से फर्मो की कार्य-प्रक्रिया में सरकारी हस्तक्षेप की सम्भावना नहीं के बराबर रहती है क्योंकि ऐसी फर्मो में एकाधिकारी प्रवृत्तियों के उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती।

(v) जोखिम से बचना (To Aviod Risks) : लाभ को अधिकतम करने की नीति में व्यवसाय में जोखिम तथा अनिश्चितता बनी रहती है। इसलिए फर्म व्यावसायिक जगत के उतार-चढाव से बचने के लिए संतोषप्रद लाभ की नीति अपनाती है।

(vi) उद्योग में नेतृत्व प्राप्त करना (To Achieve Leadership in the Industry) : बहुत सी फर्में अपनी बिक्री को अधिकतम बनाए रखने के लिए प्रारम्भ से ही उपयुक्त एवं कम मूल्य की नीति बनाए रखती हैं और एक विशेष उद्योग में प्रभावपूर्ण स्थान बना लेती हैं। उद्योग में मूल्य नेतृत्व बनाए रखने के लिए वे संतोषप्रद लाभ नीति का अनुसरण करती हैं|

(vii) अधिक मजदूरी की माँग को नियंत्रित करने हेतु (To Control the Demand for Higher Wages): जब फर्म अधिक लाभ कमाती है, तो श्रमिक भी अधिक मजदूरी की माँग करते हैं, किन्तु संतोषप्रद लाभ की नीति के अन्तर्गत मजदूरों की इस माँग का स्वत: नियंत्रण हो जाता है।

(viii) उपयुक्त एवं तर्कसंगत लाभ नीति (Fair and Logical Profit Policy) : उपयुक्त एवं तर्कसंगत लाभ नीति एक प्रकार से सभी औद्योगिक इकाइयों का सामाजिक दायित्व है जिसका निर्वहन संतोषप्रद लाभ नीति द्वारा आसानी से किया जा सकता है।

(ix) फर्म की तरलता में वृद्धि करना (To Increase Liquidity of the Firm) : अनेक साहसी लाभ को अधिकतम बनाने की अपेक्षा फर्म की तरलता बनाए रखने में अधिक विश्वास करते हैं और इसके लिए वे संतोषप्रद लाभ नीति को अपनाते हैं, जो भविष्य में फर्म की तरलता को बढ़ाकर फर्म की स्थिति को सुदृढ बनाते हैं।

स्व-मूल्यांकन - द्वितीय

मान लीजिये कि गीदड़ा एण्ड संस घर का सजावटी सामान का विक्रय करने के लिए 'होम-डेकोर स्टूडियो' संचालित करते हैं। विगत वर्ष जितना लाभ अर्जित करने का अनुमान लगाया गया था, वास्तव में, उसका आधा भी अर्जित नहीं हो पाया। बाजार में इसी प्रकार का सामान बेचने वाले अन्य संस्थान भी मौजूद हैं, जिनसे तीव्र प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। उन्हें लगता है कि विगत वर्ष लाभ पूर्वानुमान लगाने में कुछ गलतियां हुई, जो वे इस चालू वर्ष में नहीं दोहराना चाहते। उन्होंने तीन व्यक्तियों का एक पेनल गठित किया है जो उन्हें 'होम-डेकोर स्टूडियो' को अधिकतम लाभ कमाने हेतु सलाह देंगे। आप भी उस पैनल के एक सदस्य हैं। आप अपनी तरफ से क्या राय देना चाहेंगे?

20.9 सारांश (Summary)

लाभ एक व्यावसायिक इकाई के आगम का उसकी लागत पर आधिक्य होता है| यह धनात्मक (असामान्य लाभ) अथवा ऋणात्मक (हानि) हो सकता है| जब आगम और लागत बराबर होते हैं, तो इसे सामान्य लाभ (न लाभ न हानि) की स्थिति कहा जाता है| इसे सम विच्छेद बिंदु भी कहा जाता है| लाभ को सकल एवं शुद्ध, लेखा एवं आर्थिक रूप से वर्गीकृत किया जाता है| लाभ जोखिम उठाने, अनिश्चितता वहन करने, नव – प्रवर्तन करने, साधनों का संयोजन करने तथा अनेक अन्य कारणों की वजह से उत्पन्न्न होता है| अर्थशास्त्रियों ने लाभ के अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं, जिनमें जोखिम उठाने, अनिश्चितता वहन करने, नव – प्रवर्तन करने तथा आधुनिक सिद्धांत अधिक महत्त्वपूर्ण है | लाभ नीति मुख्य रूप से अधिकतम लाभ कमाने की तथा संतोषजनक लाभ कमाने की हो सकती है|

20.10 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

"लाभ, लाभ निर्धारण के सिद्धांत और लाभ नीति" की विस्तृत व्याख्या करने के वाली इस इकाई का अध्ययन पश्चात् विद्यार्थी लाभ का अर्थ, इसकी विशेषताओं तथा विभिन्न प्रकारों को भलीभांति समझ गये होंगे। लाभ निर्धारण के अनेक सिद्धांत है। सभी सिद्धांतों की आलोचनात्मक व्याख्या भी इस इकाई में की गई है। व्यावसाइयों को लाभ कमाने की दृष्टि से कैसी नीति अपनानी चाहिए, इस इकाई में इस पर सारगर्भित विवेचना की गई है। निश्चित तौर पर विद्यार्थीगण लाभ अर्जित करने के मर्म को समझ गये होंगे।

20.11 शब्दावली (Glossary)

- **सकल लाभ (Gross Profit) :** वह भाग जो कुल बिक्री से प्राप्त आगम में से कुल स्पष्ट लागतें घटाने के बाद शेष रहता है।
- **शुद्ध लाभ (Net Profit) :** कुल आगम में से स्पष्ट लागतें व अस्पष्ट लागतें घटाने के बाद जो शेष रहता है।

- **सामान्य लाभ (Normal Profit) :** ऐसा लाभ जिससे आकर्षित होकर न तो नई फर्में बाजार में प्रवेश करती हैं और न पुरानी फर्में बाजार को छोड़कर जाती हैं। जब फर्म का कुल आगम और कुल लागत बराबर होती है, तो वह सामान्य लाभ की स्थिति में होती है|
- **अति सामान्य लाभ (Super Normal Profit) :** जब फर्म का कुल आगम उसकी कुल लागत से अधिक होता है, तो फर्म असामान्य लाभ की स्थिति में होती है|
- **जोखिम (Risk) :** कोई कार्य एवं घटना जिससे नुकसान होने की संभावना होती हो| यह निश्चित और अनिश्चित दो प्रकार की होती है|
- **निश्चित जोखिम (Certain Risk) :** यह बीमा योग्य जोखिम कहलाती है| इससे उत्पन्न हानि निश्चित राशि की होती है|
- **अनिश्चित जोखिम (Uncertain Risk) :** यह गैर - बीमा योग्य जोखिम होती है क्योंकि इससे संभावित हानि की राशि निश्चित नहीं होती है|
- **नव-प्रवर्तन (Innovation) :** कोई भी वह कार्य नव–प्रवर्तन कहलाता है जिससे उद्यमी का आगम बढ़ता हो अथवा लागत कम होती हो|

20.12 स्व परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Questions)

1. बीमा योग्य और गैर बीमा योग्य जोखिमों में अंतर स्पष्ट कीजिये?
2. लाभ की दो प्रमुख विशेषताएँ बताइए|
3. अन्तर स्पष्ट कीजिए :
   (i) सकल लाभ और शुद्ध लाभ
   (ii) सामान्य लाभ और अति सामान्य लाभ
   (iii) लेखा लाभ और आर्थिक लाभ

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. “लाभ अनिश्चितता के वहन का भुगतान है” विवेचना कीजिये।
2. “नव – प्रवर्तन लाभ का सृजन और उनका अनुकरण लाभ का समापन करते हैं|” विवेचना कीजिये|
3. लाभ के आधुनिक सिद्धांत को विस्तार से समझाइये|
4. “लाभ को अधिकतम करना फर्म का एकमात्र लक्ष्य होता है” विवेचना कीजिए।

20.13 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- सारस्वत, लोढ़ा, शर्मा, गोधा : ‘व्यावसायिक अर्थशास्त्र’, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर
- Aggarwal M.D., Som Deo : ‘Business Economics’, Ramesh Book Depot, Jaipur
- Mathur, N.D. : ‘Business Economics’, Shivam Book House, Jaipur
- Jain, K.P. : ‘Modern Micro Economics’, Ratan Publication Mandir, Agra

20.14 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Materials)

- Koutsoyiannis, A. : ‘Modern Micro Economics’, London, Macmillan..

- Curwen, Peter J. : 'Managerial Economics', London, Macmillan.
- Nemmers, E.E. : 'Managerial Economics', Text and Cases, New York, John Willy & Sons, Inc.
- Samuelson Paul, and William Nordhaus : 'Economics', Tata McGraw - Hill Education.

20.15 वेब संसाधन/ लिंक (Web Resouces/Link)

- http://hi.m.vikipedia.org>
- http://www.fincash.com>profit
- http://www.uou.ac.in
- http://www.economicsdiscussion.net.
- http://www.gyanglow.com>

इकाई - 21

राष्ट्रीय आय विश्लेषण

(National Income Analysis)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं परिभाषा

21.2.1 मार्शल की परिभाषा - उत्पादन दृष्टिकोण

21.2.2 पीगू की परिभाषा - मौद्रिक दृष्टिकोण

21.2.3 फिशर की परिभाषा - उपभोग दृष्टिकोण

21.2.4 साइमन कुजनेट्स की परिभाषा - विकासात्मक दृष्टिकोण

21.3 राष्ट्रीय आय की विशेषताएँ

21.4 राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ

21.5 राष्ट्रीय आय गणना की विधियाँ

21.5.1 उत्पादन संरचना विधि

21.5.2 आय संरचना विधि

21.5.3 व्यय संरचना विधि

21.5.4 सामाजिक लेखांकन विधि

21.5.5 औसत आय विधि / व्यावसायिक संरचना विधि

21.5.6 मिश्रित विधि

21.6 राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाइयाँ

21.7 राष्ट्रीय आय का महत्त्व

21.8 सारांश

21.9 अधिगम परिणाम

21.10 शब्दावली

21.11 स्व-परख प्रश्न

21.12 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची

21.13 अन्य पठन सामग्री

21.14 वेब संसाधन/लिंक

21.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के पठन के पश्चात आप :

- राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं विशेषताओं को समझ पायेंगे।

- राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं से अवगत हो सकेंगे।
- राष्ट्रीय आय गणना की विधियों तथा इसकी गणना में आने वाली कठिनाइयों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय आय के महत्त्व के बारे में जान सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना (Introduction)

राष्ट्रीय आय विश्लेषण आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण में सहायता करता है। राष्ट्रीय आय की अवधारणा कोई नई अवधारणा नहीं है। 20 वीं सदी के मध्य तक इस अवधारणा को कोई महत्त्व प्रदान नहीं किया गया, लेकिन बाद में इसकी प्रस्तुति वैज्ञानिक आधार पर की जाने लगी। मोटे तौर पर राष्ट्रीय आय एक वर्ष की अवधि के दौरान किसी देश द्वारा उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का मौद्रिक मूल्य होता है। राष्ट्रीय आय में सभी प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं का समावेश होता है। इन उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य मुद्रा में मापा जाता है। हम इस इकाई में राष्ट्रीय आय का अर्थ,महत्त्व एवं इसकी विभिन्न अवधारणाओं का अध्ययन करेंगे और साथ ही यह भी जानेंगे कि राष्ट्रीय आय की गणना कैसे की जाती है और इसकी गणना में क्या – क्या कठिनाइयाँ आती हैं?

21.2 राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of National Income)

आर्थिक सिद्धान्त में राष्ट्रीय आय की अवधारणा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। किसी राष्ट्र में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह को राष्ट्रीय आय कहते हैं। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय आय एक वर्ष में एक राष्ट्र में उत्पादित अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं का सकल मौद्रिक मूल्य होता है। राष्ट्रीय आय की चार मुख्य परिभाषाएँ- मार्शन, पीगू, फिशर तथा आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई हैं, जिसका विस्तृत विवेचन आगे किया गया है|

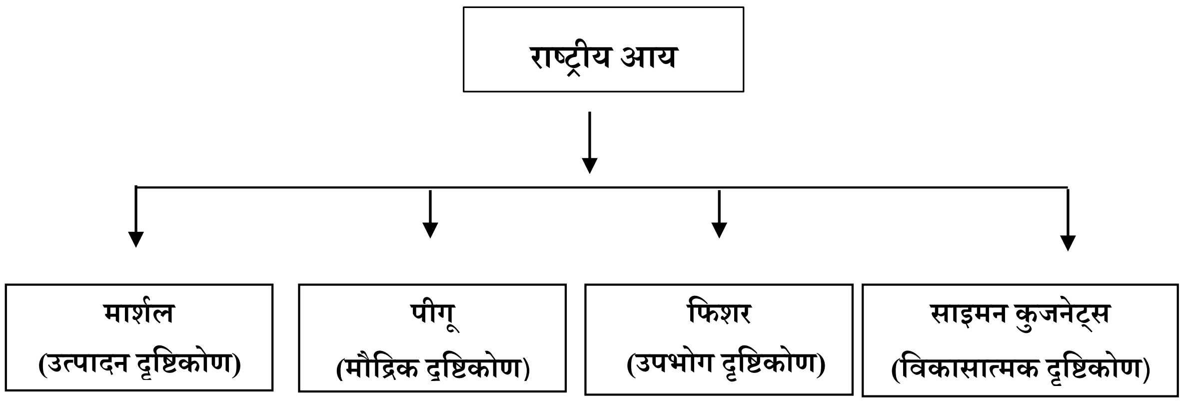

21.2.1 मार्शल की परिभाषा - उत्पादन दृष्टिकोण (Marshall's Definition - Production Approach) : मार्शल ने राष्ट्रीय आय की उत्पादन दृष्टिकोण आधारित परिभाषा प्रदान की है| उनके अनुसार, "किसी देश का श्रम एवं पूँजी देश के प्राकृतिक साधनों पर क्रियाशील होकर प्रतिवर्ष भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं और सभी प्रकार की सेवाओं का एक निश्चित विशुद्ध योग उत्पन्न करते हैं। यह किसी देश की वास्तविक विशुद्ध वार्षिक आय या राष्ट्रीय लाभांश है।" सैद्धान्तिक रूप में, मार्शल द्वारा दी गई परिभाषा सरल, वर्णनात्मक एवं तार्किक है क्योंकि मार्शल मूल्य ह्रास से परिचित

थे और यही कारण है कि उन्होंने देश की शुद्ध राष्ट्रीय आय जानने के लिए उत्पादक क्रियाओं से प्राप्त आगम में से मूल्य ह्रास को घटाया। मार्शल के अनुसार, विदेशी विनियोग से प्राप्त होने वाली शुद्ध आय राष्ट्रीय आय में जोड़ देनी चाहिये तथा बिना मूल्य प्रदान की गई वस्तुएँ सम्मिलित नहीं करनी चाहिए।

आलोचनाएँ (Criticisms) : मार्शल की परिभाषा की निम्नलिखित आलोचनाएँ की गई हैं :

(i) **गणना की कठिनाई (Difficulty in Counting) :** किसी देश में उत्पादित की जाने वाली वस्तुएँ एवं सेवाएँ इतनी अधिक एवं इतनी किस्मों की होती है कि उस देश में राष्ट्रीय उत्पादन को सही-सही मापना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य हो जाता है।

(ii) **दोहरी गणना (Double Counting) :** मार्शल की परिभाषा के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना में वस्तु एवं सेवाओं की दोहरी गणना की सम्भावना बनी रहती है। उदाहरण के लिए, कपास का यदि उत्पादन किया जाता है, तो कुल उत्पादन की राष्ट्रीय आय में गणना की जाती है। किन्तु उसी कपास की एक सूती वस्त्र मिल में कच्चे माल के रूप में गणना की जाती है। फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में दोहरी गणना का खतरा बना रहता है।

(iii) **तुलना करने में कठिनाई (Difficulty in Comparison) :** ऐसी अनेक वस्तुएँ होती हैं, जिनका अधिकांश भाग बाजार में विनिमय के लिए नहीं आता, फलत: इनका द्राव्यिक मूल्य ज्ञात नहीं किया जा सकता। इससे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तुलना करने में कठिनाई आती है।

(iv) **वस्तु विनिमय प्रणाली (Barter System) :** भारत जैसे विकासशील देशों में कई क्षेत्रों में मौद्रिक क्षेत्र की अनुपस्थिति है। कुछ क्षेत्रों में आज भी वस्तु विनिमय प्रचलित है, फलस्वरूप प्रत्येक वस्तु के हस्तांतरण का लेखा-जोखा नहीं रखा जा सकता । साथ ही कुल उत्पादन का कुछ भाग स्वयं उत्पादकों द्वारा उपभोग के लिए भी रख लिया जाता है और वह भी राष्ट्रीय आय की गणना में शामिल नहीं हो पाता है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि मार्शल की परिभाषा सरल और विस्तृत है|

21.2.2 पीगू की परिभाषा - मौद्रिक दृष्टिकोण (Pigou's Definition - Monetary Approach) : पीगू ने राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में मौद्रिक दृष्टिकोण अपनाया है। **पीगू** के अनूसार – ''राष्ट्रीय लाभांश किसी समुदाय की वास्तविक आय, जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी शामिल है, का वह भाग है जिसे मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है।'' इसके दो मुख्य बिंदु हैं :

1. नागरिकों द्वारा विदेशों में अर्जित आय को राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
2. आय का केवल वही हिस्सा राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाना चाहिए, जिसका मौद्रिक मापन सम्भव हो।

यदि किसी वस्तु या सेवा का मौद्रिक मूल्य नहीं है, तो उसे देश की राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि एक नर्स अपने बीमार बच्चे की देखभाल करती है, तो ऐसी सेवाओं को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसी अवस्था में नर्स को अपनी सेवाओं के लिए मौद्रिक मूल्य प्राप्त नहीं होता है।

आलोचनाएँ (Criticisms) : प्रो. पीगू की परिभाषा की निम्नांकित प्रमुख आलोचनाएँ की जाती हैं :

(i) **वस्तु विनिमय प्रणाली में अनुपयुक्त (Not Suitable in Barter System) :** यह परिभाषा केवल मौद्रिक अर्थव्यवस्था पर ही अच्छी प्रकार से लागू होती है क्योंकि वस्तु विनिमय प्रणाली में एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु हस्तांतरण द्वारा प्राप्त होती है और ऐसे हस्तांतरण को जिनका मौद्रिक मूल्य नहीं होता है, राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता है।

(ii) **राष्ट्रीय आय का अनिश्चित क्षेत्र (Uncertain Area of National Income):** यह परिभाषा राष्ट्रीय आय के क्षेत्र को अनिश्चित बनाती है। पीगू के अनुसार केवल वही वस्तु या सेवा राष्ट्रीय आय में शामिल होती है, जिनका मौद्रिक मूल्य होता है। किन्तु कभी-कभी विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है, जैसे कि यदि एक नौकरानी

जब किसी घर में काम करती है, तो उसे उसकी सेवाओं के बदले वेतन प्राप्त होता है जिसे राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाता है। किन्तु यदि उसका नियोक्ता उसी नौकरानी से शादी कर लेता है, तो उसकी सेवाओं को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता| अतः यह तर्क संगत परिभाषा नहीं है|

21.2.3 फिशर की परिभाषा - उपभोग दृष्टिकोण (Fisher's Definition- Consumption Approach) :

फिशर के अनुसार, ''राष्ट्रीय लाभांश या राष्ट्रीय आय में केवल उन सेवाओं को जो, अंतिम रूप में उपभोक्ताओं को उपभोग के लिए प्राप्त हुई हो- चाहे वे भौतिक वातावरण से प्राप्त हुई हों या मानवीय वातावरण से, शामिल किया जाता है। इस प्रकार एक पियानो या ओवरकोट जो कि मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया है, वह इस वर्ष की आय का भाग नहीं है, बल्कि वह मात्र पूँजी में वृद्धि है। केवल वे ही सेवाएँ जो इन वस्तुओं के प्रयोग से मुझे इस वर्ष मिलेंगी, राष्ट्रीय आय है।'' इस प्रकार **फिशर** के अनुसार, ''वास्तविक आय वार्षिक उत्पादन का वह भाग है जो उस वर्ष विशेष में उपभोग किया जाता है''।

फिशर की परिभाषा पीगू और मार्शल की परिभाषा से अधिक वैज्ञानिक और यर्थाथवादी प्रतीत होती है क्योंकि फिशर राष्ट्रीय आय में केवल उन्हीं वस्तुओं एवं सेवाओं को सम्मिलित करते हैं जिनका उस वर्ष वास्तव में उपभोग होता है तथा जिनको मौद्रिक रूप में व्यक्त किया जा सकता है। जबकि मार्शल और पीगू ने उसी वर्ष सम्पूर्ण मौद्रिक मूल्य को राष्ट्रीय आय में शामिल करने की बात कही है।

आलोचनाएँ (Criticisms) : किसी भी राष्ट्र में उपभोग में लिए गए वस्तु एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य की अनुमान लगाने में अनेकों कठिनाइयां आती है, जो अग्रांकित है :

(i) **वार्षिक उपभोग का अनुमान लगाना कठिन (Difficulty in Estimation of Annual Consumption):** किसी वर्ष विशेष में वस्तु एवं सेवाओं के उपभोग का मौद्रिक मूल्य के रूप में अनुमान लगाना कठिन है क्योंकि उपभोक्ता करोड़ों हैं और साथ ही उपभोग वस्तुओं की सूची तैयार करना भी कठिन है।

(ii) **टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का जीवनकाल (Life of Durable Commodities):** किसी भी वस्तु को राष्ट्रीय आय में शामिल करने के लिए फिशर के अनुसार हमें उस वस्तु के उपभोग का मूल्य ज्ञात करना आवश्यक है। किन्तु टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के जीवन काल का पता लगाना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव भी प्रतीत होता है।

(iii) **टिकाऊ वस्तु के स्वामित्व का मापन (Measurement of Ownership of Durable Goods):** एक टिकाऊ उपभोक्ता वस्तु का कई बार हस्तांतरण हो सकता है, जैसे कि एक मोटर कार एक के बाद दूसरे या उसके बाद तीसरे या चौथे व्यक्ति को भी बेची जा सकती है। ऐसे में ऐसी वस्तु के उत्पादन की तिथि तथा आरम्भिक मूल्य आदि को जानना कठिन होता है।

(iv) **गणना कार्य का अमितव्ययी होना (Uneconomical Measurement) :** चूंकि समस्त देशवासियों के वास्तविक उपभोग की कीमत गणना के लिए भारी मात्रा में समय, शक्ति एवं धन की आवश्यकता होती है, अत: इस परिभाषा के अनुसार गणना बहुत खर्चीली है।

21.2.4 साइमन कुजनेट्स की परिभाषा - विकासात्मक दृष्टिकोण (Simon Kuznets Definition – Development Approach) :

आधुनिक परिभाषाओं में **साइमन कुजनेट्स** की परिभाषा अर्थपूर्ण एवं यथार्थ प्रतीत होती है| उनके अनुसार, "देश के उत्पादन व्यवस्था से वर्ष भर में प्रवाहित होकर अंतिम उपभोक्ता के पास पहुंचने वाली या देश की पूँजीगत वस्तुओं में जुड़ने वाली वस्तुओं और सेवाओं के उत्पाद की विशुद्ध मात्रा राष्ट्रीय आय है।" **भारतीय राष्ट्रीय आय समिति** के

अनुसार, ''राष्ट्रीय आय अनुमान से आशय किसी दी हुई अवधि में **वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन** की मात्रा को बिना किसी दोहरी गणना के मापने से है।''

अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय को विस्तृत अर्थ में परिभाषित करते हैं तथा प्रायः विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन को ही राष्ट्रीय आय मानते हैं|

स्व-मूल्यांकन – प्रथम

मान लीजिये कि आपके पास एक कार है जिसकी कीमत 10 लाख रूपये है। कार का अनुमानित जीवन काल 10 वर्ष है और जीवनकाल के अंत में कार का मूल्य 4 लाख रूपये शेष रहता है। कार पर प्रतिवर्ष होने वाले ह्रास (Depreciation) की गणना कीजिये।

21.3 राष्ट्रीय आय की विशेषताएँ (Characteristics of National Income)

राष्ट्रीय आय की विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर राष्ट्रीय आय की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं :

1. राष्ट्रीय आय एक **प्रवाह अवधारणा** (Flow Concept) है| यह किसी देश की विशुद्ध आय होती है|
2. प्रवाह अवधारणा होने के कारण राष्ट्रीय आय का सम्बन्ध **एक निश्चित समयावधि** (प्रायः एक वर्ष) से होता है अर्थात इसकी **गणना वार्षिक आधार** पर की जाती है|
3. राष्ट्रीय आय में एक वर्ष की अवधि में **उत्पादित समस्त भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं** को सम्मिलित किया जाता है|
4. **अवैधानिक कार्यों** (तस्करी, जुए तथा काला बाजारी) से प्राप्त आय को राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं किया जाता है|
5. विशुद्ध मौद्रिक सौदों तथा संपत्तियों (जमीन, भवन, संयंत्र, अंश पूँजी आदि) के क्रय – विक्रय से प्राप्त होने वाले **पूँजीगत लाभों** (Capital Gains) को राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं किया जाता है|
6. राष्ट्रीय आय में **स्व उपभोग** (Self Consumption) हेतु उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को सम्मिलित नहीं किया जाता है|
7. राष्ट्रीय आय के अंतर्गत देशवासियों की उसी आय को सम्मिलित किया जाता है, जो किसी आर्थिक क्रिया अथवा उत्पादक कार्य के बदले प्राप्त होती है|
8. राष्ट्रीय आय की गणना के लिए **मुद्रारूपी मापदंड प्रयुक्त** किया जाता है, क्योंकि यह सभी वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य का सर्वमान्य पैमाना (Common demoninator of value) है|
9. राष्ट्रीय आय को **चालू मूल्यों तथा स्थिर मूल्यों पर** मापा जा सकता है|

21.4 राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ (Concepts of National Income)

राष्ट्रीय आय विशेषज्ञों ने राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में निम्नलिखित मुख्य अवधारणाओं पर प्रकाश डाला है:

1. सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product-GDP): सकल घरेलू उत्पाद किसी लेखा वर्ष के दौरान किसी देश की घरेलू क्षेत्र सीमा में उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का मौद्रिक मूल्य होता है। यह राष्ट्रीय अवधारणा का सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाला प्रचलित शब्द है| इसे निम्नांकित दो प्रकार से व्यक्त किया जाता है :

(अ) स्थिर तथा चालू मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP at constant and current prices) : यदि घरेलू उत्पाद को चालू मूल्यों के आधार पर ज्ञात किया जाता है, तो इसे चालू मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद कहा जाता है। जब हम कहते हैं कि चालू मूल्यों पर 2020-21 में भारत का जीडीपी 197.46 लाख करोड़ रूपये है, तब हम जीडीपी को 2020-21 में चालू मूल्यों के आधार पर माप रहे होते हैं। यदि जीडीपी को किसी स्थिर

मूल्य के आधार पर मापा जाता है, तो उसे जीडीपी स्थिर मूल्यों पर कहा जाता है। जैसे 2020-21 में जीडीपी, 2011-12 के मूल्यों पर 135.13 लाख करोड रू. है, तब हम 2011-12 के प्रचलित मूल्यों के आधार पर जीडीपी को माप रहे होते हैं।

(ब) साधन लागत तथा बाजार मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP at factor cost and at market price) : सैद्धान्तिक रूप से जीडीपी का मूल्य चाहे बाजार मूल्य पर अनुमानित किया जाए या साधन लागत पर, वह समान होना चाहिए। लेकिन वस्तुओं तथा सेवाओं का बाजार मूल्य उत्पादन के साधनों की आय के बराबर नहीं होता। बाजार मूल्य पर जीडीपी में अप्रत्यक्ष कर सम्मिलित होते हैं तथा सरकार द्वारा दिए गए अनुदान सम्मिलित नहीं होते। अत: साधन आय पर जीडीपी निकालने के लिए हमको अप्रत्यक्ष कर घटाने चाहिए तथा बाजार मूल्य पर जीडीपी में अनुदान जोड़ने चाहिए।

2. शुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product - NDP) : मशीनों, उपकरणों, औजारों, भवनों, ट्रैक्टरों आदि पूँजीगत माल उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान घिसते हैं, जिससे उनके मूल्य में निरन्तर कमी होती रहती है। अत: पूँजी का एक भाग ह्रास भत्ते के रूप में अलग रख लिया जाता है। जब सकल घरेलू उत्पाद से ह्रास भत्ता घटाते है, तो हम शुद्ध घरेलू उत्पाद पाते हैं।

NDP = GDP – Depreciation

3. सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product - GNP): इसका अभिप्राय किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के कुल जोड़ से है अर्थात् किसी अर्थव्यवस्था में एक वर्ष की अवधि में जितनी भी अन्तिम वस्तुएँ तथा सेवाएँ उत्पादित की जाती हैं, उन सभी के बाजार मूल्य के कुल योग को कुल राष्ट्रीय उत्पादन कहते हैं। कुल राष्ट्रीय उत्पादन को कुल राष्ट्रीय आय के नाम से भी जाना जाता है। यहां पर मुख्य रूप से दो बातें ध्यान देने योग्य हैं :

(अ) किसी अर्थव्यवस्था में किसी दिए हुए वर्ष में उत्पादित सभी अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं का मौद्रिक मूल्य ज्ञात किया जाना चाहिए ताकि दोहरी गणना से बचा जा सके। अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं से तात्पर्य उन वस्तुओं से है, जो अन्तिम उपभोक्ताओं द्वारा वर्ष भर में उपभोग की जाती है।

(ब) हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि चालू वर्ष में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का मौद्रिक मूल्य क्या है? यदि किसी वस्तु का उत्पादन 2020 में होता है, किन्तु 2021 तक वह बेचा नहीं गया है, तो उनकी गणना 2020 के सकल उत्पाद में ही होगी न कि 2021 के सकल राष्ट्रीय उत्पाद के रूप में।

किसी भी वर्ष में राष्ट्र विशेष में उत्पादित सभी अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के बाजार मूल्य को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं, जिसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय भी सम्मिलित रहती है। यदि विदेशों से प्राप्त आय इसके अन्तर्गत शामिल नहीं होती है, तो इसे सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product) कहते हैं।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद + विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय

GNP = GDP + Net income from abroad.

सकल घरेलू उत्पाद = सकल राष्ट्रीय उत्पाद - विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय

GDP = GNP – Net income from abroad.

(i) साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at Factor Cost): उत्पाद के साधनों को जो आय प्राप्त होती है, उसे साधन लागत कहते हैं। उत्पादन के साधन एक वर्ष में लगान, मजदूरी, ब्याज और लाभ के रूप में जो आय कमाते हैं, वही साधन लागत है। अत: इसे साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पादन कहते हैं।

साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय आय = लगान + मजदूरी + ब्याज + लाभ + विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय।

(ii) बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at Market Price): वह मौद्रिक मूल्य, जिस पर उपभोक्ता को उत्पादित वस्तु प्राप्त होती है, वस्तु का बाजार मूल्य कहलाता है। सरकार को दिया गया अप्रत्यक्ष कर वस्तु के मूल्य को प्रभावित करता है, किन्तु सरकार द्वारा दिया गया उपदान (Subsidy) वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं करता है। अत: बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय आय जानने के लिए साधन लागत पर राष्ट्रीय आय में अप्रत्यक्ष करों को जोड़ा जाएगा और सरकार द्वारा प्रदत्त उपदान को घटाया जाएगा।

बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद = साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद + अप्रत्यक्ष कर – उपदान

GNP (at MP) = GNP (at FC) + Indirect Taxes – Subsidy.

4. शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product) : यदि हम सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से पूँजी ह्रास, मशीनरी की टूट-फूट तथा अप्रचलन मूल्य आदि को घटा दें, तो हमें शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = सकल राष्ट्रीय उत्पाद – ह्रास तथा अप्रचलन मूल्य

NNP = GNP – Depreciation and Obsolescence

5. राष्ट्रीय आय (National Income) : सामान्य तौर पर किसी देश का शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद ही राष्ट्रीय आय होता है। इस दृष्टिकोण में राष्ट्रीय आय का मूल्यांकन उपभोग दृष्टिकोण के स्थान पर वितरण के अनुसार होता है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय उत्पादन के साधनों को प्राप्त सम्पूर्ण भुगतान के योग के बराबर होती है। इसे साधन लागत पर राष्ट्रीय आय भी कहते हैं।

राष्ट्रीय आय = शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद – अप्रत्यक्ष कर + उपदान

National Income = NNP – Indirect Taxes + Subsidies

6. वैयक्तिक आय (Personal Income) : किसी राष्ट्र के लोगों या घरेलू व्यक्तियों को विशेष वर्ष में, वास्तव में जो आय प्राप्त होती है, उसे वैयक्तिक आय कहते हैं। कभी-कभी सरकार सामाजिक सुरक्षा के दृष्टिकोण से लाभ प्रदान करती है, जैसे बेरोजगारी भत्ता, वृद्धावस्था पेन्शन और विधवा पेन्शन आदि| इस प्रकार दिए गए भत्ते किसी उत्पादक कार्य के लिए नहीं प्रदान किए जाते हैं। इन्हें **हस्तान्तरण भुगतान** (Transfer Payment) कहते हैं। वैयक्तिक आय निकालने के लिए हमें राष्ट्रीय आय में से उस मौद्रिक आय को घटानी पड़ेगी, जो उत्पादन के साधनों को भुगतान के रूप में वितरित नहीं की गयी हो और साथ ही हमें इसमें हस्तान्तरण भुगतान जोड़ना भी पड़ेगा।

वैयक्तिक आय = राष्ट्रीय आय – निगम आय कर – अवितरित निगम लाभ – सामाजिक सुरक्षा योगदान + हस्तांतरण भुगतान

Personal Income = National Income – Corporate Income Tax – Undistributed Corporate Profit – Social Security Contribution + Transfer Payments

वैयक्तिक आय किसी भी राष्ट्र की सम्भावित क्रय शक्ति का अनुमान लगाने में सहायता करती है।

7. खर्च योग्य वैयक्तिक आय (Disposable Personal Income) : इसे **प्रयोग योग्य आय, खर्च योग्य आय अथवा निर्वत्य आय** भी कहते हैं| यह वह आय है जो व्यक्ति विशेष के पास खर्च करने के लिए होती है| खर्च योग्य आय ज्ञात करने के लिए वैयक्तिक आय में से प्रत्यक्ष करों को घटा दिया जाता है| **सूत्र रूप में :**

खर्च योग्य वैयक्तिक आय = वैयक्तिक आय- वैयक्तिक प्रत्यक्ष कर

Disposable Personal Income = Personal Income – Personal Direct Tax

किन्तु ऐसा कहने का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि सम्पूर्ण खर्च योग्य वैयक्तिक आय को सिर्फ उपभोग पर ही व्यय किया जाता है। सामान्यता खर्च योग्य आय का अधिकांश भाग उपभोग पर खर्च किया जाता है और शेष

बचत की जाती है। इस प्रकार,

खर्च योग्य वैयक्तिक आय = उपभोग + बचत

(Disposable Personal Income = Consumption + Saving)

8. **प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income) :** यदि किसी वर्ष विशेष की राष्ट्रीय आय में उस वर्ष की देश की कुल जनसंख्या का भाग दे दिया जाए, तो जो भागफल आता है, उसे प्रति व्यक्ति आय कहते है| **सूत्र रूप में :**

प्रति व्यक्ति आय = राष्ट्रीय आय ÷ कुल जनसंख्या

Per Capita Income = National Income ÷ Total Population

9. **वास्तविक आय और मौद्रिक आय (Real Income and Nominal Income) :**

जब किसी देश की राष्ट्रीय आय की गणना किसी वर्ष विशेष में उसके प्रचलित मूल्यों पर की जाती है, तो उसे मौद्रिक आय या चालू मूल्यों पर आय कहते हैं, किन्तु जब इसे स्थिर मूल्य (या आधार वर्ष में प्रचलित मूल्य) पर अभिव्यक्त करते हैं, तो इसे वास्तविक आय कहते हैं।

21.5 राष्ट्रीय आय गणना की विधियाँ (Methods of Measuring National Income)

राष्ट्रीय आय अनुमान हेतु निम्नलिखित विधियाँ काम में ली जा सकती हैं :

21.5.1 उत्पादन संगणना विधि (Census of Production Method) : इस विधि के अनुसार उत्पादन के मूल्य का अनुमान लगाने के लिए उत्पादन की सम्पूर्ण भौतिक मात्रा को उत्पादित प्रति इकाई वस्तु के मूल्य से गुणा किया जाता है। एक वर्ष में किसी अर्थव्यवस्था में जो अंतिम वस्तुएँ एवं सेवाएँ उत्पादित की जाती हैं, उनके बाजार मूल्य पर राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाता है। किसी देश में उत्पादित अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं के बाजार मूल्य को बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद (**GDP_{MP}**) कहते है। शुद्ध साधन आय जो विदेशों से प्राप्त होती है, उसे सकल घरेलू उत्पाद में जोड़ा जाता है ताकि बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त हो सके। यदि सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से ह्रास को घटा दिया जाए, तो हमें बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (**GNP_{MP}**) प्राप्त हो जाएगा और यदि इसके पश्चात् शुद्ध अप्रत्यक्ष कर घटा दिया जाए, तो हमें साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (**NNP_{MP}**) प्राप्त होगा। इसमें निम्न प्रकार के उत्पाद शामिल होते है :

(अ) **उपभोग वस्तुओं का उत्पादन :** उपभोग योग्य नाशवान प्रकृति की वस्तुएँ जैसे दूध, मक्खन, पनीर आदि। दीर्घकालीन उपभोग वस्तुएँ जैसे – मोटर साईकिल, कम्प्यूटर, घड़ी, मोबाईल फोन, टी.वी. सैट आदि।

(ब) **पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन :** इसके अन्तर्गत : स्कन्ध विनियोग, स्थिर पूँजी विनियोग आदि आता है।

(स) **सरकार द्वारा उत्पादित वस्तुएँ एवं सेवाएँ :** इसके अन्तर्गत सड़क, पुल, बांध, नहर तथा रेलवे आदि में किया गया विनियोग आता है। सेवाएँ, जैसे सैनिक, रक्षा, पुलिस, शिक्षा, चिकित्सा, न्याय आदि।

यद्यपि यह विधि सैद्धान्तिक दृष्टि से बड़ी सरल है, लेकिन इसकी निम्नांकित कुछ कठिनाइयाँ भी हैं :

(i) दोहरी गणना की संभावना बनी रहती है।

(ii) अमौद्रिक क्षेत्र में उत्पादन का सही-सही मूल्यांकन करना कठिन है।

21.5.2 आय संगणना विधि (Census of Income Method) : एक लेखांकन वर्ष में उत्पादन के विभिन्न साधनों को उनकी उत्पादकीय सेवा के लिए लगान, मजदूरी, ब्याज तथा लाभ के रूप में जो भुगतान किया जाता है, उसको जोड़कर इस विधि से राष्ट्रीय आय ज्ञात की जाती है| इसे **साधन भुगतान विधि या वितरित अंश विधि** भी कहते हैं। इस विधि का उपयोग करते समय निम्नलिखित सावधानियां रखनी चाहिए :

1. हस्तांतरण भुगतानों की आय जैसे पेंशन, लॉटरी से आय को गणना में शामिल नहीं करना चाहिए क्योंकि इनसे किसी प्रकार की आय का निर्माण नहीं होता है।
2. उन वस्तुओं एवं सेवाओं को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं करना चाहिए जिनका कोई मौद्रिक भुगतान नहीं किया जाता है। उहाहरण के लिए, एक गृहिणी द्वारा प्रदत्त सेवाएँ।
3. यदि एक उत्पादक निजी साधनों का उत्पादन कार्य में प्रयोग करता है, तो उनके पुरस्कार को राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाना चाहिए।
4. अवितरित लाभ अथवा सुरक्षित कोष में डाली गई राशि भी राष्ट्रीय आय में शामिल की जाती है। इस प्रकार – राष्ट्रीय आय = मजदूरी, वेतन तथा अन्य भुगतान + शुद्ध ब्याज + लगान + कर पूर्व निगम लाभ + अनिगिमित उद्योगों की आय।

उत्पादन संगणना विधि की अपेक्षा आय संगणना विधि अधिक सरल है, किन्तु इस विधि की भी अपनी कठिनाइयां हैं, जो निम्नांकित हैं :

1. कर लगने के भय से लोग अपनी सही आय की जानकारी नहीं देते हैं।
2. दोहरी गणना की संभावना बनी रहती है।
3. राष्ट्रीय आय की गणना में सामान्यत: अवितरित लाभ को छोड़ दिया जाता है।
4. लोग अपनी आय से सम्बद्ध जानकारी को सूचीबद्ध रूप में नहीं रखते हैं।

21.5.3 व्यय संगणना विधि (Census of Expenditure Method) : इस विधि को **उपभोग- बचत विधि या उपभोग-विनियोग विधि या व्यय प्रवाह विधि** भी कहते हैं। इसके अंतर्गत लेखांकन वर्ष में बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद पर किए गए कुल व्यय का मापन किया जाता है। यह अंतिम सम्पूर्ण व्यय बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद के बराबर होता है, अर्थात् यह सकल घरेलू उत्पाद पर किए गए व्यय को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय आय की गणना करता है। **सूत्र रूप में :**

राष्ट्रीय आय = कुल व्यय + बचत

कुल व्यय को निम्नांकित चार भागों में विभाजित किया जा सकता है :

कुल राष्ट्रीय व्यय = व्यक्तिगत उपभोग + व्यक्तिगत विनियोग + सरकारी खर्चे + शुद्ध विदेशी बचत या आधिक्य |

GNE = C + I + G + (X-M)

व्यय संगणना विधि की भी कुछ कठिनाइयां हैं, जो निम्नांकित हैं :

1. व्यक्तियों द्वारा अपने व्यय का कोई व्यवस्थित हिसाब नहीं रखा जाता है।
2. कुल बचत या कुल विनियोग को ज्ञात करना भी अत्यन्त कठिन है।
3. विकासशील राष्ट्रों में विश्वसनीय आंकड़ों का अभाव होता है।
4. सम्पूर्ण जनसंख्या के सकल व्यय का पता लगाना अपेक्षाकृत अधिक कठिन होता है।

21.5.4 सामाजिक लेखांकन विधि (Social Accounting Method) : सामाजिक लेखांकन को **राष्ट्रीय आय लेखांकन, आर्थिक लेखांकन अथवा राजनैतिक गणित** भी कहते हैं। राष्ट्रीय आय ज्ञात करने की यह अपेक्षाकृत नई तकनीक है जो कि विकसित राष्ट्रों द्वारा राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के लिए अपनाई जाती है। जिस प्रकार एक फर्म व्यावसायिक परिप्रेक्ष्य में अपनी स्थिति जानने के लिए अपने खातों का सहारा लेती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की स्थिति को ज्ञात करने के लिए हम सामाजिक लेखांकन तकनीक का उपयोग

करते हैं। सामाजिक लेखांकन विधि के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय के विभिन्न लेखों को आय के आधार पर अलग-अलग वर्गों में बांट लिया जाता है, फिर इन विभिन्न वर्गों के लेखों का योग का समूहीकरण करके राष्ट्रीय आय ज्ञात कर ली जाती है। इस तकनीक को तभी काम में लिया जा सकता है जब समाज का हर वर्ग, हर फर्म या हर क्षेत्र अपनी आय का उचित लेखा- जोखा रखता हो और उसे जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता हो। **लेखांकन की दृष्टि से अर्थव्यवस्था को परिवार क्षेत्र, व्यावसायिक क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र तथा शेष विश्व क्षेत्र** के रूप में विभक्त किया जाता है| इस विधि का विकास कुजनेट्स, लियोन्टीफ़, रिचर्ड स्टोन तथा मौरिस कोपलैंड ने किया|

21.5.5 औसत आय विधि/व्यावसायिक संगणना विधि (Average Income Method/Occupational Method) : इस विधि के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए विभिन्न व्यवसायों में काम करने वाले व्यक्तियों को आय के अनुसार विभिन्न समूहों में बांट दिया जाता है। जैसे कृषि, उद्योग-धंधे, बैकिंग, यातायात तथा अन्य व्यवसाय। फिर प्रत्येक आय समूह में से कुछ व्यक्तियों की आय के आधार पर प्रत्येक समूह के लिए औसत आय की गणना की जाती है। इस औसत आय को प्रत्येक समूह की जनसंख्या से गुणा करके, प्रत्येक समूह की आय की तालिकाएँ बना ली जाती हैं। बाद में इन तालिकाओं का योग कर दिया जाता है। यह योगफल की राष्ट्रीय आय कहलाता है।

21.5.6 मिश्रित विधि (Mixed Method) : इस विधि का विकास उत्पादन संगणना विधि तथा आय संगणना विधि की कठिनाइयों तथा दोषों को ध्यान में रखते हुए किया गया है। इस विधि के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना करने हेतु **उत्पादन संगणना एवं आय संगणना विधि का एक साथ प्रयोग** किया जाता है| इस विधि के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को राष्ट्रीय आय के स्रोतों के आधार पर निम्नांकित दो भागों में बांट दिया जाता है :

(i) उत्पादन क्षेत्र : उत्पादन क्षेत्र की आय की गणना उत्पादन संगणना विधि द्वारा की जाती है। कुल उत्पादन को बाजार कीमत से गुणा करके कुल उत्पादन का मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है।

(ii) सेवा क्षेत्र : सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत सरकारी तथा गैर सरकारी वेतनभोगी कर्मचारियों की आय की गणना की जाती है तथा उसका योग कर लिया जाता है।

बाद में दोनो क्षेत्रों से प्राप्त आय के कुल योगों का महायोग कर दिया जाता है। इसे ही राष्ट्रीय आय कहते हैं। **भारत में राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है|**

कौनसी विधि सर्वोतम है? (Which Method is Superior?)

राष्ट्रीय आय की गणना करने की उपरोक्त समस्त विधियों में कोई न कोई दोष व्याप्त है। इसलिए अपने आप में किसी भी विधि को सम्पूर्ण तथा श्रेष्ठ कहना कठिन है। अत: विधि की श्रेष्ठता का आंकलन करने से पूर्व यह भी देखना होगा कि राष्ट्रीय आय की गणना करने का उद्देश्य क्या है? प्रत्येक देश की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, प्राकृतिक तथा आर्थिक दशाओं में भी भिन्नता होती है और इनका प्रभाव भी राष्ट्रीय आय पर पड़ता है। फिर भी विकासशील राष्ट्रों में सामान्यतया उत्पादन संगणना विधि तुलनात्मक रूप से सर्वोत्तम मानी जाती है।

स्व-मूल्यांकन – द्वितीय

कल्पना कीजिए कि आप सरकार के उस विभाग में सेवा करते हैं, जो राष्ट्रीय आय का मापन भी करता है। 5 सदस्यों की टीम में एक सदस्य के रूप में आपको चालू वित्त वर्ष हेतु सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का अनुमान लगाने का दायित्व सौंपा गया है। इस काम को शुरू करते समय आपके दिमाग में कौन-कौन से प्रश्न आ सकते हैं? विचार कीजिये।

21.6 राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाइयाँ (Difficulties in Estimating National Income)

राष्ट्रीय आय समंक आर्थिक विश्लेषण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं, पर इनकी गणना में काफी समस्याएँ एवं जटिलताएँ होती हैं। विकसित देशों में राष्ट्रीय आय के अनुमान में उतनी कठिनाइयां नहीं आती जितनी कि अविकसित या विकासशील देशों मेंआती है। अत: भारत जैसे विकासशील राष्ट्र, राष्ट्रीय आय की गणना में निम्नलिखित कठिनाइयों का सामना करते हैं:

(i) गणना सम्बन्धी अशुद्धियों की कठिनाई (Difficulty of Errors in Calculation) : सामान्यत: राष्ट्रीय उत्पादन की गणना चालू मूल्यों पर की जाती है तथा तुलना के लिए उसे किसी स्थिर मूल्य पर परिवर्तित करना पड़ता है। इसके लिए सूचकांकों का निर्माण करना होता है तथा सूचकांको के लिए आधार वर्ष, भार तथा सामग्री का निर्धारण करके उनका संग्रहण करना पड़ता है। इन कार्यों के लिए विकासशील राष्ट्रों में विकसित देशों की तरह पूर्ण विकसित प्रणाली तथा सुविधाएँ उपस्थित नहीं होती, अत: गणना में अनेक अशुद्धियां रह जाती हैं।

(ii) दोहरी गणना की समस्या (Problem of Double Counting) : विकासशील राष्ट्रों में वस्तुओं एवं सेवाओं की दोहरी या तिहरी गणना की सम्भावना बनी रहती है, जो हमें राष्ट्रीय आय की गलत सूचना उपलब्ध करवाती है।

(iii) सेवाओं के मूल्य की गणना में कठिनाइयाँ (Difficulties in Calculation of Value of Services): राष्ट्रीय आय की गणना में विभिन्न प्रकार की सेवाओं की भी गणना की जाती है। इन सेवाओं का मूल्य किस आधार पर निश्चित किया जाय, इसके निर्णयन में कठिनाई आती है। उदाहरण के लिए एक शिक्षक, पुलिसमैन या सैनिक की सेवाओं का मूल्यांकन किस आधार पर किए जाए-निश्चित ही कठिन एवं जटिल है। इस समस्या को हल करने के लिए इन पर व्यय की गई राशि को ध्यान में रखा जाता है और उसे राष्ट्रीय आय में जोड़ दिया जाता है।

(iv) आर्थिक क्रियाओं तथा विधि के चुनाव में कठिनाई (Difficulty in Economic Activities and Choice of Methods) : किसी भी अर्थव्यवस्था में अनेक क्षेत्र होते हैं, जैसे कृषि, उद्योग, व्यापार, परिवहन, संचार, निर्माण इत्यादि और प्रत्येक क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली विधि की उपयुक्तता दूसरे से भिन्न होती है। अत: राष्ट्रीय आय की गणना के लिए किसी एक विधि के चुनाव में कठिनाई आती है।

(v) संगठित मौद्रिक क्षेत्र की कमी (Lack of well Organised Monetised Sector): भारत जैसे विकासशील एवं कृषि प्रधान राष्ट्र में एक सम्पूर्ण संगठित मौद्रिक क्षेत्र का अभाव होता है। ऐसे देशों में लोग मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर होते हैं और अधिकांश उत्पादन अपने उपभोग के लिए ही रख लेते हैं, जो कि राष्ट्रीय आय की गण्ना के समय सम्मिलित नहीं किया जाता है।

(vi) अशिक्षा एवं अज्ञानता (Lack of Education and Ignorance) : अविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों मे अधिकांश लघु उत्पादक अशिक्षित एवं अज्ञानी होते हैं। वे अपनी आय के लेखा जोखा का ज्ञान भी नहीं रखते हैं। अत: वे राष्ट्रीय आय की गणना के लिए स्वयं से सम्बन्धित आंकड़े भी उपलब्ध नहीं करवा सकते|

(vii) जनता का उदासीन दृष्टिकोण (Indifferent Attitude of Public) : अविकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में लोग राष्ट्रीय आय समंकों के प्रति उदासीन होते हैं, वे न तो राष्ट्रीय आय समंकों का महत्त्व जानते हैं और न ही उसके अध्ययन एवं विश्लेषण में रूचि रखते हैं।

(viii) सांख्यिकी संगठन का अभाव (Lack of Statistical Organisation) : अविकसित राष्ट्रों में सांख्यिकी संगठनों का राष्ट्रीय स्तर पर अभाव होता है, फलस्वरूप सूचनाओं के संग्रहण में बाधा आती है।

(ix) व्यावसायिक विशिष्टता (Occupational Specialisation) : अविकसित एवं भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों में व्यावसायिक विशिष्टता का अभाव होता है। लोग अपनी जीविका चलाने के लिए एक से अधिक कार्य करते हैं। ऐसे में सूचना प्राप्त करके उन्हें एकत्र करना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए, भारत में छोटे किसान केवल कृषि कार्य ही नहीं करते, बल्कि बुवाई के बाद जब खेतों में काम नहीं रहता, तो औद्योगिक कारखानों में भी काम करते हैं।

(x) अपर्याप्त एवं अविश्वसनीय आंकड़ों का होना (Inadequate and Unreliable Data) : अविकसित या विकासशील राष्ट्रों में उपलब्ध आंकड़े अपर्याप्त एवं अविश्वसनीय होते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में उपलब्ध कृषिगत आय के आंकड़े सर्वथा अपर्याप्त एवं अविश्वसनीय हैं। सूक्ष्म, लघु एवं कुटीर उद्योगों के सही आंकड़े भी उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।

21.7 राष्ट्रीय आय का महत्त्व (Importance of National Income)

राष्ट्रीय आय से सम्बद्ध समंक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसके महत्त्व का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। जिसका विवरण निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है :

(i) आर्थिक नियोजन में महत्त्व (Importance in Economic Planning): आर्थिक नियोजन के क्षेत्र में राष्ट्रीय आय के समंक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि इनके आधार पर अर्थव्यवस्था में विनियोग, बचत एवं उत्पादन के लक्ष्य निर्धारण में सहायता प्राप्त होती है।

(ii) नीति निर्धारण में महत्त्व (Importance in Policy Formulation): सामान्यतया अर्थव्यवस्था पर कर भार राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। अर्थव्यवस्था पर कर वहन कर सकने योग्य प्रतिशत के निर्धारण के बाद वित्त मंत्री इसी के अनुसार अपने बजट में करारोपण की व्यवस्था करते हैं। करों के वास्तविक भार का अध्ययन कर लगने के पश्चात राष्ट्रीय आय में हुए परिवर्तनों के आधार पर किया जा सकता है।

(iii) पूर्वानुमान मे महत्त्व (Importance in Forecasting) : राष्ट्रीय आय की प्रवृत्ति का अध्ययन करके भविष्य में होने वाले अन्य परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। यदि राष्ट्रीय आय में लगातार वृद्धि हो रही हो, तो भविष्य में रोजगार, माँग तथा उत्पादन में वृद्धि सम्भव है।

(iv) अर्थव्यवस्था की संरचना में महत्त्व (Importance in the Structure of the Economy) : राष्ट्रीय आय के अनुमानों से हमें यह ज्ञात होता है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों, जैसे कृषि, उद्योग, परिवहन, संचार तथा अन्य सेवाओं का राष्ट्रीय उत्पादन में क्या योगदान रहा है तथा प्रत्यके क्षेत्र में विकास की दर क्या है? इससे इच्छित क्षेत्र में विकास की गति तेज करने में भी सहायता मिलती है।

(v) विकास अर्थशास्त्र में महत्त्व (Importance in Development Economics) : राष्ट्रीय आय के अनुमान विकास अर्थशास्त्र के लिए आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। राष्ट्रीय आय बचत, विनियोग ओर उपभोग का स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत करती है तथा उनकी परस्पर निर्भरता को बताती है, जो विकास अर्थशास्त्र की अध्ययन सामग्री है।

(vi) व्यापार चक्रों के अध्ययन में महत्त्व (Importance in studying Trade Cycles): राष्ट्रीय आय की जानकारी से स्थिरता के साथ आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। राष्ट्रीय आय में होने वाले उच्चावचन अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों का संकेतक होते हैं, जिससे तेजी और मंदी का अनुमान लगाया जाता है|

(vii) सार्वजनिक क्षेत्र के लिए महत्त्वपूर्ण (Importance for Public Sector) : राष्ट्रीय आय समंकों के माध्यम से हमें सार्वजनिक क्षेत्र के निकायों के वित्तीय पहलू का पता चलता है तथा साथ ही हम राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का तुलनात्मक महत्त्व जान सकते हैं।

(viii) किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास का संकेतक (Indicator of Economic Growth): राष्ट्रीय आय समंकों की गणना द्वारा एक अर्थव्यवस्था की विभिन्न समयों पर विकास दर का अध्ययन किया जा सकता है। इसके द्वारा प्रति व्यक्ति आय को भी ज्ञात किया जा सकता है और लोगों के कल्याण को ध्यान मे रखते हुए प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने के प्रत्यत्न भी किये जा सकते हैं।

(ix) अन्तर्राष्ट्रीय तुलना में महत्त्वपूर्ण (Importance in International Comparison) : विभिन्न देशों के राष्ट्रीय आय समंकों से उन देशों के विकास दरों की तुलना की जा सकती है। प्रति व्यक्ति आय के आधार पर ही विश्व के देशों को विकसित एवं विकासशील और अविकसित वर्गों में बांटा जाता है और परस्पर उनकी तुलना की जाती है|

21.8 सारांश (Summary)

राष्ट्रीय आय की अवधारण का प्रत्येक अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। सरकार विभिन्न आर्थिक नीतियों के आधार पर अर्थव्यवस्था का संचालन करती है। इसलिए राष्ट्रीय आय का सही मापन आवश्यक है ताकि सही आर्थिक

नीतियां बनाई जा सके। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं में मार्शल व पीगू की परिभाषाओं का आधार उत्पादन तथा फिशर की परिभाषा का आधार उपभोग है। जहां तक राष्ट्रीय आय को मापने का सम्बन्ध है, इसका सैद्धांतिक पक्ष सरल प्रतीत होता है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से राष्ट्रीय आय को मापने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। चूंकि अर्थव्यवस्था से संबंधित आंकड़े पूर्ण तथा शुद्ध रूप से प्राप्त नहीं हो पाते, अत: राष्ट्रीय आय की प्रमाणिकता पर भी प्रश्न चिन्ह लग जाता है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि राष्ट्रीय आय उत्पादन की मौद्रिक मूल्यों की अभिव्यक्ति मात्र है। इससे वास्तविक उत्पादन लागत की जानकारी नहीं हो पाती।

21.9 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

'राष्ट्रीय आय विश्लेषण' इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् राष्ट्रीय आय का अर्थ, विशेषताओं एवं विभिन्न परिभाषाओं तथा अवधारणाओं के सम्बन्ध में विद्यार्थी भलीभांति अवगत हो गए होंगे , ऐसी आशा कि जाती है। राष्ट्रीय आय की गणना करने की कई विधियाँ हैं और सभी के अपने-अपने गुण-दोष हैं। आप राष्ट्रीय आय की गणना के महत्त्व के सम्बन्ध में भी अवश्य जान गये होंगे कि एक एक देश के नियोजन, नीति निर्धारण आदि में इसकी भूमिका की क्या उपादेयता है।

21.10 शब्दावली (Glossary)

- **सकल घरेलू उत्पाद (GDP) :** एक देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पन्न समस्त अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं का बाजार मूल्य सकल घरेलू उत्पाद कहलाता है।
- **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) :** एक देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के बाजार मूल्य के योग (सकल घरेलू उत्पाद) में विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय भी जोड़ दी जाये, तो यह सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है।
- **विशुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP) :** जब सकल घरेलू उत्पाद से पूँजी ह्रास घटाते हैं, तो हमें शुद्ध घरेलू उत्पाद प्राप्त होता है।
- **विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) :** यदि सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से पूँजी ह्रास व अप्रचलन मूल्य को घटा दिया जाये, तो यह विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है।
- **राष्ट्रीय आय (National Income) :** जब विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में से अप्रत्यक्ष कर घटा दिये जायें और उपदान जोड़ दिये जायें, तो इसे राष्ट्रीय आय कहते हैं।
- **साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at FC) :** एक देश में एक वर्ष में उत्पादन के विभिन्न साधनों को जो आय प्राप्त होती है, उसे साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं।
- **बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at MP) :** साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद में जब अप्रत्यक्ष कर जोड़े जायें तथा सरकार द्वारा दी गई सब्सिडी घटा दी जाये, तो इसे बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है।

- **प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income):** राष्ट्रीय आय को देश की कुल जनसंख्या से विभाजित करने पर जो भागफल प्राप्त होता है, उसे प्रति व्यक्ति आय कहते हैं|

21.11 स्व-परख प्रश्न (Self Test Questions)

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न (Very - Short Answer Questions)

1. अन्तर बताइये-
   (अ) सकल राष्ट्रीय उत्पाद और शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद
   (ब) वास्तविक आय और मौद्रिक आय
   (स) वैयक्तिक आय और खर्च योग्य वैयक्तिक आय
2. सकल घरेलू उत्पाद का अर्थ स्पष्ट कीजिए|
3. राष्ट्रीय आय की गणना की कोई दो विधियों के नाम बताइए|

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. राष्ट्रीय आय को मापने की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये|
2. राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं को समझाइये|
3. राष्ट्रीय आय की गणना में मुख्य कठिनाइयां क्या हैं? स्पष्ट कीजिए|
4. राष्ट्रीय आय की विशेषताएँ बताइए तथा वर्तमान समय में इसके अध्ययन के महत्त्व पर प्रकाश डालिए|

21.12 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- सारस्वत, लोढ़ा, शर्मा, गोधा : 'व्यावसायिक अर्थशास्त्र', अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर
- माथुर, गुप्ता : 'व्यावसायिक अर्थशास्त्र', शिवम् बुक हाउस, जयपुर
- Aggarwal M.D., Som Deo : 'Business Economics', Ramesh Book Depot, Jaipur
- Mathur, N.D. : 'Business Economics', Shivam Book House, Jaipur
- Jain, K.P. : 'Modern Micro Economics', Ratan Publication Mandir, Agra

21.13 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Samuelson, Paul, and William Nordhaus: 'Economics' (2005), New Delhi : Tata MaGraw Hill Education.
- Atmanand : 'Managerial Economics', Excel Books 2009, New Delhi.
- Varshney, R.L. and K.L Mahaeshwari : 'Managerial Economics', Sultan Chand & sons New Delhi.

21.14 वेब संसाधन / लिंक (Web Resources / Links)

- http://www.swlearning.com/economics/hircey/managerial_econ
- http://www.mpgkpdf.com>
- http://hi.m.wikipedia.org>

इकाई - 22

व्यापार चक्र

(Business Cycles/Trade Cycles)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 व्यापार चक्र का अर्थ एवं परिभाषा

22.3 व्यापार चक्रों की विशेषताएँ

22.4 व्यापार चक्रों की अवस्थाएँ

22.4.1 मंदी (अवसाद)

22.4.2 पुनरुत्थान

22.4.3 पूर्णरोजगार

22.4.4 तेजी या समृद्धि

22.4.5 प्रतिसार (अवरोध)

22.5 व्यापार चक्रों के सिद्धांत

22.6 व्यापार चक्रों के प्रभाव

22.7 व्यापार चक्रों को नियंत्रित करने के उपाय

22.8 सारांश

22.9 अधिगम परिणाम

22.10 शब्दावली

22.11 स्वा-परख प्रश्न

22.12 संदर्भ व ग्रन्थ सूची

22.13 अन्य पठन सामग्री

22.14 वेब संसाधन/लिंक

22.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के पठन के पश्चात आप :

- व्यापार चक्र का अर्थ एवं इसकी विभिन्न अवस्थाओं को समझ सकेंगे;
- व्यापार चक्र के विभिन्न सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;

- व्यापार चक्र के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों से अवगत हो सकेंगे; तथा
- व्यापार चक्र को नियंत्रित करने के उपायों के बारे में अपनी समझ विकसित कर सकेंगे|

22.1 प्रस्तावना (Introduction)

अर्थव्यवस्था किसी भी प्रकृति की हो, उसमें निरंतर उतार-चढ़ाव तेजी और मंदी के रूप में एक निश्चित अवधि के पश्चात घटित होते रहते हैं। ये उतार-चढ़ाव मौसमी भी हो सकते हैं तथा आकस्मिक भी| व्यापार चक्र अनेक अवस्थाओं यथा अवसाद, पुनरूत्थान, पूर्ण रोजगार, समृद्धि तथा अवरोध से गुजरते हैं और इनकी पुनरावृति होती रहती है। व्यापार चक्रों की विवेचना अनेक अर्थशास्त्रियों द्वारा अपने - अपने ढंग से तर्क सहित प्रस्तुत की गई है। व्यापार चक्रों के अनेक सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव अर्थव्यवस्था पर घटित हो सकते हैं, जिनके निवारण हेतु अनेक उपाय विभिन्न सरकारों द्वारा अपनी - अपनी परिस्थिति के अनुसार किये जाते हैं। मौद्रिक नीति व राजकोषीय नीति के माध्यम से इन व्यापार चक्रों को प्रभावपूर्ण तरीके से नियंत्रित किया जा सकता है। इस इकाई में हम व्यापार चक्रों के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे|

22.2 व्यापार चक्र का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Business Cycles)

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। इनमें से कुछ परिवर्तन मौसमी प्रवृत्ति के होते हैं तथा कुछ आकस्मिक तथा दीर्घकालीन प्रवृत्ति के होते हैं। सभी प्रकार के परिवर्तनों को व्यापार चक्रों की संज्ञा नहीं दी जा सकती। अत: व्यापार चक्रों के सही अर्थ को समझने के लिए सभी प्रकार के उच्चावचनों (उतार-चढ़ाव) का भेद समझना आवश्यक है जो निम्नलिखित हो सकते हैं :

विभिन्न प्रकार के उच्चावचन

मौसमी उतार-चढ़ाव | **आकस्मिक उतार-चढ़ाव** | **दीर्घकालीन उतार-चढ़ाव** | **चक्रीय उतार-चढ़ाव**

1. **मौसमी उतार - चढ़ाव :** ये उतार - चढ़ाव मौसम परिवर्तन के साथ - साथ व्यापार में तेजी एवं मंदी लाते हैं, जैसे- शादियों के मौसम में बाजार में अत्यन्त चहल - पहल होती है। इससे व्यापार में वृद्धि होती है, किन्तु वर्षा ऋतु में व्यापार ठप्प पड़ जाता है।
2. **आकस्मिक उतार - चढ़ाव :** ये उतार - चढ़ाव बड़े ही अनियिमित एवं क्रम रहित होते हैं। जैसे- महामारी, अकाल, भूकम्प आदि की स्थिति में व्यापारिक क्षेत्र में मंदी आ जाती है, जबकि युद्ध की स्थिति में व्यापार में तेजी आती है।
3. **दीर्घकालीन उतार - चढ़ाव :** ये उतार - चढ़ाव दीर्घकालीन प्रवृत्ति के होते हैं तथा एक ही दिशा में गतिमान होते हैं। जनसंख्या, तकनीक आदि में परिवर्तन ऐसे उतार - चढ़ाव को जन्म देते हैं।

4. चक्रीय उतार - चढ़ाव : चक्रीय उतार - चढ़ाव पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं की आर्थिक क्रियाओं में क्रमबद्ध ढंग से निश्चित अवधि के बाद नियमित रूप से घटित होते हैं। विस्तार और संकुचन की अवस्थाएँ एक दूसरे के बाद घटित होती रहती हैं और यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। ऐसे चक्रीय उतार - चढ़ावों को व्यापार चक्रों की संज्ञा दी जाती है।

प्रो. बेनहम के अनुसार, "व्यापार चक्र वैभव अथवा सम्पन्नता का वह काल है, जिसके पश्चात अवसाद अथवा मंदी का काल आता है।"

प्रो. कींस के अनुसार, "व्यारपार चक्र का अभिप्राय एक आने वाले अच्छे व्यापार की अवधि, जिसकी विशेषतायें हैं - बढ़ती हुई कीमतें और बेरोजगारी का न्यून स्तर, और बुरे व्यापार की अवधि, जिसकी विशेषताएँ हैं - गिरती हुई कीमतें व बेरोजगारी का ऊंचा स्तर।"

इसी प्रकार अनेक अन्य विद्वानों ने भी व्यापार चक्रों को परिभाषित किया है जिनमें प्रो. हैबरलर, हॉट्रे तथा प्रो. गार्डन की परिभाषा प्रमुख है। इन समस्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यापार चक्रों का अभिप्राय आर्थिक क्रियाओं में तरंगों की तरह उतार - चढ़ाव से है जो पर्याप्त निश्चित अवधि के बाद नियमित रूप से घटित होते हैं।

22.3 व्यापार चक्रों की विशेषताएँ (Characteristics of Business Cycles)

1. **निश्चितता एवं नियमितता :** सामान्यतया व्यापार चक्र निश्चित एवं नियमित अवधि के बाद आते रहते हैं। एक के बाद तुरन्त दूसरा काल प्रारम्भ हो जाता है। व्यापार चक्रों के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि तेजी के बाद मंदी और मंदी के बाद तेजी आती है। यह क्रम लगभग 7 से 10 वर्ष के बाद आता रहता है।
2. **संक्रमिकता :** व्यापार चक्रों की दूसरी विशेषता संक्रमिकता है जिसका अभिप्राय यह है कि व्यापार चक्र में सभी प्रकार की आर्थिक क्रियाएँ एक साथ एक ही प्रकार से प्रभावित होती है अर्थात् रोजगार, आय, उत्पादन, मूल्य स्तर आदि एक साथ ही घटते - बढ़ते हैं। तेजी के दौर में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में तेजी नजर आती है और मंदी के दौर में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में मायूसी छा जाती है।
3. **अंतर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति :** व्यापार चक्र किसी एक देश में प्रारम्भ होकर एक ही राष्ट्र तक सीमित नहीं रहते, बल्कि समूचे संसार में फैलने की प्रवृत्ति होती है क्योंकि विश्व के सभी देशों की अर्थव्यवस्था विदेशी व्यापार और विनिमय के माध्यम से एक - दूसरे के साथ जुड़ी रहती है। अत: किसी एक देश की तेजी एवं मंदी का प्रभाव दूसरे देश की अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है।
4. **असमान प्रभाव :** व्यापार चक्रों का देश के सभी उद्योगों व व्यवसायों पर एक समान प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए, मन्दी के दौर में पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों पर उपभोक्ता उद्योगो की तुलना में अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है।
5. **मूल्यों की स्थिति :** व्यापार चक्रों से कृषिजन्य पदार्थो के मूल्यों में अधिक परिवर्तन होता है क्योंकि कृषिजन्य वस्तुओं के मूल्य अधिक लोचदार होते हैं। इसके विपरीत, निर्मित वस्तुओं के मूल्यों में अधिक स्थिरता पाई जाती है।
6. **मूल्यों तथा उत्पादन की मात्रा में एक ही दिशा में परिवर्तन :** व्यापार चक्रों के फलस्वरूप मूल्यों एवं उत्पादन की मात्रा में एक ही दिशा में परिवर्तन होते हैं। उदाहरण के लिए, तेजी के समय वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि से उत्पादन में वृद्धि होती है, जबकि मंदी के समय मूल्यों में कमी के कारण उत्पादन में कमी आती है।

22.4 व्यापार चक्रों की अवस्थाएँ (Stages of Business Cycles)

व्यापार चक्रों की अवस्थाओं में नियमित रूप से उच्चावचन (उतार - चढ़ाव) होते रहते हैं, जिसमें तेजी व मंदी का क्रम चलता रहता है। अलग - अलग अर्थशास्त्रियों ने व्यापार चक्रों के मार्ग को अलग - अलग अवस्थाओं में बांटा है।

प्रो. बोल्डिंग के अनुसार व्यापार चक्र की 5 अवस्थाएँ होती हैं, जबकि **साइमन** के अनुसार 4 अवस्थाएँ होती है। **लॉर्ड ओोवरस्टोन** ने व्यापार चक्र की दस अवस्थाएँ बतायी है।

एक व्यापार चक्र में प्राय: 5 अवस्थाएँ होती है। यहाँ यह कहना अत्यन्त कठिन है कि व्यापार चक्र किस बिन्दु से प्रारम्भ होता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से व्यापार चक्रों की अवस्थाओं को मंदी से प्रारम्भ किया जा सकता है। व्यापार चक्र की इन अवस्थाओं का वर्णन आगे दिया जा रहा हैं।

22.4.1 मंदी (अवसाद) (Depression or Contraction) : यह व्यापार चक्र की वह अवस्था होती है, जिसमें न्यून उत्पादन किया जाता है। मनुष्यों द्वारा सामग्री का उपभोग न्यूनतम बिन्दु तक पहुंच जाता है। इस अवस्था में उत्पादन एवं रोजगार में बहुत कमी हो जाती है। विनियोग की मात्रा घट जाती है। इससे श्रम तथा उत्पत्ति के दूसरे साधन बेकार हो जाते हैं। इस अवस्था में निर्मित माल की कीमतें गिरने से उत्पादकों को हानि होती है, जिससे वे उत्पादन में कमी कर देते हैं, परिणामस्वरूप बेराजगारी और ज्यादा बढ़ती है।

निर्मित माल की अपेक्षा कच्चे माल की कीमतें अधिक तेजी से गिरती हैं। फलस्वरूप किसानों तथा कच्चे माल के उत्पादकों की आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है। उत्पादन एवं वितरण की समस्त व्यवस्थाएँ अस्त - व्यस्त हो जाती है। समाज में निराशा का वातावरण फैल जाता हैं। व्यवसायी अपने बढ़ते हुए स्टॉक के कारण बैंको के ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ हो जाते हैं। बैकों की पूँजी उद्योगों में फंस जाती है उद्योगों के असफल होने पर बैक भी असफल हो जाते हैं। चारों और आर्थिक अशान्ति व अविश्वास की गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे वातावरण में व्यापारी, उद्योगपति, किसान, मजदूर आदि सभी वर्गों की आर्थिक स्थिति डांवाडोल हो जाती है।

मंदी की विशेषताएँ (Characteristics of Depression)

1. व्यवसाय निष्क्रिय रहता है, जिससे विनियोग एवं उत्पादन की मात्रा में कमी हो जाती है।
2. व्यापार, कृषि एवं उद्योग निष्प्राण हो जाते हैं।
3. विनियोग तथा उत्पादन में कमी के कारण आय तथा रोजगार में गिरावट होती है।
4. वस्तुओं के मूल्यों, श्रमिकों की मजदूरी तथा साहसियों के लाभ में कमी हो जाती है।
5. पूँजी पर ब्याज की दरें पहले की तुलना में बहुत कम हो जाती है।
6. आंतरिक व्यापार के साथ - साथ विदेशी व्यापार की मात्रा भी घट जाती है।
7. बैंक तथा बीमा कम्पनियाँ हानि होने के कारण बंद होने लगते हैं।
8. समाज में निराशा के कारण असंतोष की भावना बढ़ने लगती है।

22.4.2 पुनरूत्थान (पुनरूद्धार) (Recovery or Revival) : समाज में मंदी की अवस्था कुछ समय तक बनी रहने के बाद प्राय: पुनरूत्थान की अवस्था प्रारम्भ हो जाती है| जब कुछ ही समय पश्चात सरकार द्वारा मंदी को समाप्त करने के लिए प्रयास किये जाते हैं, तो विभिन्न उद्योगों व व्यवसायों में पूँजी का विनियोग बढ़ता है। बैंकों द्वारा नये ऋण दिये जाने लगते हैं, जिससे उत्पादन, रोजगार तथा आय के स्तर में वृद्धि होने लगती है। सामान्य मूल्य स्तर में क्रमिक वृद्धि प्रारम्भ होने से व्यापार चक्र की दिशा बदल जाती है। मूल्य वृद्धि होने से उत्पादकों को प्रोत्साहन मिलता है। इससे बेकार बैठे लोग धीरे - धीरे उत्पादन क्षेत्र में पुन: प्रविष्ट होने लगते हैं। सरकार द्वारा प्रारम्भ किये गये जनहित कार्यों पर अधिक व्यय करने से रोजगार तथा उत्पादन की स्थिति में सुधार होने लगता है। समाज की आय मे वृद्धि होने लगती है और

वस्तुओं की बिक्री बढ़ती है। बिक्री बढ़ने से देश में व्यापार का विस्तार होता है और लोगों में नयी आशा का संचार होने लगता है।

पुनरूत्थान की विशेषताएँ (Characteristics of Recovery) :

1. इस अवस्था में उत्पादन, रोजगार तथा आय स्तर में धीरे - धीरे वृद्धि होने लगती है।
2. मूल्य स्तर, मजदूरी तथा लाभों में वृद्धि होने लगती है।
3. बैंक ऋणों तथा नये विनियोगों मे वृद्धि होती है।
4. बैंकों की वसूलियों में सुधार होने लगता है।
5. सभी क्षेत्रों में आशा एवं उत्साह की नयी लहर दिखाई देने लगती है।
6. देश में सट्टे बाजी की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है।
7. लोगों में वस्तु का संग्रह करने की प्रवृत्ति कम हो जाती है।

22.4.3 पूर्ण रोजगार (Full Employment) : व्यापार चक्र की यह अवस्था सर्वोत्तम तथा आदर्श अवस्था कही जा सकती है, जिसे प्रत्येक देश प्राप्त करना चाहता है। इस अवस्था में आर्थिक क्रियाएँ, अनुकूलतम स्तर पर पहुँच जाती है तथा उत्पादन के सभी साधनों को काम मिलने लगता है। इस अवस्था में काम करने की शक्ति और इच्छा रखने वाला कोई भी व्यक्ति बेकार नहीं रहता, यद्यपि इस दशा में भी कुछ ऐच्छिक बेरोजगारी मौजूद रह सकती है।

पूर्ण रोजगार की विशेषताएँ (Characteristics of Full Employment)

1. उत्पादन के सभी साधनों का पूर्ण उपयोग होने लगता है।
2. इस अवस्था में आर्थिक क्रियाएँ अनुकूलतम स्तर पर पहुंच जाती हैं।
3. समाज में ऐच्छिक बेरोजगारी के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति बेरोजगार नही होता।
4. इस अवस्था में वस्तुओं के मूल्य, मजदूरी, उत्पादन तथा आय सभी में स्थायित्व आ जाता है।
5. व्यवसायों के असफल होने के अवसर बहुत कम हो जाते हैं।
6. बैंकों द्वारा बड़े पैमाने पर वसूली होने लगती है।
7. स्थायी पूँजी के रूप में विनियोग बढ़ जाता है।

22.4.4 तेजी या समृद्धि (Boom or Prosperity) : पुनरूत्थान की अवस्था के बाद सदैव पूर्ण रोजगार की स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में विनियोग निरन्तर बढ़ता रहता है। इससे ने केवल उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि मूल्यों में भी अधिक वृद्धि होती हैं। परिणामस्वरूप साहसी प्रत्येक वस्तु को आशावादी दृष्टिकोण से देखने लगते हैं। प्रत्येक व्यापार एवं उद्योग में अधिक मात्रा में विनियोजन होने के कारण उत्पादन के साधनों पर चारों तरफ से दबाव बढ़ने लगता है। अत्यधिक रोजगार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। परिणामस्वरूप मजदूरी तथा उत्पादन लागतों में वृद्धि होती है। अत: मूल्य स्तर तेजी से बढ़ने लगता है। मूल्य बढ़ने से व्यापारियों तथा उद्योगपतियों के लाभ बढ़ जाते हैं। इससे और अधिक विनियोजन को प्रोत्साहन मिलता है। इस क्रम के लगातार चलते रहने से अभिवृद्धि की यह स्थिति असाधारण ऊँचाई को प्राप्त कर लेती है।

समृद्धि की विशेषताएँ (Characteristics of Boom)

1. सभी वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने लगती है।
2. उत्पादन लागत तथा लाभों में वृद्धि होती है।
3. विनियोग की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि होती है।
4. व्यवसायियों में अत्यधिक आशा का संचार होता है तथा वे भविष्य के प्रति लापरवाह होने लगते हैं।
5. बैंकों द्वारा अत्यधिक मात्रा में ऋण प्रदान किया जाने लगता है।
6. सट्टेबाजी की प्रवृत्तियों को अधिकाधिक बल मिलता है।

7. श्रम संघों की कार्यवाही का विस्तार होने लगता है।
8. नवीन उद्योगों व व्यापारों की स्थापना होने लगती है।
9. मूल्यों की तुलना में मजदूरी में कम वृद्धि होने के कारण वास्तिवक मजदूरी में कमी आती है।

22.4.5 प्रतिसार (अवरोध) (Recession): तेजी की अवस्था लम्बे समय तक नहीं बनी रह सकती क्योंकि तेजी में ही विनाश के बीज निहित होते हैं। तेजी की जब एक सीमा आ जाती है, तो उसके आगे विकास के चरण डगमगाने लगते हैं और प्रगति की गति स्थिर हो जाती है। धीरे - धीरे मंदी का पुनर्आगमन होने लगता है। इस स्थिति में नवीन पूँजी का विनियोग बंद हो जाता है। बैंकों की ऋण राशि अत्यधिक बढ़ जाने के कारण बैंक सतर्क हो जाते हैं तथा वे कम ऋण देने लगते हैं। इन सब के परिणामस्वरूप उत्पादन में कमी होने लगती है तथा भविष्य के प्रति लोग सन्देह की दृष्टि से देखने लगते हैं।

प्रतिसार की विशेषताएँ (Characteristics of Recession)

1. इस अवस्था में मजदूरी की दरें तथा वस्तुओं के मूल्य गिरने लगते हैं।
2. कुल व्यवसाय की मात्रा घटने लगती है।
3. उत्पादन, आय, विनियोग तथा रोजगार का स्तर घटने लगता है।
4. बैंकों द्वारा ऋणों की शर्त कठोर कर दी जाती है, जिससे बैंक ऋणों में कमी होने लगती है।
5. साहसियों में भविष्य के प्रति भय, संकोच तथा शंका उत्पन्न होने लगती है।
6. निर्माण क्रियाएँ मंद पड़ जाती है और बेकारी बढ़ने लगती है।
7. नवीन योजनाओं का त्याग कर दिया जाता है और अधूरी योजनाओं को छोड़ दिया जाता है।

रेखाचित्र संख्या – 22.1

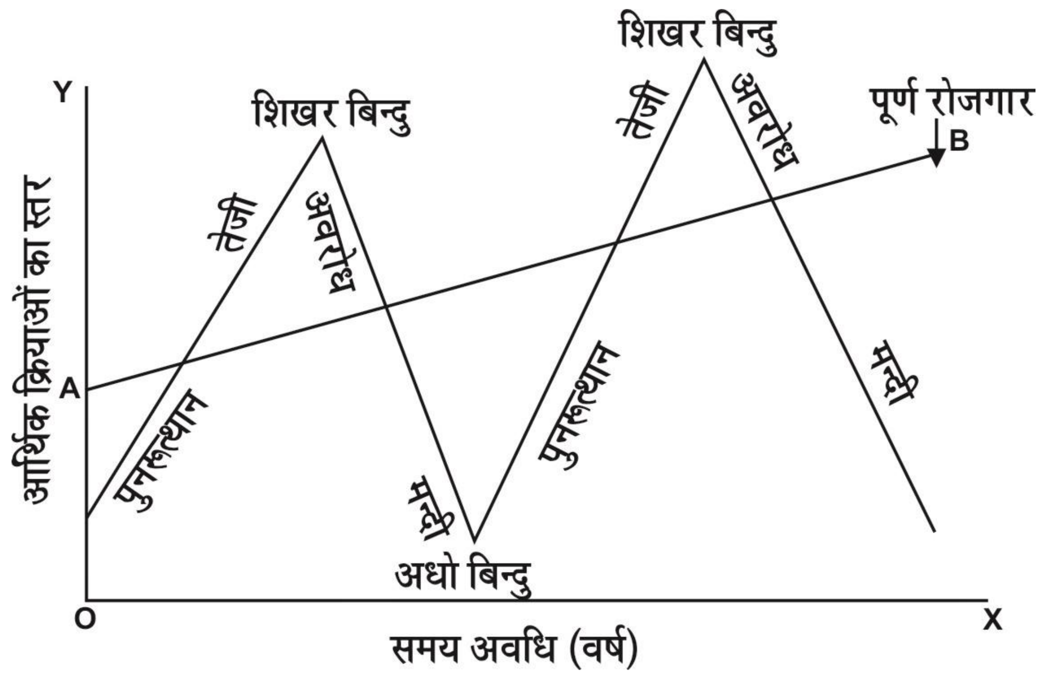

स्व-मूल्यांकन – प्रथम

आप अपना व्यवसाय संचालित कर रहे हैं। व्यापार चक्र की कौनसी अवस्था में आप किसी नवीन विचार के सम्बन्ध में सोचना प्रारंभ करेगें? वास्तव में, आप अपने नवीन विचार को किस अवस्था में मूर्तरूप देकर क्रियान्वित करना चाहेंगे? क्या ये कार्य एक ही अवस्था में पूरे करेंगे या भिन्न - भिन्न अवस्थाओं में?

22.5 व्यापार चक्रों के सिद्धांत (Theories of Business Cycles)

अनेक अर्थशास्त्रियों ने व्यापर चक्रों के कारणों व उनके प्रभावों का विश्लेषण किया है। व्यापार चक्रों के उत्पन्न होने के कारणों के बारे में अर्थशास्त्रियों में मतभेद हैं, जो अलग-अलग सिद्धान्तों के रूप में प्रकट हुआ है।

व्यापार चक्रों के विभिन्न सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

(1) **मनोवैज्ञानिक सिद्धांत (Psychological Theory) :** इन सिद्धांतों में मुख्य रूप से **ए.सी. पीगू** का सिद्धांत है जो मुख्यतः व्यावसायिक समुदाय में अनुकूलता और सकारात्मक विचारधारा पर जोर देता है।

(2) **प्राकृतिक सिद्धान्त (Natural Theory) :** ये सिद्धांत व्यापार चक्रों को एक स्वाभाविक व प्राकृतिक घटना मानता है। यह ज्यादातर कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या करता हैं। **हेनरी एल.मूरें, डब्ल्यू. एस. जेवन्स** आदि के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत इसके अन्तर्गत आते है।

(3) **विशुद्ध मौद्रिक सिद्धांत (Pure Monetary Theory) :** इस सिद्धांत के अनुसार व्यापार चक्रों का मूल कारण मुद्रा और उसके विभिन्न आयाम हैं। मुद्रा की मात्रा, ब्याज दर, मुद्रा का चलन वेग आदि व्यापार चक्रों के मुख्य कारण माने जाते हैं। **आर.जी. हॉट्रे का सिद्धांत** इसी श्रेणी से सम्बन्धित है।

(4) **अति विनियोग सिद्धांत (Over Investment Theory) :** यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि विनियोग तथा पूँजी निर्माण तेजी की अवस्था में इतने ऊंची स्थिति में हो जाते हैं कि उस दर पर अर्थव्यवस्था को जारी रखना लगभग असंभव हो जाता है। **एफ. ए. हेयक** का सिद्धांत इसी श्रेणी का है।

(5) **अल्प –उपभोग सिद्धांत (Under Consumption Theory) : कार्ल मार्क्स, डगलस, हॉब्सान** आदि इस सिद्धान्त के जनक माने जाते हैं। ये समाजवादी चिंतक इस मान्यता के साथ आगे बढ़ते हैं कि अयोग्यता एवं कमाई करने की अनिच्छा के कारण बाजार में स्थापित दरों व मूल्यों पर उपभोग जारी रखना संभव नहीं हो पाता तथा समृद्धि की अवस्था ध्वस्त हो जाती है।

(6) **बचत एवं विनियोग सिद्धांत (Saving and Investment Theory) : लॉर्ड कीन्स** को इस सिद्धांत का जन्मदाता माना जाता है| यह सिद्धांत बचतों एवं विनियोग के बीच आपसी सम्बन्धों पर जोर देता है। एक सीमा तक यह सिद्धांत अल्प उपभोग सिद्धांत से मेल खाता है।

(7) **नव प्रवर्तन सिद्धांत (Innovation Theory) : जोसेफ ए. शुम्पीटर** ने प्रौद्योगिकी परिवर्तनों को व्यापार चक्रों का मुख्य कारण माना है। तकनीकी परिवर्तनों की निरंतरता के कारण विनियोजन के स्तर पर प्रभाव पड़ता है।

अध्ययन की सरलता की दृष्टि से हम व्यापार चक्रों के सिद्धांतो को गैर - मौद्रिक दृष्टिकोण तथा मौद्रिक दृष्टिकोण के आधार पर विभाजित कर सकते हैं। कुछ प्रमुख सिद्धांतों का यहां वर्णन किया गया है :

विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त (Pure Monetary Theory)

प्रो. हॉट्रे के अनुसार व्यापार चक्र एक विशुद्ध मौद्रिक घटना है। उनके अनुसार अमौद्रिक घटक (जैसे- युद्ध, भूकम्प, हड़तालें, फसलों की बर्बादी आदि) अर्थव्यवस्था के विशेष भागों में आंशिक एवं अस्थायी मंदी उत्पन्न कर सकते हैं, परन्तु व्यापार चक्र के रूप में ऐसी स्थिति पूर्ण मंदी उत्पन्न नहीं कर सकते, जिससे उत्पादन के साधनों की बेरोजगारी बढ़ जाये। हॉट्रे के अनुसार व्यापार चक्र मुद्रा के विस्तार अथवा संकुचन पर निर्भर करते हैं। हॉट्रे का सिद्धान्त मुख्य रूप से तीन तत्त्वों पर आधारित है :

(i) देश में कुल मौद्रिक माँग के प्रवाह में परिवर्तन होना;

(ii) थोक व्यापारियों का देश की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान होना; तथा

(iii) बैंक जमाओं की वापसी का महत्व होना।

एक व्यवस्थित मौद्रिक व्यवस्था वाले देश में समाज तीन वर्गों में बंटा हुआ होता है - उपभोक्ता, व्यापार तथा बैंक। उपभोक्ता अपनी आय को प्राप्त करने तथा व्यय करने में लगे होते हैं। व्यापारी वर्ग आय प्राप्ति के साथ - साथ माल की बिक्री, संग्रहण तथा क्रय आदेश देने के कार्य में लगे रहते हैं। बैंक निक्षेप स्वीकार करने तथा ऋण देने के कार्य में लगे रहते हैं। बैंक साख का सृजन कार्य भी करते हैं। **हॉट्रे** के अनुसार जब बैंकों द्वारा साख का विस्तार किया जाता है, तो ब्याज दर घटती है। अत: व्यापारी अधिक ऋण लेते हैं तथा स्टॉक बढ़ाने लगते हैं। माल की बढ़ती माँग के कारण उत्पादन, आय एवं रोजगार बढ़ता है। कीमतों में तेजी आती है जो आर्थिक समृद्धि एवं विस्तार का कारण बनती है। परन्तु, जब बैंक साख का विस्तार रूक जाता है, तो सुस्ती की स्थिति उत्पन्न होती है और बैंक अपनी सुदृढता के लिए साख नीति को कठोर करते हैं तथा ब्याज दरें बढाते हैं। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक गतिविधियों में गिरावट का दौर शुरू हो जाता है और अंततः अर्थव्यवस्था मंदी की गिरफ्त में आ जाती है।

सिद्धांत की आलोचनाएँ (Criticisms)

हॉट्रे ने व्यापार चक्रों का एक मात्र कारण साख की अस्थिरता को बताया है। यद्यपि अन्य कारणों का भी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है, परन्तु वे स्थिति को ज्यादा गंभीर नही बना सकते। हॉट्रे के इस दृष्टिकोण की कुछ अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित आलोचनाएँ की हैं :

(i) सांख्यिकी अध्ययन इस दृष्टिकोण की पुष्टि नही करते कि ब्याज की नीची दरें व्यापारियों को अधिक स्टॉक रखने की दिशा में प्रोत्साहित करती हैं। आलोचकों के अनुसार स्टॉक इस बात को देखकर नहीं बनाये जाते कि ऋण किस ब्याज दर पर प्राप्त होते हैं, बल्कि यह देखकर बनाये जाते हैं कि स्टॉक को बनाने में लाभ की कितनी सम्भावना है?

(ii) हॉट्रे के अनुसार तेजी के शिखर पर ब्याज की दर में वृद्धि ही स्थिति को नया मोड़ देती है तथा संकट को प्रारम्भ करती है। आलोचकों के अनुसार यह अनुभव के विरूद्ध है। वास्तविक जीवन में ब्याज की दर में वृद्धि संकट से पहले नहीं होती है, बल्कि उसके पश्चात् होती है और संकट आने से साख का पतन हो जाता है।

(iii) हॉट्रे उन कारणों की व्याख्या नहीं करते जिन पर विनियोग की तत्परता निर्भर होती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उपभोग तथा विनियोग में परिवर्तनों का अर्थव्यवस्था पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

(iv) आलोचकों के अनुसार व्यवहार में अनेक गैर - मौद्रिक तत्त्व भी व्यापार चक्रों के लिए उत्तरदायी होते हैं, लेकिन इन तत्त्वों की इस सिद्धान्त में व्याख्या नहीं की गई है।

(v) हॉट्रे के सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि बैंकों द्वारा धन उधार देने में सदैव हानि का सामना करना पड़ता है, परन्तु व्यवहार में सदैव ऐसा नही होता।

(vi) आधुनिक युग में व्यापारिक संस्थाओं के पास स्वयं के काफी संचित कोष होते है और उन्हें गैर - वित्तीय संस्थाओं से भी वित्तीय साधन मिल जाते हैं। इस प्रकार व्यापार केवल बैक साख पर निर्भर नहीं करता।

अति विनियोग सिद्धान्त (Over Investment Theory)

इस सिद्धान्त का आधार यह है कि मौद्रिक प्रणाली की क्रियाशीलता के कारण अर्थव्यवस्था में आवश्यकता से अधिक पूँजी का विनियोजन हो जाता है। इस अधिक विनियोजन के फलस्वरूप ही आर्थिक संकट की स्थिति उत्पन्न होती है। आस्ट्रिया के अर्थशास्त्री **प्रो. हेयक** का यह व्यापार चक्र सिद्धान्त मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन के कारण विनियोग की मात्रा में होने वाली अधिकता तथा उत्पादन ढांचे में परिवर्तन को व्यापार चक्रों का कारण मानता है। हेयक के अनुसार, कृत्रिम रूप से कम ब्याज दर पर अधिक साख का निर्गमन करना ही व्यापार चक्रों के लिए पूर्णतया उत्तरदायी है। जब स्वाभाविक ब्याज दर तथा बाजार ब्याज दर दोनों में समानता होती है, तो अर्थव्यवस्था संतुलन अवस्था में होती है। परन्तु जब कभी बाजार दर स्वाभाविक ब्याज दर से कम होती है, तो ऐच्छिक बचतों की पूर्ति निवेश के लिए ऋणों की माँग के मुकाबले कम होने के कारण बैंकों द्वारा अतिरिक्त साख मुद्रा के माध्यम से माँग पूरी की जाती है। इससे बैंक साख का विस्तार

होता है। पूँजीगत पदार्थो की माँग बढ़ जाती है और उनकी कीमतें तथा लाभ भी बढ़ने लगते है। उपभोक्ताओं में उंची कीमतें चुकाने की प्रतिस्पर्धा बढ़ती है। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में साधनों की कीमत बढ़ने से कीमत स्तर बढ़ता है और अर्थव्यवस्था तेजी की ओर अग्रसर होने लगती है।

अर्थव्यवस्था में तेजी की स्थिति भी अधिक समय तक स्थायी नही रहती क्योंकि समृद्धि काल के अंतिम चरणों में जब उपभोग वस्तुओं का उत्पादन बढ़ने लगता है तो पूँजीगत पदार्थों के उत्पादन में कमी आती है। पूँजीगत पदार्थों के उत्पादन में कमी से इस उद्योग से हटाये गये साधन उपभोग उद्योगों में खप नहीं पाते। परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ती है। बैंक भी अपनी साख मात्रा को घटाने लगते हैं और ब्याज दरों को बढ़ाते हैं। इससे बाजार ब्याज दर स्वाभाविक ब्याज दर से ऊंची हो जाती है। इससे निवेशों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और पूँजी में कमी आती है, परिणामस्वरूप उत्पादन, रोजगार-स्तर तथा कीमतों में गिरावट आने लगती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में सुस्ती प्रारम्भ होकर क्रमश: मंदी में बदल जाती है।

सिद्धांत की आलोचनाएँ (Criticisms)

(i) यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि बचत और विनियोग में साधारणतया संतुलन रहता है, किन्तु बैंकों की नीति के कारण इसमें असंतुलन हो जाता है। किन्तु यह मान्यता ठीक नहीं है।

(ii) इस सिद्धान्त में माना गया है कि सब साधन पूर्ण रूप से काम में लगे हुए हैं, किन्तु जब बैंक उधार देना प्राम्भ करते हैं, तो कुछ साधन एक क्षेत्र से हटाकर दूसरे क्षेत्र में चले जाते है। इससे अर्थव्यवस्था में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

(iii) इस सिद्धान्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि बैंकों के उधार देने से सदैव नुकसान होता है जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता।

(iv) हेयक के अनुसार उत्पादन क्रियाओं का लम्बा होना खतरनाक है क्योंकि यह ऐच्छिक बचत पर आधारित न होकर साख के विस्तार पर आधारित होती है, किन्तु इस सीमा का पता लगाना कठिन है कि कहाँ ऐच्छिक बचत समाप्त होकर साख सृजन प्रारम्भ हो जाता है।

(v) यह सिद्धांत मंदी के अंत में जो दशायें विद्यमान होती हैं, उनके संदर्भ में सम्पन्नता की अवधि को स्पष्ट नहीं करता है।

(vi) पूँजीगत उद्योगों एवं उपभोग उद्योगों के बीच साधनों में इतनी गतिशीलता नहीं पाई जाती, जितनी कि प्रो. हेयक ने मानी है।

बचत व विनियोग सिद्धांत (Saving and Investment Theory)

कीन्स ने व्यापार चक्रों की अलग से कोई व्याख्या नहीं की है, परन्तु उन्होंने आय, उत्पादन एवं रोजगार स्तर की व्याख्या की है और यह स्पपष्ट किया है कि किसी देश में आय, उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि किन कारणों से होती है। व्यापार चक्रों में भी वास्तव में एक प्रकार से आय, उत्पादन एवं रोजगार में उतार - चढ़ाव ही होते हैं।

प्रो. कीन्स के अनुसार रोजगार के तीन निर्धारक तत्त्वक होते है -

1. उपभोग प्रवृत्ति
2. तरलता पसन्दगी
3. पूँजी की सीमान्त कुशलता

उपरोक्त में से प्रथम दो तत्त्व अल्पकाल में प्राय: स्थिर रहते हैं जबकि पूँजी की सीमान्त कुशलता में होने वाले उतार - चढ़ावों के कारण निवेशों में कमी - वृद्धि होती है और इससे आर्थिक अस्थिरता का जन्म होता है।

सिद्धांत की आलोचनाएँ (Criticisms)

(i) कीन्स ने आर्थिक संकटों का कारण पूँजी की सीमान्त कुशलता को माना है, लेकिन पूँजी की सीमान्त कुशलता अस्पष्ट है और इसके कई अर्थ हो सकते हैं।

(ii) पूँजी की सीमान्त कुशलता किन तत्त्वों पर निर्भर करती है, इसकी व्याख्या कीन्स ठीक प्रकार से नहीं कर पाए। उन्होंने इन्हें विनियोगों की मनोवृति पर आधारित बताया है।

(iii) कीन्स इस बात की व्याख्या नहीं कर पाये है कि व्यापार चक्र बार - बार एक निश्चित समय पर ही क्यों आते है और उनका एक निश्चित मार्ग क्यों बना रहता है।

(iv) कीन्स ने सस्ती मुद्रा नीति अथवा नीची ब्याज दरों को आर्थिक संकट का उपचार माना है परन्तु आलोचकों का मत है कि सस्ती मुद्रा नीति के कारण आवश्यकता से अधिक साख का प्रसार होता है और सट्टेबाजी की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है|

(v) कीन्स ने मंदी के प्रभावों को दूर करने लिए सरकार द्वारा नियंत्रित विनियोग नीति का समर्थन किया है। किन्तु आलोचकों का कहना है कि ऐसा करने से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था सरकारी हाथों में चली जाती है।

हिक्स का व्यापार-चक्र सिद्धांत (Hick's Theory of Business Cycle) :

हिक्स द्वारा प्रतिपादित व्यपार चक्र सिद्धांत की व्याख्या वर्ष 1950 में उनकी, "A Contribution to the Theory of Trade Cycles", शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक में की गई थी। हिक्स ने गुणक एवं त्वरक के परस्पर क्रिया के परिणाम को व्यापार-चक्र की घटना माना है। उनके अनुसार, "जिस प्रकार मांग का सिद्धांत तथा पूर्ति का सिद्धांत, मूल्य सिद्धांत की दो भुजाएं हैं, ठीक उसी प्रकार गुणक सिद्धांत तथा त्वरक सिद्धांत उच्चावचनों के सिद्धांत की दो भुजाएं हैं।

हिक्स ने अपने व्यापार-चक्र सिद्धांत के प्रतिपादन में निम्नलिखित सिद्धांतो का उपयोग किया है :

(i) कीन्स के बचत-विनियोग सम्बन्ध का सिद्धांत

(ii) क्लार्क का त्वरक सिद्धांत

(iii) सेम्युल्सन की गुणक-त्वरक की परस्पर क्रिया

(iv) हैरोड-डोमर का विकास मॉडल

अत: हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धांत को समझने के लिए कुछ महत्वपूर्ण तत्वों को समझना आवश्यक है :

(i) स्वायत निवेश (Autonomous Investment)

(ii) प्रेरित निवेश (Induced Investment)

(iii) वृद्धि की इच्छित दर (Warranted Rate of Growth)

(iv) उपयोग फलन (Consumption Function)

(v) गुणक (Multiplier)

(vi) त्वरक (Accelerator)

(i) स्वायत निवेश (Autonomous Investment) : यह ऐसा निवेश है जिस पर उत्पादन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हिक्स के अनुसार यह समान रूप से वृद्धि करता रहता है तथा दीर्घकाल तक इससे लाभ उठाया जाता है। यह आविष्कारों तथा नवीन पद्धतियों के कारण ही आगे बढ़ता है। जब किसी नवीन उत्पादन विधि में निवेश किया जाता है तो स्वायत निवेश में बड़ी तेजी आती है परन्तु अर्थव्यवस्था में तेजी की अवस्था समाप्त होने पर 'स्वायत निवेश' पुन: अपने पहले वाले पथ पर आ जाता है।

(ii) प्रेरित निवेश (Induced Investment) : उत्पादन में उच्चावचन के फलस्वरूप निवेश में जो परिवर्तन होता है, उसे प्रेरित निवेश कहा जाता है। प्रेरित निवेश यदि एक बार तीव्र गति से बढ़े तो फिर उसकी गति बढ़ती जाती है। यह स्वायत निवेश की भांति पुन: अपने पुराने पथ पर नहीं लौटता। यह लगातार बढ़ते हुए

साम्यावस्था तक पहुँच जाता है। परन्तु यह अवस्था भी अधिक समय तक नही रह सकती। उसकी गति नीचे की ओर हो जाती है। हिक्स ने इसका कारण मौद्रिक बताया है।

(iii) **वृद्धि की इच्छित दर (Warranted Rate of Growth) :** हिक्स के व्यापार चक्र के सिद्धांत में विकास की इच्छित दर या उपयुक्त दर का विशेष महत्त्व है। यह वह विकास दर है जो स्वयं को बनाए रखती है तथा निवेश व बचत के मध्य संतुलन के अनुकूल होती है। दूसरे शब्दों में निवेश तथा बचत में संतुलन बनाए रखने के लिए अर्थव्यवस्था का इस दर पर विकास होना अनिवार्य होता है।

(iv) **उपयोग फलन (Consumption Function) :** उपभोग का आय के साथ एक फलनात्मक सम्बन्ध होता है जिसे उपभोग फलन कहा जाता है। आय के बढ़ने पर उपभोग प्रवृति बढ़ती है तथा आय के घटने पर यह घटती है। आय के प्रत्येक स्तर पर कुल उपभोग में कुल आय का भाग देने से उपभोग की औसतप्रवृति (APC) प्राप्त होती है। जब उपभोग की वृद्धि (Δc) में आय में वृद्धि (Δy) का भाग दिया जाता है तो उपभोग की सीमांत प्रवृति (MPC) प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में उपभोग की सीमांत प्रवृति उपभोग की उस वृद्धि को दर्शाती है जो आय में एक इकाई की वृद्धि से प्राप्त होती है।

(v) **गुणक (Multiplier) :** गुणक विनियोग में परिवर्तन के कारण आय में होने वाले परिवर्तन का अनुपात है। निवेश को बढ़ाया जाता है तो आय में गुणक के अनुपात में वृद्धि होती है और यदि निवेश घटाया जाता है तो आय के गुणक के अनुपात में कमी होती है। इस प्रकार गुणक दोनों तरफ अपना पूर्ण प्रभाव दिखलाता है। गुणक के आकार तथा सीमांत उपभोग प्रवृति (MPC) में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

$$K = \frac{1}{1-MPC} = \quad K = \frac{1}{MPS}$$

K= गुणक (Multiplier)

MPC = उपभोग की सीमांत प्रवृति (Marginal Propensity to Consume)

MPS = बचत की सीमांत प्रवृति (Marginal Propensity to Save)

गुणक सदैव MPS का उल्टा होता है। यदि MPS = $\frac{1}{3}$ है तो गुणक 3 होगा। यदि MPS = $\frac{1}{4}$ है तो गुणक 4 होगा।

(vi) **त्वरक (Accelerator) :** उपभोग में होने वाले परिवर्तन विनियोग की मात्रा को कैसे प्रभावित करते हैं। इस बात का स्पष्टीकरण त्वरक करता है। उपभोग वस्तु उद्योगों (Consumption Goods Industries) में परिवर्तन के कारण पूंजीगत वस्तु उद्योगों (Capital Goods Industries) में होने वाले परिवर्तनों का माप त्वरक द्वारा किया जाता है।

उपरोक्त तत्वों को समझने के बाद हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धांत की व्याख्या आसानी से की जा सकती है। हिक्स के अनुसार उपभोग के समान प्रेरित निवेश में भी परिवर्तन तुरंत नहीं होते बल्कि उत्पादन में परिवर्तन होने के कुछ समय पश्चात् होते हैं। इसी प्रकार एक समयावधि में हुए उत्पादन में परिवर्तन के कारण प्रेरित निवेश में भी परिवर्तन उसी समयावधि में नहीं होते बल्कि उसके बाद वाली अवधि में होते हैं।

मान्यताएं (Assumptions) :

वैसे तो हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धांत की अनेक मान्यताएं हैं लेकिन यहाँ कुछ खास मान्यताओं को दिया गया है जिन पर यह सिद्धांत आधारित है :

1. व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में गुणक एवं त्वरक के आंकिक मूल्य स्थिर रहते हैं।
2. उपभोग तथा निवेश का आय से एक स्थिर सम्बन्ध होता है अर्थात सीमांत उपयोग प्रवृति तथा सीमांत निवेश प्रवृति स्थिर रहती है।
3. उत्पादन तथा प्रेरित निवेश में परिवर्तनों के मध्य एक स्थिर अनुपाती सम्बन्ध रहता है।

हिक्स के सिद्धांत की संक्षिप्त व्याख्या :

जब भी किसी अर्थव्यवस्था में कोई नया निवेश होता है तो गुणक की क्रियाशीलता के कारण मूल निवेश की तुलना में आय में कई गुणा वृद्धि हो जाएगी। फलत:उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी। इस मांगवृद्धि के कारण त्वरक की क्रियाशीलता के कारण निवेश भी कई गुणा बढ़ जाएगा। इस प्रेरित निवेश में वृद्धि होने के कारण उपभोक्ता की आय में वृद्धि और फिर आय में वृद्धि के कारण उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी। त्वरक की क्रियाशीलता के कारण प्रेरित निवेश में भी और ज्यादा विस्तार होगा। इस प्रकार गुणक तथा त्वरक की परस्पर क्रिया के कारण अर्थ व्यवस्था में चक्रीय तेजी की शुरुआत हो जाएगी।

ऐसी चक्रीय तेजी की भी एक सीमा होती है। यह अनिश्चित काल तक बनी नहीं रह सकती। तेजी काल में लोगो की आय में वृद्धि होने से उनकी सीमांत उपभोग क्षमता घटने लगती है तथा व्यावसायिक क्रियाओं के विस्तार पर रोक लग जाती है। परिणामस्वरूप अब त्वरक विपरीत दिशा में सक्रिय होने लगता है। इससे उपभोग व्यय में कमी आने लगती है और विनियोग उससे ज्यादा अनुपात में घटने लगता है। इस स्थिति में गुणक भी विपरीत दिशा में कार्य करने लगता है और आय में कमी, निवेश में आई कमी से ज्यादा अनुपात में, दर्ज की जाने लगती है। अंतत: त्वरक और गुणक की विपरीत दिशा में सक्रियता के कारण अप स्फीति का दौर प्रारम्भ हो जाता है जो धीरे-धीरे समूची अर्थव्यवस्था को मंदी की अवस्था में पहुँचा देता है।

यह मंदी की स्थिति भी सदैव नहीं बनी रहती क्योंकि मंदीकाल में लोगों की आय तो घट जाती है लेकिन उसी अनुपात में उनकी उपभोग प्रवृति नहीं घटती। गुणक व त्वरक की परस्पर सक्रियता के कारण मंदी की दशाओं पर नियंत्रण करने में सफलता मिलती है और अर्थव्यवस्था में चक्रीय तेजी का दौर प्रारम्भ हो जाता है।

इस प्रकार हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धांत के अनुसार स्पष्ट होता है कि अर्थव्यवस्था में तेजी-मंदी अर्थात आर्थिक उच्चावचनों का मुख्य कारण गुणक एवं त्वरक की परस्पर क्रियाशीलता होती है।

सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticisms of the Theory) :

अभिनव अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि हिक्स का व्यापार चक्र सिद्धांत अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। इसकी प्रमुख आलोचनाएं निम्न प्रकार से हैं :-

1. व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में गुणक व त्वरक के आंकिक मूल्य स्थिर नहीं रहते।
2. आय में सामयिक परिवर्तनों के सम्बन्ध में सीमांत उपभोग प्रवृति स्थिर नहीं रहती।
3. अस्थायी उपभोग तथा अस्थायी आय के मध्य कोई स्थिर तथा अनुमानित सम्बन्ध नहीं होता।
4. यह आवश्यक नहीं है कि पूंजी-उत्पादन अनुपात सदा स्थिर रहता है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादन क्षेत्र के मध्य इस अनुपात में काफी भिन्नता हो सकती है।

   उपरोक्त विभिन्न व्यापार चक्र के सिद्धांतो की व्याख्या करने से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी एक सिद्धांत व्यापार चक्र की उलझन भरी आर्थिक क्रियाओं की दोष रहित व्याख्या करने में समर्थ नहीं हैं।

22.6 व्यापार चक्रों के प्रभाव (Effects of Business Cycles)

व्यापार चक्रों के कारण आर्थिक क्रियाओं में जो अत्यधिक उच्चावचन होते हैं, उनके व्यक्तिगत, व्यावसायिक फर्मों पर गहरे प्रभाव पड़ते हैं। ये प्रभाव अच्छे या बुरे दोनों की प्रकार के हो सकते हैं।

पुनरूत्थान व तेजी की अवस्था में प्रभाव : पुनरूत्थान की अवस्था व्यावसायिक फर्मों के विकास में सहायक होती है क्योंकि तेजी के काल में फर्म की वस्तुओं की माँग बढ़ने से मूल्यों में लगातार वृद्धि होती है। इससे फर्म के लाभ बढ़ जाते हैं। जिस गति से वस्तु की कीमत बढ़ती है उस गति से वस्तु के कच्चे माल की कीमत, मजदूरी तथा अन्य व्यय नहीं बढ़ते।

मंदी तथा अवरोध की अवस्था में प्रभाव : मंदी तथा प्रतिसार की अवस्थाएँ फर्म के लिए अधिक घातक होती हैं। बाजार मे फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग घटती है, परिणामस्वरूप मूल्य भी घटने लगते हैं। फर्मों के पास बिना बिके हुये माल का स्टॉक बढ़ जाता है। इससे फर्मो का भविष्य धुंधला नजर आने लगता है। फर्मों को अपनी वस्तुएँ हानि पर बेचने के लिए विवश होना पड़ता है। ऐसी स्थिति में बैंकों द्वारा अपने ऋणों को वापस लौटाने की माँग भी बढ़ने लगती है। परिणामस्वरूप व्यवसायियों में घबराट उत्पन्न हो जाती है और अनेक फर्में दिवालिया हो जाती हैं। इस प्रकार व्यावसायिक फर्मो तथा विशेषकर छोटे आकार की फर्मों पर अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि ऐसी फर्में व्यापार चक्रों के प्रभाव को सहन नहीं कर सकती।

स्व-मूल्यांकन – द्वितीय

मुंबई महानगर देश की आर्थिक राजधानी कहलाती है, जहां लाखों की तादाद में अर्द्धकुशल व अकुशल श्रमिक दूसरे राज्यों से रोजगार की तलाश में आते हैं। कोविड - 19 महामारी के समय सरकार द्वारा घोषित लॉक डाउन के कारण इन श्रमिकों की बड़ी संख्या अपने घरों व गांवों की तरफ निकल पडी जहां उनके लिए रोजगार की कोई व्यवस्था नहीं थी। आर्थिक क्रियाएँ ठप्प होने से महानगरों में भी रोजगार के अवसर समाप्त प्राय: हो गये। बेरोजगारी की इस अवस्था का मुंबई महानगर व ग्रामीण क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रभाव को समझाने की चेष्टा कीजिए।

22.7 व्यापार चक्रों को नियंत्रित करने के उपाय (Measures to Control Business Cycles)

व्यापार चक्रों से देश की आर्थिक क्रियाओं में अत्यधिक उतार-चढाव होते रहते हैं। इन उतार-चढ़ावों को रोकने के लिये उपाय करना आवश्यक है। व्यापार चक्रों को नियंत्रित करने के लिये जो उपाय किये जाने चाहिए, उन्हें मुख्य रूप से 2 भागों में बांटा जा सकता है, जो निम्न प्रारूप द्वारा स्पष्ट है :

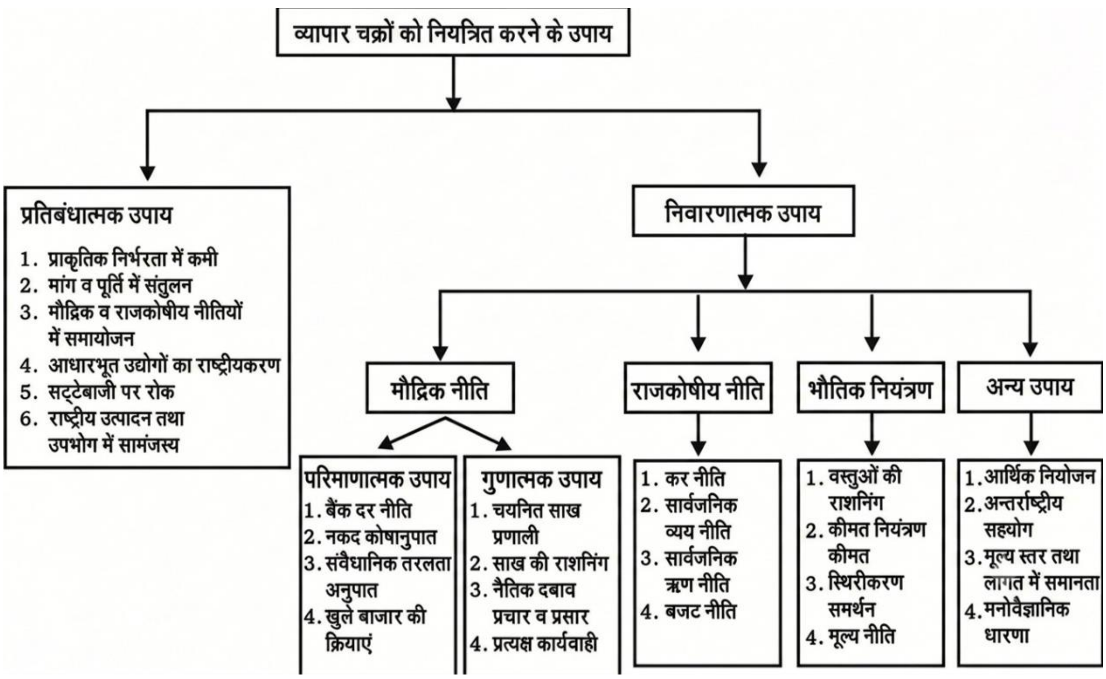

(अ) प्रतिबन्धात्मक उपाय (Restrictive Measures) : इनमें उन उपायों को शामिल किया जाता है, जो व्यापार चक्रों के आगमन पर ही रोक लगाते हैं। इनमें निम्नलिखित उपायों को शामिल किया जाता है :

1. **प्राकृतिक निर्भरता में कमी :** कृषि प्रधान देशों में जलवायु में परिवर्तन तथा प्राकृतिक कठिनाइयों के कारण आर्थिक उच्चावचन अधिक आते हैं। सिंचाई के साधनों का विकास तथा अन्य उपायों द्वारा अर्थव्यवस्था की प्रकृति पर निर्भरता कम की जा सकती है। जब कृत्रिम साधनों से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी देश अच्छा उत्पादन कर सकेगा, तो व्यापार चक्रों का प्रभाव कम होगा।
2. **माँग व पूर्ति में संतुलन :** देश में माँग व पूर्ति में संतुलन स्थापित करने के लिए सरकार को इस प्रकार से समायोजन करना चाहिए कि जिन वस्तुओं का अभाव हो, उनका उत्पादन बढ़ सके और जिन वस्तुओं का आधिक्य हो, उनकी पूर्ति को कम किया जा सके। इसके लिए देश में आवश्यक वस्तुओं के बड़ी मात्रा में सुरक्षित भण्डार बनाने की जरूरत होती है। सुरक्षित भण्डारों की व्यवस्था द्वारा आर्थिक उच्चावचनों को कम किया जा सकता है।
3. **मौद्रिक व राजकोषीय नीतियों में समायोजन :** सरकार को देश की मौद्रिक व राजकोषीय नीतियों में इस प्रकार समायोजन करना चाहिये कि जिससे देश में व्यापार चक्रों का आगमन रोका जा सके। सरकार को ऐसी नीतियां अपनानी चाहिये कि जिनसे अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करके साम्य की स्थिति में बना रहा जा सके। इन दोनों नीतियों के उपयुक्त सामंजस्य से व्यापार चक्रों को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।
4. **आधारभूत उद्योगों का राष्ट्रीकरण :** उत्पादन तथा उपभोग में अन्तर को कम करने के लिये सरकार को कुछ आधारभूत उद्योगों का राष्ट्रीकरण कर देना चाहिये इससे उत्पादन तथा माँग में समायोजन करके व्यापार चक्रों को रोका जा सकता है।
5. **सट्टेबाजी पर रोक :** देश में सट्टेबाजी पर रोक लगायी जानी चाहिये क्योंकि सट्टेबाजी की क्रियाएँ आर्थिक उच्चावचन लाती हैं। सट्टेबाजी के कारण आर्थिक जगत में अनिश्चितता बढ़ती है तथा तेजी मंदी का अधिक प्रभाव पड़ता है।
6. **राष्ट्रीय उत्पादन तथा उपभोग में सामंजस्य :** जब अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं आय में वृद्धि के बावजूद उपभोग की क्षमता नहीं बढ़ती अथवा उपभोग की क्षमता उत्पादन के मुकाबले अधिक हो जाये, तो दोनों ही परिस्थितियों में व्यापार चक्रों का जन्म होता है। अत :उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर को कम करने और उनमें संतुलन बनाये रखने के लिये आर्थिक नीतियों का सहारा लिया जा सकता है।

(ब) निवारणात्मक उपाय (Corrective Measures) : प्रतिबन्धात्मक उपायों की क्रियाशीलता के बावजूद जब व्यापार चक्र अर्थव्यवस्था को संकट में धकेल देते है, तो व्यापार चक्रों के निवारण के लिये चार प्रकार के उपायों से मोर्चाबंदी की जाती है। निवारणात्मक उपाय वे होते हैं जो एक देश में व्यापार चक्रों के आगमन के बाद बुरे प्रभावों को कम करने और उन्हें दूर करने के लिये अपनाये जाते हैं। निवारणात्मक उपायों में निम्नलिखित उपायों को शामिल किया जाता है :

(I) मौद्रिक नीति (Monetary Policy) : व्यापार चक्रों को नियंत्रित करने के लिये सरकार द्वारा मौद्रिक नीति का उपयोग किया जाता है। मौद्रिक नीति के अंतर्गत दो तरह के उपाय काम में लाये जाते है : -

परिमाणात्मक उपाय (Quantitative Measures) : व्यापार चक्रों को नियंत्रित करने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निम्नलिखित परिमाणात्मक उपाय काम में लाये जाते है :-

1. **बैंक दर नीति :** बैंक दर वह होती है जिस दर पर देश का केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को ऋण प्रदान करता है तथा उनके बिलों की पुन: कटौती करता है। जब देश में साख की मात्रा में वृद्धि करनी होती है, तो रिजर्व बैंक द्वारा बैक दर घटा दी जाती है। इसके विपरीत, जब साख की मात्रा में कमी करनी होती है, तो बैंक दर बढ़ा दी जाती हैं। भारत में अब बैंक दर नीति के स्थान पर रेपो दर का प्रयोग किया जाता है|

2. **नकद कोषानुपात:** रिजर्व बैंक ने यह व्यवस्था की हुई है कि अनुसूचित बैंकों को अपनी कुल जमाओं का कम से कम 3 प्रतिशत भाग रिजर्व बैंक के पास जमा करना अनिवार्य है। इस दर को अधिकतम 15 प्रतिशत तक बढाया जा सकता है। आवश्यकतानुसार इस दर में अनेक बार परिवर्तन किये गये हैं।

3. **संवैधानिक तरलता अनुपात :** भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के अनुसार अनुसूचित बैंकों के लिये अपनी कुल जमाओं का कम से कम 25 प्रतिशत भाग तरल रूप में अपने पास रखना अनिवार्य है, जिसे बढ़ाकर अधिकतम 40 प्रतिशत किया जा सकता है।

4. **खुले बाजार की क्रियाएँ :** इससे तात्पर्य यह है कि देश का केन्द्रीय बैंक सरकारी प्रतिभूतियों को खुले बाजार में खरीद व बेच सकता है। जब बाजार में साख की मात्रा पर अंकुश लगाना होता है, तो रिजर्व बैंक खुले बाजार में प्रतिभूतियों की बिक्री करता है। इसके विपरीत, जब बाजार में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि करनी होती है, तो रिजर्व बैंक प्रतिभूतियों का क्रय करता है।

गुणात्मक उपाय (Qualitative Measures) : गुणात्मक उपायों में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निम्नलिखित उपाय किये जाते है :

1. **चयनात्मक साख प्रणाली :** रिजर्व बैंक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सभी बैंकिग कम्पनियों को किसी विशेष लेन - देन की मनाही कर सकता है अथवा इस बारे में सावधानी बरतने के निर्देश दे सकता है। चयनात्मक साख नियंत्रण का उद्देश्य आवश्यक खाद्यान्न तथा कच्चे माल का सट्टा और मुनाफाखोरी पर नियंत्रण लगाना है।

2. **साख की राशनिंग :** साख नियंत्रण की इस विधि के अंतर्गत व्यापारिक बैकों द्वारा दी जाने वाली साख की राशनिंग कर दी जाती है। रिजर्व बैंक यह निश्चित कर देता है कि प्रत्येक बैंक किस उद्देश्य के लिये कितनी मात्रा में ऋण देगा।

3. **नैतिक दबाव :** इस विधि के द्वारा रिजर्व बैंक व्यापारिक बैंकों पर अपने नैतिक प्रभाव का उपयोग करता है। मनोवैज्ञानिक रूप से बैंकों पर दबाव डालकर रिजर्व बैंक अपनी साख नियंत्रण नीति को सफल बनाता है।

4. **प्रचार व प्रसार :** अपने विभिन्न प्रकाशनों, पत्रों, संवाददाता सम्मेलनों आदि के माध्यम से रिजर्व बैंक अपनी साख नीति का पालन करवाता है।

5. **प्रत्यक्ष कार्यवाही :** यदि व्यापारिक बैंक रिजर्व बैंक के निर्देशों व सलाह को नहीं मानते हैं, तो उनके विरूद्ध प्रत्यक्ष कार्यवाही करने का अधिकार रिजर्व बैंक के पास है। वह दोषी बैंक की ऋण देने की क्रियाओं पर रोक लगा सकता है। यहां तक कि बैंक का लाइसेंस रद्द करके उसे बंद करने के आदेश भी दिये जा सकते हैं।

(II) राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) : सरकार देश के उत्पादन, रोजगार तथा अन्य तत्त्वों को राजकोषीय नीति (प्रशुल्क नीति) के प्रयोग द्वारा ठीक कर सकती है। व्यापार चक्रों को नियंत्रित करने के लिये राजकोषीय उपायों के अतंर्गत सरकार चार तरह की नीति अपनाती है, जो निम्न प्रकार है-

1. **सार्वजनिक आय नीति (कर नीति) :** करों की मात्रा में समायोजन करके सरकार तेजी अथवा मंदी पर नियंत्रण लगा सकती है। मुद्रा स्फीति के समय सरकार द्वारा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर बढ़ा दिये जाते हैं, इससे लोगों के हाथों की क्रय शक्ति सरकार खींच लेती है। परिणामस्वरूप वस्तुओं व सेवाओं की माँग घटती है और कीमतों का बढ़ना रूक जाता है। इसी प्रकार करों में छूट देकर मुद्रा संकुचन पर नियंत्रण लगाया जा सकता है।

2. **सार्वजनिक व्यय नीति :** सरकार अपनी व्यय नीति से बाजार माँग में परिवर्तन कर सकती है। मंदीकाल में सरकार घाटे का बजट बनाकर अधिकाधिक व्यय करके अर्थव्यवस्था में नई जान फूंक सकती है। इसके विपरीत, तेजी के समय सरकार द्वारा सार्वजनिक व्यय घटा दिया जाता है। परिणामस्वरूप लोगों की आय घट जाने से माँग, विनियोग तथा उत्पातदन भी घटने लगते हैं।

3. **सार्वजनिक ऋण नीति :** मुद्रा स्फीति के समय अधिकाधिक सार्वजनिक ऋणों के निर्गमन से लोगों से अतिरिक्त क्रय शक्ति प्राप्त की जा सकती है। मंदी के समय सार्वजनिक ऋणों को वापिस चुकाया जा सकता है। इससे जनता की क्रय शक्ति में वृद्धि करके मंदी को दूर किया जा सकता है।

4. **बजट नीति :** देश में तेजी अथवा मंदी की दशाओं को ध्यान में रखते हुए सरकार अपनी बजट नीति में परिवर्तन करके व्यापार चक्रों पर नियंत्रण लगा सकती है।

(III) भौतिक नियंत्रण : इसके अन्तर्गत वे उपाय आते है जिनसे माँग एवं पूर्ति में संतुलन स्थापित किया जा सकता है। भौतिक नियंत्रण के अंतर्गत निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं :

1. **वस्तुओं की राशनिंग :** अभाव की स्थिति में सरकार अनिवार्य वस्तुओं की राशनिंग व्यवस्था लागू कर सकती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को कम कीमत पर नियंत्रित मात्रा में वस्तुएँ उपलब्ध करायी जाती हैं।

2. **कीमत नियंत्रण :** निरन्तर बढते हुये मूल्यों पर अंकुश लगाने के लिए सरकार द्वारा कीमत नियंत्रण की नीति अपनाई जा सकती है। उदाहरणार्थ, केन्द्रीय सरकार पैट्रोल व डीजल की कीमतों पर नियंत्रण बनाये रखने के लिए इस नीति का अनुसरण करती है।

3. **कीमत स्थिरीकरण :** कीमतों में भारी उतार - चढ़ावों पर नियंत्रण लगाने के उद्देश्य से कुछ अनिवार्य वस्तुओं की कीमतों को स्थिर किया जा सकता है।

4. **समर्थन मूल्य नीति :** मंदीकाल में सरकार कीमतों को गिरने से रोकने के लिए समर्थन मूल्य नीति अपना सकती है। इसके अंतर्गत कीमतों को एक निश्चित स्तर से नीचे न गिरने देने के लिए उस वस्तु को सरकार स्वयं खरीद लेती है, जैसे केन्द्र सरकार ने गेहूं, बाजरा, गन्ना आदि के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित किया हुआ है।

(IV) अन्य उपाय : व्यापार चक्रों के निवारण के लिए कुछ अन्य उपाय भी सुझाए जा सकते हैं। इनमें आर्थिक नियोजन का सहारा लेना सबसे प्रमुख है। भारत में 1 अप्रैल 1951 से आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया अपनाई गई थी, जो वर्तमान में भी जारी है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आपसी सहयोग के द्वारा भी कीमतों की तेजी तथा मंदी पर नियंत्रण लगाया जा सकता है। लोगों की मनोवैज्ञानिक धारणा में परिवर्तन करके भी व्यापार चक्रों पर नियंत्रण लगाया जा सकता है। मंदी के समय लोगों के मन में भावी उज्ज्वल भविष्य की धारणा उत्पन्न करना जरूरी है, जबकि तेजी काल में अत्यधिक ऊंची आशाओं को नियंत्रित करना आवश्यक है। सरकार द्वारा तेजी व मंदी से निपटने के लिये अर्थव्यवस्था में ऐसे वातावरण का निर्माण किया जा सकता है कि आर्थिक क्रियाएँ आशा के अनुरूप संचालित की जा सके।

22.8 सारांश (Summary)

किसी अर्थव्यवस्था में एक निश्चित समयान्तराल पर आर्थिक क्रियाओं में होने वाले परिवर्तन को व्यापार चक्र कहते हैं। व्यापार चक्र के चढ़ाव के दौरान ऊंची राष्ट्रीय आय, अधिक उत्पादन, अधिक रोजगार तथा ऊंची कीमतें पाई जाती हैं। इसको समृद्धि काल कहा जाता है। लेकिन इसके विपरीत, व्यापार चक्र के उतार के दौरान कम राष्ट्रीय आय, कम उत्पादन, कम रोजगार तथा नीचा कीमत स्तर पाया जाता है। इसको मंदीकाल कहा जाता है। व्यापार चक्रों को विभिन्न विद्वानों ने अपने - अपने ढंग से परिभाषित किया है तथा उसके कारणों व प्रभावों की व्याख्या की है। व्यापार चक्रों पर नियंत्रण

लगाने के लिए केवल मौद्रिक नीति ही पर्याप्त नहीं हो सकती। मौद्रिक नीति को उपयुक्त राजकोषीय नीति के साथ ठीक से एकीकृत किया जाना आवश्यक है। सरकार को अपनी गतिविधियों को इस प्रकार से विनियमित करना चाहिये कि निजी व्यावसायिक गतिविधि में चक्रीय उतार-चढ़ाव पर नजर रखी जा सके। व्यापार चक्रों पर नियंत्रण हेतु प्रतिबन्धात्मक और निवारणात्मक दोनों प्रकार के उपाय किये जा सकते हैं।

22.9 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

व्यापार-चक्र से सम्बंधित इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप व्यापार-चक्र का अर्थ, इसकी विशेषताएं तथा अवस्थाओं के सम्बन्ध में भलीभांति समझ गए होंगे। आप को एक निश्चित अवधि के पश्चात् घटित होने वाली विभिन्न अवस्थाओं तथा व्यापार-चक्र के विभिन्न सिद्धांतो का भी अवश्य ही ज्ञान हो गया होगा। विद्यार्थियों से यह भी आशा की जाती है कि व्यापार-चक्र के एक अर्थव्यवस्था पर दृष्टिगोचर होने वाले प्रभावों से आप अवगत हो गये होंगे तथा व्यापार-चक्रों को नियंत्रित करने के विभिन्न उपायों के सम्बन्ध में आपकी समझ अवश्य ही विकसित हुई होगी।

22.10 शब्दावली (Glossary)

- **मौद्रिक नीति :** यह देश के केन्द्रीय बैंक की साख नीति होती है। इसके माध्यम से देश में मुद्रा एवं साख की मात्रा का नियमन एवं नियंत्रण किया जाता है तथा साख की मात्रा, लागत एवं दिशा को प्रभावित कर वांछित लक्ष्य प्राप्त किये जाते हैं।
- **राजकोषीय नीति :** यह सरकार की सार्वजनिक आय एवं व्यय नीति है। इस नीति का बजट मुख्य उपकरण होता हैं।
- **समर्थन मूल्य :** मंदीकाल में किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिले, इस हेतु कुछ चयनित जिंसों का न्यूनतम समर्थन मूल्य सरकार द्वारा घोषित किया जाता है। इस मूल्य से बाजार में कम मूल्य मिलने पर सरकार स्वयं सम्बन्धित उपज को खरीदती है।
- **राशनिंग :** अभाव की स्थिति में अनिवार्य वस्तुएँ राशन कार्ड के माध्यम से आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग को उचित दाम पर एक निश्चित मात्रा में सरकार द्वारा उपलब्ध करवाई जाती है।
- **व्यापार चक्र :** आर्थिक क्रियाओं में चक्रीय उच्चावचन जिसमें क्रम बद्ध रूप से तेजी और मंदी की अवस्थाएँ आती रहती हैं, व्यापार चक्र कहलाते हैं।
- **अवसाद :** ऐसी अवस्था जिसमें उत्पादन, उपभोग, विनियोग, रोजगार, व्यापार आदि की मात्रा में निरन्तर कमी आती रहती हैं।
- **समृद्धि :** ऐसी अवस्था जिसमें विनियोग उत्पादन, मूल्य, विनियोग, रोजगार आदि तेजी से बढ़ने लगते हैं।
- **प्रतिसार :** ऐसी अवस्था जिसमें नये विनियोग बंद होने लगते है तथा बैंक ऋण देने के सम्बन्ध में सतर्क हो जाते हैं। व्यावसायिक गतिविधियों में संदेह का वातावरण उत्पन्न होने लगता है तथा व्यापारिक एवं आर्थिक गतिविधियों में गिरावट का दौर शुरू होने लगता हैं।

22.11 स्व - परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति घुत्तरात्मक प्रश्न (Very - Short Answer Questions)

1. व्यापार चक्र से आपका क्या आशय हैं?
2. व्यापार चक्रों की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ कौन- कौनसी हैं?

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. व्यापार चक्र को परिभाषति कीजिए। व्यापार चक्रों की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. व्यापार चक्रों से आप क्या समझते है? व्यापार चक्रों की विभिन्न अवस्थाओं की विवेचना कीजिए।
3. व्यापार चक्रों को नियंत्रित करने के विभिन्न उपायों की विवेचना कीजिये।
4. हाट्रे के व्यापार चक्र सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. कीन्स के बचत एवं विनियोग सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए और इसकी कमियों पर प्रकाश डालिए।
6. हिक्स के व्यापार चक्र सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

22.12 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- Prasad, Sinha : 'Managerial Economics', Pragati Praksah, merrut (2009)
- Mathur, N.D. : 'Managerial Economics', Shivam Book House, Jaipur (2010)
- Gupta, S.B. : 'Monetary Economics', S. chand & Co., New Delhi (1994)
- Vaish, M.C. : 'Monetary Economics', S. chand & Co., New Delhi (1994)
- Nathuramka, L.N. : 'Macro Economics', R.B.D. Jaipur

22.13 अन्य पठन सामग्री (Other reading Material)

- Jhingan, M.L. : 'Macro Economics'
- वैश्य एम. सी. : 'मौद्रिक अर्थशास्त्र'

22.14 वेब संसाधन/लिंक(Web Resourcess/Links)

- http://www.investopedia.com>
- http://www.businessinsider.com>
- http://en.m.wikipedia.org>
- http://www.economicsdiscussion.net

इकाई - 23

आय और रोजगार का प्रतिष्ठित दृष्टिकोण
(Classical Approach to Income and Employment)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 आय और रोजगार के प्रतिष्ठित दृष्टिकोण की अवधारणा

23.3 'से' का बाजार नियम

23.4 पीगू का मजदूरी कटौती सिद्धान्त

23.5 उत्पादन फलन और रोजगार

23.6 श्रम बाजार संतुलन

23.7 वास्तविक मजदूरी दर और रोजगार में सम्बन्ध

23.8 वस्तु बाजार संतुलन/बचत एवं विनियोग में संतुलन

23.9 आय एवं रोजगार के प्रतिष्ठित दृष्टिकोण की आलोचनाएँ

23.10 सारांश

23.11 अधिगम परिणाम

23.12 शब्दावली

23.13 स्व-परख प्रश्न

23.14 संदर्भ एवं ग्रन्थ सूची

23.15 अन्य पठन सामग्री

23.16 वेब संसाधन / लिंक

23.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात अप :

- आय एवं रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धांत को समझ सकेंगे;
- पीगू के मजदूरी कटौती सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे;
- श्रम बाजार संतुलन, वस्तु बाजार संतुलन तथा बचत एवं विनियोग में संतुलन से अवगत हो सकेंगे; तथा

- आय एवं रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की कमियों को समझ सकेंगे|

23.1 प्रस्तावना (Introduction)

आय और रोजगार का प्रतिष्ठित दृष्टिकोण, अर्थशास्त्री से (Say) एवं पीगू (Pigou) के नियमों पर आधारित है। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, से के नियम को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया था। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी भी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति स्वतः ही स्थापित हो जाती है। आय और रोजगार के बारे में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का केंद्रीय तर्क यह था कि "एक प्रतिस्पर्धी बाजार अर्थव्यवस्था, पूर्ण रोजगार पर चलेगी यदि मजदूरी और कीमतें लचीली हों।" यानी श्रम की माँग और आपूर्ति के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए लगातार आर्थिक दबाव पैदा होगा। प्रतिष्ठित प्रतिरूप ने माना कि आय और रोजगार के संतुलन स्तर बड़े पैमाने पर श्रम बाजार द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। श्रम माँग वक्र वास्तविक वेतन (प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था में श्रम के सीमांत उत्पाद के मूल्य के बराबर) और श्रम के लिए नियोक्ता की माँग के बीच संबंध को दर्शाता है। 1930 के दशक के वैश्विक महामंदी के दौरान, कीन्स (Keynes) ने आर्थिक सिद्धांतों ने से (Say) के नियम का विरोध किया। कीन्स ने पीगू के दावे का खंडन किया और स्पष्ट किया की मौद्रिक मजदूरी में कमी से अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पैदा हो सकता है। इस इकाई में हम से के बाजार नियम, पीगू का मजदूरी कटौती सिद्धांत, वास्तविक मजदूरी एवं रोजगार के मध्य सम्बन्ध इत्यादि बातों का प्रतिष्ठित आय एवं रोजगार के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

23.2 आय और रोजगार के प्रतिष्ठित दृष्टिकोण की अवधारणा (Concept of Classical Approache to Income and Employment)

रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धांत अर्थशास्त्री **जे. बी. से (Say)** के बाज़ार नियम, रोजगार स्थिति, मजदूरी दर, ब्याज दर और कीमतों के लचीलेपन की मान्यताओं पर आधारित है। अर्थशास्त्री **'से'** (Say) का बाज़ार का नियम कहता है कि "आपूर्ति अपनी माँग खुद उत्पन्न करती है"। (Supply creates its own demand)। प्रतिष्ठित सिद्धांत के अनुसार पूर्ण रोजगार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की एक सामान्य विशेषता है। इसका मतलब है कि अगर यदि बेरोजगारी है, तो यह अस्थायी होगी। अर्थव्यवस्था बाजार की ताकतों की स्वतंत्र गतिविधि के माध्यम से पूर्ण रोजगार प्राप्त करती है।बेरोजगारी की स्थिति में, श्रम की माँग श्रम आपूर्ति से कम होती है। उत्पादक कम मजदूरी स्तर पर अधिक मजदूरों को रोजगार देंगे, अतः उससे अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार स्थिति बहाल हो जाएगी। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री अर्थव्यवस्था के पूर्ण रोजगार के अस्तित्व में विश्वास करते थे। उनके लिए पूर्ण रोजगार आदर्श था और इससे किसी भी भिन्नता को असामान्य माना जाता था। **पीगू** के अनुसार जब श्रम की माँग और आपूर्ति समान होती है, तो आर्थिक व्यवस्था श्रम बाजार में स्वतः पूर्ण रोजगार पैदा करने की प्रवृत्ति रखती है

प्रतिष्ठित दृष्टिकोण की मान्यताएँ (Assumptions of Classical Approach) : प्रतिष्ठित दृष्टिकोण निम्न मान्यताओं पर आधारित है :

- अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति के बिना पूर्ण रोजगार की स्थिति होती है।
- सरकार के हस्तक्षेप के बिना एक अहस्तक्षेप पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (laissez - faire) होती है।
- यह एक बंद अर्थव्यवस्था पर आधारित है, जो विदेशी व्यापार में संलग्न नहीं है।

- श्रम और उत्पाद बाजार पूरी तरह से प्रतिस्पर्धी हैं।
- श्रम की सभी इकाइयाँ एक समान है।
- अर्थव्यवस्था का कुल उत्पादन उपभोग और निवेश व्यय में विभाजित है।
- धन की मात्रा निर्दिष्ट की जाती है और धन केवल विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करता है।
- मजदूरी और मूल्य निर्धारण पूरी तरह से गैर-परक्राम्य हैं।
- सभी बाजार सहभागियों के पास सही जानकारी है।
- मौद्रिक एवं वास्तविक मजदूरी का अटूट संबंध हैं और यह आनुपातिक है।
- बचत स्वचालित रूप से निवेश की जाती है और ब्याज की दर दोनों के बीच समानता सुनिश्चित करती है।
- पूँजीगत स्टॉक और तकनीकी विशेषज्ञता प्रदान की जाती है।
- उत्पादन में घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है।
- यह दीर्घकाल पर आधारित है।

23.3 से का बाज़ार नियम (Say's Law of Market)

जे.बी. से (Say) का बाजार का नियम पारंपरिक रोजगार सिद्धांत की नींव है। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत के एक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री जे.बी.से ने इस विचार को स्पष्ट किया कि "आपूर्ति अपनी माँग खुद बनाती है।" नतीजतन, अर्थव्यवस्था में सामान्य अतिउत्पादन और बेरोजगारी (General over production and general unemployment) नहीं हो सकती है। यदि समग्र रूप से अर्थव्यवस्था अधिक उत्पादन कर रही है, तो कुछ श्रमिकों को अपनी स्थिति छोड़ने के लिए कहा जा सकता है। अल्पकाल में अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी एक समस्या बन जाती है। जब वस्तुओं की माँग और आपूर्ति संतुलन में होती है, तो अर्थव्यवस्था समय के साथ पूर्ण रोजगार की ओर अग्रसर होगी। जब कोई निर्माता वस्तुओं का निर्माण करता है और श्रमिकों को मजदूरी देता है, तो श्रमिक उन सामानों को बाजार से खरीद लेते हैं। इस प्रकार, उत्पादों की आपूर्ति (निर्माण) का कार्य उनके लिए एक बाजार के अस्तित्व को आवश्यक बनाता है। इस प्रकार आपूर्ति अपनी माँग स्वयं उत्पन्न करती है। **से** के अनुसार उत्पादन प्रक्रिया में वस्तुओं के मूल्य के बराबर आय उत्पन्न होती है जो उत्पादन के साधनों के स्वामियों द्वारा वस्तुओं के क्रय पर खर्च कर दी जाती है। इसलिए वस्तुओं का उत्पादन अपनी माँग स्वयं उत्पन्न कर लेता हैं।

से के बाजार नियम की मुख्य बातें (Important facts of say`s market law) : से के बाजार नियम की मुख्य बातें निम्नांकित हैं :

(i) मुक्त अर्थव्यवस्था **स्व-समायोजनीय** (Self adjusting) होती है अर्थात यह बिना किसी अधिकारिक सत्ता के बाजार की माँग और पूर्ति की स्वतंत्र शक्तियों द्वारा **स्व-चालित** (Auto driven) होती है। **एडम स्मिथ** के अनुसार, यह **अदृश्य हाथों** (Invisible Hands) द्वारा संचालित होती है।

(ii) मुक्त अर्थव्यवस्था में **सामान्य अति-उत्पादन** (General over-Production) नहीं हो सकता।**प्रो. मिल** के शब्दों में, "देश का वार्षिक उत्पादन चाहे जितना भी क्यों न हो, यह वार्षिक उत्पादन माँग से कभी भी

अधिक नहीं हो सकता है।" इसका कारण यह है कि उत्पादन बढ़ने के साथ उत्पादन के साधनों की आय भी बढ़ती है जिससे नयी माँग पैदा होने के कारण बढ़ा हुआ उत्पादन स्वत: ही खप (बिक) जाता हैं।

(iii) मुक्त अर्थव्यवस्था में **सामान्य बेरोजगारी** (General unemployment) उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि पीगू का मानना है कि मौद्रिक मजदूरी की दरों में कटौती कर श्रम की माँग में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती हैं।

(iv) मुक्त अर्थव्यवस्था में पर्याप्त लोचशीलता होती है, जिसके कारण इसमें स्थायी खराबी नहीं हो सकती। अर्थव्यवस्था में अस्थायी खराबी (असंतुलन) उत्पन्न होने पर कीमतों, मजदूरियों तथा ब्याज दरों में परिवर्तनों के कारण होने वाले स्वत: समायोजनों के फलस्वरूप यह शीघ्र ही समाप्त हो जाती हैं।

स्व-मूल्यांकन – प्रथम

'से' के बाजार नियम पर विचार करें और समझने की चेष्टा करें कि यह क्यों सही नहीं है?

23.4 पीगू का मजदूरी कटौती सिद्धान्त (Pigou's Theory of Wages Cut)

अर्थशास्त्र में, विशेष रूप से अपस्फीति के दौरान,पीगू प्रभाव वास्तविक धन संतुलन में वृद्धि से उत्पन्न उत्पादन और रोजगार पर प्रभाव के बारे में है। 1948 में **डॉन पेटिंकिन** ने आर्थर सेसिल पीगू के नाम पर इस शब्द का नाम रखा। पीगू प्रभाव को **"वास्तविक संतुलन प्रभाव"** के रूप में भी जाना जाता है। पीगू के दावे के अनुसार मौद्रिक मजदूरी में कमी से अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पैदा हो सकता है। रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धांत को अन्तिम रूप देने का श्रेय प्रो. पीगू को जाता है। उन्होंने से के नियम की श्रम बाजार के सन्दर्भ में व्याख्या की है। उनके अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता के कारण मुक्त अर्थव्यवस्था में मूल्य, मजदूरियों एवं ब्याज दरों में पूर्ण लोचशीलता के कारण पूर्ण रोजगार स्तर बना रहता है। **पीगू** के शब्दों में, " बेरोजगारी के दबाव में मजदूरी की दरें गिर जाती हैं और तब तक गिरती रहती हैं, जब तक तक कि काम करने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को काम न मिल जाए।" प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार यदि श्रमिक अपनी सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी नहीं माँगता है, तो बेरोजगारी का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। किन्तु प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री पूर्ण रोजगार वाली अर्थव्यवस्था में **घर्षण एवं ऐच्छिक बेरोजगारी** (Frictional and voluntary unemployment) की स्थिति को स्वीकार करते हैं।

अपस्फीति चरण में, एक ऐसी स्थिति होती है, जिसके दौरान निवेश कम हो जाता है और व्यक्ति अपस्फीति या संघर्ष की प्रत्याशा में नकदी जमा करते हैं। एक अर्थव्यवस्था को बहुत कम उत्पादन स्तर और बेरोजगारी की स्थिति से बाहर निकलने के लिए पीगू प्रभाव इस नुकसान को दूर करने का एक तरीका सुझाता है। परिकल्पना के अनुसार मूल्य स्तर एवं रोजगार में गिरावट और बढ़ती बेरोजगारी पर कीमतें गिरने का असर पड़ता है। जैसे ही कीमतें गिरती हैं, वास्तविक संतुलन में सुधार होता है, पीगू प्रभाव के माध्यम से अर्थव्यवस्था में खपत उत्तेजित होती है।अपस्फीति अवधि के दौरान, पीगू प्रभाव उपभोग, धन, रोजगार और उत्पादन के बीच की कड़ी को संदर्भित करता है। पीगू प्रभाव के अनुसार, जब कीमतें गिरती हैं, तो वास्तविक आय में वृद्धि (जिससे खपत बढ़ जाती है) के परिणामस्वरूप रोजगार और उत्पादन बढ़ता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री पीगू ने तर्क दिया कि गिरती मजदूरी और कीमतें अंततः पूर्ण रोजगार बहाल कर देंगी क्योंकि मूल्य स्तर में गिरावट से खपत में वृद्धि होती है। जिस विधि से खपत में वृद्धि होती है उसे अक्सर **'पीगू प्रभाव'** कहा जाता है।

पीगू प्रभाव निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

(i) यह कि व्यक्ति पैसे बचाते हैं, शेष राशि बनाए रखते हैं, और इसे अपनी आय के पूर्व निर्धारित अनुपात के अनुसार खर्च करते हैं।

(ii) कीमतों में कमी से धन संपत्ति के वास्तविक मूल्य में वृद्धि होती है, जिसका उपयोग अब अधिक वस्तुओं को खरीदने के लिए किया जा सकता है।

(iii) व्यक्तियों की अधिशेष तरल संपत्ति के परिणामस्वरूप वास्तविक शेष राशि और व्यय का अनुपात विकृत हो जाता है, और वे इस अतिरिक्त आपूर्ति में से कुछ उत्पादों और सेवाओं के रूप में उपभोग करते हैं।

अब हम समझते हैं कि पीगू प्रभाव वस्तु बाजार तक ही सीमित क्यों है? प्रो. ए.सी. पीगू ने **पारंपरिक बचत फलन में एक नया चर जोड़ा हैं : "नकद शेष का सही मूल्य।"**

इस प्रकार, पीगू के नव-प्रतिष्ठित बचत को $S = f(R, Y, M / P)$ के रूप में लिखा जाता है, जहां R ब्याज दर को दर्शाता है, Y आय का स्तर, M चलन में धन की मात्रा को दर्शाता है (सरकार द्वारा- जारी मुद्रा और उपभोक्ताओं के स्वामित्व वाली सरकारी प्रतिभूतियां), और P औसत मूल्य स्तर या जीवन निर्वाह सूचकांक की लागत को दर्शाता है, जिसमें M/P "नकद शेष के वास्तविक मूल्य" को दर्शाता है।

प्रो. पीगू का दावा है कि तरल संपत्ति के वास्तविक मूल्य और उपभोग करने की प्रवृत्ति के बीच एक स्पष्ट संबंध होता है। उनका तर्क है कि यदि मजदूरी और कीमतें गिरती हैं, तो "नकद शेष का वास्तविक मूल्य" और संचित बचत के अन्य रूपों में वृद्धि होगी। इसके परिणामस्वरूप उपभोग स्तर में वृद्धि होगी, इसलिए निवेश और रोजगार में वृद्धि होगी। जिस तरह लोग अपनी तरल संपत्ति के मूल्य में वृद्धि होने पर अधिक उपभोग करते हैं, वैसे ही वे जब मूल्य स्तर में गिरावट के कारण उनकी तरल संपत्ति का मूल्य बढ़ता है, तो वे अधिक उपभोग करते हैं । जैसे-जैसे कीमतें गिरती हैं, निश्चित मूल्य निर्धारण वाली परिसंपत्तियों का वास्तविक मूल्य बढ़ता है। इस प्रकार, प्रोफेसर पीगू का तर्क है कि मजदूरी और कीमतों में कमी के परिणामस्वरूप वास्तविक आय में वृद्धि हो सकती है, जिससे उपभोक्ताओं की अनुकूलता से खरीदारी करने की प्रवृत्ति प्रभावित होती है। यह तर्क इस आधार पर दिया गया है कि जब नकद संचय का वास्तविक मूल्य बढ़ता है, तो वास्तविक आय से बचाने की इच्छा कम हो जाती है। इस प्रकार पीगू प्रभाव आय के स्तर में सुधार द्वारा पूर्ण रोजगार की स्थिति को बहाल करता है।

23.5 उत्पादन फलन और रोजगार (Output Function and Employment)

प्रतिष्ठित सिद्धांत के अनुसार उत्पादन और रोजगार अर्थव्यवस्था में श्रम की माँग और श्रम की आपूर्ति द्वारा निर्धारित किया जाता है, जो नीचे दिए गए उत्पादन फलन के माध्यम से प्रदर्शित होता है :

$$Q = f(K, T, N)$$

यहां कुल उत्पादन (Q) पूँजीगत स्टॉक (K), तकनीकी ज्ञान (T), और श्रम बल (N) हैं| K और T को यदि स्थिर चर माना जाये तो, उत्पादन कार्य $Q = f(N)$, यह दर्शाता है कि उत्पादन श्रम बल का फलन है। क्योंकि उत्पादन श्रमिकों की संख्या का एक फलन है, अत:यह श्रम रोजगार बढ़ने के साथ बढ़ता है। हालांकि, यदि पर्याप्त संख्या में लोगों को नियोजित किया जाता है, तो श्रम की सीमान्त उत्पादकता कम होना शुरू हो जाती है।

रेखाचित्र - 23.1 में दिखाया गया है, जहां कुल उत्पादन OQ1 पूर्ण रोजगार स्तर N_F के अनुरूप है। जब उत्पादन OQ_1 के लिए पूर्ण रोजगार के स्तर से अधिक N_2 को काम पर रखा जाता है, तो उत्पादन Q_1Q_2 में वृद्धि रोजगार NF N_2 में वृद्धि से कम होती है।

रेखाचित्र संख्या –23.1

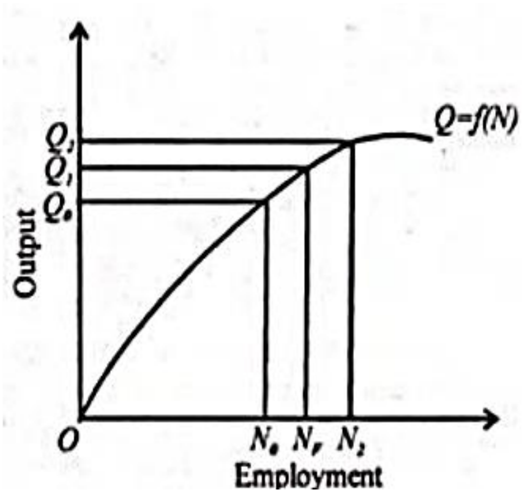

23.6 श्रम बाजार संतुलन (Labour Market Equilibrium)

श्रम बाजार में रोजगार की माँग श्रम की माँग और आपूर्ति से निर्धारित होती है। शास्त्रीय अर्थशास्त्रीयों के अनुसार, श्रम माँग वास्तविक मजदूरी दर (Real Wage Rate) का एक कार्य है:

DN= f (W/P)

यहां D_N श्रम माँग, W मजदूरी दर और P मूल्य स्तर को दर्शाता है। हम मजदूरी दर (W) को मूल्य स्तर (P) से विभाजित करके वास्तविक मजदूरी दर (W/P) प्राप्त करते हैं। जैसा कि चित्र 13.2 में नीचे की ओर झुके हुए DN वक्र द्वारा दिखाया गया है, श्रम माँग वास्तविक मजदूरी दर का एक घटता फलन है। वास्तविक मजदूरी दर को कम करके अधिक श्रमिकों को नियोजित किया जा सकता है।

रेखाचित्र संख्या - 23.2: बेरोजगारी और अधिक रोजगार स्थिति

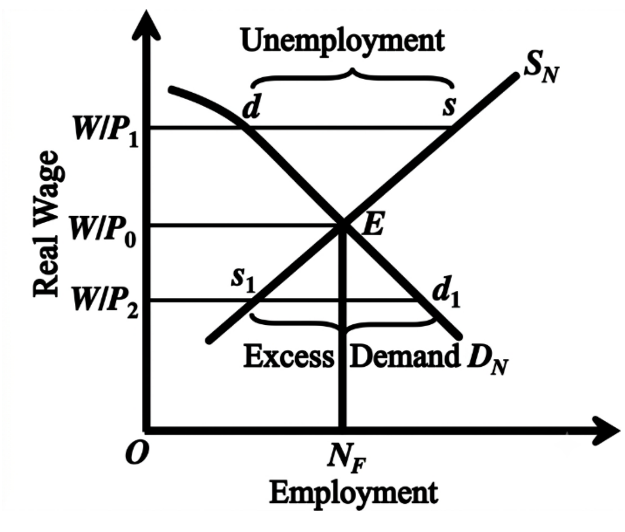

श्रम आपूर्ति वास्तविक मजदूरी दर पर निर्भर है। **सूत्र रूप में :** SN = f (W/P). यहां SN श्रम आपूर्ति को दर्शाता है। यह वास्तविक मजदूरी दर का बढ़ता हुआ फलन है, जैसा कि चित्र-23.2 में ऊपर की ओर चढ़ते हुए S_N वक्र द्वारा दिखाया गया है। वास्तविक मजदूरी दर में वृद्धि करके अधिक श्रमिकों को नियोजित किया जा सकता है।

जब D_N और S_N वक्र बिंदु E पर प्रतिच्छेद करते हैं, तो संतुलन वास्तविक मजदूरी दर W/P_0 का उपयोग पूर्ण रोजगार स्तर N_F निर्धारित करने के लिए किया जाता है। यदि मजदूरी दर को W/P_1 तक बढ़ा दिया जाता है, तो श्रम की आपूर्ति श्रम की माँग से ds अधिक हो जाएगी। नौकरियों के लिए अधिक प्रतिस्पर्धा के साथ, कर्मचारी कम वेतन दर स्वीकार करने को तैयार होंगे। परिणामस्वरूप, मजदूरी दर W/P_1 से W/P_0 तक घट जाती है और पुनःपूर्ण रोजगार स्तर प्राप्त हो जाएगा। दूसरी ओर, यदि मजदूरी दर W/P_0 से W/P_2 तक कम हो जाती है, तो श्रम की माँग उसकी आपूर्ति से अधिक (S1d1) हो जाएगी। फलस्वरूप मजदूरी W/P2से W/P0तक बढ़ जाएगी और संतुलन बिंदु E और पूर्ण रोजगार स्तर NF पुनः प्राप्त हो जाएगा।

23.7 वास्तविक मजदूरी दर और रोजगार में सम्बन्ध (Relationship Between Real Wage Rate and Employment)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र ने माना कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति ही संतुलन है। बेरोजगारी की स्थिति में, वेतन दर में व्यापक आधार पर कमी अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार में वापस लाएगी। यह तर्क इस आधार पर आधारित है कि **मजदूरी दर और वास्तविक मजदूरी में सीधा और आनुपातिक संबंध है।**जब मौद्रिक मजदूरी में कटौती की जाती है, तो उत्पादन की लागत कम हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पाद की कीमत कम हो जाती है। जब कीमतें गिरती हैं, तो उत्पादों की माँग बढ़ जाने के कारण बिक्री में वृद्धि होने लगती है| पूर्ण रोजगार प्राप्त होने तक, बढ़ी हुई बिक्री के लिए अतिरिक्त श्रम की भर्ती की आवश्यकता होती है।

N नियोजित श्रमिकों की संख्या हैऔर W मौद्रिक मजदूरी दर है। W में कमी के साथ N श्रमिकों की संख्या बढती है। इस प्रकार, पूर्ण रोजगार प्राप्त करने के लिए मौद्रिक मजदूरी में कमी आवश्यक है। जब मुद्रा मजदूरी में कमी के अनुपात में कीमतें गिरती हैं, तो वास्तविक मजदूरी भी मौद्रिक मजदूरी में कमी के अनुपात में घट जाती है जिससे रोजगार में वृद्धि होती है। श्रम की माँग वास्तविक मजदूरी दर का घटता हुआ फलन है। यदि W मौद्रिक मजदूरी भुगतान दर है, P उत्पाद की कीमत है, और MP_N श्रम का सीमांत उत्पाद है, तो $W=P \times MP_N$ या $W/P = MP_N$। क्योंकि रोजगार बढ़ने पर MP_N घटता है, वास्तविक मजदूरी (W/P) घटने पर रोजगार स्तर बढ़ता है। जैसा कि चित्र 23.3 में दिखाया गया है। (A) में, SN श्रम की आपूर्ति को दर्शाता है और DN श्रम की माँग को दर्शाता है। जिस बिंदु पर दो वक्र E पर अभिसरण करते हैं, वह पूर्ण रोजगार N_F के स्तर और वास्तविक मजदूरी W/P_0 को इंगित करता है। यदि वास्तविक मजदूरी को W/P1 तक बढ़ा दिया जाता है, तो श्रम की आपूर्ति उसकी माँग से अधिक (sd) हो जाती है, और N_1N_2 श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं। जब वेतन को W/P0 पर गिरा दिया जाता है, तभी बेरोजगारी समाप्त होती है और पूर्ण रोजगार प्राप्त होता है।

रेखाचित्र संख्या –23.3

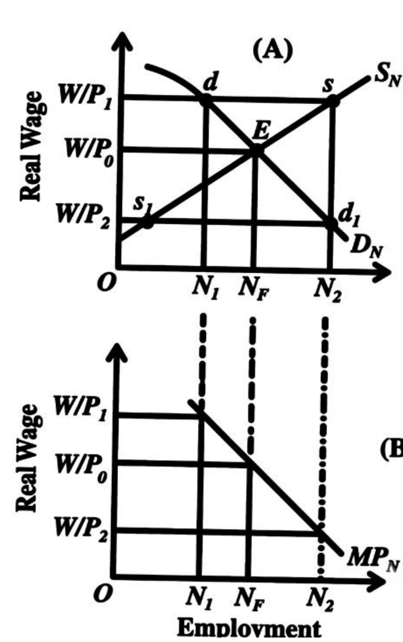

रेखाचित्र के भाग (B) में MP_N श्रम के सीमांत उत्पाद को दर्शाता है, जो अधिक श्रम के उपयोग के कारण घट जाता है। चूंकि प्रत्येक श्रमिक को उसके सीमांत उत्पाद के बराबर मजदूरी मिलती है, इसलिए पूर्ण रोजगार तब प्राप्त होता है, जब मजदूरी की दर W/P_1 से W/P_0 तक कम हो जाती है।इसके विपरीत, जब मजदूरी W/P_0 से W/P_2 तक गिरती है, तो श्रम की माँग इसकी आपूर्ति से अधिक (s_1d_1) हो जाती है, और श्रमिक उच्च मजदूरी चाहते हैं। इससे वेतन W/P_2 से W/P_0 तक बढ़ जाता है और पूर्ण रोजगार प्राप्त हो जाता है।

23.8 वस्तु बाजार संतुलन / बचत एवं विनियोग में संतुलन (Goods Market Equilibrium/Equilibrium in saving and investment)

बचत निवेश के बराबर होने पर वस्तु बाजार संतुलन में होता है। उस समय, कुल माँग कुल आपूर्ति से मेल खाती है और अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति में होती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार, जो भाग आय का खर्च नहीं किया जाता है, वह अनिवार्य रूप से निवेश किया जाता है। इस प्रकार बचत निवेश के बराबर होनी चाहिए। यदि दोनों के बीच कोई अंतर है, तो ब्याज दर के द्वारा समानता बनाए रखी जाती है। ज्ञातव्य है कि बचत और निवेश दोनों ही ब्याज दर के फलन हैं

$$S=f(r) \ldots(1)$$

$$I=f(r) \ldots(2)$$

$$S = I$$

यहाँ S = बचत (saving), I = निवेश(investment), and r = ब्याज दर (interest rate) है।

अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज बचत का प्रतिफल है। ब्याज दर जितनी अधिक होगी, बचत उतनी ही अधिक होगी और निवेश कम होगा। इसके विपरीत, ब्याज दर जितनी कम होगी, निवेश के लिए मुद्रा की माँग उतनी ही अधिक होगी और

बचत की दर कम होगी। जब भी निवेश बचत से अधिक हो जाती है, ब्याज दर में वृद्धि होगी, परिणाम स्वरूप बचत बढ़ेगी और निवेश तब तक कम होगा जब तक वे पूर्ण रोजगार के स्तर पर बराबर नहीं हो जाते। यह इस तथ्य के कारण है कि बचत को ब्याज दर के बढ़ते फलन और निवेश को ब्याज दर के घटते फलन माना जाता है। इसे रेखाचित्र 23.4 द्वारा समझा जा सकता हैं|

रेखाचित्र संख्या –23.4

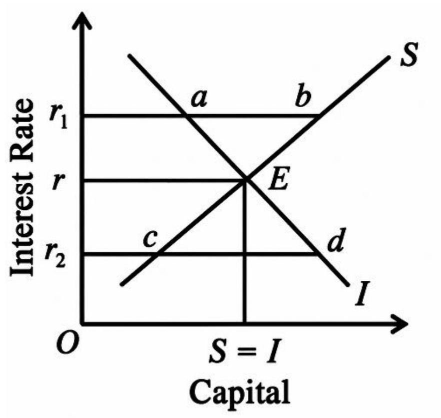

23.9 आय और रोजगार के प्रतिष्ठित दृष्टिकोण की आलोचनाएँ (Criticisms of the Classical Approach to Income and Employment)

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **लोर्ड जे.एम. कीन्स** ने आय एवं रोजगार के प्रतिष्ठित की कटु आलोचना की है,जो अग्रांकित हैं :

1. **प्रत्येक पूर्ति अपनी माँग उत्पन्न नहीं करती (Every supply does not create its own demand) :** प्रो. से का अभिमत है कि प्रत्येक पूर्ति अपनी माँग स्वयं उत्पन्न करती है, जो कीन्स के अनुसार सही नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि उत्पादन के साधन उत्पादन प्रक्रिया से प्राप्त समस्त आय को दी हुई समयावधि में खर्च नहीं करते और उसके एक भाग (बचत) को भावी उपयोग के लिए अपने पास संग्रह (Hoard) कर लेते हैं। इस कारण से उत्पादित माल का एक भाग बाजार में बिना बिका रह जाता है और परिणामस्वरूप **प्रभावी माँग** (Effective demand) घट जाती है। इससे अर्थव्यवस्था में अति उत्पान एवं बेरोजगारी कि समस्या उत्पन्न हो जाती है। कीन्स के अनुसार अनैच्छिक बेरोजगारी अर्थव्यवस्थाओं में एक सामान्य घटना है।
2. **बचत एवं विनियोग में समानता ब्याज दर द्वारा नहीं होती (Equilibrium in saving & investment is not attained trough interest rate) :** कीन्स ने प्रतिष्ठित दृष्टिकोण के इस विचार को खारिज कर दिया कि बचत और निवेश में ब्याज दरों में परिवर्तन के द्वारा साम्य स्थापित होता है। उनका यह मानना है कि बचत और विनियोग ब्याज दर निर्भर नहीं होते। कीन्स के अनुसार **बचत आय का प्रतिफलन (s=f(y)** है तथा **निवेश पूँजी की सीमान्त कुशलता** (Marginal Efficiency of Capital- MEC) पर अधिक निर्भर करता है। इस प्रकार बचत और विनियोग इतने ब्याज सापेक्ष नहीं होते हैं, जितने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने माना है। कीन्स के मतानुसार बचत और विनियोग में समानता आय स्तर में परिवर्तन के कारण होती हैं।

3. **मजदूरी में कटौती बेरोजगारी को समाप्त नहीं करती (Cut in Wages do not eliminate unemployment) :** कीन्स ने पीगू के इस विचार की कटु आलोचना की है कि मौद्रिक मजदूरी में कटौती कर बेरोजगारी को समाप्त किया जा सकता है और पूर्ण रोजगार की स्थिति बहाल की जा सकती है। कीन्स के मतानुसार मजदूरी कटौती का विचार किसी एक विशिष्ट उद्योग पर तो लागू हो सकता है,किन्तु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर यह लागू नहीं होता । मजदूरी की दरों में सामान्य कटौती से श्रमिकों की आय कम हो जाएगी, परिणामस्वरूप कुल प्रभावी माँग घट जाएगी और रोजगार बढ़ने के बजाय घट जाएगा। व्यवहार में, वैसे भी मजदूरी कटौती नीति को श्रम संघों के दबाव के कारण लागू करना अत्यन्त कठिन है। अतः यह नीति अव्यावहारिक है।

4. **पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पूर्णतः स्व-समायोजित एवं स्व-चालित नहीं होती (Capitalist Economy is not self-adjusting & auto driven) :** कीन्स का यह मानना है पूँजीवादी अर्थव्यवस्था एक सीमा तक ही स्व-समायोजित एवं स्व-चालित होती है। उनके अनुसार वर्तमान राजनैतिक एवं सामाजिक ढाँचे एवं परिवेश के कारण पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अब पूरी तरह से बाजार की स्वतंत्र माँग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा संचालित नहीं होती। आये दिन गाहे-बजाये सरकार अर्थव्यवस्था में अपनी आर्थिक नीतियों के द्वारा हस्तक्षेप करती रहती हैं। **कीन्स** के ही शब्दों में, ‘‘पूँजीवादी अर्थव्यवस्था कभी भी वास्तविक रूप में स्वचालित एवं सुव्यवस्थित अर्थव्यवस्था नहीं रही। अर्थव्यवस्था में माँग एवं पूर्ति में समायोजन करने में राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों के माध्यम से राजकीय हस्तक्षेप आवश्यक है।’’ पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में आय एवं धन के वितरण की विषमताओं के कारण समाज धनी और निर्धन दो वर्गों में विभक्त हो जाता है ।धनी वर्ग अपनी सम्पूर्ण आय को उपभोग पर खर्च नहीं करता और निर्धन वर्ग के पास उपभोग हेतु पर्याप्त क्रय शक्ति नहीं होती,फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में समग्र पूर्ति समग्र माँग से अधिक हो जाती है । इसका नतीजा यह होता है कि अर्थव्यवस्था में अति-उत्पादन एवं बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है।

5. **पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों के अनुकूलतम दोहन हेतु राजकीय हस्तक्षेप आवश्यक (Govt. intervention in capitalist economy is necessary for optimum utilization of resources) :** लोर्ड कीन्स पीगू के इस विचार से भी असहमत थे कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन शक्ति का पूर्ण उपयोग न कर पाने के लिए केवल घर्षणात्मक कुसमायोजन ही उत्तरदायी हैं। उनके अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को पूरी तरह मुक्त रहने देने पर कभी भी संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग नहीं हो सकता। अतः आर्थिक क्रियाओं में सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक हैं। सरकार अपनी राजकोषीय, मौद्रिक एवं व्यापारिक नीति के माध्यम से आर्थिक क्रियाओं को प्रोत्साहित करती है।

6. **दीर्घकालीन दृष्टिकोण सही नहीं (Long-run approach is not correct) :** प्रतिष्ठित अर्थवेत्ताओं का यह विश्वास था कि अर्थव्यवस्था में केवल अल्पकालीन असंतुलन होता है, जो दीर्घकाल में स्व-समायोजन प्रक्रिया के द्वारा समाप्त हो जाता है और अर्थव्यवस्था में संतुलन (पूर्ण रोजगार) स्थापित हो जाता है। कीन्स का मत था कि ‘दीर्घकाल में हम सब मर जायेंगे’, इसलिए अल्पकाल दीर्घकाल से अधिक महत्त्वपूर्ण है। हमें ऐसे सिद्धांत कि आवश्यकता है जो अल्पकाल में रोजगार निर्धारण की व्याख्या कर सके।

7. **अवास्तविक एवं गलत मान्यताएँ (Unreal and wrong assumptions) :** आय एवं रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धांत अनेक अवास्तविक, अव्यवहारिक और गलत मान्यताओं पर आधारित है। व्यवहार में पूर्ण प्रतियोगिता के स्थान पर अपूर्ण प्रतियोगिता, पूर्ण रोजगार के स्थान पर अल्प रोजगार, अर्थव्यवस्था में पूर्ण लोचशीलता के स्थान पर अपूर्ण/आंशिक लोचशीलता पायी जाती है। फिर दीर्घकालीन संतुलन एक

क्षितिज संतुलन (Horizontal equilibrium) की तरह है, जो दूर से दिखता तो है, पर होता नहीं है।इसके अलावा यह सिद्धांत मुद्रा के केवल विनिमय का माध्यम कार्य को ही महत्त्व देता है, जबकि मुद्रा का 'मूल्य संचय' कार्य भी उत्पादन, आय एवं रोजगार को प्रभावित करता है।

8. **व्यापार चक्रों की व्याख्या नहीं करता (Does not explain trade cycles) :** प्रतिष्ठित सिद्धांत न तो अर्थव्यवस्था में होने वाले उच्चावचनों को स्पष्ट करता है और न ही उनको नियंत्रित करने के बारे में बताता है।

उपर्युक्त आलोचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि आय एवं रोजगार का प्रतिष्ठित दृष्टिकोण अनेक कमियों से ग्रसित है।

स्व-मूल्यांकन – द्वितीय

यह स्मरण कीजिये कि प्रतिष्ठित सिद्धांत के अनुसार बचत और विनियोगों में समानता किस घटक द्वारा और कैसे होती है?

23.10 सारांश (Summary)

आय एवं रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धांत मूलतः जे.बी.से. के द्वारा प्रतिपादित बाजार नियम पर आधारित है। इसके अनुसार पूर्ति अपनी माँग स्वयं उत्पन्न करती है क्योंकि आर्थिक क्रियाओं के वृत्ताकार प्रवाह (Circular flow of Economic activities) के कारण जो भी उत्पादन होता है, वह उत्पादन के साधनों को लगान, मजदूरी, ब्याज एवं लाभ के रूप में वितरित हो जाता है, जो उनकी आय होती है। इस प्रकार बढ़ी हुई आय से बढ़ा हुआ उत्पादन खप जाता है। प्रो. पीगू का यह मत है कि मुक्त अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता और पूर्ण लोचशीलता विधमान होती है जिसके कारण कीमतों, मजदूरियों और ब्याज दरों में समायोजन के द्वारा पूर्ण रोजगार की स्थिति बनी रहती है। प्रो. पीगू ने यह भी कहा है कि किसी कारणवश अर्थव्यवस्था में अस्थायी रूप से बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है, तो मौद्रिक मजदूरी में कटौती के द्वारा इसे समाप्त किया जा सकता है। आय एवं रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की सबसे अधिक आलोचना कीन्स ने की है। उनके अनुसार समान्यतया अर्थव्यवस्था पूर्ण से कम रोजगार की स्थिति में होती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अनेक कारणों से स्व-चालित नहीं होती और न ही मजदूरी में कटौती से बेरोजगारी को समाप्त किया जा सकता है। प्रतिष्ठित सिद्धांत पूर्ण प्रतियोगिता जैसी अनेक गलत एवं अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।

23.11 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

- इस इकाई से विद्यार्थी 'से' का बाजार नियम के बारे में जान सके होंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी वास्तविक मजदूरी दर और रोजगार में सम्बन्ध को जान सके होंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी आय और रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या को जान सके होंगे।

23.12 शब्दावली (Glossary)

- **पूर्ण रोजगार (Full Employment) :** पूर्ण रोजगार अर्थव्यवस्था की एक ऐसी स्थिति है जिसमें सभी उपलब्ध श्रम संसाधनों का यथासंभव कुशलता से उपयोग किया जाता है। कोई भी व्यक्ति जो बाजार की प्रचलित मजदूरी की दर पर काम करने का इच्छुक एवं योग्य होता है, वह बेरोजगार नहीं रहता।
- **वास्तविक मजदूरी दर (Real Wage Rate) :** वास्तविक मजदूरी दर मौद्रिक मजदूरी और कीमत का अनुपात होता है (W/P)।

23.13 स्व-परख प्रश्न (Self-Test Questions)

अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Questions)

1. 'से' का बाज़ार नियम क्या है?
2. वास्तविक मजदूरी दर क्या है?
3. आय और रोजगार का प्रतिष्ठित दृष्टिकोण का आधार क्या है?
4. मौद्रिक एवं वास्तविक मजदूरी में अन्तर स्पष्ट कीजिए?

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. आय और रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. 'से' के बाजार नियम की मुख्य बातों पर प्रकाश डालिए। कीन्स ने इस नियम की किन आधारों पर आलोचना की?

23.14 संदर्भ व ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- द्विवेदी डी.एन. : मैक्रो इकॉनॉमिक्स थ्योरी एँड पॉलिसी, तीसरा संस्करण, टाटा मैकग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2010
- आहूजा एच.एल. : मैक्रो इकॉनॉमिक्स थ्योरी एँड पॉलिसी, एस.चंद पब्लिशिंग, नई दिल्ली (2006)
- गुप्ता जी.एस. : मैक्रो इकॉनॉमिक थ्योरी, टाटा मैकग्रा हिल पब्लिशिंग, नई दिल्ली तीसरा संस्करण, 2008
- अग्रवाल वनिता और दीपश्री : मैक्रो इकॉनॉमिक थ्योरी, टाटा मैकग्रा हिल पब्लिशिंग, नई दिल्ली तीसरा संस्करण, 2007

23.15 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- वैश्य एमसी : मैक्रो इकॉनॉमिक थ्योरी, विकास प्रकाशन, 14वां संस्करण, 2010
- हजेला टी.एन. : मैक्रो इकॉनॉमिक, प्रस्तावना ; प्रकाशक, शिव लाल अग्रवाल एँड कंपनी, 1980
- रंगराजन सी., ढोलकिया बीएच : मैक्रो इकॉनॉमिक्स के सिद्धांत, मैकग्रा हिल एजुकेशन, 2023

23.16 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Links)

- https//:www.gargshashi.com/2019/03/CLASSICAL-THOERY-INCOME-EMPLOYMENT-DETERMINATION.html
- https//:www.economicsdiscussion.net/theory-of-income/classical-theory-of-income-and-employment-economics/25971
- https//:en.wikipedia.org/wiki/Say%27s_law
- https//:www.economicsdiscussion.net/wages/pigou-effect-on-wage-cut-and-full-employment-with-limitations/14607

इकाई - 24

आय व रोजगार पर केंन्ज का दृष्टिकोण
(Keynesian Approach to Income and Employment)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 आय व रोजगार सिद्धांत की पृष्ठभूमि

24.2.1 आय व रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धांत

24.2.2 प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यताएँ

24.2.3 प्रतिष्ठित सिद्धांत की आलोचनाएँ

24.3 केंज का आय व रोजगार सिद्धांत - मुख्य अवधारणाएँ

24.3.1 समग्र माँग व समग्र पूर्ति

24.3.2 प्रभावी माँग

24.3.3 उपभोग एवं बचत प्रवृत्ति

24.3.4 स्वतंत्र निवेश एवं प्रेरित निवेश

24.3.5 पूँजी की सीमांत कुशलता

24.3.6 गुणक

24.4 केंज के अनुसार आय व रोजगार में संतुलन

24.4.1 केंज के सिद्धांत का सार

24.4.2 केंज के सिद्धांत की मान्यताएँ

24.2.3 सिद्धांत की समालोचना

24.5 सारांश

24.6 अधिगम परिणाम

24.7 शब्दावली

24.8 स्वपरक प्रश्न

24.9 संदर्भ व ग्रंथ सूची

24.10 अन्य पठन सामग्री

24.11 वेब संसाधन/लिंक

24.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य आय व रोजगार के सिद्धांत का अध्ययन है जिसमें इस सिद्धांत की पृष्ठभूमि जिसमें इसके प्रतिष्ठित सिद्धांत, समय-समय पर उसमें होने वाले परिवर्तन और अंत में 20 वीं सदी के महान अर्थशास्त्री, जॉन मेनार्ड केंज़ (John Maynard Keynes) द्वारा दिये गये सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या करना है। समष्टि अर्थशास्त्र (Macro economies) में समग्र रूप से अध्ययन किये जाने वाले आर्थिक तत्त्वों, यथा रोजगार, आय, निवेश, कुल माँग एवं आपूर्ति के संदर्भ में देश की अर्थव्यवस्था किस प्रकार संचालित होती है, उसके विभिन्न कारकों का आय व रोजगार पर क्या प्रभाव पड़ता है, उनमें होने वाले परिवर्तनों की क्या प्रक्रिया है तथा यह किस प्रकार मानवीय क्रियाकलापों पर प्रभाव डालते हैं, यही इस इकाई के मुख्य विषय हैं। वर्तमान विश्व में समग्र चरों (Macro Variables) का अत्यधिक महत्त्व है। केंज़ के विचार के पूर्व इन सभी की व्याख्या एक अधूरी एवं अस्पष्ट थी और किन्हीं विशेष बातों पर ही निर्भर थी। लेकिन केंज़ ने इन सभी आयामों को विशेष संदर्भ, परिस्थिति एवं नवीन विचार के साथ प्रस्तुत किया, जिसे हम **केंजियन क्रान्ति** (Keynesian Revolution) के नाम से भी जानते हैं। आज भी कई अर्थों व संदर्भों में केन्ज की अवधारणा अति सामयिक प्रतीत होती है। केन्ज़ ने आर्थिक विचारधारा में मौलिक परिवर्तन सुझाये, जिसे नवीन अर्थशास्त्र की संज्ञा भी दी जाती है।

24.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रारम्भ में यह माना जाता था कि अर्थव्यवस्था में सदैव पूर्ण रोजगार (Full employment) की स्थिति बनी रहती है क्योंकि यह विचार **'से' के नियम** पर आधारित, ''पूर्ति अपनी माँग स्वयं निर्मित करती है'' (Supply Creates its own Demand) था। यह माना जाता था कि किसी समय यदि देश में बेरोजगारी उत्पन्न हो जाये, तो ऐसी आर्थिक शक्तियाँ काम करने लगती हैं, जिससे यह बेरोजगारी स्वतः समाप्त हो जाती है और अर्थव्यवस्था पुनः पूर्ण रोजगार की स्थिति में आ जाती है, बशर्ते कि अर्थव्यवस्था में निर्बाध एवं पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती हो। हम यह सब भली भांति जानते हैं कि 1930 के दशक में सम्पूर्ण विश्व आर्थिक मंदी की चपेट में आया और बेरोजगारी का स्तर बहुत अधिक हो गया और राष्ट्रीय आय में भारी गिरावट आयी। इस मंदी के कारण देशों में औद्योगिक उत्पादन ठप्प हो गया, निम्न आय के फलस्वरूप जन सामान्य के जीवन स्तर में भी गिरावट आ गई और उद्योगों में निवेश न्यून से न्यून होता चला गया। मंदी व बेरोजगारी की यह स्थिति स्वतः समाप्त नहीं हो पा रही थी। इस समय 'से' का नियम पूर्णतः असफल होता दिख रहा था। अतः पूर्ण रोजगार के इस सिद्धांत से लोगों का विश्वास समाप्त हो गया। अनुभव के आधार पर यह सिद्धांत असत्य प्रमाणित हो गया, बल्कि यह कहा जाये कि सिद्धांत असत्य प्रमाणित हो चुका था। इसी पृष्ठभूमि में स्वर्गीय जे.एम.केंज़ (J.M.Keynes) ने एक पुस्तक 'General Theory of Employment, Interest and Money' की रचना की, जिसके माध्यम से उन्होंने तर्क के आधार पर 'से' के नियम पर आधारित रोजगार सिद्धांत की आलोचना की। साथ ही आय व रोजगार से संबंधित एक क्रमबद्ध सिद्धांत का प्रतिपादन भी किया। इस रचना ने विश्व अर्थव्यवस्था में एक नये अर्थशास्त्र का सूत्रपात किया, जिसे कई अर्थशास्त्रियों ने **नवीन अर्थशास्त्र** (New Economics) कहा। इस इकाई में हम

प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धांत तथा केंज़ द्वारा उनकी आलोचनाओं का अध्ययन करेंगे और साथ ही आय व रोजगार पर केंज़ का क्या दृष्टिकोण है, इसकी व्याख्या करेंगे।

24.2 आय व रोजगार सिद्धांत की पृष्ठभूमि (Background)

यह सर्व विदित है कि विश्व मंदी के समय यदि सबसे अधिक किसी तत्त्व पर प्रभाव पड़ा था, तो वह रोजगार व आय ही थे। इस आर्थिक संकट से पहले इस बात को कोई स्वीकार नहीं करता था कि इतनी भयानक मंदी जैसी आर्थिक घटना भी हो सकती है, जिससे आय, रोजगार, निवेश एवं भावी विकास पर इतना दूरगामी प्रभाव पड़ सकता है। सारे विश्व में जे.बी.से (J.B.Say) का नियम एक निर्विरोध रूप से प्रचलन में था और सभी स्वतः स्फूर्त शक्तियों (Automate forces) में विश्वास करते थे कि समस्त आर्थिक उतार चढ़ाव अपने आप ठीक हो जायेंगे। परन्तु आर्थिक मंदी ने इस विश्वास का पूर्ण रूप से हिला दिया था। संभवतया ऐसा नहीं होता, तो विश्व नवीन अर्थशास्त्र से वंचित ही रहता। यही कारण है कि तात्कालिक सिद्धांत (जिसे हम रोजगार का प्रतिष्ठित-सिद्धांत भी कहते हैं) की व्याख्या दो कारणों से महत्त्वपूर्ण है। एक, आर्थिक मंदी ने इस सिद्धांत की कौनसी कमियाँ उजागर की, द्वितीय इन कमियों के कारण सिद्धांत में जो अपूर्णता व अवास्तविकताऐं थीं, उन्हें किस प्रकार दूर किया गया। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धांत यदि असफल नहीं होता, तो केन्ज़ के सिद्धांत को इतनी भारी मान्यता नहीं मिलती और न ही विश्व के सामने ऐसा वैज्ञानिक दृष्टिकोण आ पाता जिससे समग्र अर्थशास्त्र (macro economics) जैसे विषय का विशाल परिचय मिल पाता। सही मायने में देखा जाये, तो यह समय ही समष्टि अर्थशास्त्र के विकास का प्रारम्भ था, जो अब एक विशाल वृक्ष के रूप में खड़ा है।

24.2.1 आय व रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धांत (Classical Theory of Income and Employment)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह मानना है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में यदि कीमत प्रणाली को निर्बाध रूप से कार्य करने दिया जाये (जो कि माना जाता है), तो अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति में होने की प्रवृत्ति (Tendency) पायी जाती है। यद्यपि कभी-कभी ऐसी परिस्थिति होती है जब पूर्ण रोजगार की स्थिति असंतुलित हो जाती है, परन्तु इनके अनुसार यह असामान्य परिस्थिति है जो स्वयं स्फूर्त आर्थिक शक्तियों द्वारा सही हो जाती है, अर्थात पूर्ण-रोजगार की स्थिति वापस आ जाती है। रोजगार का प्रतिष्ठित-सिद्धांत मूलतः दो अवधारणाओं पर आधारित है : प्रथम पूर्ण-रोजगार के स्तर पर जितना भी उत्पादन होता है, उसे खरीदने के लिए पर्याप्त व्यय उपलब्ध है। द्वितीय, यदि किसी समय कुल व्यय में कमी हो जाती है, तो मजदूरी एवं कीमतों में इस प्रकार परिवर्तन हो जाता है कि वास्तविक उत्पादन, रोजगार व आय में कमी नहीं होती। यह अवधारणा अर्थशास्त्री जे.बी.से. (J.B.Say) के ''बाजार नियम'' पर आधारित है, जो इस धारणा पर आधारित है कि वस्तुओं को उत्पादित करने की प्रत्येक क्रिया उत्पादित वस्तुओं के मूल्य के बराबर आय भी उत्पन्न करती है और यह समस्त आय वस्तुओं को खरीदने पर ही व्यय की जाती है अर्थात् वस्तुओं का उत्पादन अपने खरीदने की क्रय शक्ति स्वयं उत्पन्न करता है। इसको 'से' ने इस प्रकार व्यक्त किया है, आपूर्ति अपनी माँग स्वयं निर्मित करती है । इसका सीधा सा अर्थ यह है कि अर्थव्यवस्था में कभी भी अति उत्पादन (Overproduction) या अल्प उत्पादन (Under-Production) की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है और हम हमेशा पूर्ण रोजगार की स्थिति में रहते हैं। इसी परिस्थिति की केन्ज़ ने कटु आलोचना की है।

''से'' का नियम स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की कार्यविधि के विषय में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर इंगित करता है। उनका मानना है कि वस्तुओं के लिये माँग का मुख्य स्त्रोत उत्पादन के कार्य में प्रयुक्त साधनों द्वारा अर्जित आय ही है। यदि एक नया उद्यमी जब उत्पादन के साधनों को रोजगार प्रदान करता है, तो उत्पादन में वृद्धि होती है, साथ ही उनकी आय का निर्माण भी होता है जो बढ़े हुऐ उत्पादन की मात्रा की माँग का निर्माण करती है। अतः उत्पादन ही अपना बाजार निर्मित

करता है। अतः 'से' के नियम के अनुसार हमेशा कुल व्यय इतना ही रहेगा जिससे कि सभी साधनों को पूर्ण रोजगार मिल सके। आय का कुछ भाग जो वे बचा लेते हैं, वह प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार अपने आप पूँजीगत साधनों में निवेशित हो जाता है। इस प्रकार बचत भी एक प्रकार का व्यय ही होता है-कुछ उपभोग व्यय के रूप में और कुछ निवेश व्यय के रूप में। अब सवाल यह उठता है कि बचत एवं निवेश समान क्यों होती हैं? प्रतिष्ठित सिद्धांत के अनुसार बचत में वृद्धि होने पर ब्याज दर में कमी तथा बचत में न्यूनता होने पर ब्याज दर में वृद्धि हो जाती है। इसी कारण निवेश में क्रमशः वृद्धि या कमी हो जाती है। इसीलिये 'से' का नियम बचत के होने पर भी लागू होता है और पूर्ण रोजगार की स्थिति बन जाती है, अतः पूर्ति स्वयं अपनी माँग निर्मित करती रहती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पादन की मात्रा केवल माँग अथवा कुल व्यय की मात्रा पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि वस्तुओं की कीमत पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार उनका तर्क यह है कि बचत के अधिक होने के कारण कुल व्यय में कमी से भी वास्तविक उत्पादन, वास्तविक आय तथा रोजगार के स्तर में कमी नहीं आएगी क्योंकि कुल माँग (व्यय) में कमी के अनुपात में वस्तुओं की कीमत भी घट जायेंगी। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में कीमत प्रणाली की निर्बाध स्वतंत्रता एवं पूर्ण प्रतियोगिता के कारण ऐसा होता है। इधर मजदूरी घटने के कारण सभी मजदूरों को रोजगार मिल जाता है। हालांकि जो श्रमिक कम मजदूरी पर काम नहीं करना चाहेंगें, तो वे तकनीकी रूप से बेरोजगार न कहलाकर ऐच्छिक बेरोजगार (Voluntarily Unemployed) कहे जायेंगे। अतः अनैच्छिक बेरोजगारी (Voluntary Unemployment) की संभावना समाप्त हो जायेगी। मंदीकाल में एक और महान अर्थशास्त्री पीगू ने भी बेरोजगारी को दूर करने के लिये मजदूरी दर में कमी करने का सुझाव दिया था ताकि अधिक लोगों को रोजगार मिल सके। उस समय श्रम संघो के द्वारा मजदूरी घटाने का विरोध करने को स्वतंत्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बाधा उपस्थित करने के रूप में देखा गया था। यही समय था जब केंज़ ने इस सिद्धांत को चुनौती दी।

24.2.2 प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धांत की मान्यताएँ (Assumptions of Classical Theory of Employment)

प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धांत निम्न मान्यताओं पर आधारित है -

(i) अर्थव्यवस्था पूर्ण रूप से पूँजीवादी है और यह स्वतंत्र कीमत प्रणाली व पूर्ण प्रतियोगिता पर आधारित है।

(ii) साधनों का मूल्य (यथा मजदूरी आदि) पूर्ण रूप से लचीला है।

(iii) पूँजी को अधिक मजदूरों से प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

(iv) 'से' का बाजार नियम पूर्ण रूप से लागू होता है।

(v) उत्पादन के साधन पूर्णतया गतिशील हैं।

(vi) बचत का वितरण पूर्ण रूप से ब्याज दर पर निर्भर करता है।

24.2.3 प्रतिष्ठित सिद्धांत की आलोचनाएँ (Criticism)

केंज़ ने अपनी पुस्तक "General Theory" में प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धांत की तीखी आलोचना की है। उन्होंने बाजार के नियम एवं पीगू के श्रमिक मजदूरी घटाने पर गहरा कटाक्ष किया है। कुछ आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं :

(1) यह सही नहीं है कि उत्पादन स्वयं अपना बाजार निर्मित करता है। आज हम वस्तु विनिमय प्रणाली में न रहकर एक नवीन मौद्रिक अर्थव्यवस्था में रह रहे हैं। उत्पादन के साधनों द्वारा अर्जित आय वस्तुओं के मूल्य के बराबर होती है, यह भी सत्य नहीं है क्योंकि इसका यह अर्थ नहीं है कि वे अपनी समस्त आय को किसी दी हुई समयावधि में वस्तुओं एवं सेवाओं पर खर्च कर देंगे। आय का जो भाग बचाया जाता है, वह माँग उत्पन्न नहीं करता। यदि निवेशकर्ता किसी रोजगार के स्तर पर इच्छित बचतों के समान निवेश नहीं करते हैं, तो समस्त माँग उत्पादन की समस्त उपलब्ध पूर्ति के लिये पर्याप्त नहीं होगी। अतः उत्पादन की उपलब्ध पूर्ति के लिये पर्याप्त

माँग नहीं होगी, तो उत्पादक अपना समस्त उत्पादन का विक्रय नहीं कर पायेंगे, जिसके कारण उनके लाभ में कमी आयेगी और वे अपना उत्पादन घटाऐंगे, फलस्वरूप बेरोजगारी उत्पन्न होगी।

(2) एक स्वतंत्र उद्यम वाली पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था में बचत करने वाला वर्ग निवेश करने वाले वर्ग से भिन्न होता है तथा बचत को निर्धारित करने व उसको निवेश करने वाले कारक भी भिन्न होते हैं। बचतकर्ता अपना निवेश अपनी निजी आवश्यकताओं के लिये, जबकि उद्यमी, निवेश पूँजी की सीमांत उत्पादकता, लाभों की प्रत्याशित दर , ब्याज की दर, तकनीकी प्रगति, जनसंख्या में वृद्धि आदि कारकों को ध्यान में रखकर करते हैं। एक स्वतंत्र उद्यम वाली पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में ऐसा कोई तंत्र नहीं है, जो इस बात की गारंटी दे सके कि जो लोग बचत करते हैं, उसके समान ही उद्यमकर्ता निवेश करें। यह देखा गया है कि अभीष्ट बचत (Desired savings) एवं अभीष्ट निवेश (Desired investment) बराबर नहीं होते हैं। फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में आय व बेरोजगारी जैसा असंतुलन पैदा होता है। केंज़ का मानना है कि अर्थव्यवस्था का संतुलन पूर्ण रोजगार से कम के स्तर पर (Equilibrium at less than full employment) पर होगा। अतः 'से' का नियम असत्य साबित होता है।

(3) केंज़ ने पीगू की इस अवधारणा की भी आलोचना की है कि मजदूरी में कमी करके बेरोजगारी दूर हो जायेगी और पूर्ण-रोजगार की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। वस्तुतः मजदूरी में सामान्य कमी रोजगार में वृद्धि नहीं ला सकती है क्योंकि मजदूरी घटाने से देश की समग्र माँग में कमी हो जायेगी। केंज़ का यह मानना है कि मजदूरी केवल उत्पादन की लागत नहीं, बल्कि यह श्रम की आय भी है" ("Wages are not only cost of production , they are also incomes")। श्रमिकों की आय में कमी प्रत्यक्ष रूप से माँग में कमी करेगी। यह रोजगार की मात्रा घटायेगी और मंदी को अधिक विकराल बना देगी।

(4) केंज़ एवं पीगू के विचार में एक मौलिक अंतर और है। **पीगू** का यह विचार कि रोजगार मौद्रिक मजदूरी (Monetary Wages) पर निर्भर है और इसको घटाने पर रोजगार बढ़ाया जा सकता है। जबकि केंज़ का विचार है कि **रोजगार की मात्रा समग्र माँग** (Aggregate demand) पर निर्भर करती है और यह समग्र माँग मौद्रिक मजदूरी के घटने से घटेगी न कि बढ़ेगी। यदि मजदूरी की दर पूर्ण परिवर्तनशील भी है, तब भी बेरोजगारी रहेगी क्योंकि समग्र माँग कम है। अतः रोजगार का आधार समस्त माँग है, न कि परिवर्तनशील मजदूरी।

(5) यह भी आवश्यक नहीं है कि एक उद्योग द्वारा निर्मित उत्पादन उसी उद्योग के श्रमिक खरीदेंगे। अतः समस्त माँग की अवधारणा पूरी अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है। यदि ऐसा होता, तो आर्थिक मंदी आती ही नहीं और अगर आई तो उसका समाधान श्रमिकों की मजदूरी कम करने से हो जाता। प्रश्न सम्पूर्ण क्रय शक्ति व समस्त माँग का है। केंज़ ने अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार की मात्रा किस प्रकार निर्धारित होती है, इसके लिये सामान्य संतुलन विश्लेषण (General Equilibrium Analysis) को अपनाने पर जोर दिया है जो कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के आय व रोजगार के विश्लेषण पर ध्यान केन्द्रित करता है।

24.3 केंज़ का आय व रोजगार सिद्धांत - मुख्य अवधारणाएँ (Keynesian Theory of Income and Employment- Main Concepts)

महान आर्थिक मंदी के दौरान प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धांत में भयंकर त्रुटियाँ पाई गई, जिसका उल्लेख केंज़ ने अपनी पुस्तक 'General Theory' में किया और व्यवहार में भी प्रतिष्ठित सिद्धांत बुरी तरह असफल रहा। हालांकि यह उल्लेखनीय है कि रोजगार व आय के सिद्धांत के क्षेत्र में प्रतिष्ठित सिद्धांत ने एक नयी सोच व विचार को जन्म दिया। आज भी आधुनिक अर्थशास्त्री केंज के सिद्धांत को एक मील का पत्थर मानते हैं। केंज़ ने अपने सिद्धांत की व्याख्या में कुछ नवीन अवधारणाओं का उपयोग किया है जैसे- **उपभोग प्रवृत्ति** (Propensity to Consume), **गुणक** (Multiplier),

निवेश अभिप्रेरण (Inducement to invest), **स्वायत्त एवं प्रेरित निवेश** (Autonomous and Induced Investment), **तरलता अधिमान** (Liquidity preference), **संभावित लाभ प्रत्याशा** (Prospective yield) आदि। इन सभी अवधारणाओं की उन्होंने बहुत सुन्दर तरीके से रोजगार सिद्धांत के स्वरूप व प्रक्रिया (Structure and process) के निर्माण में अत्यंत ही तार्किक प्रयोग किया है, जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री भी स्वीकार करते हैं। यहाँ पर एक विचारणीय तथ्य यह है कि केंज़ की अवधारणा अल्पकालीन विश्लेषण पर आधारित है। उनका मानना था कि दीर्घकाल में तो हम सभी मर जाते हैं। स्वभावतः कुछ ऐसे कारक है, जो अल्पकाल में निश्चित ही रहते हैं और उनमें परिवर्तन नहीं होता है। उदाहरणार्थ, इस सिद्धांत में यह माना जाता है कि पूँजी की मात्रा, जनसंख्या, श्रमिकों की कुशलता, तकनीकी ज्ञान आदि में वृद्धि नहीं होती है। यद्यपि बाद में जाकर उनकी यह अल्पकालीनता की मान्यता कुछ अर्थशास्त्रियों की आलोचना का आधार बनी। सबसे पहले हम केंज़ द्वारा प्रयुक्त विभिन्न अवधारणाओं को संक्षिप्त में समझाने का प्रयास करेंगे।

24.3.1 समग्र माँग व पूर्ति कीमत (Aggregate demand and supply price)

समग्र माँग कीमत का अर्थ है कि जब अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की एक निश्चित संख्या का उपयोग करने पर जितना उत्पादन होता है, उसको बेचने से अर्थव्यवस्था में सभी उद्यमी कुल जितनी राशि प्राप्त करने की अपेक्षा करते हैं, वह उस रोजगार के स्तर पर समस्त माँग कीमत होती है (The aggregate demand price at any level of employment is the amount of money which all the entrepreneurs in the economy taken together must expect that they will receive, if they sell the output produced by this given number of people).

समग्र माँग = उपभोग माँग + निवेश माँग

Aggregate Demand = Consumption demand + Investment demand

(AD) = (C) + (I)

उपभोग माँग उपभोग प्रवृत्ति तथा आय पर निर्भर करती है तथा निवेश माँग पूँजी की सीमांत उत्पादकता व ब्याज दर पर निर्भर करती है।

इसके विपरीत, **समग्र पूर्ति की कीमत** (Aggregate Supply Price) वह है जब अर्थव्यवस्था में सभी उद्यमी श्रमिकों की एक संख्या का नियोजन करते हैं, तो उन्हें उन श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के लिये इतनी राशि मिलनी चाहिये कि उद्यमी उन श्रमिकों को नियोजित रख सकें। यह समस्त पूर्ति कीमत है (At any given level of employment of labour, aggregate supply price is the total amount of money which all the entrepreneurs in the economy , taken together must expect to receive from the sale of the output produced by that given number of people, if it is just worth of employing them). अर्थात् **अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की किसी एक संख्या को रोजगार में लगाये रखने के लिये कुल उत्पादन लागत को ही समस्त पूर्ति की कीमत कहा जाता है** क्योंकि लागत पूरी न मिलने पर उद्यमी कम श्रमिकों को रोजगार देंगे तथा अधिक मिलने पर अधिक श्रमिकों को। अतः अर्थव्यवस्था की समस्त माँग व समस्त पूर्ति द्वारा ही यह निश्चित होगा कि कितने व्यक्तियों को रोजगार दिया जायेगा। केंज़ की यह अवधारणा एक क्रांतिकारी अवधारणा थी, जिसने समष्टि अर्थशास्त्र में एक नया अध्याय जोड़ा।

24.3.2 प्रभावी माँग (Effective Demand)

प्रभावी माँग वह है, जो रोजगार के उस स्तर पर अर्थव्यवस्था के समस्त पूर्ति के बराबर है और इसीलिये समस्त माँग व पूर्ति एक अल्पकालीन संतुलन को प्रदर्शित करती है (Effective demand is that aggregate demand price which becomes 'effective' because it is equal to aggregate supply price and it represents

short term equilibrium)। यही कारण है कि केंज़ द्वारा यह माना गया है कि **प्रभावी माँग के कम होने पर रोजगार कम होगा तथा अधिक होने पर रोजगार अधिक होगा।** यद्यपि अर्थव्यवस्था कम प्रभावी माँग होने पर भी पूर्ण रोजगार से कम (less than full employment) की स्थिति में भी संतुलन में हो सकती है। अतः रोजगार के निर्धारण में प्रभावी माँग की अत्यधिक सक्रिय भूमिका है। समस्त माँग उपभोग माँग एवं निवेश माँग का योग है, जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है।

24.3.3 उपभोग एवं बचत प्रवृत्ति (Propensity to Consume and Save)

किसी भी देश में आय के संदर्भ में व्यक्तियों द्वारा उपभोग किया जाता है। हम यह भी जानते हैं कि **यदि आय बढ़ती है, तो उपभोग भी बढ़ता है। उपभोग व आय में इस संबंध को ही उपभोग प्रवृत्ति कहा जाता है।** इसे हम **उपभोग फलन** (Consumption Function) भी कहते हैं। यह तथ्य बचत पर भी लागू होगा अर्थात् **अधिक आय होने पर अधिक बचत होगी।** इसे हम **बचत फलन** (Saving Function) भी कहते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक नियम भी है। केंज़ ने उपभोग एवं बचत प्रवृत्ति को दो भागों में विभाजित किया है : औसत उपभोग व बचत प्रवृत्ति तथा सीमांत उपभोग व बचत प्रवृत्ति (Average and Marginal Propensity of Consumption and Saving)। कुल आय एवं उपभोग के सम्बन्ध को औसत उपभोग प्रवृत्ति तथा आय में परिवर्तन होने पर उपभोग में होने वाले परिवर्तन को हम सीमांत उपभोग प्रवृत्ति कहते हैं। इसी प्रकार बचत के संदर्भ में भी यही कहा जायेगा।

यहाँ पर जानना अति महत्त्वपूर्ण है कि यदि लगातार आय बढ़ने से उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति में वृद्धि होती हैं, तो माँग में वृद्धि होती है और रोजगार में भी परिणामतः वृद्धि हो जाती है। इन प्रवृत्तियों के बढ़ने व घटने पर बहुत से कारकों का प्रभाव पड़ता है जिनमें व्यक्तिपरक एवं वस्तुपरक कारक होते हैं। **उपभोग एवं बचत प्रवृत्ति को निम्नांकित गणितीय सूत्रों के रूप में भी रखा जा सकता है:**

औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) = $\frac{C}{Y} \; \frac{(\text{उपभोग})}{(\text{आय})}$

सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) $= \frac{\Delta C}{\Delta Y} \; \frac{\text{उपभोग में परिवर्तन}}{\text{आय में परिवर्तन}}$

औसत बचत प्रवृत्ति (APS) $= \frac{S}{Y} \; \frac{\text{बचत}}{\text{आय}}$

सीमांत बचत प्रवृत्ति (MPS) = $\frac{\Delta S}{\Delta Y} \; \frac{\text{बचत में परिवर्तन}}{\text{आय में परिवर्तन}}$

यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि बचत व उपभोग एक सिक्के के दो पहलू हैं। इन दोनों का आपस में विपरीत सम्बन्ध है। अर्थात् यदि उपभोग में वृद्धि होती है, तो बचत में कमी होगी और विलोमशः|

अतः 1- MPC = MPS

1- MPS = MPC

24.3.4 स्वतंत्र निवेश व प्रेरित निवेश (Autonomous and Induced Investment)

केंज़ के अर्थशास्त्र में निवेश को दो भागों में बांटा गया है - स्वतंत्र व प्रेरित। स्वतंत्र निवेश से अभिप्राय यह है कि यह निवेश आय में कमी व वृद्धि से प्रभावित नहीं होता है| यह आय से स्वतंत्र होता है। इसके विपरीत, प्रेरित निवेश वह निवेश

है जो आय में वृद्धि पर बढ़ता है और आय में कमी पर घटता है। यह कहा जायेगा कि **स्वतंत्र निवेश आय निरपेक्ष** (Income inelastic) तथा **प्रेरित निवेश आय सापेक्ष** (Income Elastic) होता है।

24.3.5 पूँजी की सीमांत कुशलता (Marginal Efficiency of Capital)

निवेश पूँजी की सीमांत कुशलता (लाभ प्रत्याशा) एवं ब्याज दर पर निर्भर करता है। पूँजी की सीमांत कुशलता पूँजी की अतिरिक्त इकाई के निवेशित करने से लाभ की दर मिलने की आशा है| **प्रेरित निवेश हमेशा ही लाभ प्रत्याशा** (prospective yield) **तथा ब्याज दर** (Interest Rate) **पर निर्भर करेगा। लेकिन स्वतंत्र निवेश इन पर निर्भर नहीं करता है।** सरकार द्वारा आर्थिक नियोजन के लिये कल्याणकारी कार्यों के लिये किया गया निवेश हमेशा स्वतंत्र निवेश होता है। यहाँ पर यह भी बता दें कि केंज़ ने मंदीकाल में सरकार द्वारा अधिकाधिक निवेश करने की हिमायत की है जिससे स्वतंत्र निवेश में वृद्धि से समस्त माँग को बढ़ाया जा सके।

24.3.6 गुणक (Multiplier)

आधुनिक आय व रोजगार के सिद्धांत में गुणक की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह अवधारणा सर्वप्रथम **एफ कॉहन** (F. Kahn) ने दी थी, जिसे केंज़ ने अधिक विस्तृत रूप से विकसित कर रोजगार व आय के सिद्धांत से जोड़ा। **गुणक, आय में वृद्धि तथा निवेश में वृद्धि के अनुपात** को कहा जाता है। उदाहरण के लिये, यदि रू. 100 करोड़ के निवेश के द्वारा आय में रू. 500 करोड़ की वृद्धि होती है, तो गुणक 5 होगा। **गणितीय सूत्र के रूप में :**

$$\text{गुणक (K)} = \frac{\Delta Y}{\Delta I} \qquad \frac{\text{आय में परिवर्तन}}{\text{निवेश में परिवर्तन}}$$

मूल प्रश्न यह है कि निवेश में वृद्धि से आय में वृद्धि क्यों होती है? जब हम एक मात्रा में निवेश करते हैं, तो उस निवेश कार्य में श्रमिक, कच्चा माल, आपूर्तिकर्ता आदि सभी योगदान करते हैं। उनकी सभी की आय उसी मात्रा में नहीं बढ़ती, जिस मात्रा में निवेश होता है, बल्कि उससे कहीं अधिक बढ़ती है क्योंकि जो आय उन्हें प्राप्त होती है वे उसे अन्य उपभोग वस्तुओं पर भी व्यय करते हैं, उन उपभोग वस्तुओं की माँग पूरी करने के लिये फिर निवेश होता है और यह चक्र संचयी (Cumulative) होता जाता है। परिणामतः जितना हम कुल निवेश करते हैं, आय में उससे कुछ गुना अधिक वृद्धि होती है। इस ‘गुना वृद्धि’ को ही गुणक कहा जाता है। यहाँ पर यह बताना उल्लेखनीय होगा कि आय में वृद्धि से सीमांत उपभोग में वृद्धि, उपभोग वृद्धि से समस्त माँग में वृद्धि, प्रेरित निवेश में वृद्धि और अंततः आय व रोजगार में वृद्धि हो जाती है। यहाँ पर यह जान लेना चाहिये कि **जितनी अधिक सीमांत उपभोग प्रवृत्ति होगी, गुणक का आकार भी उतना ही अधिक होगा।** क्योंकि यह स्पष्ट किया जा चुका है कि बढ़ती हुई सीमांत उपभोग प्रवृत्ति बढ़ते हुये उपभोग का परिचायक है और बढ़ता हुआ उपभोग ही अधिक समग्र माँग का आधार है। उपर्युक्त वर्णित सभी अवधारणाओं व उनके परस्पर सम्बन्ध एवं केंज के आय एवं रोजगार सिद्धांत को निम्नलिखित चित्र द्वारा समझ सकते है :

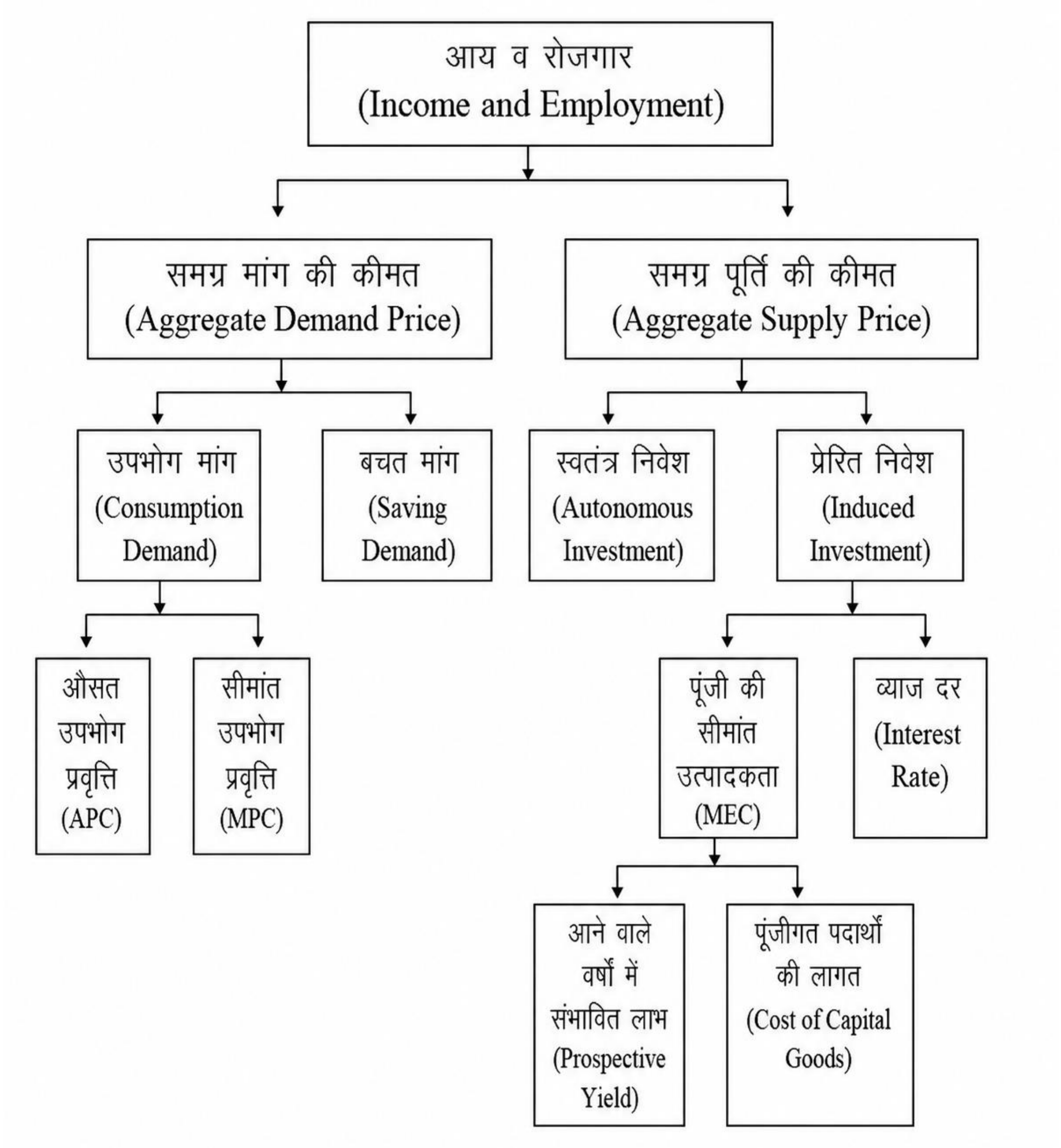

स्व मूल्यांकन – प्रथम

गतिविधि संख्या 1 (Activity No. 1) : माना कि राम की आय 10,000 रु. है और उसका उपभोग व्यय 8,000 रु. है। यदि राम की आय बढ़कर 18,000 रु. हो जाती है, जिसके कारण उसका उपभोग व्यय भी बढकर 12,000 रु. हो जाता है| राम की सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) ज्ञात कर उसे समझने का प्रयास कीजिये।

24.4 केंज़ के अनुसार आय व रोजगार में संतुलन (Equilibrium Between Income and Employment according to keynes)

केंज़ द्वारा प्रयुक्त सभी अवधारणाओं की व्याख्या करने के पश्चात् अब हम केंज़ के आय व रोजगार सिद्धांत की व्याख्या करेंगे। हम यह देख चुके है कि अर्थव्यवस्था में समग्र माँग कीमत व समग्र पूर्ति कीमत सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिनके संयोग से आय व रोजगार का निर्धारण होता है। अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि इन दोनों के द्वारा रोजगार के

संतुलन का निर्धारण (Determination of equilibrium level of employment) किस प्रकार होता है? इसे हम रेखाचित्र 24.1 के माध्यम से समझ सकते हैं।

रेखाचित्र संख्या -24.1

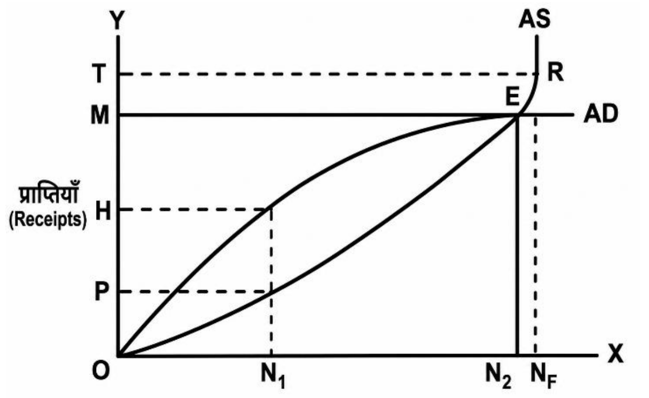

नियोजित श्रमिकों की संख्या

रेखाचित्र 24.1 में OX अक्ष पर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में लगाये गये श्रमिकों की संख्या है तथा OY अक्ष पर देश में सभी उद्यमियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं के विक्रय से होने वाली प्राप्तियाँ हैं। दूसरे शब्दों में, यह वह राशि है जो सम्पूर्ण समाज उद्यमियों की वस्तुओं व सेवाओं पर व्यय की जाती है। समग्र आपूर्ति वक्र (AS) यह दिखाता है कि उद्यमियों को किस रोजगार के स्तर पर कितनी राशि (Receipts) प्राप्त होती है और इसके अनुसार वे कितने श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराते हैं। उदाहरण के लिये, यदि उद्यमियों को OP राशि प्राप्त होती है, तो वे ON_1 श्रमिकों का रोजगार देंगे। समग्र माँग वक्र (AD) यह प्रदर्शित करता है कि उद्यमियों को विभिन्न रोजगार के स्तरों पर कितनी राशि प्राप्त होने की आशा है। जब ON_1 व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करते हैं, तो उन्हें OH राशि प्राप्त होने की आशा है। AS वक्र में एक विशेषता परिलक्षित हो रही है वह यह कि पहले यह वक्र धीमी गति से ऊपर उठता है और एक समय के बाद यह तेजी से बढ़ता है। इसका अर्थ यह है कि ज्यों-ज्यों रोजगार पर लगाने वाले श्रमिकों की संख्या बढ़ाई जाती है प्रारम्भ में उत्पादन लागत उतनी तीव्रता से नहीं बढ़ती। अतः यदि उद्यमियों को प्राप्त राशि में वृद्धि होती जाती है, तो उद्यमी अधिक से अधिक श्रमिकों को रोजगार प्रदान करते जायेंगे। इस रेखाचित्र में कुल ON_F व्यक्ति रोजगार चाहते हैं, तो ज्यों ही उद्यमियों को OT राशि प्राप्त होने लग जाती है, तो वे सभी उपलब्ध श्रमिकों को रोजगार प्रदान कर देते हैं। परन्तु अब यदि प्राप्त होने वाली राशि OT से अधिक भले ही बढ़ जाये कुल रोजगार ON_F से आगे नहीं बढ़ सकता। इस बिन्दु पर ही पूर्ण रोजगार स्थापित हो जायेगा। अतः ON_F पर AS वक्र पूर्णतया लम्बवत् (Vertical) हो जाता है।

AD वक्र प्रारम्भ में ही तीव्रता से बढ़ता है, जो कि इस बात को दर्शाता है कि जब पहले रोजगार में वृद्धि होती है, तो उद्यमियों को प्राप्त होने वाली राशि की आशा में तेजी से वृद्धि होने लगती है, परन्तु रोजगार पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाने पर प्राप्त होने वाली राशि इतनी तीव्रता से नहीं बढ़ती है। इसका कारण यह है कि जब लोगों की आय कम होती है, तो वे बचत नहीं कर पाते है और आय का एक बड़ा हिस्सा खर्च कर देते हैं। परन्तु जब अधिक रोजगार से उनकी आय में वृद्धि होती है, तब वे उस मात्रा में खर्च नहीं करते हैं, बल्कि बचत अधिक करते हैं अर्थात् अब उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति (MPC) कम हो जाती है। हम सभी जानते है कि कम आय होने पर उपभोग पर राशि अधिक व्यय होती है (उस समय उपभोग की औसत व सीमांत प्रवृत्ति अधिक होती है), परन्तु जैसे-जैसे आय में वृद्धि होती है सीमांत उपभोग प्रवृत्ति कम हो जाती है। सीमांत उपभोग प्रवृत्ति कम होने पर गुणक की मात्रा भी कम हो जाती है। उपरोक्त रेखाचित्र में यही बताया गया है कि समस्त माँग व समस्त पूर्ति द्वारा रोजगार का स्तर निर्धारित होता है। रेखाचित्र में बिन्दु E से बायीं ओर, अर्थात्

जब तक रोजगार ON_2 नहीं होता, तब तक समस्त माँग (AD) समस्त पूर्ति (AS) से अधिक रहती है और उद्यमी प्रतियोगिता के फलस्वरूप अधिकाधिक श्रमिकों को रोजगार प्रदान करते जाते हैं। अब यदि रोजगार पाने वालों व्यक्तियों की संख्या ON_2 से अधिक हो जाती है तो AS वक्र AD वक्र के ऊपर चला जाता है अर्थात् रोजगार ON_2 से अधिक होने पर उद्यमियों को हानि होने लगती है और वे उनकी छंटनी (Retrenchment) करना शुरू कर देते हैं। यह छंटनी तब तक होती जायेगी, जब तक यह स्तर ON_2 पर नहीं आ जायेगा।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि **संतुलन की स्थिति में पूर्ण रोजगार का होना आवश्यक नहीं है** (Equilibrium is not necessarily at full employment)| समस्त माँग व समस्त पूर्ति के बराबर होने पर संतुलन की स्थिति आती है, जिसका यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि हम पूर्ण रोजगार की स्थिति में हैं। हाँ, यह अवश्य है कि इस स्तर पर अनैच्छिक बेरोजगारी (Involuntary unemployment) नहीं होगी, जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है। इस स्थिति को एक और रेखाचित्र 24.2 के माध्यम से बताया जा सकता है।

रेखाचित्र-24.2

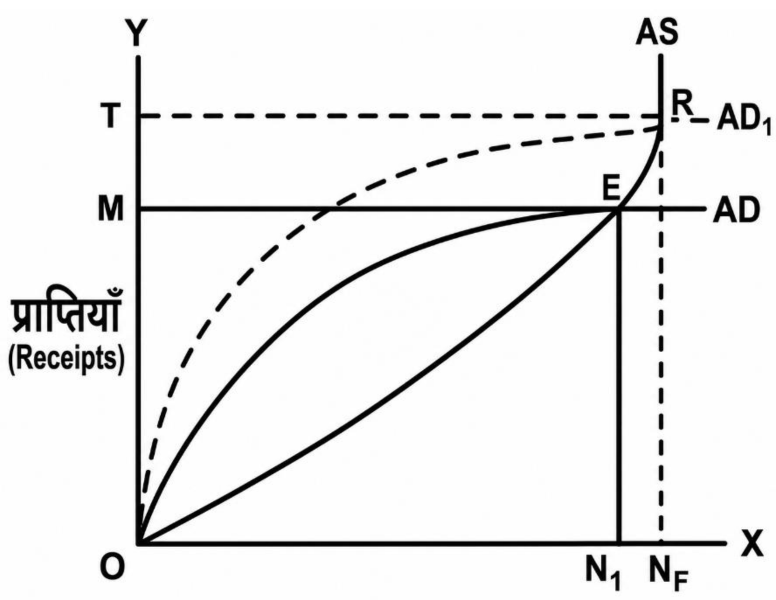

श्रमिकों की संख्या

रेखाचित्र 24.2 में कुल श्रमिक जो रोजगार चाहते हैं उनकी संख्या ON_F है, परन्तु पूर्ण रोजगार तब होगा जब ON_F श्रमिकों को रोजगार मिलेगा। यह स्थिति संतुलन की स्थिति है, परन्तु इस पर पूर्ण रोजगार नहीं है क्योंकि N_1NF श्रमिक अभी भी बेरोजगार हैं। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह बेरोजगारी तब ही हटना संभव है, जब अनुकूल कारणों से समस्त माँग बढ़कर AD_1 हो जाये अथवा प्राप्तियाँ OM के स्थान पर OT हो जाये। ऐसा होने पर (अर्थात् ON_F रोजगार स्तर पर) कोई भी व्यक्ति बेरोजगार नहीं रहेगा, जब तक कि वह उस मजदूरी स्तर पर काम करने का अनिच्छुक हो। इस रेखाचित्र में केवल ON_F की स्थिति ही पूर्ण रोजगार की स्थिति को बताती है। इसका एक और अर्थ यह है कि यदि हम इष्टतम संतुलन चाहते हैं (यानि की सभी इच्छुक व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करना चाहते हैं), तो हमें समस्त माँग को बढ़ाना होगा। यहाँ पर यह स्पष्ट करना होगा कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री इस संतुलन को मानने को तैयार नहीं थे, जिसमें बेरोजगारी विद्यमान हो। जबकि केंज़ के सिद्धांत में E बिन्दु पर संतुलन तो है, परन्तु अभी भी बेरोजगारों की संख्या N_1N_F है।

24.4.1 केंज़ के सिद्धांत का सार (Essence of Keynesian Theory)

यह स्पष्ट है कि **केंज़ ने सबसे अधिक जोर समग्र माँग को बढ़ाने पर दिया है** क्योंकि समग्र माँग (Aggregate demand) ही रोजगार की मात्रा का निर्धारण करती है| इसका कारण यह हैं कि अल्पकाल में समस्त पूर्ति (aggregate supply) स्थिर रहती है। समग्र पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक केंज़ के अुनसार अल्पकाल में स्थिर रहते हैं। संक्षेप में,

प्रभावी माँग = राष्ट्रीय आय = राष्ट्रीय उत्पादन का मूल्य = उपभोक्ता वस्तुओं पर किया गया व्यय + निवेश वस्तुओं पर किया गया व्यय।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि **रोजगार व आय के निर्धारण की कुंजी उपभोग तथा निवेश में है न कि 'से' द्वारा प्रतिपादित बाजार के नियम में।**

24.4.2 केंज़ के सिद्धांत की मान्यताएँ (Assumptions of Keynesian Theory)

केंज़ के रोजगार सिद्धांत की निम्नलिखित मान्यताएँ हैं :

1 केंज़ का सिद्धांत अल्पकालीन है।

2 रोजगार की मात्रा समग्र माँग, समग्र पूर्ति व प्रभावी माँग पर निर्भर करती है।

3 अल्पकाल में समग्र पूर्ति में (लागतों में) कोई परिवर्तन नहीं होता है।

4 माँग व पूर्ति में संतुलन से यह आवश्यक नहीं कि वह पूर्ण रोजगार पर ही हो। यह संतुलन पूर्ण-रोजगार से कम (less than full employment) पर भी हो सकता है।

5 यदि हमें अर्थव्यवस्था में रोजगार में वृद्धि करनी है, तो समग्र माँग की मात्रा में वृद्धि करनी होगी।

6 समग्र माँग का निर्धारण उपभोग माँग व निवेश माँग का जोड़ है।

7 निवेश के माध्यम से आय में होने वाली वृद्धि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के आकार के अनुसार गुणक प्रभाव से होती है।

24.4.3 सिद्धांत की समालोचना (Review)

आजकल के अर्थशास्त्री केंज़ के सिद्धांत को ही सही मानते हैं, अतः **यह सिद्धांत ही मूलतः रोजगार का आधुनिक सिद्धांत** कहा जा सकता है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों ने केंज़ के सिद्धांत में कुछ संशोधन अवश्य किये हैं, परन्तु उससे केंज़ की मूल अवधारणा परिवर्तित नहीं होती है। केंज़ की यह मान्यता थी कि अल्पकाल में उत्पादन के संगठन, संयंत्र तथा तकनीक में कोई परिवर्तन नहीं होता है, अतः उत्पादन लागत अल्पकाल में स्थिर ही रहती है। परन्तु हम यह जानते हैं कि उत्पादन क्षेत्र में निरंतर तकनीक व अन्य सुधार होते रहते हैं, जिससे लागत में भी कमी आती है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों का यह भी मत है कि सीमांत लागतों का वक्र उत्पादन की कई मात्राओं पर लगभग सीधा (Flat) ही रहता है। यह मत केंज़ के मत से भिन्न है क्योंकि केंज़ का विचार था कि सीमांत लागत वक्र उत्पादन को थोड़ा सा बढ़ाने पर ऊपर की ओर बढ़ जाता है। इस तर्क का अर्थ यह निकलता है कि रोजगार तथा उत्पादन बढ़ने पर यह आवश्यक नहीं है कि उत्पादन लागतें बढ़े, जिससे कीमत में वृद्धि हो और वास्तविक मजदूरी कम हो जाये। आधुनिक अर्थशास्त्रियों का यह मानना एक सीमा तक ठीक लगता है कि लागत में कमी होने पर वास्तविक लागत में कमी नहीं होती, बल्कि

उत्पादन में वृद्धि के साथ वास्तविक मजदूरी बढ़ भी सकती है। अतः मजदूरी-रोजगार के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में आधुनिक अर्थशास्त्री प्रतिष्ठत व केंज़ दोनों के ही सिद्धांतों से असहमति प्रकट करते हैं। **केंज़ द्वारा प्रतिपादित रोजगार व वास्तविक मजदूरी दर के विपरीत सम्बन्ध** (Inverse relationship between employment and real wage rate) **को आधुनिक अर्थशास्त्री मान्यता नहीं देते हैं।** इन मतभेदों के सिवाय आधुनिक अर्थशास्त्रियों के केंज़ के सिद्धांत से कोई असहमति नहीं है। हाँ यदि इस संशोधन को भी मान लिया जाये, तो केंज़ का सिद्धांत अधिक शक्तिशाली हो जाता है।

स्व मूल्यांकन – द्वितीय

यह आपको स्पष्ट हो गया होगा कि अर्थव्यवस्था में समग्र मांग (उपभोग मांग + निवेश मांग) के द्वारा रोजगार का स्तर तय होता है आपको यह बताना है कि -

(A) उपभोग मांग किस पर निर्भर है ?

(B) निवेश मांग किस पर निर्भर है ?

24.5 सारांश (Summary)

आय व रोजगार के सिद्धांत की अवधारणा के प्रतिपादन में एक लम्बी यात्रा समाहित है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री जिन तत्त्वों पर रोजगार व आय के सिद्धांत को अभेद्य मानते थे, वे सभी विश्व की आर्थिक मंदी ने ध्वस्त कर दिये थे। मंदी के दौरान किये गये विभिन्न उपायों से इसका प्रमाण भी मिलता है। परन्तु इसी मंदी के एक वृहत उपाय के रूप में केंज़ के सिद्धांत का प्रतिपादन मील का पत्थर साबित हुआ है। केंज़ ने समष्टि अर्थशास्त्र का कोई हिस्सा नहीं छोड़ा जिसको इस सिद्धांत ने सम्मिलित न किया गया हो। 'से' के बाजार नियम से ऊपर उठकर समग्र माँग, समग्र पूर्ति, निवेश, बचत, उपभोग प्रवृत्ति, गुणक आदि का प्रयोग न केवल आय व रोजगार के सिद्धांत के प्रतिपादन में हुआ, बल्कि विश्व घटना पटल पर व्यापार चक्रों व अन्य प्रकार के होने वाले आर्थिक उतार चढ़ावों का विश्लेषण भी इन अवधारणाओं से सटीक रूप से करने का अवसर मिला है। आधुनिक काल में इन सभी अवधारणाओं का प्रयोग केवल आय व रोजगार के संदर्भ में ही नहीं, बल्कि बहुत सी व्यष्टिगत समस्याओं (micro problems) में भी होने लगा है। आय व रोजगार के संतुलन की अवधारणा ने राष्ट्रीय आय, मौद्रिक व राजकोषीय नीतियों को एक नया आयाम दिया है, जिससे इन्हें प्रयोगिक स्तर पर भी अत्यधिक विचारणीय बनाया है और नीतियों को एक ठोस मार्गदर्शन मिला है। इसमें कोई संदेह नहीं कि केंज़ क्रांति अभी भी समाप्त नहीं हुई है।

24.6 अधिगम परिणाम (Learning Outcome)

- इस इकाई से विद्यार्थी आय व रोजगार की अवधारणा के बारे में जान गए होंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी केन्ज का आय व रोजगार सिद्धांत को समझ गए होंगे।
- इस इकाई से विद्यार्थी आय व रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धांत को जान गए होंगे।

24.7 शब्दावली (Glossary)

- **'से' का नियम (Say's Law)** : बाजार स्वयं अपनी पूर्ति की माँग उत्पन्न करता है।
- **समष्टि अर्थशास्त्र (Macro Economics) :** किसी अर्थव्यवस्था व घटकों का समग्र रूप से अध्ययन करना।

- **ऐच्छिक बेरोजगारी (Voluntary Employment) :** मजदूरी की वह दर जिस पर श्रमिक इच्छा से काम नहीं करना चाहते।
- **अनैच्छिक बेरोजगारी (Involuntary Employment) :** जो श्रमिक वर्तमान मजदूरी की दर पर काम करना चाहते हैं पर उन्हें इस पर रोजगार नहीं मिलता।
- **उपभोग प्रवृत्ति (Propensity of Consume) :** आय व उपभोग में फलनीय सम्बन्ध को कहते हैं|
- **बचत प्रवृत्ति (Propensity of Save) :** आय व बचत में फलनीय सम्बन्ध को कहते हैं|
- **तरलता अधिमान (Liquidity Preference) :** व्यक्तियों द्वारा जिन कारणों से नकद मुद्रा अपने पास रखने की प्राथमिकता।
- **समग्र माँग कीमत (Aggregate Demand) :** उद्यमियों द्वारा एक उत्पादन व रोजगार स्तर पर राशि प्राप्त होने की आशा।
- **समग्र पूर्ति कीमत (Aggregate Supply) :** उद्यमियों द्वारा एक उत्पादन व रोजगार स्तर पर वह राशि, जो उन्हें प्राप्त होनी ही चाहिये।
- **प्रभावी माँग (Effective Demand) :** वह स्तर जो अर्थव्यवस्था में समस्त माँग व समस्त पूर्ति के बराबर होता है।

24.8 स्व - परख प्रश्न (Self Test Questions)

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Type Questions)

1. सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति से आपका क्या आशय है?
2. गुणक का अर्थ स्पष्ट कीजिये
3. केंज के अनुसार गुणक किन दो बातों पर निर्भर करता है?
4. पूँजी की सीमान्त कुशलता से आप क्या समझते हैं?
5. समग्र माँग के दोनों घटकों का उल्लेख कीजिये।

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 केंज़ के आय व रोजगार सिद्धांत की व्याख्या कीजिये।
2 केंज़ के आय व रोजगार सिद्धांत में आय व रोजगार के संतुलन को स्पष्ट कीजिये।

24.9 संदर्भ व ग्रन्थ सूची (References and Bibliography)

- आहूजा एच.एल. : उच्चतर आर्थिक सिद्धांत, एस. चंद एण्ड कम्पनी, दिल्ली-1993
- Gupta G.S., Macroeconomics, Tata Mcgraw Hill Publishing Company Ltd. , 2004 , 2nd Edition.

24.10 अन्य पठन सामग्री (Other Reading Material)

- Allen R.G.D., Macro-Economic Theory : ELBS, 1973
- Edgmand Mechael R. : Macro-Economics, 2nd Edition, Pretice Hall, 1983

24.11 वेब संसाधन/लिंक (Web Resources/Links)

- https://www.yourarticlelibrary.com/notes/macroeconomics/the-keynesian-theory-of-income-output-and-employment/31036
- https://www.economicsdiscussion.net/keynesian-economics/keynesian-theory-of-income-and-employment-2/20753
- https://www.slideshare.net/CJOHARI/keynesian-theory-of-income-and-employment